LAGHU-SIDDHANT-KAUMUDI

BY

PANDIT VARADARAJ

WITH THE HINDI COMMENTARY

OF

VIDYA VARIDHI

Pandit Jwalaprasad Mishra.

Published by

Khemraj Shrikrishnadas.

SHRI VENKATESHWAR STEAM PRESS.

BOMBAY.

NINETH EDITION.

1949.

धन्यवादः

अद्यावधि संस्कृतभाषाव्याकरणशास्त्रप्रणेतारः पाणिन्यादयो महर्षयोऽनेकेऽभूवन् यैरपार-शब्दसागरे नियमप्रवहणानि निरमीयन्त । परंतु संप्रति सर्वतो व्यग्रचित्ततया व्याकुलीभूत-चेतसा जनानां बुद्धिजाड्यमालोच्य श्रीमता श्रीभट्टोजिदीक्षितशिष्यगणान्तःपातिना **वरद-राजाचार्येण** सुबोधतया शब्दसिद्धिबोधाय **लघुसिद्धान्तकौमुदी**नामा नवीनो ग्रंथो व्यरचि । अस्य लघुकौमुदीग्रंथस्य हिन्दीभाषायां सुस्पष्टार्थबोधार्थं यदि टीकाभविष्यत्तदाऽध्येतारः सुखेन शास्त्रमवाधास्यन्त इति मनसि कृत्वा मया मुरादाबादनिवासिनः विद्यावारिधिपण्डिताः श्रीज्वालाप्रसादशर्माणः स्वकीयमभिप्रायमवाबोध्यन्त । तैश्च मदीयमभिप्रायमूरीकृत्यास्य ग्रन्थस्य सुस्पष्टा **हिन्दीभाषाटीका** व्यरचि मत्समीपे प्राहीयत च । ततश्च मयैतत्तैः प्रहितं पुस्तकं सादरं स्वीकृत्य स्वकीये " **श्रीवेंकटेश्वर** " (स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्राकाश्यत । यद्यप्यस्य पुस्तकस्यैतादृशः सन्ति सुव्यवस्थया मुद्रिता भाषाटीकास्तथापि हिन्दीभाषायामेतादृश-सुव्यवस्थितिपुरःसरं मुद्रितेयमेव प्रथमा भाषाटीकेत्युद्वाहुरुद्घोषयामि । अस्यां भाषाटीकायामेभिः पंडितैर्यावानर्थघटना–पदघटनोदाहरणविवरण–परिवर्तनपरिश्रमः कृतोऽस्ति त परिश्रमं संस्मृत्य तावतो भूयसो धन्यवादान्दातुं सानन्देन मनसोद्युञ्जे ।

विद्वत्कृपाभिलाषी–

खेमराज–श्रीकृष्णदासः,

' **श्रीवेंकटेश्वर** ' (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्षः–**मोहमयीस्थः** ।

अथ लघुसिद्धान्तकौमुदीविषयानुक्रमणिका।

अथ प्रातिपदिक-सूत्राङ्कसूची.

(इति प्रातिपदिकसूची समाप्ता)

अथ तिङन्तधातु-सूत्रांकसूची ।

क्षिण्	७२३	तृण्	७२२	नट्	४९६
क्षिप्	७९३	तृद्	७१५	पच्	५८३
क्ष्विद्	५७५	तृप्	७०२	पठ्	७५३
क्षुद्	७१५	तृम्फ्	७०२	पद्	६८५
क्षुभ्	५७५	तृह्	७१५	पा	५२२
खिद्	७०१	त्रप्	५७८	पिश्	७०१
ख्या	६०५	त्रस्	६६१	पिष्	७१७
गण्	७४४	दद्	५७७	पी	६८१
गद्	४८७	दा	६०५	पुट्	७०३
गम्	५३९	दिव्	६७०	पुष्	६७६
गुप्	५०१	दिह्	६२०	पू	७३७
गृ	७११	दी	६७८	पृ	७१३
ग्रह	६३९	दी	६८५	पृङ्	७०३
ग्लै	५२८	दुह्	६२६	पॄ	६४९
घट्	७५१	दू	५७८	प्रच्छ	७१२
घुट्	५७५	दृ	७३६	प्री	७३१
चि	६८९	दो	६७५	प्सा	६०५
				बुध्	६८६
चित्	४८७	द्युत्	५७३	ब्रू	६३०
चुर्	७४२	द्रा	६०५	भज्	५१३
छिद्	७१५	द्रु	७६६	भञ्ज	७१७
छृद्	७१५	धा	६६४	भा	६०५
छो	६७५	धू	६९२।७३९	भिद्	७१५
जन्	६८१	धृ	५८३	भी	६४८
जि	७८६	ध्वंस्	५७६	भुज्	७०५।७०८
जुष्	७१३	नद्	४९२	भू	४०७
ज्ञप्	७५२	नस्	५७५	भृ	५८०।६६२
ज्ञा	७४१	नश्	६७६	भ्रंश	५७५
डी	६८१	नह्	६८७	भ्रस्ज	६९४
तच	७१७	निज्	६६५	मन्	७३०
तन्	७२०	नी (णी)	५८३	मस्ज	७०४
तप्	५२०	नुद्	६९४	मा	६६१।६८१
तुद्	६९४	नू (णू)	७०४		
तुभ्	५७५	नृत्	३७०	मिद्	५७५

इति तिङन्तधातु-सूत्राङ्क-सूची सम्पूर्णा ।

भूमिका।

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ये वेदके छः अंग हैं। इनमें "मुखंव्याकरणं प्रोक्तम्" व्याकरण वेदका मुख कहा है क्योंकि इसीसे अर्थका ज्ञान होता है जिस प्रकार मुखमें भोजन करनेसे अन्य सब इन्द्रियां पुष्ट हो जाती हैं, इसी प्रकार व्याकरण-शास्त्रके पढनेसे दूसरे शास्त्रोंका ज्ञान विशेष करके होजाता है इसीसे यह वेदका मुख कहा है। पूर्वकालमें व्याकरणशास्त्र महेश्वरसे प्रवृत्त हुआ है उनसे इन्द्रादि महानुभावोंने अध्ययन कर जगत्में प्रचार किया है. इनके सिवाय और भी व्याकरणाचार्य ऋषि मुनि महात्मा प्रगट होकर व्याकरण रच गये हैं जिनकी प्रथा पूर्वकालमें प्रचलित थी परन्तु इस समय इस देशमें पाणिनिमुनिकृत व्याकरणही सर्वोत्कृष्ट और सर्वत्र प्रचलित है. महाभाष्यपर्यन्त अनेक सद्ग्रन्थ टीका टिप्पणी आदि संयुक्त इसीपर बने हैं जिनके अध्ययन करनेसे पूर्ण विद्वत्ता प्राप्त होती है.

जैसा संस्कृतविद्याका गूढ और कार्यसाधक व्याकरण है वैसा और भाषाओंमें नहीं है. और भाषाओंका व्याकरण पढनेसे सर्वथा अर्थज्ञान नहीं होता किन्तु संस्कृतव्याकरण पढनेसे सम्पूर्ण शाब्दबोध और अर्थशास्त्रका ज्ञान होजाता है.

पाणिनिमुनिकृत व्याकरण महाभाष्यादिके सहित एक बृहत् और दीर्घकालसाध्य ग्रन्थ है, जिसका अध्ययन करना सुगम बात नहीं है. प्रथम उनके अध्ययन करनेको काशिका और कुछ कालके उपरान्त **सिद्धान्तकौमुदीका** प्रचार हुआ परन्तु यह भी दोनों ग्रंथ बहुत बृहत् होनेसे प्रथमही बालकोंकी समझमें नहीं आते इस कारण पण्डितवर वरदराजजीने सिद्धान्त कौमुदीकी रीतिपर सौरभाग लेकर **लघुकौमुदी** और **मध्यकौमुदी**की रचना की जिससे सिद्धान्तकौमुदी पढनेवाले विद्यार्थियोंका बडा सुभीता हुआ, इन दोनोंमें मध्यका प्रचार कम और लघुका अधिक है इसमें थोडा परिश्रम करनेसे ही विद्यार्थियोंको सिद्धान्तकौमुदी पढनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है और अर्थांशविषयका कुछ बोध हो जाता है,

यद्यपि यह ग्रन्थ छोटा है तो भी नवीन विद्यार्थियोंको कहीं कहीं इसके आशय समझनेमें बडी कठिनता होती है और अध्यापकोंसे बारबार पूछनेमें संकुचित होकर इसके तात्पर्यसे वंचित रह जाते हैं वह त्रुटि सदाके लिये रह जाती है और यह भी सत्य ही है कि बारबार पूछनेसे बहुधा अध्यापकमहाशयोंका शिष्योंके ऊपर क्रोध होता है और कह बैठते हैं कि कैसी बुद्धि है जो छोटी बात भी समझमें नहीं आती! यह दोनों ओरकी कठिनाई देखकर सर्व साधारणके समझने योग्य भाषाटीका करनेकी आवश्यकता हुई.

इसी अभिप्रायको हमारे परम अनुग्राहक परमोदार विद्याप्रचारनिरत सेठजी श्रीयुत **खेमराज श्रीकृष्णदासजी** महाशयने प्रगट किया कि, विद्यार्थियोंको अधिक लाभदायक सरल टीका लघुकौमुदीके ऊपर की जाय. उन महाशयके इस प्रस्तावसे विद्यार्थियोंके परमोपयोगी विवरणसहित **भाषाटीका** निर्माण किया जिसमें सम्पूर्ण शब्दोंकी साधनरीति यथोचित दिखला दी है और आवश्यकीय टिप्पणी आदि जो जहां उचित समझी वहां

लिखदी है. शब्दसिद्धिमें जो सूत्र लगते हैं उनके अंक कोष्ठबद्धकर क्रमसे लिख दिये हैं. जिस क्रमसे अंक हैं उसी क्रमसे सूत्र लगानेसे शब्द सिद्ध होजायगा और जहां नवीन विधि प्रारंभ हुई है वहां उस शब्दादिकी साधनरीति स्पष्ट लिखदी है जिससे कोई संदेह न रहे.

संधिके उपरान्त षड्लिंगमें जितने शब्द आये हैं, उनके सम्पूर्ण रूप विशेष उपपत्तिके निमित्त लिख दिये हैं और इसीप्रकार गणोंमें सम्पूर्ण धातुओंके रूप लिखनेकी इच्छा थी परन्तु ऐसा करनेसे ग्रन्थ बहुत बढ जाता और अधिक मूल्य होनेसे विद्यार्थियोंको यह ग्रन्थ सुलभ न होता यह विचारकर कठिन २ धातुओंके पूरे रूप और शेष धातुओंके प्रयोजनीय रूप लिखकर ग्रन्थकी पूर्ति की. परंतु आवश्यकीय कोई रूप छोडा नहीं है और उचित स्थानपर शंका समाधान भी कर दिया है.

पाणिनीयशास्त्रके आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्यायमें चार चार पाद हैं, इसी कारण इसको अष्टाध्यायी कहते हैं. सूत्रके आगे पहला अंक अध्यायका फिर पादका पीछे सूत्रोंकी संख्याके अंक हैं. यह अष्टाध्यायीका क्रम लुप्त न हो जाय इस कारण लिख दिये गये हैं और इस सूत्रसंख्याका कार्य बहुत जगह व्याकरणमें आता है, इस कारण इनका लिखना बहुत ही आवश्यक है, जहां सूत्रके आगे अंक नहीं हैं वह कात्यायनमुनिकृत वार्तिक है ।

जो कारिका विद्यार्थियोंके उपयोगी हैं वे परिशिष्टमें लिख दी हैं और उनपर सूत्रोंके अंक भी लगा दिये हैं जिससे विदित होता है कि, अमुक सूत्रपर यह कारिका है और पीछे सूत्रोंके अकारादि क्रम लिखकर सूत्रोंकी विभक्ति दिखला दी है, जिससे सूत्रार्थज्ञानमें सुगमता पडे । ग्रंथकारकी जीवनी जानना भी एक प्रधान अंग है इसकारण भट्टोजिदीक्षित और वरदराजका चरित्र भी कुछ लिख दिया है ।

यद्यपि कोई कोई पण्डित महाशय कहेंगे कि यह भाषाटीका करके विद्याका गौरव न्यून करना है सो ऐसा समझना विद्वत्ता नहीं है, क्योंकि थोडे परिश्रमसे इसका आशय समझ कर बोध होनेसे विद्यार्थियोंकी उन्नतिकी संभावना है और अध्यापकोंको अधिक श्रम न करना पडे तथा थोडे परिश्रमसे विद्यार्थीजन समझ सकें इसीकारण यह टीका रची गई है.

यह ग्रन्थ सब प्रकारके स्वत्वसहित सेठजी श्रीयुत **खेमराज श्रीकृष्णदासजी** महाराजको समर्पण कर दिया है जिन्होंने बहुत सावधानीके साथ अपने जगद्विख्यात " श्रीवेङ्कटेश्वर " (स्टीम) यंत्रालयमें छापकर प्रसिद्ध किया.

पाठक महाशयोंसे प्रार्थना है कि यदि कहीं भ्रमवश त्रुटि रह गयी हो तो अपनी उदारतासे सूचना दें उचित जानकर आगामीवार शुद्ध करदी जायगी इसके पढनेसे विद्यार्थियोंको लाभ होगा तो मैं अपने परिश्रमको सफल जानूंगा.

अनुगृहीत–पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.
मोहल्ला दिनदारपुरा–मुरादाबाद. U.P.

द्वितीया तृतीया चतुर्थी पंचमी षष्ठी तथा ७ आवृत्तिकी भूमिका।



व्याकरण शास्त्रके ज्ञाता इस बातको भली भांतिसे जानते हैं कि यह शास्त्र कितना कठिन और गूढ है और शैलीसे ऐसे ग्रन्थका उपयोगी अनुवाद कराना भी एक बडा कठिन कार्य है. एक बार निबन्ध बंध जानेसे फिर तो मार्ग सरल हो जाता है. जब इस लघुकौमुदीकी टीका छप कर प्रकाशित हुई तब विद्यारसिक पाठक जन और विद्यार्थियोंने इस ग्रन्थका बहुत सम्मान किया और इसकी शैलीको बहुत सराहा. यद्यपि शीघ्रतासे छपनेके कारण कहीं २ सूत्रांकमें अशुद्धि रह गयी थी तो भी शुद्धिपत्रके सहारेसे प्रयोग साधनेमें कठिनाई नहीं पड़ी, शीघ्रही प्रथमबारकी प्रति चुकजाने पर दूसरी बार इसके छापनेकी आवश्यकता होनेपर मने बहुत परिश्रमके साथ इसको सब प्रकार शुद्धकर पूर्वकालमें रहे सूत्र भी इसमें सन्निविष्ट करदिये हैं. नये सूत्रोंमें * फूल बना दिया है, अंक नहीं डाला है. अंक डालनेसे सब अंकोंमें गडबड पडती अतएव वह ज्योंके त्यों रहने दिये हैं और जहां कहीं कुछ त्रुटि थी वह सम्यक् प्रकारसे ठीक कर दी गयी है, आशा है अबकी वार पाठकगण इसको अवलोकन कर बहुत प्रसन्न होंगे.

इस अनुवादको देखकर नकल करनेवाले असहिष्णु मिथ्या शास्त्रीनामकी घोषणा कर नकल करनेसे नहीं चूकते और काटछांटकर एक दो भाग बनाकर अनुवादकर्ता रचयिता बनकर मन मनाते हैं परन्तु 'क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः' पुस्तक सम्मुख होनेसे भेद खुल जाता है. जब रामायणके टीकेकी नकल किये बिना नहीं रहा जाता तो कौमुदीके टीकेकी नकल उडानेमें लाज कहांतक काम देती. हमने स्वयं देखा है हमारी अनुवाद की हुई छपी पुस्तकोंपर अनुवाद नामधारी पंडितोंने एक दो स्थानोंपर एक दो शब्दोंका परिवर्तन करके ज्योंकी त्यों छपी पुस्तक ही प्रेसको भेज दी है और प्रेसवालोंने लोभवश उसको छापडाला है. ऐसे हमारे पास कई उदाहरण हैं. अभीतक तो लोग अपना नाम करनेको दूसरोंसे ग्रन्थ बनवाकर स्वयं ग्रन्थकर्ता बनते थे पर अब तो इतनी लाजको तिलाञ्जलि दी गयी है कि जैसे किसीके धनपर डाका डाला जाता हो, आगेके लिये हम ऐसे महात्माओंको सावधान किये जाते हैं कि अपने हाथसे यश कमानेमें लाभ है न कि इस प्रकारके कर्मसे स्वयं परिश्रम करनेसे मुख उज्ज्वल होता है. अस्तु हम विद्यार्थियोंके लाभकी ओर ध्यान रखकर इस बातको इतनेमें ही समाप्त करते हैं.

सं० १९८३.

ज्वालाप्रसाद मिश्र.

भट्टोजिदीक्षित।

--०=*=०--

भट्टोजिदीक्षितने संस्कृतके साहित्यमें बडे ऊंचे स्थानमें अपने अधिकारको कर लिया है । उन्होंने महर्षि पाणिनिके जगद्विख्यात "अष्टाध्यायी" व्याकरणके सूत्रोंका अवलम्बन कर अतिप्रसिद्ध सिद्धान्तकौमुदी बनायी और इसकी सहायतासे इन महात्माने पाणिनिके माहात्म्यका सारे संसारमें प्रचार किया । आज हम जगद्विख्यात पंडितका जीवन चरित्र व इनके समयका निर्णय करते हैं।

कन्नौज (कानकुब्ज) बहुतकालसे भारतवर्षके इतिहासमें प्रसिद्ध है भूगोलके जाननेवाले ग्रीकनिवासी टलेमिने (अनुमान १४०—१६० ई०में) प्राचीन कन्नौज नगरीका नाम लिखा है । तबसे लेकर सन् ई० बारह सौके पिछले हिस्सेतक कन्नौजका नाम भारतवर्षके इतिहास में वारंवार लिखा हुआ दिखलायी देता है । ईसवी चौथी शताब्दीके मध्यभागमें कन्नौज गुप्त सम्राटोंके अधिकारका एक उत्तम और प्रधान नगर गिना जाता था, फिर चौथी शताब्दीसे लेकर छठे शताब्दीके मध्यम जन्मतक कन्नौज गुप्त महाराजाओंके अधिकारमें रहा । ईसवी पांचवी शताब्दीके आरम्भमे (३९९, ४१४. ई०) चीनके विख्यात भ्रमण करनेवाले फाहियानने कन्नौजको देखकर अपने भ्रमणवृत्तान्तकी पुस्तकमें उसकी सम्पत्तिका वर्णन किया है उस कालमें कन्नौज गुप्त महाराजाओंके अधिकारमें था। गुप्त महाराज नरसिंहगुप्तका सेनापति और सामन्तराज यशोधर्म हुनराजके मिहिर कुलको पराजित करके स्वयं महाराज बन बैठा । ज्ञात होता है कि कदाचित् यह मालवेमें गुप्तमहाराजाओंका हाकिम होकर उन पर राज करता था । अपने बाहुबलके द्वारा हुनराजके हाथसे गुप्तराज्यका उद्धार कर सेनापति यशोधर्म्मने पिछले गुप्त सम्राट् दूसरे कुमारगुप्तके हाथसे राज्यका भार अपने हाथमें लेलिया । इसने महाराजाधिराज विष्णुवर्द्धनकी उपाधि धारण करके कन्नौजको अपने अधिकारमें करके राजधानी बनाया । इस यशोधर्म्मके नामकी जो दो शासनलिपि पुरातत्त्वविन् फ्लीट साहबकी कोशिससे मंदसोरमें निकली है, उनमें एक ५३३—३४ई०में खुदी है महाराज विष्णुर्वद्धनके समयसे भारतवषके बीच कन्नौज प्रधान नगर गिना जाने लगा । अनुमान ५३०—८० सन् इ० तक पचासवर्षतक विष्णुवर्द्धन कन्नौजका राज करता रहा, गुप्त महाराजाओंकी अवनतिके पीछे इसी भांति वर्द्धनवंशका राजपाट कन्नौजमें प्रतिष्ठित हुआ । इस वर्द्धनवंशका आदिवासस्थान थानेश्वर था ।

वर्द्धनवंशकी प्रतिष्ठा और संपत्ति इसके संग बढती रही, ईसवी छठी शताब्दीके मध्यभागसे कन्नौजकी इज्जत संपत्ति बहुत बढगई । तबसे कन्नौज संस्कृती चर्चाके विषयमें एक विख्यात स्थान होगया, वर्द्धनवंशका पिछला राजा हर्षवर्द्धन शिलादित्य ६०७—६४८ ई० तक समस्त भारतवर्षका चक्रवर्त्ति महाराज था, इसी हर्षवर्द्धनके समयमें अर्थात्

इस मदनपालहीकी सभामें विराजमान रहकर महेश्वरने " साहसाङ्कचरित " और "विश्वकोश" अभिधान रचा । विल्सन् साहबके अनुमानसे महेश्वरने सन् ११११ई० में विश्वकोश बनाया। महेश्वरने " वैद्यराजशेखर और कविराज परमेश्वर" कहकर विश्व-कोशके शेषभागमें अपना परिचय दिया । गुजरातके सुप्रसिद्ध जैन नरपति कुमारपालके सभासद जैनाचार्य हेमचन्द्रके " अभिधानचिन्तामणि" का नानार्थ भाग विश्वकोशसे संगृहीत हुआ है।

महेश्वरकविराजके पिताका नाम ब्रह्मेश्वर और दादाका नाम केशव था. केशवका महेश-नामक चाचा वैद्यकशास्त्रमें अत्यन्त प्रसिद्ध होगया। महेशके पिताका नाम दामोदर और दादाका नाम श्रीकृष्ण था, श्रीकृष्ण गाधिपुरकी राजसभामें विद्यमान था, श्रीकृष्णका पिता हरिश्चन्द्र चरकसंहिताकी टीका बनाकर प्रसिद्ध हुआ, विश्वकोशके आरम्भमें कविराज महे-श्वरने इस प्रकार अपना परिचय दिया है। शाके १६१९ पौष मासका लिखा हुआ एक विश्वकोश पाया गया है अबतक जो कुछ लिखा गया तिससे यह निश्चित जाना जासकता है कि, प्राचीन समयसे कन्नौज संस्कृतकी चर्चाके लिये विख्यात है। भट्टोजिदीक्षित इसी कन्नौजकी राजसभामें हुए इसी कारण उनके होनेसे जो कन्नौजमें संस्कृतकी चर्चा होती थी उसका वर्णन यहांपर लिखा गया। जिस समय महेश्वर कविराजने राजा मदनपालकी राज-सभामें विराजमान रहकर "विश्वकोश" अभिधान बनाया उस कालमें हृदयधरभट्ट कन्नौजके राजाका मंत्री था। महाराजा मदनपालकी मृत्युके पीछे उनका पुत्र गोविन्दचन्द्रदेव कन्नौ-जके सिंहासनपर बैठा। ११२० सन् ई० का खुदाहुआ ताम्रपत्र कि, जिसपर महाराज गोविन्दचन्द्रका नाम लिखा हुआ पायागया है। इन्होंने अनुमान सन् १११९ ई० से लेकर सन् ११५६ ई० तक कन्नौजमें राज्य किया फिर गोविन्दचन्द्रदेवके पुत्र विजयचन्द्र-देवने ११६० से लेकर ११७६ तक कन्नौजका राज्यभार संभाला। इसही विजयचन्द्रका पुत्र जयचन्द्र कन्नौजका पिछला स्वाधीन राजा हुआ ११७७-९३ ई० तक सत्रह वर्ष राज्य करके महाबुद्धिमान् शहाबुद्दीन गोरीके हाथसे हारकर महाराज जयचन्द्र मारा गया, और अपने रुधिर-सेही उत्तम महाराजने स्वदेशद्रोहिता और पापका प्रायश्चित्त किया।

हृदयधरभट्टका पुत्र लक्ष्मीधर महाराज गोविन्दचन्द्रदेवके यहां महासंधिविग्रहादिकके पदपर नियत था। महाराजकी आज्ञासे इस सुपंडित ब्राह्मण सचिवने द्वादशकाण्डमें "कृत्यकल्पतरु"

---

१ गाधिपुर कुशस्थल, महोदय और कान्यकुब्ज यह कन्नौजके प्राचीन नाम हैं। इन नामोंसे यह पाया जाता है कि, महेश्वरके पूर्व पुरुषभी इसी राजसभामें विद्यमान थे। महेश्वरने कविराज भोगीन्द्र कात्यायन साहसाङ्क वाचस्पति, व्याडि, विश्वरूप, अमरसिंह, मंगल, शुभाङ्क, गोपालित और माण्डवाके बनाये कोषसे सहायता लेकर विश्वकोश बनाया इसमें महेश्वरसे पहले हो गए हुए कोशकारोंका नाम पाया जाता है और वह भी जाना जाता है कि महेश्वरके समयमें इन कोषकारोंके बनाये हुए ग्रंथ प्रचलित थे।

नामक प्रसिद्ध और विस्तारित ग्रन्थ बनाया, लक्ष्मीधरका सुविस्तीर्ण "कृत्यकल्पतरु" नामक ग्रन्थ देवगिरनिवासी हेमाद्रिके बनाये "चतुर्वर्गचिन्तामणि" नामक सुप्रसिद्ध स्मृति-ग्रन्थसे सौ वर्ष पहले लिखा गया, और संगृहीत हुआ। दक्षिणापथके अन्तर्गत देवगिरीके यदुवंशीय राजा कृष्णके भ्राता राजा महादेवकी (१२६०–७१) ई० आज्ञासे उनके सभासद हेमाद्रिने ईसवी १३ शताब्दीके शेषभागमें "चतुर्वर्गचिन्तामणि" नामक ग्रन्थ बनाया था। सन् ईसवी १२ शताब्दीके शेषभागमें कन्नौजके महाराजा गोविन्दचंद्रदेवकी आज्ञासे लक्ष्मीधर भट्टने "कृत्यकल्पतरु" संगृहीत किया। चतुर्वर्गचिन्तामणिके समान लक्ष्मीधरका ग्रंथ कई एक प्रधान भागोंमें विभक्त है। तिनमें "व्यवहार" "काल" और "मोक्षकाण्ड" मिलगया है १९१० शकाब्द (१९८८ ई०) का लिखा "कृत्य-कल्पतरु" का कालकाण्ड नदिया जिलाके उलाग्राममें दीनानाथभट्टाचार्य्यके स्थानपर विद्यमान है।

इन्हीं लक्ष्मीधरके पुत्र भट्टोजीभट्ट हुए। यह ई० १२ शताब्दीके मध्य और शेषभागमें कन्नौजके स्वामी महाराजा गोविन्दचन्द्र और विजयचन्द्रकी सभामें विद्यमान थे। भट्टोजिदीक्षितने "सिद्धान्तकौमुदी" के सिवाय "शब्दकौस्तुभकारिका,, "धात्वर्थ" "तत्त्वकौस्तुभ" "पूजाप्रकरण" "तिथिनिर्णय" और "श्राद्धकाण्ड" बनाया, महर्षि पतंजलिके बनाये हुए महाभाष्यके अवलंबनसे पाणिनिके अष्टाध्यायी सूत्रोंकी व्याख्याके रूपसे शब्दकौस्तुभ) बनाया गया, इस पुस्तकमें जो उन्होंने अपना वृत्तान्त लिखा है, प्रयोजनीय समझकर उसको यहांपर उद्धृत किया है. वह व्याकरण और स्मृति दोनोंको भली भांतिसे जानते थे। इन महाशयने "तत्त्वकौस्तुभ" में मध्वाचार्यके वेदान्तभाष्यका मत खण्डन करके शंकराचार्यका मत ग्रहण किया है। भट्टोजिदीक्षित सर्वशास्त्रदर्शी महामहोपाध्याय पंडित थे। वाराणसी नगरमें ब्राह्मणके यहां इनका जन्म हुआ। अतिप्राचीनकालमें बनारसका भट्टवंश संस्कृत चर्चा और पंडिताईके लिये विख्यात है।

"विश्वेशं सच्चिदानन्दं वन्देऽहं योऽखिलं जगत्।
चरीकर्ति वरीभर्ति संजरीहर्ति लीलया ॥
नमस्कुर्वे जगद्वन्द्यं पाणिन्यादिमुनित्रयम् ॥
श्रीभर्तृहरिमुख्यांश्च सिद्धान्तस्थापकान्बुधान् ॥
नत्वा लक्ष्मीधरं तातं सुमनोवृन्दवन्दितम् ॥
फणिभाषितभाष्याब्धेः शब्दकौस्तुभमुद्धरे ॥
समर्प्य लक्ष्मीरमणे भक्त्या श्रीशब्दकौस्तुभम् ॥
भट्टोजिभट्टजनुषः साफल्यं लब्धुमीहते ॥"

भट्टोजिदीक्षितके समान श्रीहर्षदेव भी महाराजा विजयचन्द्रकी सभामें विद्यमान थे, श्रीहर्षका जन्म बनारसमें हुआ उनके पिताका नाम श्रीहरि और माताका नाम मामल्लदेवी

था मामल्लदेवीके भ्राता मम्मटभट्टने "काव्यप्रकाश" नामक अलंकारका विख्यात ग्रन्थ बनाया । विजयचन्द्रकी आज्ञासे श्रीहर्षने महाभारतके नलोपाख्यानका अवलंबनकर "नैषधचरित" नामक महाकाव्य बनाया. नैषधचरितके सिवाय इन श्रीहर्षने "नवसाहसांकचरित" " छन्दःप्रशस्ति " "विजयप्रशस्ति" और "खण्डनखण्डखाद्य " रचना किया । इन्होंने अपने बनाये हुए ग्रन्थोंमें कवित्व और दार्शनिकताका अपूर्व मेल दिखाया है ॥

भट्ट वैद्यनाथका "कौस्तुभटीका " और कृष्णमिश्रका "भावप्रदीप" शब्दकौस्तुभके यह दो टीके लिखे गये । भट्टोजिदीक्षितकी बनाई "सिद्धान्तकौमुदी " का अवलम्बन करके उनके शिष्य वरदराजने मध्यसिद्धान्तकौमुदी और " लघुकौमुदी " बनाई । संवत् १२५० अर्थात् (११९३) ई० में मध्यसिद्धान्तकौमुदी बनी ।

नत्वा वरदराजः श्रीगुरून्भट्टोजिदीक्षितान् ।
करोति पाणिनीयानां मध्यसिद्धान्तकौमुदीम् ॥
कृतिर्वरदराजस्य मध्यसिद्धान्तकौमुदी ।
तस्याः संख्या तु विज्ञेया खबाणकरवह्निभिः ॥

इन वरदराजने बारहवीं शताब्दीके शेषभागमें "व्यवहारनिर्णय" स्मृतिविषयक ग्रन्थ बनाया शिवानन्दभट्टकी आज्ञासे उनके पुत्र रामभट्टने " मध्यमनोरमा " नामक वरदराजकृत "मध्य-सिद्धान्तकौमुदी" की व्याख्या बनाई। 'सिद्धान्तकौमुदी''के अवलंबसे "सारकौमुदी" नामक एक और व्याकरण बनाया । भट्टोजिदीक्षितने अपनी बनाई सिद्धान्तकौमुदीका "प्रौढमनोरमा" नामक टीका बनाया । भट्टोजिदीक्षितजीके वीरेश्वर और भानुजी नामक दो पुत्र हुए। वीरेश्वरका बनाया हुआ कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, वाघेलवंशीय राजा कीर्तिसिंहदेवकी आज्ञासे भानुजीने अमर-कोशकी " व्याख्यासुधा " नामक अत्युत्तम व्याख्या रची । भानुजीने इसमें अपनेसे पहले रायमुकुटादि टीकाकारोंका भ्रम दिखाकर अपनी विज्ञताका परिचय दिया है, भट्टोजिदीक्षितके दूसरे शिष्य महेशमिश्रके पुत्र वनमालीमिश्र नामक एक मैथिल ब्राह्मणने " कुरुक्षेत्रप्रदीप " ग्रन्थमें पुण्यतीर्थ कुरुक्षेत्रके माहात्म्यको वर्णन किया है ।

---

१ राजशेखर नामक एक जैन लेखकने सन् १४८ ई० में प्रबन्धकोष नामक ग्रन्थ बनाया । इस पुस्तक में उसने कन्नौजके महाराज जयचन्द्रकी सभामें श्रीहर्षदेवके स्थित होनेका वर्णन लिखा है । यह श्रीहर्ष बंगदेशमें आये हुए पंचगौडोंमें भरद्वाज गोत्रके श्रीहर्षसे अलग है, डाक्टर बूलरके मतसे यही जयचन्द्र गोविन्दचन्द्रदेव का पुत्र और जयचंद्रसे अभिन्न हैं । डा० रामदाससेनने भी इसी बातको माना है ।

भट्टोजिदीक्षितके पोते और वीरेश्वरके पुत्र हरिदीक्षितने भट्टोजी रचित " प्रौढमनोरमा " टीकाकी " लघुशब्दरत्न " नामक व्याख्या रची, इन हरिभट्टका शिष्य नागेश (नागोजी) भट्ट अतिप्रसिद्ध ग्रन्थकार हुआ, नागेशके पिताका नाम शिवभट्ट और माका नाम सतीदेवी था। नागेशभट्टकृत लघुशब्देन्दुशेखर, भाष्यप्रदीपोद्योत, वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा, सप्तशती-व्याख्या और " स्फोटवाद " पायागया है। वैद्यनाथ भट्टने " लघुशब्देन्दुशेखर " और " वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा " ग्रन्थकी टीका बनाई।

" अधीत्य फणिभाष्याब्धिं सुधीन्द्रहरिदीक्षितात्।
न्यायतंत्रं रामरामाद्वादिरक्षोघरामतः॥
याचकानां कल्पतरोररिकक्षहुताशनात्।
शृंगवेरपुराधीशाद्रामतो लब्धजीविकः॥
वैयाकरणनागेशः स्फोटायनऋषेर्मतम्।
परिचिन्त्योक्तवांस्तेन प्रीयतामुमया शिवः॥ "

(वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा)

शृंगवेरपुरके राजा हिम्मतिवर्म्माके पुत्र रामवर्म्माकी सभाके यह नागेशजी पंडित थे, और उनके गुरु भी थे। इन रामवर्म्माने अध्यात्मरामायणका " सेतु " नामक एक टीका भी बनवाया है।

" विसेनवंशजलधौ पूर्णः शीतकरोऽपरः।
नाम्ना हिम्मतिवर्म्माभूद्धैर्य्येण हिमवानिव॥
तस्माज्जातो रामदत्तश्चन्द्राच्चन्द्र इवापरः।
मित्राणाञ्च रिपूणाञ्च मानदः प्रथितः प्रभुः।
भट्टनागेशशिष्येण बध्यते रामवर्मणा।
सेतुः परोपकृतयेऽध्यात्मरामायणाम्बुधौ॥ " (सेतु)

भट्टोजिदीक्षितकी " प्रौढमनोरमा " के भाष्यरूपसे " लघुशब्देन्दुशेखर " नागेशभट्टने बनाया।

" पातञ्जले महाभाष्ये कृतभूरिपरिश्रमः।
शिवभट्टसुतो धीमान्सतीदेव्यास्तु गर्भजः॥
नत्वा फणीशं नागेशस्तनुतेऽर्थप्रकाशकम्।
मनोरमोमार्द्धदेहं लघुशब्देन्दुशेखरम्॥ "

(लघुशब्देन्दुशेखर)

हरिदीक्षितकृत लघुशब्दरत्नकी पायगुण्डे वैद्यनाथभट्टने "भावप्रकाश" नामक टीका बनाई । इन वैद्यनाथने "लघुशब्देन्दुशेखर" ग्रन्थकी टीका "चिदस्थिमाला" नामक रची । गंगाधरकृत "लघुशब्देन्दुशेखर" की टीका "इन्दुप्रकाश" और उदयंकरकी बनाई टीका "ज्योत्स्ना" नामसे प्रसिद्ध है ।

जयकृष्णभट्टने "सिद्धान्तकौमुदी" की "सुबोधिनी" नामक टीका बनाई । जयकृष्णके पिताका नाम रघुनाथ और दादाका नाम गोवर्द्धन था, इनका जन्म मौनिकुलमें हुआ । जयकृष्णभट्टने स्फोटचट्टक, कारकवाद, शुद्धिचन्द्रिका और वृत्तिदीपिका बनाई । इनकी माताका नाम जानकी था । जयकृष्णभट्ट माधवेन्द्रसरस्वतीके शिष्य थे, इनके पुत्र राघवेन्द्रभट्टने अमरकोश अभिधानका एक भाष्य बनाया, इनही राघवेन्द्रप्रणीत "अभिज्ञानशाकुन्तल" की एक टीका बनारसमें पाई गई है ।

महामहोपाध्याय भट्टोजिदीक्षितकी बनाई "सिद्धान्तकौमुदी" का अवलम्बन करके इन्द्रदत्त उपाध्यायने "गूढफक्किकाप्रकाश" नामक टीका बनाई ।

गर्गवंशावतंसो यो वैयाकरणकेसरी ।
उपाध्यायोपनामेन्द्रदत्तस्यैषास्ति सत्कृतिः ॥
इन्द्रदत्तेन विदुषा कृतोऽयं संग्रहो मुदा ।
सिद्धान्तकौमुदीगूढफक्किकार्थः प्रकाश्यते ॥

अबतक जो जो कुछ लिखा गया इससे निश्चय प्रमाणित होता है कि ईसवी १२ शताब्दीके मध्यभागमें कन्नौजके महाराजा गोविन्दचन्द्रदेवके राज्य करनेके समय बनारस

१–नत्वा गुरुं वैद्यनाथः पायगुण्डाख्यको वृत्तिम् ।
चिदस्थिमालां तनुते लघुशब्देन्दुशेखरे ॥

२–पित्रोः पादयुगं नत्वा जानकीरघुनाथयोः ।
मौनिश्रीकृष्णभट्टेन तन्यते स्फोटचट्टका ॥
(स्फोटचट्टका)

३–ध्यात्वा व्यासं गुरुं नत्वा माधवेन्द्रसरस्वतीम् ।
मौनिश्रीकृष्णभट्टेन तन्यते वृत्तिदीपिका ॥
(वृत्तिदीपिका)

४–कात्यायनव्याडिश्रीमाधवादीन्कातन्त्रतन्त्राणि विचार्य यत्नात् ।
श्रीराघवेन्द्रोऽमरसिंहकोशे तनोति भाष्यं सुधियां हिताय ॥ १ ॥
(अमरभाष्य)

महामहोपाध्याय भट्टोजिदीक्षितने जन्म ग्रहण किया। उनके पिता लक्ष्मीधरभट्ट उस समय वाणातासी राज्यके मंत्री थे। महाराज गोविन्द्रचन्द्रदेवकी आज्ञाके अनुसार लक्ष्मीधरने "कृत्यकल्पतरु" नामक स्मृतिका एक बडा संग्रह किया, संभव है कि "अद्वैतमकरन्द" नामक वैदान्तिक ग्रंथ भी इन्हीं लक्ष्मीधरभट्टने बनाया हो, भट्टोजिदीक्षितके शिष्य वरदराजने सन् १६९२ ई० में "मध्यसिद्धान्तकौमुदी" बनाई। इससे भट्टोजिदीक्षितका समय निरूपित होता है। "नैषधचरित" काव्यके बनानेवाले श्रीहर्ष और "व्यवहारनिर्णय" नामक स्मृति शास्त्रके बनानेवाले वरदाचार्यके समयमें भट्टोजि हुए। यह महामहोपाध्याय पंडित "सिद्धांन्तकौमुदी" बनाकर जगतमें विख्यात हुए हैं, जो यह सिद्धांन्तकौमुदी न बनाते तो महर्षि पाणिनिके अष्टाध्यायी व्याकरण सूत्रका अनुशीलन रहित होकर संस्कृत साहित्यमेंसे पाणिनिका नाम लोप हो जाता।

भट्टोजिदीक्षितने "तत्त्वकौस्तुभ" में अपने समयके मध्वाचार्यका * मतखण्डन करके शंकराचार्यके कहे अद्वैतब्रह्मवादकी अभ्रांति और सत्यता प्रतिपादन की। व्याकरणदर्शन और स्मृति आदि सर्व शास्त्रोंको भट्टोजी भलीभांतिसे जानते थे। अध्यापक वेनरका मत है कि भटोजिदीक्षित १७ शताब्दीमें हुए और तभी सिद्धान्तकौमुदी बनी। डाक्टर जलिका मत है कि ई० १६ शताब्दीके शेष या १७ शताब्दीके आरंभमें दक्षिणापथके तामिलदेशमें वरदराजने उत्पन्न होकर "व्यवहारनिर्णय" नामक स्मृतिग्रन्थ बनाया है, कोई कहते हैं कि भट्टोजिदीक्षित सारस्वत ब्राह्मण थे, शालिवाहन शके १५०० शाकेमें विद्यमान थे, कहते हैं कि इन्होंने पंडितराज जगन्नाथको समझाया था और जगन्नाथ पण्डितराजका समय सन् १६६६ ईसवी है, नागोजी भट्टका समय सन् १७०६ है, नागोजीभट्टसे भट्टोजिदीक्षित तृतीय पूर्व पुरुष थे इससे वह सन् १६४६ में विद्यमान थे उसका निर्णय वृक्ष यह है।

शेषश्रीकृष्णः

भट्टोजिदीक्षितः (शिष्यः)	शेषवीरेश्वरः	(पुत्रः)
वीरेश्वरदीक्षितः (पुत्रः)	पंडितराजजगन्नाथः	(शिष्यः)
हरिदीक्षितः (पुत्रः)	नागोजीभट्टः	(शिष्यः)

---

* ११९९ ई० (११२१) शकाब्दमें दक्षिणापथके अन्तर्गत तुलवदेशमें वैष्णवसंप्रदायके प्रवर्तक मध्वाचार्यभट्टने जन्म ग्रहण किया इनके पिताका नाम मधिजीभट्ट था, मध्वाचार्यने शिवमंदिरमें विद्याभ्यास कर अच्युतप्रच आचार्यके उपदेशसे वैष्णवधर्ममें दीक्षित हो उडदपिनगरका मन्दिर बनाय वहां विष्णुमूर्तिकी प्रतिष्ठा की। वैष्णवधर्ममें इनका सम्प्रदाय पृथक् है।

इनके वंशके पुरुष महाराष्ट्र देवालयमें पूजा करते थे, यह विशेष प्रतिष्ठा प्राप्तिके निमित्त काशीमें जाकर पढने लगे थे, थोडे ही समयसें यह भट्टाचार्य हुए,श्रीमद् अप्पयदीक्षितने १६३७ में इनके ग्रन्थ देखकर इनका बडा सम्मान किया, शब्दकौस्तुभ लाख २ श्लोकोंमें इनका रचा है जो पूरा नहीं मिलता। जो कुछ भी हो दीक्षित महोदयका स्वयंलिखित समय न मिलनेसे दूसरे ग्रन्थोंसे अनुमान करना पडता है. अप्पयदीक्षितके समयका इसमें भी विरोध है इन लोगोंके अनुमानका अमूलक न होना इस प्रबंधमें भलीभांतिसे दिखाया गया है। यह पुरातन ग्रन्थोंके अनुशीलनसे लिखा गया, यदि कोई महाशय और निर्णय लिख भेजेंगे तो वह उनके धन्यवाद सहित इसमें लिखा जायगा.

निवेदक–

ज्वालाप्रसाद मिश्र.



॥ श्रीः ॥

दो शब्द.

नृत्तावसाने नटराजराजो, ननाद ढक्कां नवपंचवारम् ।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान्, एतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥

उपरोक्त श्लोकमें व्याकरणके आदि विकाशक इतिहास स्थित है । इसमें व्याकरणको सर्वशास्त्रोपकारकत्वहोनेसे इसका महत्त्व और गौरव स्वयम् सिद्ध है । वैदिककालसे लेकर आजतक इस शास्त्रके प्रचारके लिये उसे सार्वलौकिक और सरल बनानेके लिये विभिन्न कालोंमें विभिन्न ऋषि और महर्षियों द्वारा जो प्रचुर प्रयत्न किये गये हैं उसपर कुछ प्रकाश प्रथमावृत्तिकी भूमिकामें स्वयम् पूज्य टीकाकारने डाला है और यह बताया है कि, अन्तमें पाणिनीयकी अष्टाध्यायी ही संस्कृतके शब्दबोध और अर्थ-ज्ञान लाभके लिये सर्वोपरि समझी गई है, किन्तु अष्टाध्यायीकी सूत्ररचना, उसका संगठन उसकी प्रणाली सर्वदासेही कठिन साध्य रही है । और विशेषतया ऐसे समय पर जब संस्कृतका पठन पाठन कालवश बहुत कम होगया है और प्राचीन कालकी तरह विज्ञ सुबोध और सात्त्विक आचार्योंका प्रायः अभावसा हो गया है ऐसी अवस्थामें माननीय टीकाकारोंके अध्यवसाय और प्रयासके लिये बारम्बार धन्यवाद देना पडता है और यह कहना पडता है कि संस्कृत भाषाके प्रवेशके लिये यही एक सरल मार्ग है कि उन टीकाओंका आधार ग्रहण किया जाय ।

इस टीकाकी उपयोगिताके सम्बन्धमें हमें कुछ नहीं कहना है यह इसकी अष्टमावृत्ति है अल्प कालमें ही पाठकों, संस्कृतप्रेमियों

और विद्यार्थियोंने जिस गुणग्राहकता और सदाशयताका परिचय दिया है वही इसकी उपयोगिताका एक मात्र प्रमाण है।

आज पिताजी पाञ्चभौतिक शरीरसे इस संसारमें नहीं हैं अन्यथा वे अन्य कितने संशोधनों और संवर्धनोंसे पाठकोंको लाभ पहुंचाते, यह नहीं कहा जा सकता। अब यह भार स्वाभाविक रीतिपर मुझे ग्रहण करना पड़ा है। मैंने यथासाध्य त्रुटियोंको दूर कर इसे उत्तरोत्तर उपयोगी बनानेका प्रयत्न किया है।

मैं अपने प्रयत्नमें कहांतक कृतकार्य हो सका हूं यह तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु पूज्य पिताजीकी इस कृतिको शुद्ध सुयुक्त और सुन्दरताके साथ बनानेमें मैंने कोई बात उठा नहीं रक्खी है। आशा है, पाठक इस संस्करणको पूर्ववत् अपनाकर अनुगृहीत करेंगे।

इन पंक्तियोंके समाप्त करनेके पूर्व हम अपने परम कृपालु धर्मरत्न श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी को हार्दिक धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते जिनकी उदारता और साहित्य प्रेमके कारण ही हम इस ग्रन्थको इतना सुसज्जित और सुन्दर बना सके हैं।

बम्बई—
दीपमालिका—सोमवती ३०
९ नवम्बर १९३१

विद्वत्कृपाभिलाषी—
जगदीशप्रसाद मिश्र.
मुरादाबाद.

श्रीगणेशाय नमः।

अथ लघुसिद्धान्तकौमुदी

भाषाटीकासमेता।

मङ्गलाचरणम्।

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम्॥
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम्॥ १॥

गौरीपुत्रं नमस्कृत्य शारदामभिवंद्य च। क्रियते लघुकौमुद्या भाषाटीका मनोरमा॥ १॥

पदानि–नत्वा–अव्ययपदम्। सरस्वतीम्–द्वितीयान्तम्। देवीम्–द्वितीयान्तम्। शुद्धाम्–द्वितीयान्तम्। गुण्याम्–द्वितीयान्तम्। करोमि–क्रियापदम्॥ अहम्–प्रथमान्तम्। पाणिनीयप्रवेशाय–चतुर्थ्यन्तम्। लघुसिद्धान्तकौमुदीम्–द्वितीयान्तम्॥ १॥

अन्वयः–अहं लघुसिद्धान्तकौमुदीं करोमि। किं कृत्वा सरस्वतीं देवीं नत्वा। कथम्भूतां सरस्वतीं देवीं शुद्धाम्। पुनः कथम्भूतां सरस्वतीं देवीं गुण्याम्। कस्मै प्रयोजनाय पाणिनीयप्रवेशाय॥ १॥

अन्वयार्थः–(अहम्) मैं वरदराज (लघुसिद्धान्तकौमुदीम्) छोटी सिद्धान्तकौमुदीको (करोमि) निर्माण करता हूं (किं कृत्वा) क्या करके (सरस्वतीं देवीं नत्वा) सरस्वती देवीको नमस्कार करके (कथंभूतां सरस्वतीं देवीम्) कैसी सरस्वती देवीको (शुद्धाम्) सब प्रकार पवित्रको (पुनः कथम्भूतां सरस्वतीं देवीम्) फिर कैसी सरस्वतीदेवीको (गुण्याम्) श्रेष्ठगुणवालीको (कस्मै प्रयोजनाय) किस प्रयोजनके लिये (पाणिनीयप्रवेशाय) पाणिनिके बनाये हुए व्याकरणशास्त्रमें प्रवेशके निमित्त॥ १॥

सरलार्थ–मैं शुद्ध और अच्छे गुणवाली सरस्वती देवीको नमस्कार करके पाणिनिमुनिकृत व्याकरणमें प्रवेश करनेके निमित्त छोटी सिद्धान्तकौमुदीको बनाता हूं॥ १॥

भावार्थ–'समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत्' "अर्थात् ग्रंथकी निर्विघ्न समाप्ति हो, इस कारण मङ्गलाचरण करना चाहिये" इस वाक्यको लेकर वरदराजने सरस्वती देवीकी वंदना की है। ग्रंथके आदिमें देवताको नमस्कार करना मंगल है और वाणीकी देवता सरस्वती है, इस कारण व्याकरणशास्त्रमें सरस्वतीकी कृपासे प्रवृत्ति हो, इससे नमस्कार किया॥ १॥

अथ संज्ञाप्रकरणम् ।

(१) अइउण् । ऋऌक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरट् । लण् । ञमङणनम् । झभञ् । घढधष् । जबगडदश् । खफछठथचटतव् । कपय् । शषसर् । हल्[1] ॥

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि[2] ।

(इति माहेश्वराणि) यह शिवजीसे आये हुए (सूत्राणि) चौदह सूत्र (अणादि) अण् अक् आदि (संज्ञार्थानि) संज्ञाके निमित्त हैं । जो मूल ८ के सूत्रसे सिद्ध होती हैं ॥ १ ॥

(२) एषामन्त्या इतः ॥

(एषाम्) इन चौदह सूत्रोंके (अन्त्याः) अन्तके (ण् क् ङ् च् ट् ण् म् ञ् ष् श् व् य् र् ल्) अक्षर (इतः) इत्संज्ञावाले हैं ॥ २ ॥

(३) हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः ॥

(हकारादिषु) हकारादिकोंमें (अकारः) जो अकार है, सो (उच्चारणार्थः) उच्चारणके वास्ते है, विना अकार लगाये उच्चारण नहीं हो सकता । हयवरट्से हल् पर्यन्त ' हकारादि ' कहाते हैं ॥ ३ ॥

(४) लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः ॥

(लण्मध्ये तु) लण्सूत्रमें तो लके अन्तर्गत जो अकार है, सो (इत्संज्ञकः) इत्संज्ञावाला है । इसका विवरण ३६ वें सूत्रमें देखो ॥ ४ ॥

(५) हलन्त्यम् । १ । ३ । ३ ॥

उपदेशेऽन्त्यं[3] हलित्स्यात् । उपदेश आद्योच्चारणम् । सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र ।

(उपदेशे) उपदेशमें (अन्त्यम्) अन्तका जो (हल्) हल् अक्षर है, सो (इत्स्यात्) इत्संज्ञा वाला हो । (आद्योच्चारणम्) पतञ्जलि, पाणिनि और कात्यायन इन तीनों व्याकरण-

---

१-हकारो द्विरुपात्तोऽयमटि शल्यपि वाञ्छता । अर्हेणाधुक्षदित्यत्र द्वयं सिद्धं भविष्यति ।

२-नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारान् । उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥ संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च । अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम् ॥ प्रतिषेधोऽनुवादश्च विभाषा च निपातनम् । एतच्चतुष्टयं क्षिप्त्वा दशधा सूत्रमुच्यते ॥

३-धातुसूत्रगणोणादिवाक्यलिङ्गानुशासनम् । आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः ॥

कर्ताओंने जो उच्चारण किया है, सो (उपदेशः) उपदेश है। (सूत्रेषु) सूत्रोंमें (अदृष्टं पदम्) जो पद नहीं देखा है, वह (सूत्रान्तरात्) दूसरे सूत्रोंसे (अनुवर्तनीयम्) लाना चाहिये (सर्वत्र) सब जगह। जैसे 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' १। ३। २। यह सूत्र पाणिनीय अष्टाध्यायीके पहले अध्यायके तीसरे पादका दूसरा है, इसमें उपदेशमें अनुनासिक अच्की इत् संज्ञा की है, इसके आगे 'हलन्त्यम्' १। ३। ३। सूत्र है, इसमें पाणिनिने उपदेश और इत्का नाम नहीं लिया है, तथापि वृत्तिकारने 'उपदेश' और 'इत्' यह दो पद "उपदेशे०" इस सूत्रसे लिये हैं। बारम्वार कथन न करना पडे, इस कारण अनुवृत्ति लाते हैं॥ ५

(६) अदर्शनं लोपः । १ । १ । ६० ॥

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् ॥

(प्रसक्तस्य) विद्यमानके (अदर्शनम्) न दीखनेकी लोपसंज्ञा (स्यात्) हो अर्थात् जो वस्तु होकर जाती रहे उसको लोप कहते हैं॥ ६ ॥

(७) तस्य लोपः । १ । ३ । ९ ॥

तस्येतो लोपः स्यात् । णादयोऽणाद्यर्थाः ।

(तस्य) उस (इतः) इत्का (लोपः) (स्यात्) हो[१]। (णादयः) णादिक (अणाद्यर्थाः) अणादि प्रत्याहार सिद्ध करनेके निमित्त हैं॥ ७ ॥

(८) आदिरन्त्येन सहेता । १ । १ । ७१ ॥

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् । यथाऽणिति अइउवर्णानां संज्ञा । एवमक्–अच्–अल्–हलित्यादयः ॥

(अन्त्येन इता) अन्त्य इत् करके (सहितः) सहित जो (आदिः) आदिका वर्ण है सो (मध्यगानाम्) बीचके अक्षरोंकी और (स्वस्य च) अपनी भी (संज्ञा) संज्ञावाला (स्यात्) हो, जैसे 'अ इ उ ण्' इस सूत्रमें अन्त्यका इत्संज्ञावाला ण् और आदिका अ उच्चारण करनेसे इसके बीचके अक्षर इ और उ इसी अण्के साथमें आगये। इसी प्रकारसे अक्, अच्, अल् और हल् प्रत्याहार जानने, अच्प्रत्याहारमें इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ यह मध्यके अक्षर अ प्रथमका अक्षर गणनामें आये हैं, ण् क् ङ् च् यह इत्संज्ञावाले हैं, अच्प्रत्याहारमें सब स्वर और हल्प्रत्याहारमें सब व्यञ्जन आगये हैं॥ ८ ॥ *

---

१ अर्थात् जिसकी इत्संज्ञा होती है उसका लोप हो।

ऽ यह चिह्न अव्ययका है

२ अन्त्य इत्के साथ उच्चार्यमाण जो आदि सो मध्यगामियोंका और अपना बोधक हो।

* १ अण्–अ इ उ।

२ अक्–अ इ उ ऋ ऌ।

३ अच्–अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ।

४ अट्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र।

५ अण्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।

६ अम्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न।

७ अश्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

८ अल्-अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

९ इक्-इ उ ऋ ऌ।

१० इच्-इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ।

११ इण्-इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ।

१२ उक्-उ ऋ ऌ।

१३ एङ्-ए ओ।

१४ एच्-ए ओ ऐ औ।

१५ ऐच्-ऐ औ।

१६ हश्-ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

१७ हल्-ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

१८ यण्-य व र ल।

१९ यम्-य व र ल ञ म ङ ण न।

२० यञ्-य व र ल ञ म ङ ण न झ भ।

२१ यय्-य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।

२२ यर्--य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।

२३ वश्-व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

२४ वल्-व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

२५ रल्-र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

२६ मय्-म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ढ द ख फ छ ठ थ च ट त क प।

२७ ङम्-ङ ण न।

२८ झष्-झ भ घ ढ ध।

२९ झश्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

३० झय्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।

३१ झर्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।

३२ झल्-झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ठ त क प श ष स ह।

३३ भष्-भ घ ढ ध।

३४ जश्-ज ब ग ड द।

३५ बश्-ब ग ड द।

(९) ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः । १ । २ । २७ ॥

उश्च ऊश्च ऊ ३ श्च वः, वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात् । स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा ॥

कुक्कुटके शब्दमें कु कू कु ३ उच्चारण होता है. योंही इसमें उ ऊ उ यह तीन उकार हैं इन तीनोंका नाम (वः) है (वां काल इव) तीनों उकारोंके उच्चारणकालके समान (कालो यस्य) उच्चारण काल है जिसका (सोऽच्) वह अच् (क्रमात्) क्रमसे (ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः) ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत संज्ञावाला (स्यात्) हो. एक मात्राका ह्रस्व, दो मात्राका दीर्घ, तीन मात्राका प्लुत जानना । (सः) वह अच् (प्रत्येकम्) एक एकके प्रति (उदात्तादिभेदेन) उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित इन भेदोंसे (त्रिधा तीन प्रकारका है ॥ ९ ॥

(१०) उच्चैरुदात्तः । १ । २ । २९ ॥

(उच्चैः) ऊँचे स्वरसे बोला जाय उसको (उदात्तः) उदात्त कहते हैं अर्थात् मुखके ताल्वादिस्थानके ऊपर भागसे जो उच्चारण हो सो उदात्त है ॥ १० ॥

(११) नीचैरनुदात्तः । १ । २ । ३० ।

(नीचैः) मुखके तालु आदि स्थानके नीचे भागसे जो स्वर उच्चारण हो, उसे (अनुदात्तः) अनुदात्त कहते हैं ॥ ११ ॥

(१२) समाहारः स्वरितः । १ । २ । ३१ ॥

स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ॥

(समाहारः) उदात्त और अनुदात्त यह वर्णधर्म जिस अच्में समान रहै, उसे (स्वरितः) स्वरित कहते हैं । इसके पूर्वमें उदात्त और उत्तरभागमें अनुदात्त होता है । इस प्रकारसे (नवविधः) नौ प्रकारका (अपि) भी (सः) वह अच् (प्रत्येकम्) एक एकके प्रति (अनुनासिकाऽननुनासिकत्वाभ्याम्) अनुनासिक और अननुनासिक भेदोंसे (द्विधा) दो प्रकारका है । इस प्रकारसे अच्के अठारह भेद हुए ॥ १२ ॥

---

३६ खय्–ख फ छ ठ थ च ट त क प ।
३७ खर्–ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ।
३८ छव्–छ ठ थ च ट त ।
३९ चय्–च ट त क प ।
४० चर्–च ट त क प श ष स ।
४१ शर्–श ष स ।
४२ शल्–श ष स ह ।
१ उकारत्रयके उच्चारण कालके सदृश है उच्चारण काल जिसका, ऐसा जो अच्, सो क्रमसे ह्रस्व–दीर्घ प्लुत–संज्ञक हो ।

(१८) अकुहविसर्जनीयानां कंठः ।

अ अठारह प्रकारका (कु) कवर्ग क ख ग घ ङ ह और (विसर्जनीयानाम्) विसर्गोंका (कंठः) कंठ स्थान है ।

इचुयशानां तालु ।

इ अठारह प्रकारका (चु) चवर्ग च छ ज झ ञ और (यशानाम्) य और शका (तालु स्थान है ।

ऋटुरषाणां मूर्द्धा ।

ऋ अठारह प्रकारका (टु) टवर्ग ट ठ ड ढ ण (रषाणाम्) र और षका (मूर्द्धा) मूर्द्धा स्थान है ।

लृतुलसानां दन्ताः ।

लृ (तु) तवर्ग त थ द ध न (लसानाम्) ल और सका (दन्ताः) दंत स्थान है ।

उपूपध्मानीयानामोष्ठौ ।

उ अठारह प्रकारका (पु) पवर्ग प फ ब भ म (उपध्मानीयानाम्) उपध्मानीय (≍ प ≍ फ) इनका ((ओष्ठौ) ओष्ठ स्थान है ।

ञमङणनानां नासिका च ।

ञ म ङ ण न इनका (नासिका च) नासिका स्थान भी है । "च" कहनेका यह तात्पर्य है कि, अपने अपने वर्गका स्थान भी है और नासिका भी है ।

एदैतोः कण्ठतालु ।

(एदैतोः) ए और ऐका (कंठतालु) कण्ठ और तालु स्थान है ।

ओदौतोः कण्ठोष्ठम् ।

(ओदौतोः) ओ और औका (कण्ठोष्ठम्) कण्ठ और ओष्ठ स्थान है ।

वकारस्य दन्तोष्ठम् ।

(वकारस्य) वकारका (दन्तोष्ठम्) दन्त और ओष्ठ स्थान है ।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् ।

(जिह्वामूलीयस्य) जिह्वामूलीय (≍ क ≍ ख) का (जिह्वामूलम्) जिह्वामूल स्थान है ।

नासिकाऽनुस्वारस्य ।

(अनुस्वारस्य) अनुस्वारका (नासिका) नासिका स्थान है ॥ १९ ॥

(१६ यत्नो द्विधा । आभ्यन्तरो बाह्यश्च । आद्यः पञ्चधा । स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात् ।

यत्न अर्थात् प्रयत्न दो प्रकारक है (आभ्यन्तरः) मुखके अन्तर और (बाह्यः) कंठ

आदिमें। उसमें पहला आभ्यन्तर प्रयत्न पांच प्रकारका है। स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत।

तत्र स्पृष्टं प्रयतनं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्मणाम्। विवृतं स्वराणाम्। ह्रस्वस्याऽवर्णस्य प्रयोगे संवृतम्। प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव।

(१) सो स्पृष्ट प्रयत्न (जिसमें जिह्वा स्थानोंको स्पर्श करती है) स्पर्श वर्णोंका है (२) ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न (किंचित् स्पृष्ट) अन्तःस्थोंका है। (३) ईषद्विवृत (जिसमें जिह्वा स्थानोंसे थोडी अलग रहे) प्रयत्न ऊष्मोंका है। (४) स्वरोंका विवृत प्रयत्न है (विवृतमें जिह्वा स्थानोंका स्पर्श नहीं करती) (५) ह्रस्व अकारका बोलनेमें संवृत प्रयत्न है, परन्तु साधनदशामें विवृत है, यह न होता तो आकारकी सवर्णसंज्ञा और किसी अक्षरसे असंभावित होती।

बाह्यस्त्वेकादशधा। विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति।

बाह्य प्रयत्न तो (एकादशधा) ग्यारह प्रकारका है, विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

(२) खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च।

खर् प्रत्याहार (ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स) का विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न है।

(३) हशः संवारा नादा अघोषाश्च।[3]

हश् प्रत्याहार (हयवरल ञमङणन झभघढध जबगडद) का संवार, नाद, घोष, प्रयत्न है।

(४) वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः।[4]

वर्गोंका पहला, तीसरा, पांचवां अक्षर (क च ट त प, ग ज ड द ब, ङ ञ ण न म) और यण्प्रत्याहार (य व र ल) का अल्पप्राण प्रयत्न है।

(५) वर्गाणां द्वितीचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः।

वर्गोंका दूसरा चौथा वर्ण (ख छ ठ थ फ, घ झ ढ ध भ) और शल्प्रत्याहार (श ष स ह) का महाप्राण प्रयत्न है।

---

१ तात्पर्य यह कि जब तक वर्णोंका उच्चारण मुखके अन्दर २ ही होता रहता है, तबतक वह आभ्यन्तर-भीतरका प्रयास कहलाता है और जब वर्णोंका उच्चारण मुखके बाहर हो जाता है, तब उस प्रयासको बाह्य प्रयास कहते हैं।

२ तात्पर्य यह कि 'रामः कृष्णः, इत्यादि परिनिष्ठित-सिद्ध-रूपोंमें ह्रस्व अकार संवृत है और दण्ड× आढकम् इत्यादि साधन दशामें तो वह विवृत ही है।

३ ये तीन प्रयत्न अचोंके भी भाष्य-सम्मत हैं। ऐसी दशामें 'अश' ऐसा पाठ ही होना उचित है।

४ अचां चेन संग्रहः।

प्रयत्नज्ञापकयन्त्रम्।

बाह्याः प्रयत्नाः	विवारः श्वासः अघोषः अल्पप्राणः	विवारः श्वासः अघोषः महाप्राणः		संवारो नादो घोषोऽल्पप्राणः				संवारो नादो घोषो महाप्राणः	
					उदात्तः अनुदात्तः स्वरितः				
अक्षराणि	क च ट त प	ख छ ठ थ फ	श ष स	ग ङ ज ञ ड ण ठ न प म	अ	इ ए उ ओ ऋ ऐ ऌ औ	र ल	घ झ ढ ध भ	
आभ्यन्तर प्रयत्नाः	स्पृष्टः		ईषद्विवृतः	स्पृष्टः	ह्रस्वस्तु संवृतः	विवृतः	ईषत्स्पृष्टः	स्पृष्टः	ईषद्विवृतः

(६) कादयो मावसानाः स्पर्शाः।

(कादयः) कसे लेकर (मावसानाः) मपर्यन्त पचीस अक्षर (स्पर्शाः) स्पर्श कहलाते हैं।

(७) यणोऽन्तस्थाः।

(यणः) यण्प्रत्याहार (यवरल) के अक्षर (अन्तस्थाः) अन्तस्थ कहलाते हैं।

(८) शल ऊष्माणः।

(शलः) शल्प्रत्याहार (श ष स ह) के अक्षर (ऊष्माणः) ऊष्मा कहलाते हैं।

(९) अचः स्वराः।

(अचः) अच्प्रत्याहारके अक्षर (स्वराः) स्वर कहलाते हैं।

(१०) ≍ क ≍ ख इति कखाभ्यां प्रागर्द्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः।

क और खसे पहले ≍ आधे विसर्गके समान जिह्वामूलीय कहलाते हैं।

(११) ≍ प ≍ फ इति पफाभ्यां प्रागर्द्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः।

प और फसे पहले ≍ आधे विसर्गके समान उपध्मानीय कहाते हैं।

(१२) अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ।

अं और अः अच्से परे अनुस्वार और विसर्ग है॥ १६॥

१ अर्थात् ≍ क ≍ ख इस प्रकार क और ख से पूर्व आधे विसर्गके समान जो चिह्न है उसे जिह्वामूलीय कहते हैं।

(१७) अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः । १ । १ । ६९ ॥

प्रतीयते विधीयत इति प्रत्ययः । अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात् । अत्रैवाण् परेण णकारेण । कु चु टु तु पु एते उदितः । तदेवम् 'अ' इत्यष्टादशानां संज्ञा । तथेकारोकारौ । ऋकारस्त्रिंशतः । एवम् ऌकारोऽपि । एचो द्वादशानाम् । अनुनासिकाऽननुनासिकभेदेन यवला द्विधा । तेनाननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा ॥

किसी शब्दादिकी सिद्धिके लिये जो विधान किया उसे 'प्रत्यय' कहते हैं । विधान न किये हुए अण्प्रत्याहार (अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल) और जिन अक्षरोंका उकार इत्सञ्ज्ञक है (कु चु टु तु पु) यह सवर्णकी संज्ञावाले हों । केवल इसी सूत्रमें अण्प्रत्याहार पर णकार तक जानना । कु (कवर्ग) चु (चवर्ग) टु (टवर्ग) तु (तवर्ग) पु (पवग) यह 'उदित' हैं । इस प्रकारसे अ—के अठारह भेद हुए; । जैसे—ह्रस्वउदात्त, ह्रस्वअनुदात्त, ह्रस्वस्वरित, दीर्घउदात्त, दीर्घअनुदात्त, दीर्घस्वरित, प्लुतउदात्त, प्लुतअनुदात्त, प्लुतस्वरित, यह नौ हुए, फिर अनुनासिक और निरनुनासिक दो भेद मिलाकर नौ निरनुनासिक और नौ अनुनासिक, इस प्रकार अठारह भेद होते हैं । इसप्रकार इ उ के भी अठारह भेद हैं, ऋ और ऌकी परस्पर सवर्णसंज्ञा है, ऋके अठारह भेद और ऌका दीर्घ न होनेसे बारह भेद, यह दोनों मिलकर ऋकारकी तीस प्रकारकी संज्ञा हुई । इसी प्रकार ऌकार भी तीस प्रकारकी संज्ञाका बोधक है । एच्प्रत्याहारके अक्षर प्रत्येक बारह बारहके बोधक हैं । य व ल यह प्रत्येक अनुनासिक और अननुनासिक भेदसे दो दो प्रकारकी संज्ञावाले हैं, इसीसे य व ल यह प्रत्येक अनुनासिक और अननुनासिक अपनी दोनों संज्ञाओंको ग्रहण करते हैं॥ १७॥

(१८) परः संनिकर्षः संहिता । १ । ४ । १०९ ॥

वर्णानामतिशयितः संनिधिः संहितासंज्ञः स्यात् ।

(वर्णानाम्) अक्षरोंकी (अतिशयितः) अत्यन्त (सन्निधिः) निकटता (संहितासंज्ञः) संहितासंज्ञक (स्यात्) हो । जहां अक्षर अत्यन्त निकट होते हैं, वह संहिता कहाती है १८॥

(१९) हलोऽनन्तराः संयोगः । १ । १ । ७ ॥

अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः ॥

(अज्भिः) अचोंसे (अव्यवहिताः) व्यवधानरहित (हलः) हल् अक्षर (संयोगसंज्ञाः) संयोगसंज्ञावाले (स्युः) हों अर्थात् जिन हलोंके मध्यमें स्वर न हो वे परस्पर मिल जायँ १९॥

---

१ पूर्वेणैवाण्ग्रहाः सर्वे परेणैवेण्ग्रहा मताः । ऋतेऽणुदित्सवर्णस्येत्येतदेकं परेण तु ॥

२ उकार इत्संज्ञक तो कुकू धुट् आदिमें भी है पर यहाँ जिनका केवल उकार ही इत्संज्ञक हो, ऐसा अर्थ विवक्षित है, अथवा 'उदित् संज्ञक' ऐसा अर्थ समझना चाहिये, प्राचीन यही मानते हैं ।

३ "अर्धमात्राधिककालव्यधानाभावः संहिता" इति बोध्यम् ।

(२०) सुप्तिङन्तं पदम् । १ । ४ । १४ ॥

सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात् ॥

(सुबन्तम्) जिसके अन्तमें सुप्प्रत्याहारके प्रत्यय और (तिङन्तं च) तिङ्प्रत्याहार अर्थात् क्रियापदके प्रत्यय भी अन्तमें हों, वह (पदसंज्ञम्) पदसंज्ञावाला (स्यात्) हो । यह प्रत्यय अजन्तपुँल्लिग और भ्वादिगणके प्रारम्भमें लिखेंगे ॥ २० ॥

॥ इति संज्ञाप्रकरणम् ॥

अथाच्संधिः[1] ।

(२१) इको यणचि । ६ । १ । ७७ ॥

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये[2] । सुधी उपास्य इति स्थिते ॥

इक्प्रत्याहारके स्थानमें यण्प्रत्याहार हो अच्प्रत्याहार परे हुए सन्ते संहिताके विषयमें । जैसे " सुधी × उपास्यः " ऐसे दो पद हैं, इसमें सकारके 'उ' से परे धकारमें ' ई ' अच् है, इससे उ, और उपास्यके ' उ' से परे पकारका ' आ ' अच् है, तब किस इक्को यण् हो ? अर्थात् इस प्रयोगमें तीन इक् हैं तीनोंसे अच् परे भी हैं ? ऐसी शंकामें अगला सूत्र समाधानको लगा—॥ २१ ॥

(२२) तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य । १ । १ । ६६ ॥

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम् ॥

सप्तमी विभक्तिसे जो कार्य विधान किया है, वह दूसरे वर्णके व्यवधानरहित उसीको हो जो सप्तम्यन्तपदार्थके पूर्व रहे, अर्थात् उसके आगे कोई और अक्षर न हो अच् ही हो, इससे सकारके उके आगे धकार बीचमें पडा है, और उपास्यके उके आगे 'प' बीचमें पडा है, इससे इन दोनों स्थानोंमें नहीं हो सकता, परन्तु सुधीकी ईके आगे उपास्यका उकार सप्तमीसे दिखाया हुआ अच् ही है, बीचमें कोई व्यवधान नहीं, तब इसी ईके स्थानमें यण् होगा । परन्तु यण्प्रत्याहारमें (यरलव) चार अक्षर हैं, इनमेंसे कौनसा हो ? तब—॥ २२ ॥

(२३) स्थानेऽन्तरतमः । १ । १ । ५० ॥

प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः[3] स्यात् । सुध्य् उपास्य इति जाते ॥

जहां किसी आदेशकी प्राप्ति हो तो उसमें जो बहुत ही सदृश हो वही आदेश हो (आदेश

---

१ दो वर्ण परस्पर निकटस्थ होनेसे मिल जाते हैं, उसका नाम ' संधि ' है. जिसमें स्वरोंका योग होता है । वह स्वरसंधि, जिसमें व्यञ्जनोंका योग होता है वह ' हल्संधि ' कहाती है ।

२ ' संहितायां विषये ' इत्युक्त्या यत्र स्थानिनिमित्तयोरविलम्बेनोच्चारणं भवति तत्रैव यण् भवति विलम्बेन तयोरुच्चारणे तु न कदापि यणिति सूचयति ।

३ अर्थात् अनेक आदेशोंकी प्राप्तिमें जो अतिशय करके सदृश है वह आदेश हो । सादृश्य चार प्रकारका होता है--स्थानकृत, अर्थकृत, बाह्य प्रयत्नकृत और प्रमाणकृत । जैसे-दध्यत्र, क्रोष्टा, वाग्घरिः, अमू आदि । " यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तर्यं बलीयः " ।

होनेमें पहला अक्षर नहीं रहता, आगममें रह जाता है) (शत्रुवदादेशः, मित्रवदागमः) तो अब इनका स्थान प्रयत्न मिलाया इकारका तालुस्थान और यणोंमें यकारका तालुस्थान है, तब ईके स्थानमें य् हुआ जिससे ' सुध्य् उपास्यः' ऐसा रूप हुआ ॥ २३ ॥

(२४) अनचि च । ८ । ४ । ४७ ॥

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि । इति धकारस्य द्वित्वम् ॥

अच्से परे यदि यर्प्रत्याहार हो तो उसे विकल्प करके द्वित्व होजाय, यदि उससे आगे अच् न हो तो । यहां सकारके ' उ' से परे यर् प्रत्याहारके ध् और य् दोनों अक्षर हैं परन्तु धकार हीको द्वित्व होगा, कारण कि धकारके परे अच् नहीं हैं तो ' सुध्ध्य् उपास्यः ' यह रूप हुआ ॥ २४ ॥

(२५) झलां जश् झशि । ८ । ४ । ५३ ॥

स्पष्टम् । इति पूर्वधकारस्य दकारः ॥

झल् प्रत्याहारके स्थानमें जश् हो झश्परे हो तो । यहां झल् प्रत्याहारमें दोनों धकार हैं परंतु पहले धकारको जश् होगा, कारण कि उससे आगे झश् है, जश् प्रत्याहारमें भी (जबगडद) इतने अक्षर हैं, कौनसा हो ? तब (२३) सूत्रसे ध्के स्थानमें द् हुआ तो ' सुद्ध्य् उपास्यः ' यह रूप हुआ ॥ २५ ॥

(२६) संयोगान्तस्य लोपः । ८ । २ । २३ ॥

संयोगान्तं यत्पदं तदन्त्यस्य लोपः स्यात् ॥

जिस (२०) पदके अन्तमें संयोग (१९) हो और वह संयोग जिस समुदायके अन्तमें हो उसका लोप हो । इस विधिसे सुद्ध्य् पदके अन्तमें संयोग (१९) हैं तो इन सब अक्षरोंका लोप होना चाहियें ॥ २६ ॥

(२७) अलोऽन्त्यस्य । १ । १ । ५२ ॥

षष्ठीनिर्दिष्टाऽन्त्यस्यादेशः स्यात् ॥

संयोगान्तस्य (२६) इस षष्ठीसे बतानेवाला लोपरूप आदेश पदके अन्तिम वर्णमें करना चाहिये, अर्थात् अन्तके अक्षरका लोप हो । तब सुद्ध्य्के अन्तिम वर्ण यकारका लोप प्राप्त हुआ ॥ २७)

(२८) यणः प्रतिषेधो वाच्यः ॥

कात्यायनमुनि कहते हैं कि यदि संयोगान्त पदका अक्षर यण् प्रत्याहारका हो तो उसका लोप न हो । यहां यकार यण् प्रत्याहारका है, इससे लोप न होकर ' सुद्ध्युपास्यः' सिद्ध हुआ । और जब

---

१ संयोगान्त जो पद उसके अन्तका लोप हो । ' द् ध् य् ' संयोग है, ' सु द् ध् य् ' संयोगान्त पद है और उसका अन्त यकार है उसका लोप पाया । ' संयोगान्तस्य ' इस सूत्रकी वृत्तिमें तदन्त्यस्य ' इस अर्थका लाभ कैसे हुआ ? इस पर कहते हैं--अलोऽन्त्यस्य । स्थान षष्ठीसे निर्दिष्टको जो आदेश कहा गया है वह उसके अन्त्य अल्के स्थानमें हो ।

धकारको द्वित्व न हुआ तौ 'सुध्युपास्यः' सिद्ध हुआ । इसी प्रकार 'मधु+अरिः' में उके स्थानमें यण्प्रत्याहारका (२१, २३) व् हुआ तब 'मध्व्+अरिः' फिर (२४) सूत्रसे धकारको द्वित्व हुआ तब (२६) ध्को द् हुआ तब 'मद्ध्व्+अरिः' हुआ, तो 'मद्ध्वरिः' सिद्ध हुआ। जब (२४ सू०) से द्वित्व न हुआ तो 'मध्वरिः' हुआ । इसी प्रकार धातृ+अंशः=धात्र् (२१, २३)+अंशः=धात्त्रंशः=धात्रंशः (१९) ऌ+आकृतिः=ल् (२१ २४) आकृतिः=लाकृतिः (१९) ॥ २८ ॥

(२९) एचोऽयवायावः । ६ । १ । ७८ ॥

एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि ॥

एच् प्रत्याहार (ए ओ ऐ औ) को क्रमसे अय्, अव्, आय्, आव् यह आदेश हों अच् परे हो तो ॥ २९ ॥

(३०) यथासंख्यमनुदेशः समानाम् । १ । ३ । १० ॥

समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात् ॥

समान सम्बंधवाली विधि यथासंख्यावाली हो अर्थात् विधान किये पदार्थोंकी संख्या जो तुल्य हो तो उनका सम्बन्ध पहलेको पहला, दूसरेको दूसरा इस क्रमसे हो, यहां एच् प्रत्याहारमें चार अक्षर हैं और उनको चार ही आदेश हुए हैं तो यह क्रमानुसार होंगे, इस कारण पहले एकारके स्थानमें अय् और ओके स्थानमें अव् आदेश हुआ इत्यादि । शब्द-सिद्धि जैसे—हरे+ए (चतुर्थी विभक्तिके प्रत्यय) इसमें ए-को (२९ सू.) से अय् हुआ, तब हर्+अय्+ए होकर 'हरये' सिद्ध हुआ । इसी प्रकार विष्णो+ए=विष्ण् अव् (२९)+ए= विष्णवे । यहां दूसरेको दूसरा। नै+अकः=न्+आय् (२९)+अकः=नायकः यहां तीसरेको तीसरा आदेश हुआ। पौ+अकः=प्+आव्(२९)+अकः=पावकः।यहां चोथेको चौथा आदेश हुआ॥ ३०॥

(३१) वान्तो यि प्रत्यये । ६ । १ । ७९ ॥

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः ॥

यकार है आदिमें जिसके ऐसा प्रत्यय (१३९) परे होनेसे ओ और औके स्थानमें अव् और आव् क्रमसे आदेश हों ।

जैसे गो+यम्=ग्+अव् +यम्=गव्यम् । नौ=यम्+न्+आव्+यम्=नाव्यम् ॥ ३१ ॥

(३२) अध्वपरिमाणे च ॥

---

१ 'क्रमात्' इस अर्थका लाभ कैसे हुआ ? इसपर कहते हैं–यथासंख्यम् । तुल्योंका जो कार्य है वह सिलसिलेवार हो ॥

२ यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे–अल्ग्रहणे सप्तम्यन्ते विशेषणीभूते यो विधीयते स तदादौ ज्ञेयः । तदन्तविधेरपवादोऽयम् ।

३ गो शब्दके ओकारको अव् आदेश हो, समुदायसे मार्गका परिमाण गम्यमान हो तो । "गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगम्" इत्यमरः ।

मार्गके परिमाण अर्थमें गोशब्दके आगे यूतिशब्द हो तो ओकारको अव् आदेश हो। जैसे–गो×यूतिः=ग्+अव्+यूतिः=गव्यूतिः) दो कोश ॥ ३२ ॥

(३३) अदेङ् गुणः । १ । १ । २ ॥

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात् ॥

अत् (ह्रस्व अकार) और एङ् (ए, ओ) गुणसंज्ञावाले हों अर्थात् इनको गुण कहते हैं॥ ३३॥

(३४) तपरस्तत्कालस्य । १ । १ । ७० ॥

तः परो यस्मात् स च तात्परश्चोच्चार्यमाणसकालस्यैव संज्ञा स्यात् ॥

जिस स्वरसे परे तकार हो अथवा तकारसे परे जो स्वर हो सो उसी उच्चारणकालवालेके (९) समकालकी संज्ञावाला हो। जैसे अकारके अठारह भेद (१८) हैं, परंतु यदि तकारसे पहले आवें, तो अत् ह्रस्व अकारके समकालका ही बतानेवाला होगा ॥ ३४ ॥

(३५) आद्गुणः । ६ । १ । ८७ ।

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुणादेशः स्यात् ॥

अवर्णसे परे अच् हो तो पूर्व और परके स्थानमें एक गुण (३३) आदेश हो। जैसे उप+इन्द्रः इसमें पके अन्तके अकारके आगे इन्द्रः की इ है, इस अ और इके स्थानमें एक गुण (अ ए ओ) आदेश होना चाहिये, तब स्थान प्रयत्न (७) मिलानेसे 'अ इ' का कंठ और तालुस्थान है, गुणोंमें कंठतालुस्थानी ए होनेसे यही आदेश हुआ (१४) तब उप्+ए+न्द्रः= उपेन्द्रः हुआ। इसी प्रकार गङ्गा+उदकम्। आ और उका कण्ठोष्ठस्थान है, गुणोंमें कण्ठ और ओष्ठ स्थानी 'ओ' है, तब ओ आदेश होनेसे गंग्+ओ+दकं=गङ्गोदकम् हुआ ॥ ३५ ॥

(३६) उपदेशेऽजनुनासिक इत् । १ । ३ । २ ॥

उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्य्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा ॥

उपदेशमें (९) जो अच् अनुनासिक हो उसका नाम इत् हो। पाणिनीय सूत्रोंमें-अनुनासिकका चिह्न दृष्टि नहीं आता, परन्तु उनकी प्रतिज्ञासे जाना जाता है लण्सूत्रमें जो अनुनासिक तथा इत्संज्ञक अकार है उसके साथ हयवरट् सूत्रके रट्का रेफ मिलाकर र प्रत्याहार बनता है, इसमें र् और ल् इन दो अक्षरोंका ग्रहण होता है अर्थात् चौदह सूत्रोंमेंके पांचवे सूत्रके रकारसे लण्सूत्रके ल् अन्तर्गत अकारतक मिलानेपर वह प्रत्याहार (८) बना है, उसमें र् ल् इन दो अक्षरोंका ग्रहण होता है ॥ ३६ ॥

(३७) उरण् रपरः । १ । १ । ५१ ॥

ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्, तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते ॥

---

१ 'त' है परे जिससे ऐसा जो वर्ण अथवा 'त' से परे जो शब्द तद् बोध्य जो वर्ण सो उच्चार्यमाणके समकालकाही बोधक हो। तेन अत् इत् उत् इत्यादयः षण्णां षण्णां संज्ञा ।

ऋकारकी तीस प्रकारकी संज्ञा (१७) कही है उसके स्थानमें जो अण् (अ इ उ) आदेश हो सो रपर होता हुआ ही प्रवृत्त हो, अर्थात् उससे रप्रत्याहारका अक्षर (३६) भी हो, जैसे ' अर् इर् उर् ' इसमें अण् प्रत्याहारके अक्षरोंसे परे र् दिखाया है । उदाहरण जैसे-कृष्ण+ऋद्धिः इसमें आद्गुणः (३९) से गुण हुआ, तब ' उरण्रपरः ' इस सूत्रसे अकार और ऋके स्थानमें अर् गुण हुआ तो ' कृष्णर्द्धिः ' सिद्ध हुआ । इसी प्रकार तव+ऌकारः= तव्+अल्+कारः=तवल्कारः । ऋको अर्, ऌको अल् आदेश हुए ॥ ३७ ॥

(३८) लोपः शाकल्यस्य । ८ । ३ । १९ ॥

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे ॥

अकार अथवा आकार है पूर्वमें जिसके ऐसे पदान्त सम्बन्धी (२०) यकार और वकारका विकल्पसे लोप हो अश् प्रत्याहार परे हुए सन्ते । जैसे हरे+इह=हरय् (२९)+इह इसमें यकारका लोप करनेसे ' हर इह ' और विष्णो+इह+विष्णव् (२९) +इह इसमें वकारका लोप होनेसे ' विष्ण इह ' हुआ । अब इस प्रयोगमें (३९) सूत्रसे गुणकी प्राप्ति हुई परन्तु—॥ ३८ ॥

(३९) पूर्वत्राऽसिद्धम् । ८ । २ । १ ॥

सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा
त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् ।

पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायीमें सवासात अध्यायके सामने पौन अध्याय अर्थात् तीन पाद असिद्ध हैं । जो कार्य त्रिपादीका सूत्र कर चुका वह सवासात अध्यायके सूत्रोंकी दृष्टिमें हुआ नहीं है, प्राप्त भी नहीं हो, इसी प्रकार त्रिपादीमें भी पूर्वसूत्रकी अपेक्षा परसूत्रका कार्य असिद्ध है । ' हर इह ' और ' विष्ण इह ' इन प्रयोगोंमें गुणकी प्राप्ति है, परन्तु ' आद् गुणः ' सूत्र छठे अध्यायके पहले पादका ८७ सत्तासीवां है । यह सवासात अध्यायके अन्तर्गत आगया है, यह त्रिपादीके सूत्रके कार्यको नहीं देख सकता और ' लोपः शाकल्यस्य ' यह आठवें अध्यायके तीसरे पादका उन्नीसवां सूत्र है, तो सवासात अध्यायके सामने यह सूत्र असिद्ध है और (३९) वें सूत्रकी दृष्टिमें मानो यकार और वकारका लोप नहीं हुआ और जब लोप न माना तो यकार और वकारके व्यवधानसे गुणादेशकी प्राप्ति भी न रही, इस कारण गुणादेश न हुआ, तब ' हर इह ' और ' विष्ण इह ' रूप सिद्ध हुए, परन्तु लोप विकल्प करके होता है, जब यकार वकारका लोप न हुआ तो ' हरयिह ' ' विष्णविह ' रूप सिद्ध हुए ॥ ३९ ॥

(४०) वृद्धिरादैच् । १ । १ । १ ॥

आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् ॥

आ और ऐच् (ऐ औ) वृद्धिसंज्ञावाले हों ॥ ४० ॥

(४१) वृद्धिरेचि । ६ । १ । ८८ ॥

आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणापवादः ॥

अ अथवा आ से एच् (ए ओ ऐ औ) परे हों तो पूर्वपरके स्थानमें वृद्धि एकादेश हो। यह सूत्र गुणका बाधक है, यदि यहां भी ' आद्गुणः ' सूत्र लगे तो वृद्धिकी सफलता कहां हो, इससे वृद्धिमें गुणका निवारण है। उदाहरण—कृष्ण+एकत्वम् यहां अकारसे आगे एच् है तब पूर्वपरके स्थानमें कण्ठतालुस्थानी वृद्धिके ऐ अक्षरकी प्राप्ति हुई, तब ' कृष्णैकत्वम् ' सिद्ध हुआ। इसी प्रकार गङ्गा+ओघः=गङ्गौघः इसमें आकार और ओकारके स्थानमें औकार वृद्धि हुई । देव+ऐश्वर्यम्=देव्+अ+ऐश्वर्यम्=देवैश्वर्यम् । कृष्ण+औत्कण्ठयम्=कृष्ण्+अ+औत्कण्ठयम्=कृष्णौत्कण्ठयम् ॥ ४१ ॥

(४२) एत्येधत्यूठ्सु । ६ । १ । ८९ ॥

अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् ॥

अकार अथवा आकारसे एच् है आदिमें जिनके ऐसे इण् और एधधातुके एति एधतिशब्द और ऊठ् परे होनेपर भी पूर्वपरके स्थानमें वृद्धि एकादेश हो। इस विधिके करनेका कारण यह है कि आगेके (९०) वें सूत्रसे वृद्धिका निवारण होता है, इस कारण इससे इन दोनों धातुओंसे फिर वृद्धिका विधान किया। जैसे—उप+एति इस प्रयोगमें अकारसे आगे एच् है आदिमें जिसके ऐसा इण् धातुका एति शब्द है, तो अ और एके स्थानमें ऐ वृद्धि होकर उपैति सिद्ध हुआ। इसी प्रकार उप+एधते=उपैधते। प्रष्ठ+ऊहः (वह धातुको ' वाह ऊठ् ' इस सूत्रसें ऊठ् आदेश है)=प्रष्ठौहः ॥ प्रश्न । **एजाद्योः किम् ?** । एच् आदिमें हो ऐसा क्यों कहा ? तो इसका उत्तर यह है कि इन शब्दोंका पहला अक्षर कभी कभी इकार भी रहता है, तो उस अवस्थामें वृद्धि न हो। जैसे—उप+इतः=उप्+अ+इतः=**उपेतः** । प्र+इदिधत् **प्रेदिधत्** यहां गुण हो गया ॥ ४२ ॥

(४३) अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् ।

अक्षशब्दसे ऊहिनीशब्द परे हो तो पूर्वपर अच्के स्थानमें वृद्धि हो, जैसे—अक्ष+ऊहिनी= अक्ष्+औ+हिनी=अक्षौहिणी (सेना) ॥ ४३ ॥

(४४) प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु ॥

---

१ कच्चे रूप लिखनेके पीछे जो दूसरे रूप स्वर अलग करके दिखाये हैं, वह इस लिये हैं कि, जिससे बालक समझ जाय कि इन इन अचोंके मिलनेसे यह अच् होकर हल् अक्षरमें मिला है, शब्दोंके यथार्थ भाग पहले संधि तोडकर लिखे हैं। यथा देव+ऐश्वर्यम् आगे देव्+ऐश्वर्यम् इस देव शब्दको हलन्त न जाने, यह स्वर-संधि ज्ञानके निमित्त लिखा है, ऐसा ही आगे जानना।

२ अक्षाणामूहिनीति विग्रहे अक्षौहिणीति । अक्षाणामूहोऽस्यास्तीति विग्रहे तु अक्षोहिणी इत्येव, तत्रार्थवदूहिनीपरत्वाभावात् । ' पूर्वपदात्संज्ञायामगः ' इति णत्वम् ।

प्र (४८) शब्दसे परे ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य शब्द परे हों तो पूर्व पर अच्के स्थानमें वृद्धिरूप एकादेश हो । जैसे—प्र+ऊहः=प्र्+अ+ऊहः=प्रौहः । प्र+ऊढः प्र्+अ+ऊढः=प्रौढः । प्र+ऊढिः=प्र्+अ+ऊढिः=प्रौढिः । प्र+एषः=प्र्+अ+एषः=प्रैषः । प्र—एष्यः=प्र्—अ×एष्यः=प्रैष्यः ॥ ४४ ॥

(४५) ऋते च तृतीयासमासे ।

यदि तृतीयासमास (९८६) में अकार वा आकारसे परे ऋत शब्द हो तो पूर्व पर अच्के स्थानमें वृद्धि एकादेश हो । जैसे—(सुखेन ऋतः) सुख+ऋतः यहां वृद्धिमें आर् (रपर आ हुआ) तब सुख्—आर्—तः=सुखार्तः सिद्ध हुआ । **तृतीयेति किम् ?** तृतीयासमास कहनेका कारण यह कि विना तृतीयासमासके और समासमें ऋत शब्द परे हो तो वृद्धि न हो । जैसे परम+ऋतः यहां कर्मधारय[1] समास (१००२) के कारण वृद्धि न होकर अर् गुण होकर **परमर्तः** सिद्ध हुआ (समासके बीचमें विभक्तिका लोप हो जाता है) ॥ ४५ ॥

(४६) प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे ॥

प्रादीनां शब्दानाम् ऋणे परतः वृद्धिः स्यात् ॥

प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण और दश इनसे परे ऋण शब्द हो तो पूर्वपर अच्के स्थानमें वृद्धि एकादेश हो । जैसे—प्र+ऋणम्—प्र्=आर्+णम्=प्रार्णम् । वत्सतर+ऋणम्=वत्सतरार्णम् । कम्बल+ऋणम्=कम्बलार्णम् । वसन+ऋणम्=वसनार्णम् । ऋण+ऋणम्=ऋणार्णम् । दश+ऋणम्=दशार्णम् ॥ ४६ ॥

(४७) उपसर्गाः क्रियायोगे । १ । ४ । ५९ ॥

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः ॥

प्रादिक (४८) क्रियाके योगमें उपसर्गसंज्ञावाले हों ।

(४८) प्र । परा । अप । सम् । अनु । अव । निस् । निर् । दुस् । दुर् । वि । आङ् । नि । अधि । अपि । अति । सु । उद् । अभि । प्रति । परि । उप । **एते प्रादयः ।** यह बाईस प्रादि कहलाते हैं ॥ ४७ ॥

(४८) भूवादयो धातवः । १ । ३ । १ ॥

क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः ॥

जो क्रियाके कहनेवाले शब्द भू आदि गणोंमें पढे हैं उनकी धातुसंज्ञा हो ॥ ४८ ॥

(४९) उपसर्गादृति धातौ । ६ । १ । ९१ ॥

अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् ॥

अवर्ण है अन्तमें जिसके ऐसे उपसर्ग (४७) से ऋकार है आदिमें जिसके ऐसे धातुके

---

[1] परमश्चासौ ऋतश्चेति विग्रहः ।

परे हुए सन्ते पूर्वपर अच्के स्थानमें वृद्धि एकादेश हो। जैसे—प्र+ऋच्छति इसमें (प्र) अवर्णान्त उपसर्ग है, (ऋच्छति) ऋकारादि धातु है, तो पूर्व परको वृद्धि होगयी प्र+आर्=च्छति=प्रार्च्छति ॥ ४९ ॥

(५०) एङि पररूपम्[1] । ६ । १ । ९४ ॥

आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात् ॥

अवर्णान्त उपसर्ग (४७) से एङ् (ए ओ) है आदिमें जिसके ऐसा धातु परे होनेसे पूर्वपर अच्के स्थानमें पररूप एकादेश हो। यथा—प्र+एजते इस प्रयोगमें (प्र) अवर्णान्त उपसर्ग है उससे एङादिधातु (एज्) परे है तो अकार भी पररूप एकारमें मिल गया, तो प्रेजते सिद्ध हुआ। इसी प्रकार उप+ओषति=उपोषति ॥ ५० ॥

(५१) अचोऽन्त्यादि टि[1] । १ । १ । ६४ ॥

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात् ॥

अचोंके मध्यमें जो अन्तका अच् है सो जिसकी आदिमें हो उसके साथ उस अन्त्य अच्की टि संज्ञा हो ॥ जैसे—मनस्+ईषा इस शब्दमें नकारके अन्तर्गत अकार अन्तका अच् है, उससे आगे सकार हल् है, उसके सहित अस्की टि संज्ञा हुई । शक इस शब्दमें ककारके अन्तर्गत 'अ' पिछला अच् है, परन्तु इससे परे हल् नहीं, इससे शकके अकारकी ही टि संज्ञा हुई ॥ ५१ ॥

(५२) शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् । तच्च टेः ॥

शकन्ध्वादि गणमें पररूप एक आदेश हो और वह पररूप टिको हो। शक+अन्धुः इस प्रयोगमें (५९) सूत्रसे दीर्घ एकादेशकी प्राप्ति थी, परन्तु उसे बाधकर कके अन्तर्गत टिसंज्ञक अकारके स्थानमें पररूप एक आदेश 'अ' हुआ तो 'शकन्धुः' सिद्ध हुआ। इसी प्रकार कर्क+अन्धुः=कर्क्+अ+अन्धुः=कर्कन्धुः । मनस्+ईषा इसमें अस् टिके स्थानमें पररूप हुआ तो मनीषा हुआ । लाङ्गल+ईषा=लाङ्गल्+अ+ईषा=लाङ्गलीषा । **आकृतिगणोऽयम्**[2] । भाष्यकार पतञ्जलिका यह अभिप्राय है कि टि संज्ञा होकर जिन शब्दोंको पररूप होता है वे शब्द शकन्ध्वादिगणके हैं, पाणिनिके गणपाठमें शकन्ध्वादिगण नहीं है, अनुमान होता है कि गणपाठमें उन्होंने अवश्य लिखा होगा, परन्तु अब वह लोप हो गया, परन्तु टिके स्थानमें पररूप होना ही उसकी पहचान है, जहां ऐसा हो वह शकन्ध्वादि गणका शब्द जानना । जैसे 'मार्तण्डः' यह शब्द शकन्ध्वादिगणका है, इससे मार्त+अण्डः इसमें तके अन्तर्गत टिसंज्ञक अके स्थानमें पररूप अ हुआ है ॥ ५२ ॥

---

१ अचोंके मध्यमें जो अन्त्य अच्, वह है आदिमें जिसके ऐसा जो समुदाय सो टिसंज्ञक हो। 'शकन्धु' आदिमें व्यपदेशिवद्भावसे टिसंज्ञा समझनी चाहिये ।

२ 'कतन्तेभ्यः, समर्थाभ्याम्' इत्यादिनिर्देशाश्चेहानुकूलाः ।

(९३) ओमाङोश्च । ६ । १ । ९५ ॥

ओमि आङि चात्परे पररूपमेकादेशः स्यात् ॥

अकारसे परे ओम् अथवा आङ् शब्द आवे तो पूर्व परस्थानमें परके रूप एक आदेश हो। जैसे-शिवाय+ओम्+नमः । इसमें यकारका अकार पररूप होगया तो शिवायोंनमः सिद्ध हुआ ॥ शिव+आङ्+इहि शिव्=अ+आ+इहि=(ङकारकी इत्संज्ञा होकर लोप हुआ) शिव+एहि इसमें शंका होती है कि यहां ओम् और आङ् नहीं है, तब यह सूत्र कैसे लगा ? इसपर अगला सूत्र है ॥ ९३ ॥

(९४) अन्तादिवच्च । ६ । १ । ८५ ।

योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत्परस्यादिवत् ॥

जो यह एकादेश है सो पूर्वको अन्तवत् और परको आदिवत् हो। इस कारण एहिमें जो आ+ इ मिलकर ' ए ' यह एक गुणादेश हुआ है, इसको आदिवत् मानकर अर्थात् ' आ ' जानकर एहिमें आङ् ही जानना चाहिये और आङ् जानकर अकारका पररूप होनेसे ' शिवेहि' सिद्ध हुआ है ॥ ९४ ॥

(९५) अकः सवर्णे दीर्घः । ६ । १ । १०१ ॥

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात् ॥

अक् (अ इ उ ऋ ऌ) से सवर्ण अच् परे हुए सन्ते पूर्व परके स्थानमें दीर्घ एकादेश हो । जैसे-दैत्य+अरिः=दैत्य्+अ+अरिः=दैत्यारिः । श्री+ईशः=श्रीशः । विष्णु+उदयः विष्णूदयः । होतृ+ऋकारः होतॄकारः ॥ ९५ ॥

(९६) एङः पदान्तादति ।६।१।१०९॥

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् ।

पदान्त (२०) एकार ओकारसे परे ह्रस्व अकार हो तो पूर्व परके स्थानमें पूर्वरूप एकादेश हो। जैसे-हरे+अव=हर्=ए+अव=हरेऽव। यहां ह्रस्व अकार पूर्वरूप एकार होगया, पूर्वरूपमें अकारका ' ऽ' यह चिह्न करदेते हैं । विष्णो+अव=विष्णोऽव (हे विष्णो ! हमारी रक्षा करो) ॥ ९६ ॥

(९७) सर्वत्र विभाषा गोः । ६ । १ । १२२ ॥

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते ॥

लोक और वेदमें, एङ् प्रत्याहार है अन्तमें जिसके ऐसे गोशब्दको ह्रस्व अकारके परे रहते प्रकृतिभाव विकल्प करके हो पदान्तमें । प्रकृतिभाव नाम ज्योंका त्यों रहे । गो+अग्रम्=गोअग्रम् । (प्रकृतिभाव) गो+अग्रम्=गोऽग्रम् पूर्वरूप हुआ । **एङन्तस्य किम् ?** एङन्त गोशब्द क्यों कहा ? तो उत्तर यह है-जहां एङन्त गोशब्द न हो वहां प्रकृतिभाव न हो, जैसे

---

१ पूर्वघटितसमुदाय २ परघटितसमुदाय ।

चित्रगु+अग्रम्=चित्रग्वग्रम् (२१) यहां यण् हुआ। **पदान्ते किम्** ? पदान्त क्यों कहा ? तो गो+अस्=गोः यहां गो शब्दका ओकार पदान्त (२०) नहीं, इस कारण (१९३) से पूर्वरूप होकर 'गोः' सिद्ध हुआ ॥ ९७ ॥

(९८) अनेकाल्शित्सर्वस्य । १ । १ । ५५ ॥

अनेकाल् आदेशः शिदादेशश्च सर्वस्थाने भवति ॥

जिस आदेशके इत्संज्ञावाले अक्षरोंको छोडकर अनेक अल्हों अथवा जिसके शकारकी इत्संज्ञा हो वह सम्पूर्ण स्थानीके स्थानमें हो। इससे सबके स्थानमें आदेश पाया, तब-॥ ९८ ॥

(९९) ङिच्च । १ । १ । ५३ ॥

ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात् ॥

जिसे अनेकाल् (९८) आदेशके ङकारकी इत्संज्ञा हो सो आदेश सबको **न** होकर अन्त्यके अल्हीको हो ॥ ९९ ॥

(६०) अवङ् स्फोटायनस्य । ६ । १ । १२३ ॥

पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वाऽचि ॥

पदान्तमें (२०) एङन्त गोशब्दको अवङ् आदेश विकल्प करके स्फोटायनके मतमें हो अच् परे हुए सन्ते ॥ गो+अग्रम् इस प्रयोगमें सम्पूर्ण गोशब्दको अवङ् आदेश-(९८) पाया, परन्तु अवङ्के ङकारकी इत्संज्ञा है और इसमें अनेक अल् भी हैं इस कारण (९९) सूत्रसे गोशब्दके अन्त्य अल् ओकारको अवङ् हुआ, तब ग्+ओ+अग्रम्=ग्+अव+अग्रम्=गवाग्रम (९९) सिद्ध हुआ और जब अवङ् आदेश न हुआ तब गो अग्रम्, गोऽग्रम् (९७) हुआ। **पदान्ते किम्** ? पदान्त क्यों कहा ? इसका उत्तर यह कि गो+इ (सप्तमीका एकवचन है) यहां गोशब्दका ओकार पदान्त नहीं है, इससे अवङ् आदेश न हुआ तब (२९) सूत्र लगकर 'गवि' सिद्ध हुआ ॥ ६० ॥

(६१) इन्द्रे च । ६ । १ । १२४ ॥

गोरवङ् स्यादिन्द्रे ॥

इन्द्र शब्द परे हो तो भी गोशब्दको अवङ् आदेश हो। जैसे-गो+इन्द्रः=ग्+ओ+ इन्द्रः=ग्+अव+इन्द्रः=गवेन्द्रः (३९) ॥ ६१ ॥

(६२) दूराद्धूते च । ८ । २ । ८४ ॥

दूरात् संबोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा स्यात् ॥

दूरसे पुकारनेमें जो वाक्य हो उस वाक्यकी टि(९१) को विकल्प करके प्लुत (९)हो६२॥

---

१ अनेकाल् आदेश और शित् आदेश संपूर्णके स्थानमें हो अर्थात्-

२ ङित् आदेश अनेकाल् भी अन्त्यको ही हो।

३ यावति देशे स्वाभाविकप्रयत्नोच्चारितं वाक्यं संबोध्यमानो न शृणोति किन्त्वधिकं प्रयत्नमपेक्षते तावद् दूरम्॥

(६३) प्लुतप्रगृह्या[1] अचि[2] नित्यम्[1] । ६ । १ । १२५ ॥

एते अचि प्रकृत्या स्युः ॥

प्लुत (९) संज्ञक और प्रगृह्य (६४) संज्ञक को अच् परे आवे तो नित्य प्रकृतिभाव हो । यथा ' आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति ' यहां कृष्ण ३+अत्र । वाक्यकी टिको प्लुत होनेके कारण संधि न होकर प्रकृतिभाव हुआ ॥ ६३ ॥

(६४) ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् । १ । १ । ११ ॥

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यं स्यात् । हरी एतौ । विष्णू इमौ । गङ्गे अमू ॥

ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त जो द्विवचन शब्द हैं उनकी प्रगृह्य संज्ञा (६३) हो । हरी+एतौ=हरी एतौ । विष्णू+इमौ=विष्णू इमौ । गङ्गे+अमू=गङ्गे अमू । इन उदाहरणोंमें ' हरी, ' विष्णू , गङ्गे ' शब्दोंमें ई, ऊ, ए प्रगृह्यसंज्ञक हैं, क्योंकि ये द्विवचन हैं, इससे प्रकृतिभाव होकर (६३) ज्योंके त्यों रहे ॥ ६४ ॥

(६५) अदसो[6] मात् । १ । १ । १२ ॥

अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः ॥

अदस् (३८६) शब्दके मकारके परे जो ईकार और ऊकार हों तो वे प्रगृह्य (६३) संज्ञावाले हों । जैसे—अमी+ईशाः=अमी ईशाः । रामकृष्णौ+अमू+आसाते=रामकृष्णावमू आसाते । इन उदाहरणोंमें अदस् शब्दके अमी और अमूके मकारसे परे ईकार और ऊकार हैं, सो इनकी प्रगृह्यसंज्ञा होकर (६३) से प्रकृतिभाव हुआ । **मात्किम्[2] ?** मकारसे परे क्यों कहा ? (उ०) अमुकेऽत्र । मकारका ग्रहण जो न करते तो यहां (६४) से एकारकी भी अनुवृत्ति होजाती और इसकी प्रगृह्यसंज्ञा हो जाती (और यहां मकारका ग्रहण नहीं हो सकता) और इस उदाहरणमें जो (५६) वाँ सूत्र लगकर यह रूप सिद्ध हुआ है यह सूत्र न लगता; इस कारण (६५) वाँ सूत्र पृथक् बनाना पडा ॥ ६५ ॥

(६६) चादयोऽसत्त्वे । १ । ४ । ५७ ॥

अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः ॥

जिनका द्रव्य[3](लिंग,संख्या,कारक) अर्थ नहीं है ऐसे च आदि अव्यय निपात संज्ञावाले हों॥६६॥

(६७) प्रादयः[1] । १ । ४ । ५८ ॥

---

१ स्त्रियां क्लीबे च " अदे " इति भूत्वा " अमू " इति भवति, ततश्चैकारान्तद्विवचनान्तत्वाद् " ईदूदेत्–" इति पूर्वसूत्रेणैव तत्र प्रगृह्यत्वं सिद्ध्यति पुंसि तु " अदौ " इति भूत्वा ' अमू ' इति भवतीति पुंलिङ्ग एवास्योदाहरणमिति ध्वनयितुं " रामकृष्णौ " इत्युपन्यस्तम् ।

२ माद्ग्रहणाभावे सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिःसह वा निवृत्तिरिति न्यायेन ईदूदेद्द्विवचनमिति सूत्राद्यथा ईदूदित्यस्यानुवृत्तिस्तथैवैकारस्यापि स्यात्तथा च अमुकेऽत्रेत्यत्र प्रगृह्यसंज्ञा स्यात्तस्यां च सत्यां प्रकृतिभावः स्यात्, सति तु माद्ग्रहणे तस्मात् परैकाराभावादेवाननुवृत्तिरिति तत्त्वम् । ३ लिङ्गसंख्याकारकान्वितं द्रव्यम् ।

एतेऽपि तथा ॥

प्र आदि (४८) इसी प्रकार निपात (६६) संज्ञावाले हों ॥ ६७ ॥

(६८) निपात एकाजनाङ् । १ । १ । १४ ॥

एकोऽज् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात् । वाक्यस्मरणयोरङित्[1] ॥

एकअच् रूपवाला निपात आङ्को छोडकर प्रगृह्य (६३) संज्ञक हो । जैसे–इ+इन्द्रः= इ इन्द्रः । इसमें प्रथम इकारकी प्रगृह्यसंज्ञा होनेसे संधि न हुई । उ+उमेशः=उ उमेशः । यहां प्रथम उकारकी प्रगृह्यसंज्ञा होनेसे संधि न हुई । आङ्में भेद है वाक्य और स्मरणके अर्थमें आकारके साथ इत्–संज्ञक ङकार न जानना, इससे वाक्य और स्मरण इन दोनों अवस्थाओंमें आकारभी प्रगृह्य होता है । यथा–आ एवं नु मन्यसे । क्या अब ऐसा मानते हो ? आ एवं किल तत्–हां सत्य ऐसा होता है, यहां ' आ ' स्मरणमें और ऊपरके वाक्यमें वाक्यार्थमें है, इससे यहां प्रगृह्य हुआ । **अन्यत्र[2] ङित् ।** अन्यत्र आ निपात ङित् है. उस दशामें उसकी प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती । यथा–आ+उष्णम्=ओष्णम् (९३९) यहां आङ् थोडे वाचकके अर्थमें है ॥ ६८ ॥

(६९) ओत् । १ । १ । १५ ॥

ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः ॥

ओकारान्त जो निपात (६६) है सो प्रगृह्य (६३) संज्ञक हो । यथा–अहो+ईशाः= अहो ईशाः । यहां ओ प्रगृह्यसंज्ञक होनेसे संधि न हुई (२९) सूत्र न लगा ॥ ६९ ॥

(७०) सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे । १ । १ । १६ ॥

सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिक इतौ परे ॥

सम्बुद्धि (१९१) निमित्तक जो ओकार है सो विकल्प करके प्रगृह्य (६३) संज्ञक हो यदि उससे परे वेदभिन्न इतिशब्द हो तो । ' विष्णो इति ' यहां लौकिक इति शब्द परे होनेसे सम्बोधनके ओकी प्रगृह्यसंज्ञा हुई तो ' विष्णो इति ' ऐसा रहा । विकल्पमें ' विष्णविति ' (२९) सूत्र लगा । और जब (३८) सूत्रसे वकारका लोप हुआ तब विष्ण इति । इस प्रकार तीन रूप बने ॥ ७० ॥

(७१) मयं उञो वो वा । ८ । ३ । ३३ ॥

मयः परस्य उञो वो वा अचि ॥

मय् प्रत्याहारके आगे उञ्के उकारको विकल्प करके वकार आदेश हो अच् परे होनेपर । यथा–किमु+उक्तम्=किम्+उ+उक्तम्=किम्+व्+उक्तम्=किम्वुक्तम् ॥ जब वकार न हुआ तब ' किमु उक्तम् ' (६८) हुआ ॥ ७१ ॥

---

१ वाक्य और स्मरणमें अङित् यानी आ समझना चाहिये और अन्य जगह ङित् यानी आङ् समझना चाहिये । २ ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः । एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित् ॥

(७२) इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च । ६ । १ । १७२ ॥

पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि ॥

पदान्त (२०) इक्को ह्रस्व विकल्प करके हो जो उससे परे असवर्ण अच् हो तो । **ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः** । यहां ह्रस्व करनेका तात्पर्य यह है कि, ह्रस्व होकर फिर सन्धि न हो, ज्योंका त्यों रह जाय । यथा– चक्री+अत्र=चक्रि अत्र । यहां ह्रस्व होकर सन्धि न हुई और जब ह्रस्व न हुआ तब (२१) सूत्रसे ' चक्रयत्र ' हुआ । **पदान्ता इति किम् ?** पदान्त क्यों कहा ? गौरी+औ=गौर्यौ इसमें 'री' के अन्तर्गत ईकार पदान्त नहीं है, इस कारण इस प्रयोगमें यह सूत्र न लगा ॥ ७२ ॥

(७३) अचो रहाभ्यां द्वे । ८ । ४ । ४६ ॥

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः ।

अच् प्रत्याहारसे परे जो रेफ हकार उनसे परे यर् प्रत्याहारको विकल्प करके द्वित्व हो । यथा–हर्य् +अनुभवः=हर्य्यनुभवः । और जब द्वित्व न हुआ तब ' हर्यनुभवः ' । इसी प्रकार गौरी+औ=गौर्य्यौ अथवा गौर्यौ यहां रेफसे परे यकारको विकल्प करके द्वित्व हुआ ॥ ७३ ॥

(७४) न समासे ॥

समास (९६२) में यह शाकल्यमुनिका ह्रस्व (७२) विधि नहीं लगता, यथा– वाप्याम् +अश्वः=वापी+अश्वः=वाप्यश्वः ॥ ७४ ॥

(७५) ऋत्यकः । ६ । १ । १२८ ॥

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्वा ॥

पदान्त अक्से परे ऋकार हो तो विकल्प करके प्रकृतिभाव हो । यथा–ब्रह्मा+ऋषिः=ब्रह्म ऋषिः । जब न हुआ तब (३९, ३७) से 'ब्रह्मर्षिः' हुआ । **पदान्ताः किम् ?** पदान्त अक् क्यों कहा ? उसका उत्तर यह कि, आ+ऋच्छत्=आर्च्छत् ' इसमें आ पदान्त नहीं है, इससे प्रकृतिभाव न होकर ' आटश्च ' इस (२१८) से वृद्धि हुई ॥ ७५ ॥

॥ इत्यच्संधिः ॥

---

१ ह्रस्व विधान सामर्थ्यसे स्वरको संधि नहीं होती ।

२ समासमें पदान्त इक्को ह्रस्व न हो असवर्णी अच् परे रहते । द्वयोर्बहूनां वा पदानाम् एकपदीभवनं समासः ।

अथ हल्संधिः ।

(७६) स्तोः श्चुना श्चुः । ८ । ४ । ४० ॥

सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः ॥

सकार और तवर्गको शकार चवर्गके योगमें शकार चवर्ग हों । सकारको शकार और तवर्गको चवर्ग क्रमसे हों । यथा-रामस्+शेते=रामश्शेते । रामस्+चिनोति=रामश्चिनोति । सत्+चित्=सच्चित् । शार्ङ्गिन्+जय=शार्ङ्गिञ्जय ॥ ७६ ॥

(७७) शात् । ८ । ४ । ४४ ॥

शात्परस्य तवर्गस्य चुत्वं न स्यात् ॥

शकारसे परे तवर्गका योग हो तो तवर्गको चवर्ग न हो । यथा-विश्+नः=विश्नः । प्रश्+नः=प्रश्नः ॥ ७७ ॥

(७८) ष्टुना ष्टुः । ८ । ४ । ४१ ॥

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः स्यात् ॥

यदि सकार तवर्गसे षकार टवर्गका योग हो तो सकार तवर्गको षकार टवर्ग हों । यथा-रामस्×षष्ठः=रामष्षष्ठः । रामस्+टीकते=रामष्टीकते= । पेष्×ता=पेष्टा । । तत्+टीका=तट्टीका । चक्रिन्+ढौकसे=चक्रिण्ढौकसे ॥ ७८ ॥

(७९) न पदान्ताट्टोरनाम् । ८ । ४ । ४२ ॥

पदान्ताट्टवर्गात्परस्यानामः स्तोः ष्टुर्न स्यात् ॥

पदान्त टवर्गसे परे नाम् शब्दके नकारको छोडकर सकारतवर्गको षकार टवर्ग न हो । यथा षट्+सन्तः=षट्सन्तः । षट्+ते=षट्ते । **पदान्तात् किम् ?** पदान्तसे क्यों कहा ? तो ईड्+ते=ईट् (९०) +ते ईट्टे (७८) **टोः किम् ?** टवर्ग क्यों कहा ? सर्पिष्+तमम्=सर्पिष्टमम् (७८) यहां टवर्ग हुआ ॥ ७९ ॥

(८०) अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् ॥

(७९) पिछले सूत्रमें एक नामही छोडा था, परन्तु उसके साथमें नवति, नगरी इन शब्दोंको भी छोडना चाहिये । यथ-षड्+नाम्=षण्णाम् । षड्+नवतिः=षण्णवतिः । षड्+नगर्यः=षण्णगर्यः[3] ।

---

[1] पदान्त टवर्गसे परे सकारको षकार न हो और नाम् शब्दावयवभिन्न तवर्गको ट-वर्ग न हो ।

[2] नाम्-नवति-नगरी-एतत् शब्दावयव भिन्न तवर्गको टवर्ग न हो ।

[3] पक्षमें षड्‌ नवतिः, षड्‌ नगर्यः भी समझो ।

(८१) तोः षि । ८ । ४ । ४३ ॥

तवर्गस्य षकारे परे ष्टुत्वं न ॥

तवर्गसे षकार परे हो तो षकार टवर्ग (७८) न हो । यथा सन्+षष्ठः=सन्षष्ठः । यहां तवर्गसे षकार परे है, इसे ष्टुत्व न हुआ ॥ ८१ ॥

(८२) झलां जशोऽन्ते । ८ । २ । ३९ ॥

पदान्ते झलां जशः स्युः ॥

पदान्तमें झल् प्रत्याहारके स्थानमें जश् प्रत्याहार हो । यथा—वाक्+ईशः=वागीशः ॥८२॥

(८३) यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा । ८ । ४ । ४५ ॥

यरः पदान्तस्यानुनासिके परे अनुनासिको वा स्यात् ॥

पदान्त यर्को अनुनासिक परे हुए सन्ते विकल्प करके अनुनासिक[1] हो । यथा एतद्+मुरारिः=एतन्मुरारिः । जब अनुनासिक न हुआ तब 'एतद्मुरारिः' ॥ ८३ ॥

(८४) प्रत्यये भाषायां नित्यम् ॥

अनुनासिकादि प्रत्यय (१३९) परे हो तो लोकमें अर्थात् वेदको छोडकर सब ग्रन्थोंमें पदान्त यर्को नित्य अनुनासिक (८३) हो । यथा—तद्+मात्रम् (यह प्रत्यय है)=तन्मात्रम् । चित्+मयम्=चिन्मयम्, यह मयट् प्रत्यय है ॥ ८४ ॥

(८५) तोर्लि । ८ । ४ । ६० ॥

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः । नस्यानुनासिको लः ।

तवर्गको लकार परे हुए सन्ते परका सवर्ण हो । तद्+लयः=तल्+लयः=तल्लयः । विद्वान्+लिखति=विद्वाल्ँ+लिखति=विद्वाँल्लिखति । नकारके स्थानमें अनुनासिक (१७) लकार हुआ है ॥ ८५ ॥

(८६) उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य । ८ । ४ । ६१ ॥

उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः ॥

उद् उपसर्ग (४७) से परे स्था और स्तम्भ शब्दको पूर्वका सवर्ण हो ॥ ८६ ॥

(८७) तस्मादित्युत्तरस्य । १ । १ । ६७ ॥

पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् ॥

पंचम्यन्तपदके निर्देशसे जो कार्य विहित है सो उसीको हो जो पञ्चम्यन्त पदार्थसे परे हो उसके बीचमें किसी दूसरे वर्णका व्यवधान न हो ॥ ८७ ॥

---

१ नासिकास्थान तुल्य होनेसे ।

२ पंचम्यन्तका निर्देश करके विधीयमान जो कार्य सो अन्य वर्णके व्यवधानरहित परको हो ॥

(८८) आदेः परस्य । १ । १ । ५४ ॥

परस्य यद्विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम् ।

जो कार्य परको कहा है सो उसके पहले अक्षरको जानना चाहिये । जैसे—उद्×स्थानम् इस प्रयोगमें (८७) सूत्रके अनुसार स्था शब्दके पूर्व उद्का दकार है; उसका सवर्ण तवर्गका 'थ्' अक्षर 'स्था' के स्थानमें पाया, परन्तु (८८) सूत्रसे दकारके परे जो स्थाका सकार उसीके स्थानमें 'थ्' हुआ, कारण कि, सकारका विवार, श्वास, अघोष तथा महाप्राण प्रयत्न है (२४, १६–२–९) इसमें इन्हीं चार प्रयत्नवाला तवर्गका 'थ्' है. तब थकार होकर उद्+थ्+थानम् ऐसी स्थिति हुई. इसी प्रकार उद्+स्तम्भनम्में+उद्+थ् तम्भनम् हुआ ॥८८ ॥

(८९) झरो झरि सवर्णे । ८ । ४ । ६५ ॥

हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि ॥

हल्से परे झर् प्रत्याहारका लोप विकल्प करके हो, जो सवर्ण झर् परे हो ॥ उद्+थ्+थानम्=उद्+थानम् । उद+थ्–तम्भनम्=उद्+तम्भनम् ॥ ८९ ॥

(९०) खरि च । ८ । ४ । ५५ ॥

खरि झलां चरः स्युः ॥

खर् प्रत्याहार परे हो तो झलोंको चर् हों । यथा—उद्+थानम्=उत्+थानम्=उत्थानम् । उद्+तम्भनम्=उत्+तम्भनम्=उत्तम्भनम् । जब लोप न हुआ तब उत्थ्थानम्, उत्थ्तम्भनम्९०

(९१) झयो होऽन्यतरस्याम् । ८ । ४ । ६२ ॥

झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः ॥ नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थः । वाग्घरिः । वाग्हरिः ॥

झय् प्रत्याहारसे परे हकारके स्थानमें विकल्प करके पूर्वका सवर्ण हो । प्रत्येक वर्गमें चौथा चौथा अक्षर नाद, घोष, संवार और महाप्राण प्रयत्नवाला हकारके सदृश है (१६) (२) इस कारण वाग्+हरिः=वाग्घरिः । पक्षमें वाग्हरिः अर्थात् झय्से परे हरिके हकारको पूर्व ककारका सवर्ण नादादिसे घकार हुआ फिर 'झलाञ्जशोऽन्ते' से ककारको गकार हुआ, तब वाग्घरिः हुआ, विकल्प पक्षमें (८२) से वाग्हरिः रहा ॥ ९१ ॥

(९२) शश्छोऽटि । ८ । ४ । ६३ ॥

झयः परस्य शस्य छो वाऽटि । तद् शिव इत्यत्र दस्य श्चुत्वेन जकारे कृते 'खरि च' इति जकारस्य चकारः ॥

झय् प्रत्याहारसे परे शकारके स्थानमें विकल्प करके छकार हो अट्प्रत्याहार परे हो तो । यथा—तद्+शिवः इस प्रयोगमें (७६) सूत्रसे दकारके स्थानमें चवर्गी 'ज' और

---

[१] नाद-घोष-संवार-और महाप्राण प्रयत्नवाले हकारके स्थानमें वैसाही वर्गका चौथा अक्षर होता है ।

(९०) सूत्रसे जके स्थानमें चकार हुआ तब तच्+शिवः=तच्+छिवः=तच्छिवः । इस प्रयोगमें झय्से परे शिका शकार है और शकारसे आगे इकार अट् है इससे ' श् ' के स्थानमे 'छ्' हुआ और जब यह सूत्र न लगा तब ' तच्शिवः ' रूप हुआ ॥ ९२ ॥

(९३) छत्वममीति वाच्यम् ॥

अर्थात् पूर्व सूत्र (९२) में अट् प्रत्याहार परे रहते छत्व कहा है वहां अम् प्रत्याहार जानना उचित है, यथा–तद्+श्लोकेन (७६) तज्+श्लोकेन (९०) तच्+श्लोकेन=तच्छ्लोकेन॥९३॥

(९४) मोऽनुस्वारः । ८ । ३ । २३ ॥

मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि ।

मकार अन्तवाले पदको अनुस्वार हो हल् परे हुए सन्ते । यथा–हरिम्+वन्दे=हरिं वन्दे॥९४॥

(९५) नश्चापदान्तस्य झलि । ८ । ३ । २४ ॥

नस्य मस्य चापदांतस्य झल्यनुस्वारः ॥

अपदान्त (२०) नकार मकारसे परे झल् हो तो नकार मकारके स्थानमें अनुस्वार हो । यथा–यशान्+सि=यशांसि । आक्रम्+स्यते=आक्रंस्यते ॥ ९५ ॥

(९६) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः । ८ । ४ । ५८ ॥

यय् प्रत्याहार परे हो तो अनुस्वारको परका सवर्ण हो । यथा–शाम्+तः=शां+(९५) तः=शान्तः । अनुस्वारसे परे तकार है इसका सवर्ण 'न' हुआ ॥ ९६ ॥

(९७) वा पदान्तस्य । ८ । ४ । ५९ ॥

पदान्तस्य अनुस्वारस्य ययि परे परसवर्णो वा स्यात् ॥

पदान्त अनुस्वारको यय् प्रत्याहार परे होनेसे विकल्प करके परका सवर्ण हो । त्वम्+करोषि=त्वङ् करोषि । पक्षमें (९४) त्वं करोषि ॥ ९७ ॥

(९८) मो राजि समः क्वौ । ८ । ३ । २५ ॥

क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात् ॥

क्विप्=प्रत्यय (८९६) जिसके अन्तमें हो ऐसी राज् धातु सम् (४८) से परे आवे तो सम्के मकारको मकार ही हो (९४) से अनुस्वार न हो । यथा–सम्+राट्=सम्राट् (राज् धातुसे क्विप् प्रत्यय करनेसे राट् बना है) ॥ ९८ ॥

(९९) हे मपरे वा । ८ । ३ । २६ ॥

मपरे हकारे परे मस्य मो वा ॥

मकार है परे जिससे ऐसे हकारके परे होनेसे मकारके स्थानमें विकल्प करके मकार हो । यथा किम्+ह्मलयति=किम्ह्मलयति । अथवा (९४) से किं ह्मलयति ॥ ९९ ॥

---

१ अम् परे रहते छत्व हो ऐसा कहना चाहिये यांनी " छरछोऽमि " ऐसा सूत्र करना चाहिये ।
२ नासिका स्थान साम्यसे ।

(१००) यवलपरे यवला वा ॥

यवलपरे हकारे परे मस्य यवला वा भवन्ति ॥

यकार, वकार, लकार हैं, परे जिससे ऐसे हकारके परे हुए सन्ते मकारके स्थानमें विकल्प करके य, व, लँ हों । यथा—किम्+ह्यः=कियँ+ह्यः=कियँह्यः । अथवा किंह्यः (९४) किम्+ ह्वलयति=किवँ+ह्वलयति=किवँह्वलयति वा किंह्वलयति । किम्+ह्लादयति=किलँ+ह्लादयति=किलँ-ह्लादयति ॥ १०० ॥

(१०१) नपरे नः । ८ । ३ । २७ ॥

नपरे हकारे परे मस्य नो वा ॥

नकार है परे जिससे ऐसे हकारके परे हुए सन्ते मकारको नकार विकल्प करके हो । यथा-किम्×ह्नुते=किन्+ह्नुते+किन्ह्नुते, अथवा (९४) किंह्नुते ॥ १०१ ॥

(१०२) डः सि धुट् । ८ । ३ । २९ ॥

डात्परस्य सस्य धुड्वा ॥

डकारसे परे सकारको विकल्प करके धुट्[2]का आगम हो। आगम मित्रके समान होता है जिसके होनेसे शब्दमें कुछ विकार नहीं होता, वह आगम कहलाता है ॥ १०२ ॥

(१०३) आद्यन्तौ टकितौ । १ । १ । ४६ ॥

टित्कितौ यस्योक्तौ[3] तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः ॥

जिस आगमका टकार अथवा ककार इत्संज्ञक (९) हो वह जिसको कहा हो उसके आदि और अन्तमें क्रमसे हो अर्थात् टित् आदिमें और कित् अन्तमें हो । धुट्में टकार इत्संज्ञक है इससे सकारके आदिमें हुआ, यथा—षड्+सन्तः=षड्+धुट्+सन्तः (सू० ९, ३६, ६, ७,) से धुट्के टकार और उकारका लोप होकर ध् शेष रहा । तब षड्+ध्+सन्तः प्रयोगमें (९०) से धकारके स्थानमें तकार हुआ और ड् के स्थानमें ट् हुआ तब षट्+त्+ सन्तः=षट्त्सन्तः । पक्षमें षट् (९०) सन्तः (७८) सूत्रसे सकारको षकारकी प्राप्ति थी सो (७९) से न हुई ॥ १०३ ॥

(१०४) ङ्णोः कुक्टुक् शरि ॥ ८ । ३ । २८ ॥

ङकारणकारयोः कुक्टुकौ आगमौ वा स्तः शरि परे ।

चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् ॥

ङकार और णकारको कुक् टुक्का आगम विकल्प करके हो शर् परे हुए सन्ते, ङकारको कुक् और णकारको टुक्का आगम हो । पौष्करसादि आचार्यके मतमें चय् प्रत्या-

---

१ यथाक्रमसे । २ धुटि टकार इत् उकार उच्चारणार्थः ।

३ टित् कित् जिस समुदायको कहे हैं उस समुदायका आद्यवयव टित् और अन्तावयव कित् हो ।

हारको वर्गके दूसरे अक्षर हों । यथा–' प्राङ्क्+षष्ठः ' यहां कुक्मेंसे (९, ३६, ७, उक्का लोप होकर ' क् ' ङकारके अन्त (१०३) में हुआ. प्राङ्+क्+षष्ठः क् और ष् मिलनेसे क्ष[1] हुआ तो प्राङ्क्षष्ठः । जब वर्गका दूसरा अक्षर हुआ तो प्राङ्ख्षष्ठः । सुगण्+षष्ठः । टुक्मेंसे उक् निकलकर ' ट् ' शेष रहा वह णकारके अन्तमें हुआ सुगण्+ट्+षष्ठः=सुगण्ट्षष्ठः, वर्गका दूसरा अक्षर होनेसे सुगण्ठ्षष्ठः । पक्षमें सुगण्षष्ठः ॥ १०४ ॥

(१०५) नश्च । ८ । ३ । ३० ॥

नान्तात् परस्य सस्य धुड् वा ॥

नकारान्त पदसे परे सकारको विकल्प करके धुट्का आगम हो । यथा–सन्+सः=सन्+ध्+सः=सन्+त्+सः=सन्त्सः, पक्षे सन्सः । यहां भी धुट्मेंसे उट् जाता रहा ॥ १०५ ॥

(१०६) शि तुक् । ८ । ३ । ३१ ॥

पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा ॥

पदान्त नकारको शकार परे होनेसे विकल्प करके तुक्का आगम हो । तुक्मेंसे उक्की इत्संज्ञा होकर (९, ३६, ६, ७,) लोप हुआ, तकार शेष रहा सो (१०३) सूत्रसे नकारके अन्तमें हुआ. यथा–सन्+शम्भुः=सन्+त्=शम्भुः (७६) सूत्रसे तकारके स्थानमें चकार हुआ. सन्+च्=शम्भुः (९२) से ' श ' के स्थानमें ' छ् ' हुआ सन्+च्=छम्भुः (७६) से नकारके स्थानमें ञ् हुआ, तब सञ्+च्+छम्भुः=फिर ' झरो झरि सवर्णे ' से चकारका लोप होकर ' सञ् छम्भुः ' रूप हुआ । चलोपके अभावमें सञ्च्छम्भुः ॥ ' शश्छोऽटि ' के न लगनेसे (७६) चुत्व होनेपर सञ्च्शम्भुः । तुक्के न होनेपर नकारको (७६) से ञकार होकर सञ्शम्भुः । इस प्रकार चार[2] रूप हुए ॥ १०६ ॥

(१०७) ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् । ८ । ३ । ३२ ॥

ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो ङमुट् ॥

ह्रस्वसे परे ङम् प्रत्याहारके अक्षर (ङ्, ण, न,) जिसके अन्तमें हों ऐसा जो पद उससे परे अच् हो तो उसे ङमुट्–अर्थात् ङुट् णुट् और नुट्का आगम क्रमसे हो । इन तीनों आगमोंके उट्का लोप (९, ३६, ७) से हुआ ङ्, ण् न् शेष रहे सो (१०३) से आदि भागमें हुए. यथा–प्रत्यङ्+आत्मा=प्रत्यङ्+ङ्=आत्मा=प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्+ईशः=सुगण्+ण्+ईशः=सुगण्णीशः । सन्+अच्युतः=सन्+न्+अच्युतः=सन्नच्युतः ॥ १०७ ॥

(१०८) समः सुटि । ८ । ३ । ५ ॥

समो रुः सुटि ॥

सम् शब्दके मकारके स्थानमें रु हो सुट् परे हुए सन्ते ॥ १०८ ॥

---

१ " कषसंयोगे क्षः " इत्यभियुक्ताः ।

२ " ञ्छौ ञ्चछा ञ्चशा ञशाविति चतुष्टयम् । रूपाणामिह तुक्छत्वचलोपानां विकल्पनात् ॥ "

(१०९) अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा । ८ । ३ । २ ॥

अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा ॥

इस रुके प्रकरण (१२४) में रुसे पूर्व वर्णको विकल्प करके अनुनासिक हो ॥ १०९ ॥

(११०) अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः । ८ । ३ । ४ ॥

अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः ॥

अनुनासिकवाले पक्षको छोड़कर रुसे पूर्ववर्णसे परे अनुस्वारका आगम हो ॥ ११० ॥

(१११) खरवसानयोर्विसर्जनीयः । ८ । ३ । १५ ॥

खरि अवसाने च पदान्तस्य रस्य विसर्गः ॥

खर् प्रत्याहार परे रहते और अवसान (१४४) में पदान्तके रकारको विसर्ग हो ॥ १११ ॥

(११२) सम्पुंकानां सो वक्तव्यः ॥

सम् (१०८) पुम् (११३) और कान् (११९) इन तीन शब्दोंके विसर्गके स्थानमें सकार हो । यथा—सम्+कर्ता में (८२८) से सुट्का आगम हुआ तब उट् जाकर सकार रहनेसे सम्+स्+कर्ता प्रयोग हुआ, तब (१०८) से 'म्' के स्थानमें 'रु' का र् (३६, ७) रहा तो सर् +स्+कर्ता हुआ, फिर (१०९) से रकारसे पूर्व अनुनासिक किया तो सँर्=स् कर्ता विकल्प करके हुआ, और न किया तो (११०) से रकारके पूर्ववर्ण पर अनुस्वार हुआ, तो संर्+स्+कर्ता हुआ, (१११) से रकारके स्थानमें विसर्ग हुआ तो सँः+स्+कर्ता अथवा संःस्कर्ता रूप हुआ. फिर (११९) सूत्रकी प्राप्ति हुई उसको (१२३) ने बाधा इसको बाधकर (११२) से विसर्गको स् हुआ तब, सँस्+स्+कर्ता=सँस्स्कर्ता अथवा संस्+स्+कर्ता=संस्स्कर्ता सिद्ध हुआ ॥ ११२ ॥

(११३) पुमः खय्यम्परे । ८ । ३ । ६ ॥

अम्परे खयि पुमो रुः ॥

अम् है परे जिससे ऐसा खय् प्रत्याहार परे हुए सन्ते पुम्के मकारको रु हो । यथा पुम्+कोकिलः=पुर्+कोकिलः (१०९) से रकारसे पूर्व अनुनासिक हुआ तो पुँर्+कोकिलः । अथवा (११०) से पुंर्+कोकिलः (१११) से विसर्ग होनेसे पुँः+कोकिलः अथवा पुंः+ कोकिलः (११२) से विसर्गको सकार होनेसे पुँस्+कोकिलः=पुँस्कोकिलः । अथवा पुंस्+कोकिलः=पुंस्कोकिलः ॥ ११३ ।

(११४) नश्छव्यप्रशान् । ८ । ३ । ७ ॥

अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः, नतु प्रशान् शब्दस्य ॥

अम् है परे जिससे ऐसा छव् प्रत्याहार परे होनेसे नान्त पदके नकारको रु हो परन्तु प्रशान् शब्दके नकारको न हो । चक्रिन्+त्रायस्व=चक्रिर्+त्रायस्व (१०९) से रकारसे पूर्व

अनुनासिक हुआ चक्रिँर् + त्रायस्व (१११) से रकारको विसर्ग हुआ तब चक्रिँः+त्रायस्व पक्षमें चक्रिंः+त्रायस्व ॥ ११४ ॥

(११५) विसर्जनीयस्य सः । ८ । ३ । ३४ ॥

विसर्जनीयस्य सःस्यात् खरि परे॥

विसर्गको सकार हो खर् प्रत्याहार परे हुए सन्ते । (११४) के उदाहरणमें विसर्गको स हुआ तब चक्रिँस्+त्रायस्व=चक्रिँस्त्रायस्व । अथवा चक्रिंस्+त्रायस्व=चक्रिंस्त्रायस्व । **अप्रशान् किम् ?** प्रशान्का निषेध करनेसे प्रशान्+तनोति=प्रशान्तनोति । यहां प्रशान्कानकार होनेसे यह विधि न लगी । तथा–हन् +ति इसमें नकारसे परे ति अन्तर्गत त् छव् प्रत्याहार है, उससे परे इ अम् है परन्तु हन्का नकार अपदान्त (२०) है, इससे 'न' को 'रु' न होकर 'हन्ति' रूप हुआ ॥ ११५ ॥

(११६) नॄन् पे । ८ । ३ । १० ॥

नॄनित्यस्य रुर्वा पे ॥

नॄन् शब्दके नकारके स्थानमें विकल्प करके रु (र्) हो पकार परे हुए सन्ते । यथा-नॄन्+पाहि=नॄर् +पाहि= (१०९) से नॄँर् +पाहि, अथवा (११०) से नॄंर् +पाहि (१११) से नॄँः+पाहि' अथवा नॄंः पाहि हुआ, और जब यह सूत्र न लगा तो 'नॄन्पाहि'रूप हुआ ॥ ११६॥

(११७) कुप्वोः ≍क ≍पौ च । ८ । ३ । ३७॥

कवर्गे पवर्गे च विसर्गस्य ≍क ≍पौ स्तः । चाद्विसर्गः ॥

कवर्ग पवर्ग परे होनेसे विसर्गके स्थानमें क्रमसे जिह्वामूलीय, उपध्मानीय हो । (च) ग्रहणसे एक पक्षमें विसर्ग भी हो ।

(११६) सूत्रके उदाहरणमें नॄँः+पाहि अथवा नॄंः+पाहि इनके=नॄँ ≍ पाहि अथवा नॄं ≍ पाहि रूप हुए ॥ ११७ ॥

(११८) तस्य परमाम्रेडितम् । ८ । १ । २ ॥

द्विरुक्तस्य परमाम्रेडितं स्यात् ॥

दो बार जो कहा गया है उसके दूसरे अंशकी आम्रेडित संज्ञा हो ॥ ११८ ॥

(११९) कानाम्रेडिते । ८ । ३ । १२॥

कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते । काँस्कान्, कांस्कान् ॥

आम्रेडित (११८) परे हुए संते कान् शब्दके नकारके स्थानमें रु हो ।

यथा-कान्+कान् इसमें आम्रेडित परे रहते पहले कान्के नकारको रु ( ) हुआ, कार्+कान् (१०९) से काँर् +कान् अथवा कांर्+कान् (११०) फिर (१११) से रकारको

---

१ अत्र सूत्रे "खरि" इति संबध्यते, खरसंबांधिनीत्यर्थः । तेन क-ख-प-फेष्वेवायं विधिः प्रवर्तते । ततश्च 'रामो गच्छति इत्यादौ नापत्तिरिति बोध्यम् ।

विसर्ग हुआ तब काँः+कान् अथवा कांः+कान् रूप हुए फिर ' सम्पुंकानां (११२) ' से विसर्गको सकार हुआ तब काँस्कान् अथवा कांस्कान् यह रूप बने ॥ ११९ ॥

(१२०) छे च । ६ । १ । ७३ ॥

ह्रस्वस्य छे तुक् ॥

ह्रस्वसे परे छकार हो तो ह्रस्व स्वरको तुक्का आगम हो। यथा–शिव+छाया इसमें अन्तर्गत अकारसे परे छ् है तो तुक्में उक्की इत्संज्ञा होकर ' त्' शेष रहा (१०३) सूत्रसे अकारके अन्तमें त् हुआ शिव् +अत्+छाया तब शिवद् (८२)+छाया, फिर शिवज् (७६) + छाया=शिवच् (९०)+छाया=शिवच्छाया ॥ १२० ॥

(१२१) पदान्ताद्वा । ६ । १ । ७६ ॥

दीर्घात्पदान्ताच्छे तुग् वा ॥

छकार परे रहते पदान्त दीर्घस्वरको विकल्प करके तुक्का आगम हो । यथा–लक्ष्मी+छाया=लक्ष्मीत् +छाया, लक्ष्मीद् (८२)+छाया। लक्ष्मीज् (७६) छाया लक्ष्मीच् (९०)+छाया=लक्ष्मीच्छाया; तुक्का आगम न किया तो लक्ष्मीछाया रूप हुआ ॥ १२१ ॥

॥ इति हल्सन्धिः ॥

अथ विसर्गसन्धिः ।



(१२२) विसर्जनीयस्य सः । ८ । ३ । ३४ ॥

खरि ॥

विसर्गको सकार हो खर् प्रत्याहार परे हुए संते । (११९ सूत्र पुनः आया) यथा विष्णुः +त्राता इसमें त्रमें तकार खर् है तो विष्णुस्+त्राता=विष्णुस्त्राता ॥ १२२ ॥

(१२३) वा शरि । ८ । ३ । ३६ ॥

शरि विसर्गस्य विसर्गो वा ॥

शर् प्रत्याहार परे हुए सन्ते विसर्गको विसर्ग ही विकल्प करके हो। यथा–हरिः+शेते इसमें शेतेका शकार शर् प्रत्याहारका है, तो हरिः शेते, अथवा (११९) से विसर्गको खर् प्रत्याहार परे होनेसे स् हुआ तब हरिस्+शेते हुआ तब (७६) से स्को श् होकर हरिश्+शेते=हरिश्शेते सिद्ध हुआ ॥ १२३ ॥

---

१ ह्रस्वस्य पिति कृति तुगित्यस्मात् ह्रस्वस्येति । तुगागमो वोध्यः ।

(१२४) ससजुषो रुः । ८ । २ । ६६ ॥

पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः स्यात् ॥

(२०) पदान्तके सकारको और सजुष् शब्दके सकारको रु (र्) हो । यथा शिवस्+अर्च्यः=शिव+रु+अर्च्यः ॥ १२४ ॥

(१२५) अतो रोरप्लुतादप्लुते । ६ । १ । ११३ ॥

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति ॥

अप्लुत–(९) अकारसे परे रुके[1] स्थानमें उकार हो अप्लुत अकार पर हो तो। यथा–(१२४) उदाहरणमें शिव+र्+अर्च्यः इसमें वकारके अन्तर्गत अप्लुत अकारसे परे रु है उससे आगे अप्लुत अकार है तो र्के स्थानमें ' उ ' हुआ तब शिव+उ+अर्च्यः हुआ. तब (३५) से अ और उके स्थानमें गुण होकर शिव्+ओ+अर्च्यः फिर (९६) से शिवो+ऽर्च्यः=शिवोऽर्च्यः सिद्ध हुआ. (पूर्वत्रा० से रुके प्रकरणमें अनुस्वार और अनुनासिक न हुए) ॥ १२५ ॥

(१२६) हशि च । ६ । १ । ११४ ॥

अप्लुतात् अतः परस्य रोः उः स्यात् हशि परे ॥

अप्लुत अत्से परे रुको उकार हो हश् प्रत्याहार परे रहते भी। यथा–शिवस्+वन्द्यः इसमें प्रथम सकारके स्थानमें (१२४) से रु हुआ उकार चला गया तब शिव+र्+वन्द्यः। शिवशब्दके वकारके अन्तर्गत अकार अप्लुत है उससे परे रु है उससे परे वन्द्यः का वकार हश् प्रत्याहारके अंतर्गत है, तब रुके स्थानमें (उ) हुआ, शिव+उ+वन्द्यः तब (३५) से गुण हुआ तो शिव्+ओ+वंद्यः शिवोवन्द्यः हुआ ॥ १२६ ॥

(१२७) भो भगोअघोअपूर्वस्य योऽशि । ८ । ३ । १७ ॥

एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशोऽशि । देवा इह, देवायिह । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः । तेषां रोर्यत्वे कृते–

भोस् भगोस् अघोस् यह (६६) सकारान्त निपात तथा अ (१७) जिसके पूर्व होय ऐसे रुंको[3] य् आदेश हो, यथा–देवास्+इह (१२४) देवा+रु+इह (१२७) से देवाय्+इह=देवायिह अथवा (३८) से यकारका लोप होकर ' देवा इह ' हुआ। भोस् भगोस् अघोस् इनके सकारको (१२७) से यकार करनेपर–॥ १२७ ॥

(१२८) हलि सर्वेषाम् । ८ । ३ । २२ ॥

भोभगोअघोअपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि ॥

सब वैयाकरणोंके मतमें यकारसे पूर्व भोस् भगोस् अघोस् अथवा अवर्ण (१७) रहै और उसके आगे हल् प्रत्याहार हो तो यकारका लोप हो. यथा–भोस्+देवाः (१२४) से

---

१ उकारानुबन्धरेफको । २ उकारानुबन्धरेफको । ३ उकारानुबन्ध रेफको ।

सकारके स्थानमें 'रु' (१२७) रुके स्थानमें 'य्' होनेपर भोय्+देवाः रूप हुआ फिर (१२८) सूत्र लगा तो यकारसे पूर्व भो और उससे आगे हल्का दकार होनेसे यकारका लोप होकर भो+देवाः=भो देवाः हुआ। इसी प्रकार भगोस्+नमस्ते=भगो रु (१२४) नमस्ते=भगो+ (१२७) य्+नमस्ते भगो (१२८)+नमस्ते=भगो नमस्ते। इसी प्रकार अघोस्+याहि=अघो रु (१२४)+याहि=अघोय् (१२७) याहि=अघो (१२८)+ याहि=अघो याहि ॥ १२८ ॥

(१२९) रोऽसुपि। ८। २। ६९॥

अह्नो रेफादेशो न तु सुपि॥

अहन् शब्दको रेफ आदेश हो, सुप् परे हो तो न हो अर्थात् अहन् शब्दसे परे सुप् (१३७) विभक्तिका प्रत्यय न हो तो नकारके स्थानमें रेफ आदेश हो। यथा-अहन्+ अहः=नकारके स्थानमें (र्) हुआ तो अहर्+अहः=अहरहः। अहन्+गणः='न्' के स्थानमें र् होनेसे अहर्+गणः=अहर्गणः ॥ १२९ ॥

(१३०) रो रि। ८। ३। १४॥

रेफस्य रेफे परे लोपः॥

रेफसे परे रेफ हो तो रेफका लोप हो। यथा-पुनर्+रमते=पुन+रमते ॥ १३० ॥

(१३१) ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः। ६। ३। १११॥

ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः। पुना रमते, हरी रम्यः, शम्भू राजते। अणः किम्? तृढः। वृढः। मनस्+रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे रोरीति रेफलोपे च प्राप्ते।

यदि ढकार वा रेफके लोपका निमित्त क्रमसे ढकार अथवा रेफ (१३०, ९८८) परे हो तो उससे पहले अण्को दीर्घ हो। जो कि (१३०) के उदाहरणमें रेफका लोप करके पुन+रमते रूप किया था सो उसमें लोप पानेवाले रेफसे पूर्व नकारके अन्तर्गत 'अ' अण् है उसे दीर्घ होकर पुना+रमते=पुना रमते सिद्ध हुआ। इसी प्रकार हरिस्+रम्यः=हरिर् (१२४)+रम्यः+हरि (१३०) रम्यः होकर (१३१) सूत्र लगकर रिकारके अन्तर्गत इकारको दीर्घ होकर हरी रम्यः हुआ। इसी प्रकार शम्भुस्+राजते=शम्भुर्+ (१२४)+ राजते=शम्भु (१३०)+राजते=शम्भू (१३१) राजते शम्भू राजते। अण् कहनेका तात्पर्य यह है कि (अ इ उ) के सिवाय और को दीर्घ न हो। यथा तृह्+तस् में (२७६) से हकारके स्थानमें ढ् होकर तृढ्+तस् हुआ तो (९८७) से त्के स्थानमें ध् होकर तृढ्+धस् हुआ. फिर (७८) से के ध् के स्थानमें ढ् हुआ तब तृढ्+ढस् हुआ फिर (९८८) से प्रथम ढकारका लोप हुआ तब तृ+ढस्=तृढस्=तृढः रूप सिद्ध हुआ। इसमें तृ अन्तर्गत ऋकार, लोपके निमित्त ढकारसे पूर्व है, परन्तु अण् न होनेसे उसे (१३१) सूत्र लगकर दीर्घ न हुआ॥

---

१ ढ-रेफके लोपका निमित्त ढ-रेफ परे रहते पूर्व अण्को दीर्घ हो।

इसी प्रकार ' वृढः ' रूप सिद्ध हुआ । इसमें भी लोप निमित्त ढकारके पूर्व ऋको दीर्घ न हुआ ॥ मनस्+रथः इस उदाहरणमें सकारके स्थानमें (१२४) से रुत्व हुआ फिर (१२६) से रुको उकार फिर (१३०) से रेफका लोप प्राप्त हुआ तो ॥ १३१ ॥

(१३२) विप्रँतिषेधे पॅरं कार्यम् । १ । ४ । २ ॥

तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात् ॥

बराबर बलवाले सूत्रोंके विरोधमें अष्टाध्यायीके क्रमानुसार जो पर हो वह कार्य हो । (१२६) सूत्रसे जो उत्व प्राप्त हुआ है वह अष्टाध्यायीके छठे अध्यायका सूत्र है और रुके लोप (१३०) का आठवें अध्यायका है तो पर कार्य होना चाहिये तथापि (३९) सूत्रसे (१३०) सूत्र असिद्ध है तो उसकी कही विधि नहीं लगती तो (१२६) से उकार ही हुआ तब मन+उ+रथः (३९) सूत्रसे गुण होकर ' ओ ' हुआ तो मन्+ओ+रथः= मनोरथः हुआ ॥ १३२ ॥

(१३३) एतत्तँदोः सुँलोपोऽकोँरनञ्समाँसे हॅलि । ६ । १ । १३२ ॥

अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्समासे ॥

ककाररहित एतद् शब्द और तद् शब्दकी प्रथमा विभक्ति सु (११७) का लोप हो हल् प्रत्याहार परे रहते परन्तु नञ् (१०१०) समासमें लोप न हो । यथा—एष+सु+विष्णुः=(सु परे होनेसे २१३ और ३३८ सूत्रसे एतद्का रूप एष हुआ है) एष+सु विष्णुः=एष विष्णुः ।

इसी प्रकार स+सु+शम्भुः (२१३, ३३८ सूत्रके तद्के स्थानमें स हुआ है) स+सु+शम्भुः=स शम्भुः । **अकोः किम्** ? ककाररहित क्यों कहा ? इसका आशय यह कि, ककारसहित होनेमें यह विधि नहीं लगती; यथा—एषक+सु+रुद्रः=एषक+स् (३६) + रुद्रः= एषक+रु (१२४)+रुद्रः=एषक+उ (१२६)+रुद्रः=एषको (३९)+रुद्रः=एषको रुद्रः । **अनञ्समासे किम्** ? नञ्समासका निषेध क्यों किया ? तात्पर्य यह कि नञ्समासमें यह विधि नहीं लगती. यथा—असस+सु+शिवः (यहां नञ्समास है.) असस+स्(३६)+शिवः= असस+र् (१२४)+शिवः=अससः (१११)+शिवः=असस+ (१२२) स्+शिवः=असस+ (७६) श्+शिवः=अससश्शिवः सिद्ध हुआ । **हलि किम्** ? हल् कहनेका कारण यह है कि, विना हल् परे हुए यह विधि नहीं लगती, यथा—एतद्+सु+अत्र=एष (३३८)+स्+(३६) अत्र=एष+रु (१२४)+अत्र=एष+उ (१२९)+अत्र=एष्+ओ (३९)+अत्र=एष+ ओऽत्र (९६) एषोऽत्र ॥ १३३ ॥

(१३४) सोँऽचिँ लोपेँ चेत् पादपूरणम् । ६ । १ । १३४ ॥

---

१ अन्यत्रान्यत्र चरितार्थयोः शास्त्रयोरेकत्र लक्ष्ये युगपत् समावेशस्तुल्यबलविरोधः ।
२ विसर्ग पक्षमें ' अससः शिवः ' ऐसा रूप भी जानो ।

स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत ॥

सस् (तद्) शब्दकी प्रथमा विभक्ति सुसे परे अच् हो और श्लोक अथवा वेदमंत्रका चरण ठीक न बैठे और सकारके लोपसे ठीक हो जाय तो उस सस्के सुका लोप हो। यथा- 'सस् इमाम विड्ढि प्रभृतिम् य ईशिषे ' इसमें सकारके आगे स् है वह प्रथमा विभक्तिका सु है, यदि इसका लोप न किया जाय तो एक चरण द्वादश अक्षरका नहीं बन सकता क्योंकि, इस प्रयोगमें द्वादश अक्षर हैं तब स् का लोप करके सके अन्तर्गत अकार और इमाम् की इको (३९) गुण करके ' सेमाम विड्ढि प्रभृतिम् य ईशिषे ' यह द्वादश अक्षरका पाद हुआ। इसी प्रकार ' सस् एष दाशरथी रामः ' इसमें स् का लोप कर, स के अन्तर्गत अ और एषके स्थानमें (४१) वृद्धि ऐ होकर नौ अक्षरके स्थानमें आठ अक्षर हो गये (सैष दाशरथी रामः) यह श्लोकका चौथा चरण सिद्ध हुआ ॥ १३४ ॥

इति विसर्गसंधिः ॥

अथ षड्लिङ्गाः ।

(१३५) अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् । १ । २ । ४५ ॥

धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात् ॥

धातु (४९) प्रत्यय (१३९) और प्रत्ययान्तको छोडकर अर्थवाले शब्दोंकी प्रातिपदिक संज्ञा हो ॥ १३५ ॥

(१३६) कृत्तद्धितसमासाश्च । १ । २ । ४६ ॥

कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः ॥

कृदन्त और तद्धितप्रत्ययान्त और समास इनकी भी प्रातिपदिक संज्ञा हो ॥ १३६ ॥

(१३७) स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् । ४ । १ । २॥

इन इक्कीस प्रत्ययोंका नाम सुप् प्रत्याहार है।

---

१ ' सस् ' इसके सुका लोप हो अच् परे रहते, लोप होने पर ही पादकी पूर्ति हो तो।

२ सेमाम विड्ढि प्रभृतिं य ईशिषे यहाँ वेद मन्त्रमें जगती छंदका बारह अक्षरका चरण और " सैष दाशरथी रामः " इस लौकिक श्लोकमें अनुष्टुप् छन्दका आठ अक्षरका चरण लोप होनेपर ही पूरा होता है।

विभक्ति ।	एकवच.	द्विवच.	बहुवचन.	शब्दोंमें लगकर नीचे लिखा रूप होता है,		
प्रथमा ।	सु	औ	जस्	स् (३६, ७)	और	अस् (१४८, ७)
द्वितीया ।	अम्	औट्	शस्	अम्	औ	असँ (१९९, ७)
तृतीया ।	टा	भ्याम्	भिस्	आ (१४८, ७)	भ्याम्	भिस् अथवा भिः
चतुर्थी ।	ङे	भ्याम्	भ्यस्	ए (१९९, ७)	भ्याम्	भ्यस् अ० भ्यः
पञ्चमी ।	ङसि	भ्याम्	भ्यस्	अस् (१९९, ७,	भ्याम्	भ्यस् अ० भ्यः
षष्ठी ।	ङस्	ओस्	आम्	अस् (१९९, ७)	ओस्	आम्
सप्तमी ।	ङि	ओस्	सुप्	इ (१९९, ७,)	ओस्	सु(९, ७)॥१३७

(१३८) ङ्याप्प्रातिपदिकात् । ४ । १ । १ ॥

यह अधिकारसूत्र है (१४०) सूत्रमें अर्थ देखो ॥ १३८ ॥

(१३९) प्रत्ययः । ३ । १ । १ ॥

यह अधिकारसूत्र है, आगे इसका काम सर्वत्र होगा । जो प्रकृतिके अथवा अपने अर्थको कहै उसे ' प्रत्यय ' कहते हैं, जिससे प्रत्यय किया जाय उसे ' प्रकृति ' कहते हैं ॥ १३९ ॥

(१४०) परश्च । ३ । १ । २ ॥

इत्यधिकृत्य–

ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः ॥

यह भी अधिकार सूत्र है । ङ्यन्त (ङीप् ङीष् अथवा ङीन् जिसके अन्तमें हों) आबन्त (आप्, टाप्, डाप् और चाप् जिसके अन्तमें हों) उससे परे और प्रातिपदिक (१३९) से परे सु (१३७) इत्यादि प्रत्यय हों । यह तीनों अधिकार सूत्रोंको मिलाकर " स्वौजस् "– इस सूत्रका अर्थ हुआ ॥ १४० ॥

(१४१) सुपः । १ । ४ । १०३ ॥

सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि स्युः ॥

सुप् प्रत्याहारके जो तीन तीन भाग हैं वह क्रमसे एकवचन द्विवचन बहुवचन संज्ञावाले हों । यथा–सु एकवचन, औ द्विवचन और जस् बहुवचन है ॥ १४१ ॥

(१४२) द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने । १ । ४ । २२ ॥

द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः ॥

दोकी अपेक्षामें द्विवचन और एककी अपेक्षामें एकवचन हो ॥ १४२ ॥

(१४३) बहुषु बहुवचनम् । १ । ४ । २१ ॥

बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात् ॥

बहुतकी विवक्षामें बहुवचन हो ॥ १४३ ॥

---

१ ' स्वदेशे वाक्यार्थशून्यत्वे सति परदेशे वाक्यार्थबोधजनकत्वम् ' अधिकारत्वम् ।

(१४४) विरामोऽवसानम् । १ । ४ । ११० ॥

वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात् ॥

वर्णोंके अभावकी अवसान संज्ञा है । १३५, १३६) सूत्रसे रामशब्दकी प्रातिपदिक संज्ञा हुई (१३८, १३९, १४०) सूत्रसे राम शब्दके आगे सुप् प्रत्याहारकी सातों विभक्तियां आईं, उनमें एक रामकी विवक्षामें (१४२) सूत्रसे राम शब्दके आगे सु प्रत्यय लानेसे राम+सु हुआ (३६) सूत्रसे सुके अन्तर्गत उकारकी इत्संज्ञा हुई (७) से उसका लोप हुआ, तब राम+स् हुआ, (२०) से स् पदान्त होनेसे (१२४) से सकारके स्थानमें रु आदेश हुआ, तब राम+रु हुआ इससे रुके अन्तर्गत उकारकी (३६) से इत्संज्ञा होकर (७) से लोप हुआ राम+र् रहा तब (१४४) से र्कारके आगे अवसान है तो (१११) से रकारको विसर्ग होकर राम+:=रामः प्रथमाविभक्तिका एकवचन सिद्ध हुआ. अर्थ–एक राम ॥ १४४ ॥

(१४५) सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ । १ । २ । ६४ ॥

एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते ॥

एकविभक्तिमें जितने समान रूप देखे जाँय उनमें एक ही शेष रहे, औरोंका लोप हो । दो रामकी विवक्षा होनेमें राम राम (१४२) ऐसी स्थिति हुई परन्तु (१४५) से एक ही राम शब्द रहकर उसके आगे द्विवचनका ' औ ' प्रत्यय आया । राम+औ (४१) से मकारके अन्तर्गत अकार और औ के स्थानमें वृद्धि प्राप्त थी परन्तु –॥ १४५ ॥

(१४६) प्रथमयोः पूर्वसवर्णः । ६ । १ । १०२ ॥

अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात् ॥

अक्से प्रथमाद्वितीयासम्बंधी अच् परे हुए संते पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो । यहां प्रथमासम्बन्धी अच् परे होनेसे मके अकारको दीर्घकी प्राप्ति हुई, परन्तु ॥ १४६ ॥

---

१ जिस वर्णके उच्चारणके बाद अन्य वर्णका उच्चारण नहीं होता उस अन्त्य वर्णका नाम अवसान है ।

२ सम्पूर्ण शब्दोंमें दो पक्ष हुआ करते हैं उनमें एक व्युत्पत्तिपक्ष दूसरा अव्युत्पत्तिपक्ष, सो यदि राम शब्दमें ' रमु क्रीडायाम् ' धातुसे घञ्प्रत्यय करके ' रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः '–इस प्रकार व्युत्पत्ति करके व्युत्पत्तिपक्ष किया जाय तो (१३६) से प्रातिपदिक संज्ञा होगी और यदि राम ऐसा किसी पुरुष विशेषका नाम है तो (१३५) से प्रातिपदिकसंज्ञा होगी । सब शब्दोंमें यही क्रम जानना चाहिये.

३ यहां ' एक ' से यावत् विभक्तियोंसे मतलब है और ' विभक्तौ ' पदको विषयसप्तमी समझना चाहिये । इससे ' यावत् विभक्तियोंके विषयमें ' इसका अर्थ होता है । अतएव परिच्छेत्तृ और जननी वाचक मातृशब्दोंका एकशेष नहीं होता ।

४ " यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी " इति न्यायोऽत्र बोध्यः ।

(१४७) नादिचि। ६।१।१०४॥

आदिचि न पूर्वसवर्णदीर्घः॥

अवर्णसे इच् परे हुए सन्ते पूर्वसवर्ण दीर्घ न हो। जब दीर्घ न हुआ तो (४१) से वृद्धि होकर राम+औ=रामौ यह प्रथमाका द्विवचन सिद्ध हुआ। अर्थ–दो राम। बहुवचनकी विवक्षामें दशबीस राम कहनेमें आते परन्तु (१४९) से एक राम रहकर उसमें आगे बहुवचनका 'जस्' प्रत्यय किया यथा राम+जस्॥ १४७॥

(१४८) चुटू। १।३।७॥

प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः॥

प्रत्ययके आदिके चवर्ग टवर्ग इत्संज्ञवाले हों, 'जस्' प्रत्ययके आदिमें जकार चवर्गका अक्षर है, इसकी इत्संज्ञा होकर (७) से लोप हुआ, तब राम+अस् हुआ॥ १४८॥

(१४९) विभक्तिश्च। १।४।१०४॥

सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः॥

सुप् (१३७) तथा तिङ् (४०८) विभक्तिसंज्ञावाले हों॥ १४९॥

(१५०) न विभक्तौ तुस्माः। १।३।४॥

विभक्तिस्थास्तवर्गसमा नेतः॥

विभक्तिमें स्थित तवर्ग, सकार और मकार इत्सज्ञावाले न हों। राम+अस् यह रूप (१४८) हुआ, इसमें अस्का सकार विभक्तिका होनेसे इसकी इत्संज्ञा न हुई और इसीसे लोप भी न हुआ. और (१४६) से मके अन्तर्गत अ अक्से प्रथमा विभक्तिके अस्का अ अच् परे है तो पूर्वसवर्णदीर्घ 'आ' आदेश होकर रामा+स् हुआ तब (१२४, १११) सके स्थानमें र् होकर उसे विसर्ग होकर प्रथमाका बहुवचन 'रामाः' सिद्ध हुआ। अर्थ–बहुत राम॥ १५०॥

(१५१) एकवचनं सम्बुद्धिः। २।३।४९॥

सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात्॥

सम्बोधनमें प्रथमाके एकवचनकी सम्बुद्धि संज्ञा हो॥ १५१॥

(१५२) यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्। १।४।१३॥

यः प्रत्ययो यस्मात्क्रियते तदादि शब्दस्वरूपं तस्मिन्नङ्गं स्यात्॥

जिस शब्दसे परे जो प्रत्यय किया जाता है वह प्रत्यय जिससे परे रहे उस समुदाय शब्दस्वरूपकी उसी प्रत्ययके परे रहते अंगसंज्ञा हो। यथा–रामशब्दसे 'सु' आया तो सु

---

१ "अपवादे निषिद्धे पुनरुत्सर्गः प्रवर्तते" इति न्यायात्।

२ "जो प्रत्यय जिससे किया जाता है, वह प्रकृतिरूप है आदिमें जिसके ऐसा जो शब्दस्वरूप सो उस प्रत्ययके परे रहते अङ्गसंज्ञक हो"। राम शब्दकी अङ्गसंज्ञा व्यपदेशिवद्भावसे समझनी चाहिये।

प्रत्यय पर रहते रामशब्दकी अंगसंज्ञा हुई कारण कि, राम+सु के मध्यमें और कोई प्रत्यय नहीं है कि उस शब्दसमूहकी सु परे रहते अंगसंज्ञा हो। इसका फल-॥ १९२ ॥

(१९३) एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः । ६ । १ । ६९ ॥

एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्चाङ्गाद्धल्लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत् ।

एङन्त तथा ह्रस्वान्त अङ्ग (१९२) से परे सम्बुद्धि (३९१) का हल् हो तो उसका लोप हो। हे राम+स्=यहां ह्रस्वान्त अङ्ग, रामसे परे सुके स् का सम्बुद्धि होनेसे लोप होकर 'हे राम' सिद्ध हुआ। हे रामौ, हे रामाः, पूर्ववत् समझो। राम+अम् द्वितीयाका एकवचन (९९) सूत्रसे दीर्घता प्राप्त हुई परन्तु-॥ १९३ ॥

(१९४) अमि पूर्वः । ६ । १ । १०७ ॥

अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः ॥

अक् प्रत्याहारसे परे जो अम् सम्बन्धी अच् हो तो पूर्वरूप एकादेश हो। राम+अम्=रामम् द्वितीयाका एकवचन (रामको)। रामौ (४१) द्वितीयाका द्विवचन (दो रामोंको)। राम+शस् द्वितीयाके बहुवचनका प्रत्यय ॥ १९४ ॥

(१९५) लशक्वतद्धिते । १ । ३ । ८ ॥

तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः ॥

तद्धितके प्रत्ययोंको छोडकर प्रत्ययके आदि ल, श और कवर्ग इत्संज्ञावाले हों। राम+शस्+इसमें प्रत्ययके आदिके शकारकी इत्संज्ञा होकर लोप हुआ तब राम+अस्+(१४६) से रामास्-॥ १९९ ॥

(१९६) तस्माच्छसो नः पुंसि । ६ । १ । १०३ ॥

पूर्वसवर्णदीर्घात्परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात्पुंसि ॥

पूर्वसवर्णदीर्घसे परे जो शस्का सकार उसको नकार हो पुँल्लिंगमें। रामास्=रामान्। यहां पूर्वसवर्णदीर्घसे परे शस्का सकार था, उसको नकार हुआ ॥ १९६ ॥

(१९७) अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि । ८ । ४ । २ ॥

अट् कवर्गः पवर्ग आङ् नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासंभवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः समानपदे ॥

अट् प्रत्याहार, कवर्ग, पवर्ग, आङ् (उपसर्ग) नुम्का अनुस्वार यह सब अलग अलग वा मिले हुए रेफ षकार और नकारके बीचमें हों तो भी एकपदमें स्थित रकार षकारसे परे नकारको णकार हो। 'रामान्' इस प्रयोगमें रकारके अन्तर्गत 'आ' अट् प्रत्याहारका है उससे परे मकार पवर्ग है उसके अन्तर्गत आकार अट् है उससे परे नकार है तो र् और नकारके मध्यमें आ-म्-आ अव्यवधानरूप हैं तो व्यवधान होनेसे भी रकारसे परे नकारको णकार पाया, परन्तु-॥ १९७ ॥

(१५८) पदान्तस्य । ८ । ४ । ३७ ॥

नस्य णो न ॥

पदान्त नकारके स्थानमें णकार न हो । रामान्में नकार पदान्त है इससे नकारको णकार न हुआ, ' रामान् ' द्वितीयाका बहुवचन सिद्ध हुआ । अर्थ–बहुत रामोंको । राम+टा तृतीयाके एकवचनका प्रत्यय ॥ १५८ ॥

(१५९) टाङसिङसामिनात्स्याः । ७ । १ । १२ ॥

अदन्ताट्टादीनामिनादयः स्युः ॥

अदन्त अङ्गसे परे टा, ङसि और ङस्को क्रमसे इन, आत्, स्य आदेश हों । राम+इन = (३९) रामेन=(१५७) रामेण, तृतीयाका एकवचन । अर्थ–रामकरके । राम+भ्याम् तृतीयाके द्विवचनका प्रत्यय ॥ १५९ ॥

(१६०) सुपि च । ७ । ३ । १०२ ॥

यञादौ सुपि अतोऽङ्गस्य दीर्घः ।

यञ् आदि सुप् विभक्तिके प्रत्यय अदन्त अङ्गसे परे आवें तो अङ्गके अन्तर्गत अकारको दीर्घ हो । राम अकारान्त शब्दसे परे भ्याम् प्रत्ययका भकार यञ् प्रत्याहारका है तो ' म ' के अन्तर्गत अकारको दीर्घ हुआ तब ' रामाभ्याम् ' सिद्ध हुआ । अर्थ–दो राम करके । राम+भिस् तृतीयाके बहुवचनका प्रत्यय ॥ १६० ॥

(१६१) अतो भिस ऐस् । ७ । १ । ९ ॥

अदन्तात् अङ्गात्परस्य भिस ऐस् स्यात् ॥

अदन्त अङ्गसे भिस् प्रत्यय आवे तो उसके स्थानमें ऐस् आदेश हो । राम+ऐस् (२७) (८८, ९८) रामैः (४१, १२४, १११) तृतीयाका बहुवचन । अर्थ–बहुत रामोंकरके । राम+ङे चतुर्थी विभक्तिके एकवचनका प्रत्यय ॥ १६१ ॥

(१६२) ङेर्यः । ७ । १ । १३ ॥

अतोऽङ्गात्परस्य ङेर्यादेशः स्यात् ॥

अकारान्त अङ्गसे परे ङेके स्थानमें य आदेश हो । यथा–राम+य ॥ १६२ ॥

(१६३) स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ । १ । १ । ५६ ॥

आदेशः स्थानिवत्स्यान्न तु स्थान्यलाश्रयविधौ ॥

---

१ आदेश स्थानीके तुल्य हो–स्थानिवृत्तिधर्मवाला हो–आदेशका स्थानीभूत जो अल् तथा आदेशका स्थानिसंबंधी जो अल् तदाश्रय कार्य कर्तव्य हो तो स्थानिवत् न हो । सुप्त्व धर्म जैसे ए (ङे) आ (टा) आदि अल् में है, वैसे भ्याम् आदि अनल्में भी है, इससे वह अल्मात्रवृत्ति धर्म नहीं है, अतएव स्थानी ङे वृत्ति सुप्त्व धर्मका य आदेशमें अतिदेश होनेसे ' य ' रूप यञादि सुप् परे रहते दीर्घ सिद्ध हुआ ।

आदेश स्थानिवत् हो, परन्तु स्थानीके अवयव अथवा स्थानीरूप अल्के धर्मको स्वीकार कर जहां कार्य किया जाय वहां आदेश स्थानिवत् न हो। यथा+राम+' ङे ' इसमें ङे सुप् है, इसके स्थानमें यकार आदेश सुप्वत् हुआ, राम+य इस प्रयोगमें यको सुप्भाव मानकर (१६०) से मके अन्तर्गत अकारको दीर्घ होकर रामा+य=रामाय रूप हुआ। राम+भ्याम्= रामाभ्याम्, चतुर्थीका द्विवचन। अर्थ- दो रामके निमित्त । राम=भ्यस् चतुर्थीके बहुवचनका प्रत्यय ॥ १६३ ॥

(१६४) बहुवचने झल्येत् । ७ । १ । १०३ ॥

झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः ॥

झलादि बहुवचन सुप् परे हो तो अकारान्त अङ्गको एकार हो । राम्+अ+भ्यस्=राम्+ ए+भ्यस्=रामेभ्यस् (१२४, १११) से रामेभ्यः। **सुपि किम् ?** सुप् ग्रहण क्यों किया ? जो सुप्का ग्रहण न करते तो सुप्के विना भी दूसरे स्थानमें यह विधि लग जाती. यथा- पच+ध्वम्, इसमें ' ध्वम् ' प्रत्यय सुप् नहीं किन्तु तिङ् है, इससे अकारको एकार न होकर 'पचध्वम् ' हुआ। राम+ङसि=राम+आत् (१९९, ९८) ' रामात् ' पंचमीका एक वचन। अर्थ-रामसे ॥ १६४ ॥

(१६५) वाऽवसाने । ८ । ४ । ५६ ॥

अवसाने झलां चरो वा ॥

अवसान हो तो विकल्प करके झलोंको चर् हों। ' रामात् ' प्रयोगमें त्के स्थानमें द् (८२) नित्य ही था परंतु अवसान होनेसे विकल्प करके ' द् ' को ' त् ' हुआ तो 'रामात् और चर् न किया तो ' रामाद् ' हुआ। राम+भ्याम् (१६०) रामाभ्याम्, पञ्चमीका द्विवचन। अर्थ-दो रामोंसे। रामेभ्यः (१६४) पञ्चमीका बहुवचन। अर्थ-बहुतसे रामोंसे। राम+ङस्+(१९९, ९८) स्य=रामस्य, षष्ठीका एकवचन । अर्थ-रामका । राम+ओस् षष्ठीका द्विवचन ॥ १६५ ॥

(१६६) ओसि च । ७ । ३ । १०८ ॥

अतोऽङ्गस्यैकारः ॥

ओस् प्रत्यय परे हो तो अदन्त अङ्गको एकार हो । राम+ओस्=राम्+ए+ओस्=राम्+अय् (२९)+ओस्=रामयोस् (१२४, १११ से रामयोः। अर्थ-दो रामोंका । राम+आम् षष्ठीके बहुवचनका प्रत्यय ॥ १६६ ॥

(१६७) ह्रस्वनद्यापो नुट् । ७ । १ । ५४ ॥

---

१ सुपि च इति दीर्घे कर्तव्ये' सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य ' इति परिभाषा न प्रवर्तते कष्टाय क्रमणे ' इत्यादिनिर्देशात् ।

ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात्परस्यामो नुडागमः ॥

ह्रस्वान्त (९) नद्यन्त (२१९) और आबन्त (१३४२) अङ्गसे परे आम्को नुट्का आगम हो। नुट्मेंसे उकारकी इत्संज्ञा (३६, ७) से होकर लोप हुआ, ट्का (९, ७) से लोप हुआ, शेष ' न् ' रहा सो (१०३) टित् होनेसे आम् के आदिमें हुआ, तब राम+ न्+आम्=राम+नाम् हुआ ॥ १६७ ॥

(१६८) नाँमि । ६ । ४ । ३ ॥

अजन्ताङ्गस्य दीर्घः ॥

नाम् प्रत्यय परे होनेसे अजन्त अङ्गको दीर्घ हो। राम्+अ+नाम्=राम्+आ×नाम्=रामा- नाम्=(१९७) रामाणाम् षष्ठीका बहुवचन। अर्थ–बहुतसे रामोंका। राम=ङि सप्तमी का एकवचन, यहां (१९९, ७) से ङि–के ङकारका लोप हुआ तो राम+इ (३९) से रामे सप्तमीका एकवचन सिद्ध हुआ। अर्थ–राममें । राम+ओस्=रामे=(१६६) ओस्= रामयो (१३९) स्=रामयोः (१२४, १११) सप्तमीका द्विवचन । अर्थ–दो रामोंमें राम+सुप् सप्तमीके बहुवचनका प्रत्यय (९, ७) से सुप्के पकारका लोप हुआ, तब राम+सु (१६४) से मके अकारके स्थानमें ' ए ' हुआ तब रामेसु ॥ १६८ ॥

(१६९) आदेशप्रत्यययोः । ८ । ३ । ५९ ॥

इण्कुभ्यां परस्यापदान्तस्यादेशः प्रत्ययावयवश्च यः सस्तस्य मूर्धन्यादेशः। ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव षः ॥

इण् प्रत्याहार और कवर्गसे परे अपदान्त आदेशरूप सकार वा अपदान्त प्रत्ययका अव- यव सकार आवे तो उसके स्थानमें मूर्द्धन्य आदेश हो। सकारका ईषद्विवृत प्रयत्न है, उसके समान षकार आदेश होकर ' रामेषु ' सिद्ध हुआ। अर्थ–बहुत रामोंमें ॥

इसी प्रकार अकारान्त पुँल्लिंग **कृष्ण मुकुन्द** आदिके रूप जानने ॥ १६९ ॥

(१७०) सर्वादीनि सर्वनामानि । १ । १ । २७ ॥

सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि स्युः ॥

सर्वादि शब्दस्वरूपोंकी सर्वनाम संज्ञा हो । अब सर्वादिगण लिखते हैं–सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम । (सर्व) सम्पूर्ण (विश्व) संसार (उभ) दो (उभय) दो अवयवविशिष्ट (डतर डतम) यह दोनों प्रत्यय हैं, इससे इनके अन्तवाले शब्द लिये जाते हैं, यथा–कतर कतम। (अन्य) दूसरा (अन्यतर) दोमेंसे एक (इतर) दूसरा (त्वत्, त्व) दूसरा (नेम) आधा (सम) सम्पूर्ण ।

पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ॥

पूर्व पर अवर दक्षिण उत्तर अपर अधर यह सात शब्द जो व्यवस्थामें हों और किसीकी संज्ञामें न हों तो सर्वादिगणमें इनका पाठ जानना, अन्यथा नहीं । **स्वमज्ञातिधना-**

ख्यायाम् । स्वशब्दका अर्थ जब आत्मा और आत्मीय हो तो सर्वादिगणमें इसका पाठ जानना । ज्ञाति और धनका अर्थ हो तो सर्वादिगणमें पाठ न जानना । **अन्तरं बहिर्योगोपसंख्यानयोः ।** अन्तर शब्दका अर्थ जो बहिर्योग बाह्य अर्थवाचक और उपसंव्यान (पहरने) का वाचक हो तो सर्वादिगणमें जानना । त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् । (त्यद्) वह (तद्) वह (यद्) जो (एतद्) यह (इदम्) यह (अदस्) वह (एक) एक (द्वि) दो (युष्मद्) तू (अस्मद्) मैं (भवतु) आप (किम्) कौन । इन सबको भी सर्वादिगणमें जानना ।

सर्वनाममें विभक्ति लगानेकी विधि ।

प्रथमा—सर्वः । सर्वौ, रामवत् । सर्व+जस् ॥ १७० ॥

(१७१) जसः शी । ७ । १ । १७ ॥

अदन्तात्सर्वनाम्नो जसः शी स्यात् । अनेकालत्वात्सर्वादेशः । सर्वे ॥

अदन्त सर्वनामसे परे जस्को शी हो । शी अनेकाल् है इस कारण संपूर्ण जस्को हुआ, सर्व+शी (९८)=(१९९, ७) से सर्व+ई (३९) से 'सर्वे' प्रथमाका बहुवचन । द्वितीया—सर्वम् । सर्वौ । सर्वान् । तृतीया—सर्वेण । सर्वाभ्याम् । सर्वैः । चतुर्थी—सर्व+ङे ॥ १७१ ॥

(१७२) सर्वनाम्नः स्मै[1] । ७ । १ । १४ ॥

अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै ॥

अदन्त सर्वनामसे परे ङेके स्थानमें स्मै हो । सर्व+स्मै=सर्वस्मै । सर्वाभ्याम्, सर्वेभ्यः । पंचमी—सर्व+ङस् ॥ १७२ ॥

(१७३) ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ । ७ । १ । १५ ॥

अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्तः ।

अदन्त सर्वनामसे परे ङसि और ङिके स्थानमें क्रमसे स्मात् और स्मिन् आदेश हों । सर्व+स्मात्=सर्वस्मात् । सर्वाभ्याम् । सर्वेभ्यः । षष्ठी—सर्वस्य । सर्वयोः । सर्व+आम् ॥ १७३ ॥

(१७४) आमि सर्वनाम्नः सुट् । ७ । १ । ५२ ॥

अवर्णान्तात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः ॥

अवर्णान्त अङ्गसे परे सर्वनामसे विहित आम्को सुट् हो । सुट्मेंसे (३६, ९, ७) सूत्रसे स् रहा वह (१०३) से आदिमें हुआ तब सर्व+स्+आम्=सर्वसाम् (१६४) सर्वेषाम् (१६९) सप्तमी—सर्व+ङि=स्मिन् (१७३)=सर्वस्मिन् । सर्वयोः । सर्वेषु । एवं

---

[1] 'अदन्तादङ्गात्परस्य सर्वनाम्नो विहितस्य जसः' इत्येवमत्र सूत्राणामर्थः, तेन ये, ते इत्यादौ न दोषः ॥

एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः । इसी प्रकार विश्व आदि अदन्त सर्वनाम (१७०) शब्दोंके रूप जानने । **उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः ।** उभ शब्द नित्य द्विवचनान्त है । उभौ २ । प्रथमा तथा द्वितीयाका द्विवचन । उभाभ्याम् ३ । तृतीया, चतुर्थी तथा पंचमीका द्विवचन । उभयोः २ । षष्ठी तथा सप्तमीका द्विवचन ।

तस्येह पाठोऽकजर्थः । सर्वनामसंज्ञाका एकवचन और बहुवचनमें ही फल है, कारण कि एकवचन और बहुवचनमें ही सर्वनामसंज्ञा प्रयुक्त कार्य होते हैं । जब यह द्विवचन है तो सर्वादि गणमें रखनेका प्रयोजन क्या ? उत्तर–उभशब्दकी टि (९२) के पूर्व सर्वनामका अकच् प्रत्यय (१३२२) होता है । जो उभ सर्वादि गणमें परिगणित न होता तो टिके पूर्व अकच् भी न हो सकता । **डतरडतमौ प्रत्ययौ ।** डतर और डतम प्रत्यय हैं । **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति तदन्ता ग्राह्याः ।** यह जिस शब्दके अन्तमें लगें उसका भी ग्रहण सर्वनामसंज्ञामें हो । इस कारण इन प्रत्ययोंका ग्रहण किया । **नेम इत्यर्धे ।** नेम शब्दका अर्थ आधा है[1] । **समः सर्वपर्यायः तुल्यपर्यायस्तु न, समानामिति ज्ञापकात् ।** सम शब्दका अर्थ सर्ववाचक हो तो उसकी गणना सर्वनाममें करना और तुल्यवाचक हो तो सर्वनाममें गणना न करनी, कारण कि, पाणिनिने तुल्यवाचक इस शब्दकी षष्ठीमें ' समानाम् ' ऐसा उच्चारण किया है । **यथासंख्यमनुदेशः समानाम् ।** और सर्ववाचक सम शब्दकी षष्ठीका बहुवचन ' समेषाम् ' होता है ॥ १७४ ॥

(१७५) पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् । १ । १ । ३४ ॥

एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणसूत्रात्सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात् ॥

पूर्व–(प्रथम पूर्वदिशा पूर्वदिशावर्ती वा) । पर–(परदिशा, परदिशावर्ती) । अवर (पश्चात्‌दिशा, पश्चात्‌दिशावर्ती) दक्षिण–(दक्षिणदिशा, दक्षिणदिशावर्ती) उत्तर–(उत्तरदिशा, उत्तरदिशावर्ती) अपर–(ऊपरकी दिशा वा दूसरी दिशावर्ती) और अधर–(नीचे) इन शब्दोंकी गण (१७०) सूत्रसे व्यवस्थामें और असंज्ञामें सर्वनासंज्ञा सर्वत्र प्राप्त है, सो जस् प्रत्यय परे होनेसे विकल्प करके हो । यथा–पूर्वे (१७१, ३९) सर्वनामसंज्ञामें प्रथमाका बहुवचन । पूर्वाः–रामशब्दके समान, यहां सर्वनाम संज्ञा न हुई । इसी प्रकार ऊपर लिखे दूसरे शब्दोंका रूप जानना । **असंज्ञायां किम् ?** पूर्व आदि शब्दोंकी असंज्ञामें सर्वनामसंज्ञा क्यों कही ? उत्तर,–**उत्तराः कुरवः ।** (उत्तरकुरु देश) यह देशकी

---

१ " प्रत्ययके ग्रहणमें तदन्तका यानी प्रत्ययान्तका ग्रहण होता है " इस परिभाषासे डतर–डतम–प्रत्ययान्त शब्द लिये जाते हैं । कतर कतम यतर यतम ततर ततम एकतर एकतम एते शब्दा ग्राह्याः ।

संज्ञा होनेसे सर्वनामसंज्ञा न हुई, नहीं तो (उत्तरे) होता । **स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था** । इन सातों शब्दोंके अर्थसे अपेक्षित सामान्यविधिके निश्चयको व्यवस्था कहते हैं । **व्यवस्थायां किम् ?** व्यवस्थामें सर्वनामसंज्ञा हो ऐसा क्यों कहा ? **उत्तर—दक्षिणा गाथकाः** । (चतुर गानेवाले) इस उदाहरणमें दक्षिण शब्द व्यवस्थावाचक नहीं इससे सर्वनामसंज्ञा न होकर रामशब्दके समान रूप हुआ ॥ १७५ ॥

(१७६) स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । १ । १ । ३५ ॥

ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा ॥

ज्ञाति और धनको छोडकर अन्य अर्थवाची स्वशब्दकी सर्वनामसंज्ञा सर्वत्र प्राप्त है सो जस्के परे विकल्प करके हो । यथा—' स्वे ' (१७१, ३९) सर्वनाम संज्ञाका रूप । 'स्वाः' विकल्पका रूप सर्वनाम संज्ञा न होनेमें हुआ । **आत्मीया आत्मान इति वा** । आप वा अपना । **ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः । ज्ञातयोऽर्था वा** । ज्ञाति और धन अर्थमें एक ही रूप होता है (स्वाः) ज्ञाति वा धन । यहां सर्वनाम संज्ञा न हुई ॥ १७६ ॥

(१७७) अन्तरं बहिर्योगोपसंख्यानयोः । १ । १ । ३६ ॥

बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा ॥

अन्तर शब्द बाहरके अर्थ वा वस्त्र पहरनेका वाचक हो तो इसकी सर्वत्र सर्वनाम संज्ञा प्राप्त है, परन्तु जस्के परे विकल्प करके हो । यथा—अन्तरे (१७१, ३९)अथवा ' अन्तराः ' रामवत् ॥ १७७ ॥

(१७८) पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा । ७ । १ । १६ ॥

एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्तः ॥

पूर्वादि नौ शब्दोंकी पञ्चमी तथा सप्तमीके प्रत्यय ङसि और ङिके स्थानमें विकल्प करके स्मात्, स्मिन् आदेश हों । यथा—पूर्वस्मात् अथवा पूर्वात् , पंचमीका एकवचन । पूर्वस्मिन् अथवा पूर्वे, सप्तमीका एकवचन । इसी प्रकार दूसरे आठ शब्दोंके रूप जानने । **शेषं सर्ववत्** । शेष सर्वशब्दके रूपवत् जानने ॥ १७८ ॥

(१७९) प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च । १ । १ । ३३ ॥

एते जसि उक्तसंज्ञा वा स्युः ॥

प्रथम चरम तयप्रत्ययान्त शब्द अल्प अर्ध कतिपय और नेम इन शब्दोंके आगे जस् प्रत्यय आवे तो विकल्प करके सर्वनाम संज्ञावाले हों । यथा—प्र० ब० प्रथमे (१७१, ३९)

---

[1] पूर्व आदि सात शब्दोंका दिक्–देश–काल–रूप जो अर्थ, उससे अपेक्ष्यमाण जो अवधिका नियम, सो व्यवस्था कहिये । जैसे–काशी प्रयागात् पूर्वा ।

अथवा प्रथमाः, रामवत्।तयप्रत्ययान्त–द्वितये अथवा द्वितयाः । **शेषं रामवत्** । शेष रूप रामशब्दवत् । नेमे अथवा नेमाः । **शेषं सर्ववत्** । बाकी सर्वशब्दके समान ॥ १७९ ॥

(१८०) तीयस्य ङित्सु वा ।

तीयप्रत्ययान्त (१२६३, १२६४) शब्दोंसे परे ङित् (चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी और सप्तमीके एकवचनके) प्रत्यय आवें तो उनकी विकल्प करके सर्वनामसंज्ञा हो । यथा–द्वितीय+ङे= द्वितीय+स्मै (१७२) द्वितीयस्मै अथवा द्वितीयाय (१६२, १६३, १६०) । इसी प्रकार तृतीयशब्दका रूप जानना । द्वितीय+ङसि=द्वितीय+स्मात् (१७३) द्वितीयस्मात् पंचमीका एकवचन । जब सर्वनामसंज्ञा न हुई तो रामशब्दवत् 'द्वितीयात्' रूप हुआ । षष्ठीके एकवचनमें 'द्वितीयस्य' । षष्ठीका कार्य पुँलिंगके एकवचमें नहीं होता इस कारण 'द्वितीयस्य' हुआ । द्वितीय+ङि=द्वितीय+स्मिन् (१७३) 'द्वितीयस्मिन्' सप्तमीका एकवचन । जब सर्वनामसंज्ञा न हुई तो रामवत् 'द्वितीये' रूप हुआ ॥ १८० ॥

निर्जर (देवता)

प्र० निर्जर+सु=निर्जरः । निर्जर+औ=निर्जरौ । अथवा–

(१८१) जराया जरसन्यतरस्याम् । ७ । २ । १०१ ॥

अजादौ विभक्तौ जराशब्दस्य जरसादेशो वा स्यात् ।

जराशब्दके आगे अजादिविभक्ति आवे तो उसको विकल्प करके जरस् आदेश हो ।

पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च । निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ॥

पदाधिकार और अङ्गाधिकार (१९२) इन दोनोंमें जिस शब्दको जो आदेश होता है वह तदन्तको भी होता है. इस कारण जराशब्दको जो जरस् आदेश होता है वह निर्जरको भी हुआ । प्र०–तो सम्पूर्ण निर्जर शब्दको मेटकर जरस् आदेश होना चाहिये ? उत्तर–जिसके निमित्त सूत्रने कहा है उसीके स्थानमें आदेश हुआ करते हैं, सूत्रमें जरा शब्दको जरस् आदेश कहा है, इस कारण निर्जर शब्दके अवयव जरकोही जरस् हुआ । प्रश्न–निर्जर शब्दमें तो जरा नहीं है किन्तु जर है? उ०–**"एकदेशविकृतमनन्यवत्" इति जरशब्दस्य जरम्** । जो एक देशमें विकारको प्राप्त होता है वह दूसरेके तुल्य नहीं होता; जैसे-पूंछ कटा

---

१ पदाधिकारमें और अङ्गाधिकारमें सूत्र पठित और सूत्र पठितान्तको कार्य होता है । अष्टमाध्यायमें पदाधिकार और छठे तथा सातवें अध्यायमें अङ्गाधिकार होता है ।

२ आदेश निर्दिश्यमान यानी सूत्रमें उच्चार्यमाणको होते है । षष्ठीप्रकृतिजन्यप्राथमिकोपस्थितिविषयत्वं निर्दिश्यमानत्वम् । षष्ठीप्रकृतिः=जराया इत्यत्र जरा इति, तज्जन्या प्राथमिका–शास्त्रान्तरासहकृता उपस्थितिः जराविषयिका न तु निर्जरविषयिका, तस्याः 'पदाङ्गाधिकारे' इति शास्त्रसहकारेण जातत्वादिति जरा इत्यस्यैव स्थाने जरसादेशो भवति न तु निर्जर इति सम्पूर्णस्येति समन्वयः । "सूत्रे यतः षष्ठी विभक्तिरुच्चारिता तन्निर्दिश्यमानम्" इति सरलं लक्षणम् ।

३ " छिन्नपुच्छः श्वा श्वैव भवति न चाश्वो न गर्दभः" इति स्थानिवत्सूत्रे भाष्यम् ।

कुत्ता कुत्ता ही रहता है इससे जरकोही जरस् हुआ । निर्जरस्+औ=निर्जरसौ प्र०-द्विवचन । इस प्रकार अजादिविभक्ति परे रहते एक पक्षमें और हलादि विभक्तिमें रामशब्दके समान जानो॥

आकारान्त **विश्वपा** शब्द ।

विश्वपा+सु=विश्वपाः विश्वपा+औ (१४६) औके स्थानमें 'आ' प्राप्त हुआ ॥ १८१ ॥

(१८२) दीर्घाज्जँसि चँ । ६ । १ । १०५ ॥

दीर्घाज्जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः ॥

दीर्घसे परे जस् प्रत्यय वा इच् प्रत्याहारके अक्षर हों तो पूर्वसवर्णदीर्घ न हो । तब दीर्घ न होकर (४१,) वृद्धि हुई विश्वपा+औ=विश्वपौ, प्रथमाका द्विवचन । विश्वपा+जस्=विश्वपा+अस् (१४, ९९)–विश्वपाः+रामवत् । प्रथमाका बहुवचन । हे विश्वपा+सु=हे विश्वपा+स् हे विश्वपाः । सम्बोधनमें 'विश्वपा' एङन्त; तथा ह्रस्वान्त नहीं है इस कारण स्का लोप (१३३) से न हुआ । हे विश्वपाः, हे विश्वपौ, हे विश्वपाः ॥ द्वितीया । विश्वपाम् । विश्वपौ। विश्वपा+अँसँ ॥ १८२ ॥

(१८३) सुडँनपुंसकस्य । १ । १ । ४३ ॥

स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य ॥

सु औ जस् अम् औट् यह पांच प्रत्यय हैं, नपुसकलिंगको छोड सर्वनामस्थानसंज्ञावाले हों॥ १८३

(१८४) स्वाँदिष्वसर्वनामस्थाँने । १ । ४ । १७ ॥

कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं पदं स्यात् ॥

सर्वनामस्थानके प्रत्ययोंको छोडकर (१८३) सु (१३७) प्रत्ययसे लेकर कप्प्रत्यय तक जितने प्रत्यय अष्टाध्यायीमें मिलते हैं, उनसे पूर्वकी पदसंज्ञा है ॥ १८४ ॥

(१८५) यँचि भम् । १ । ४ । १८ ॥

यादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञं स्यात् ॥

सर्वनामस्थानको छोडकर सुसे लेकर कप्प्रत्ययतक जितने यकारादि, और अजादि स्वादि प्रत्यय हैं तिनसे पहिलेकी भसंज्ञा हो । अब यहां–विश्वपा+अस् इस प्रयोगमें (१८४) से पदसंज्ञा प्राप्त हुई और (१८५) से भसंज्ञा प्राप्त हुई, तो कौनसी हो ? इसपर सूत्र–॥ १८५ ॥

(१८६) आँ कडाँरादेका संज्ञाँ । १ । ४ । १ ॥

इत ऊर्ध्वं 'कडाराः कर्मधारये' इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया । या पराऽनवकाशा च ॥

अष्टाध्यायीके क्रमसे पहले अध्यायके चौथे पादके पहले इस सूत्रसे लेकर (१८६) **कडाराः कर्मधारये** इस सूत्र तक जो एक स्थानमें अनेक संज्ञा प्राप्त हों तो एक ही हो । जो संज्ञा पर हो और जिसके और कहीं होनेका अवकाश न हो, वही हो । जिसकी

अन्य स्थानमें प्राप्ति न हो उसे अनवकाश कहते हैं, यथा—पदसंज्ञाके विषयको त्यागकर भसंज्ञाकी प्राप्ति अन्य स्थानमें नहीं है तो जो सबही स्थानमें पदसंज्ञा हो जाय तो भसंज्ञा कहां होगी, इसे कहीं और तो अवकाश है ही नहीं, तो अच् आदिविभक्ति परे रहते पद-संज्ञाको बाधकर भसंज्ञा (१८९) हुई और हलादि विभक्ति परे रहते पदसंज्ञा जानना चाहिये ॥ १८६ ॥

(१८७) आतो धातोः । ६ । ४ । १४० ॥

आकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः स्यात् । अलोऽन्त्यस्य । विश्वपः ॥

आकारन्त धातु (४९) जिसके अन्तमें है, ऐसे भसंज्ञक (१८९) अङ्ग (१९२) के अन्तका लोप हो। यथा—विश्वपा+अस् इसमें पा आकारान्त धातु है सो जिसके अन्तमें है वह भसंज्ञक अङ्ग विश्वपा है, उसके अन्तके आकारका लोप (२७) से हुआ, तब विश्वप्+अस्—विश्वपस्+ (१२४, १११) विश्वपः, द्वितीयाका बहुवचन । तृ० ए० विश्वपा+टा=विश्वपा=आ (१४८, ७)—विश्वप्+(१८९, १८७, २७) आ=

विश्वपा, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभिः ॥

चतु० ए०—विश्वपा+ङे=विश्वपा+ए (१९९, ७)=विश्वप् (१८९, १८७, २७) ए=

विश्वपे, विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभ्यः ॥

पञ्चमी—विश्वपः (१३७, १९९, ७, १८९, १८७, २७) विश्वपाभ्याम्, विश्वपाभ्यः॥

षष्ठी—विश्वपः (१३७, १९९, ७, १८९, १८७, २७) विश्वपोः (१८९, १८७, २७, १२४, १११) विश्वपाम्.

सप्तमी—विश्वपि (१३७, १९९, ७, १८९, १८७, २७) विश्वपोः। विश्वपासु । **एवं शंखध्मादयः** । इसी प्रकार शंखध्मा आदि शब्दोंके रूप जानने । **धातोः किम् ?** धातुके आकारका लोप हो, यह क्यों कहा ? इसका कारण यह है कि धातुके विना आकारका लोप न हो, यथा—हाहा[२] (गन्धर्व) ।

प्रथमा ।	हाहाः	हाहौ	हाहाः		
द्वितीया ।	हाहाम्	हाहौ	हाहान्		
तृतीया ।	हाहा (आ)	हाहाभ्याम्	हाहाभिः		
चतुर्थी ।	हाहै(वृद्धिः)	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः		
पं०	हाहाः (अस्)	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः		
ष०	हाहाः	हाहौः	हाहाम्		
स०	हाहे (ङि=गुणः)	हाहौः	हाहासु		
सम्बो०	हे हाहाः	हे हाहौ	हे हाहाः		

१ आकारान्त जो धातु, तदन्त जो भसंज्ञक अङ्ग, उसका लोप हो।

२ गन्धर्वविशेषवाचकमव्युत्पन्नं प्रातिपदिकमेतत् । " हाहा हूहूश्चैवमाद्या गन्धर्वास्त्रिदिवौकसाम् " इत्यमरः ।

ह्रस्व इकारान्त हरिशब्द।

प्रथमा–हरि+स्=हरिः (१२४, १११) । हरि+औ हरी (१४६)। हरि+जस् ॥ १८७ ॥

(१८८) जँसि चे । ७ । ३ । १०९ ॥

ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः स्याज्जसि परे।

जस् प्रत्यय परे हुए सन्ते ह्रस्वान्त अंगको गुण हो। हरि+जस्=हरि+अस् (९, १९०, १४८, ७) हरे (१८८)+अस्=हरयः–(२९, १२४, १११) । सम्बोधन हे हरि+सु ॥ १८८ ॥

(१८९) ह्रस्वस्य गुणः । ७ । ३ । १०८॥

ह्रस्वस्य गुणः स्यात् सम्बुद्धौ ॥

सम्बोधनका १ वचन परे हो तो ह्रस्वान्त अंगको गुण हो। हे हरे (१९३) हे हरी। हे हरयः। द्वितीया–हरिम्। हरी। हरीन्। तृतीया–हरि+टा ॥ १८९ ॥

(१९०) शेषो घ्यसखि । १ । ४ । ७ ॥

अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञं स्यात् ॥

नदीसंज्ञासे रहित ह्रस्व इ और उ अन्तवाले शब्दोंकी घि संज्ञा हो सखिशब्दको छोडकर ॥ १९० ॥

(१९१) आङो नाऽस्त्रियाम् । ७ । ३ । १२० ॥

घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम्। आङिति टासंज्ञा ॥

स्त्रीलिङ्ग शब्दको छोडकर घिसंज्ञक प्रातिपदिक (१३९, १३६) से परे जो आङ् (टा) उसके स्थानमें ना आदेश हो। हरि+टा–(१४८) हरि+आ (१९०) से घिसंज्ञा हुई तब हरि+ना (१९१) हरि+णा (१९७) हरिणा। हरिभ्याम्। हरिभिः (१२४, १११) चतुर्थी–हरि+ङे+हरि+ए (१९९, ७) ॥ १९१ ॥

(१९२) घेर्ङिति । ७ । ३ । १११ ॥

घिसंज्ञकस्य ङिति सुपि गुणः ॥

ङित् सुप् (ङे ङसि ङस् ङि) परे रहते घि (१९०) संज्ञक अङ्गको गुण हो। हर्+ए+ए=हरय् (२९)+ए=हरये। हरिभ्याम्। हरिभ्यः ॥

पञ्चमी–हरि+ङसि=हरि+अस् (१९९, ३६, ७) इसकी (१९०) से घिसंज्ञा है हरे, (१९२)+अस्+हरे+अः (१२४, १११) ॥ १९२ ॥

(१९३) ङसिङसोश्च । ६ । १ । ११० ॥

एङो ङसिङसोरति पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् ॥

एङ्से परे ङसि ङस् सम्बन्धी अकार परे हो तो पूर्वरूप एकादेश हो । हरे+अः । हरेः । हरिभ्याम् । हरिभ्यः ॥

षष्ठी–हरेः (पञ्चमीके समान) हरि+ओस् (९, १९०, २१) हरय्+ओस्=हर्योस्= हर्योः (१३४, १११) अथवा (७३) से यकारको द्वित्व होकर हर्य्योः । हरि+आम् (१६८, १६७, १९७)=हरीणाम् ॥

सप्तमी–हरि+ङि (१९२) से गुण प्राप्त हुआ परन्तु ॥ १९३ ॥

(१९४) अच्च घेः । ७ । ३ । ११९ ॥

इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत् घेरत ॥

इकार उकारसे परे ङिके स्थानमें औकार हो, तथा घि (१९०) संज्ञक अङ्गको अकार हो । हरि+औ=हर+औ=हरौ । हयोः वा हर्य्योः । हरिषु (१६९) । **एवं कव्यादयः** । इसी प्रकार कवि रवि अग्नि आदि शब्दोंके रूप जानने ॥ **सखि** शब्दकी घि संज्ञा नहीं है, उसके रूप । प्रथमा–सखि+सु ॥ १९४ ॥

(१९५) अनङ् सौ । ७ । १ । ९३ ॥

सख्युरंगस्यानङादेशोऽसंबुद्धौ सौ ॥

संबुद्धि भिन्न सुप्रत्यय परे हुए सन्ते सखिरूप अङ्ग (१९२) को अनङ् (९८, ९९) आदेश हो । अनङ्में अङ्की (३६) से इत्संज्ञा है (७) से लोप होकर अन् शेष रहा । सो (९८, ९९) से सखिशब्दके खिके अन्तर्गत इकारके स्थानमें हुआ सख्+अन्+स् (२६, ७) ॥ १९५ ॥

(१९६) अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा । १ । १ । ६५ ॥

अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात् ॥

अन्त्य अल्से पूर्ववर्णकी उपधा संज्ञा हो । सख् अन्में अन्त्य अल् नकार है, उसके पूर्व अकारकी उपधा संज्ञा हुई ॥ १९६ ॥

(१९७) सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ । ६ । ४ । ८ ॥

नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने ॥

नान्त अङ्गकी उपधाको दीर्घ हो सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हुए सन्ते । सख् अन्+स्= सख्+आन् (१९७)+स्=सखान्+स् ॥ १९७ ॥

(१९८) अपृक्त एकाल् प्रत्ययः । १ । २ । ४१ ॥

एकाल् प्रत्ययो यः सोऽपृक्तसंज्ञः स्यात् ॥

एक अल् (वर्ण) रूप जो प्रत्यय अर्थात् जिस प्रत्ययमें एक ही अल् है उसकी अपृक्त संज्ञा हो । सखान्+स् यहां सकारकी अपृक्तसंज्ञा हुई ॥ १९८ ॥

(१९९) हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् । ६ । १ । ६८ ॥

हलन्तात्परं दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल्लुप्यते ॥

हलन्तशब्दसे परे सु, ति, सि तथा दीर्घ ङी (२९६) और आप् (टाप् १३४२ प्रभृति) यह स्त्रीलिङ्गके प्रत्यय जिसके अन्तमें हों उन शब्दोंसे परे सु इत्यादि प्रत्ययोंका जो अपृक्त (१९८) हल् आवे तो उसका लोप हो । सखान्+स् इस प्रयोगमें नकार हल्से परे स् सुका अपृक्त हल् है इसका लोप होकर ' सखान् ' रूप रहा ॥ १९९ ॥

(२००) न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य । ८ । २ । ७ ॥

प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तस्य नस्य लोपः स्यात् ॥

प्रातिपदिकसंज्ञावाले पदके अन्तके नकारका लोप हो । सखान् यह (१३९, १३६) से प्रातिपदिकसंज्ञक पद है, इसके नकारका लोप हुआ । तब ' सखा ' यह प्रथमाका एकवचन सिद्ध हुआ । सखि+औ प्रथमाका द्विवचन ॥ २०० ॥

(२०१) सख्युरसम्बुद्धौ । ७ । १ । ९२ ॥

सख्युरङ्गात्परं संबुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत्स्यात् ॥

सखि अंगसे परे सम्बुद्धि (१९१) रहित सर्वनामस्थान (१८३) प्रत्यय आवे तो वह णित्के तुल्य हो अर्थात् इत्संज्ञक णकारवालेको मानकर जो कार्य होता है सो इसको मानकर भी हो । सखि+औ इसमें औ प्रत्यय सर्वनामस्थान है, यह णित्के तुल्य हुआ ॥ २०१ ॥

(२०२) अचो ञ्णिति । ७ । २ । ११५ ॥

अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्ञिति णिति च प्रत्यये परे ॥

ञकार अथवा णकार जिसका इत्संज्ञक हो उस प्रत्ययके परे रहते अजन्त अंगको वृद्धि हो । सखि+औ वृद्धि होनेसे ' ऐ ' हुई तब सखै+औ=सखाय् (२९)+औ=सखायौ ।

---

१ हलन्तसे परे सु-ति-सि-एतत् सम्बन्धी अपृक्त हल्का लोप हो और दीर्घ जो ङी-आप् तदन्तसे परे 'सु' संबन्धी अपृक्त हल्का लोप हो । यह सिद्धान्त अर्थ हुआ ।

२ ' प्रत्ययलक्षणम् ' इति सूत्रं स्मर्तव्यम् ।

प्रथमाका द्विवचन । प्र० ब० सखि+जस्=सखि अस् (१४८) फिर (२०१, २०२) से सखै+अस्=सखाय् (२९) अस्=सखायः (१२४, १११) हुआ ॥

संबोधन—हे सखे (१८९, १५२) हे सखायौ, हे सखायः ।

द्वितीया—सखायम् (२०१, २०२, २९ सखायौ, सखीन् (१४६, १५६)

तृतीया—सख्या (२१) सखिभ्याम् सखिभिः ।

चतुर्थी—सख्ये (२१) सखिभ्याम्, सखिभ्यः ।

पञ्चमी—सखि+ङसि+सखि+अस् (१५५, ७) सख्य् (२१)+अः (१२४, १११)॥ २०२ ॥

(२०३) ख्यत्यात्परस्य । ६ । १ । ११२ ॥

खितिशब्दाभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उः ।

जिनको यण् (२१) आदेश किया गया है, ऐसे ह्रस्व खि, ति, और दीर्घ खी ती शब्द उनसे परे जो ङसि और ङस्का अकार तिसको उ हो ।

सख्य्+उ=सख्युः सखिभ्याम् सखिभ्यः

षष्ठी—सख्य्+उः=सख्युः सख्योः सखीनाम् (१६८, १६७)

सप्तमी—सखि+ङि—॥ २०३ ॥

(२०४) औत् । ७ । ३ । ११८॥

इतः परस्य ङेरौत् ॥

ह्रस्व इकारान्त अङ्गसे परे ङि प्रत्यय आवे तो उसके स्थानमें औकार हो । सखि+औ= सख्य् (२१) औ+सख्यौ । सखिषु ॥ २०४ ॥

(२०५) पतिः समास एव । १ । ४ । ८॥

पतिशब्दः समासे एव घिसंज्ञः ।

पतिशब्दकी (९६४) समासमें ही घि (१९०) संज्ञा हो । जिस समय पतिशब्दकी घिसंज्ञा नहीं है वह रूप लिखते हैं—

प्रथमा । पतिः	पती	पतयः	(१८८, २९, १२४, १११)
द्वि०— पतिम्	पती	पतीन्	(१४६, १५५)
तृ०— पति+आ=	पत्य्+आ=पत्या		पतिभ्याम्, पतिभिः
च०— पति+ए=	पत्य्+ए=पत्ये		पतिभ्याम् पतिभ्यः

पं०- पति+अस्=पत्य्+उ:=पत्युः पतिभ्याम्, पतिभ्यः
ष०-पत्युः पत्योः पतीनाम् (१६८, १६७)
स०-पत्यौ (२१, २०४) पत्योः पतिषु
स०हे पते (१८९, १९३) हे पती, हे पतयः

समासे तु भूपतये । भूपतिशब्द समासवाचक है उसकी घि संज्ञा होकर चतुर्थीमें भूपतये इस प्रकार यह शब्द सभी विभक्तियोंमें हरिके समान होगा । **कति** (कितने): यह संख्यावाचक विशेषण सदा बहुवचनान्त है. कति+जस्=प्रथमाके बहुवचनका प्रत्यय ॥२०५॥

(२०६) बहुगणवतुडति संख्या । १ । १ । २३ ॥

बहु गण वतु डति एते संख्याः स्युः ॥

बहुशब्द, गणशब्द, जिनके अन्तमें वतु तथा डति प्रत्यय हो वह संख्या संज्ञावाले हों ॥ २०६ ॥

(२०७) डति च । १ । १ । २५ ॥

डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात् ॥

जो डत्यन्त संख्या (२०६) है वह षट् (३२४) संज्ञक हो । कतिशब्द डति प्रत्ययान्त है, इससे इसकी षट् संज्ञा हुई ॥ २०७ ॥

(२०८) षड्भ्यो लुक् । ७ । १ । २२ ॥

षड्भ्यः परयोः जस्शसोर्लुक् स्यात् ॥

जस् और शस् प्रत्यय षट्संज्ञकशब्दसे परे आवे तो जस् और शस्का लोप हो ॥२०८॥

(२०९) प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः । १ । १ । ६१ ॥

लुक्श्लुलुप्शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात्तत्तत्संज्ञं स्यात् ॥

लुक् श्लु और लुप् शब्दोंसे जो प्रत्ययका अदर्शन (अभाव) किया हो तो इनकी क्रमसे लुक् श्लु और लुप् संज्ञा हो ॥ २०९ ॥

(२१०) प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् । १ । १ । ६२ ॥

प्रत्यये लुप्ते तदाश्रितं कार्यं स्यात् ॥

प्रत्ययके लोप होनेमें भी उसके आश्रित अंगका कार्य[1] हो । कति+जस् इसमें जस् का लुक् (२०८) से हुआ फिर (१८८) से गुण प्राप्त हुआ, परन्तु-॥ २१० ॥

---

१ अर्थात् प्रत्ययका लोप होनेपर भी प्रत्यय निमित्तक कार्य हो ।

(२११) न लुमताऽङ्गस्य । १ । १ । ६३ ॥

लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात् ॥

लुशब्द जिसमें हो उसको लुमान् कहते हैं, तिसकरके अर्थात् लुक् श्लु और लुप् (२०९) इन शब्दोंकरके जहां प्रत्ययका लोप हुआ हो, वहां लुप्त प्रत्ययको मानकर जो कार्य होता है, सो अंगकार्य न हो । इससे अंगकार्य जो गुण है सो न हुआ ॥

'कति' प्रथमा तथा द्वितीयाका बहुवचन । कतिभिः तृतीयाका बहुवचन, हरिवत् । कतिभ्यः चतुर्थी पंचमीका बहुवचन । कतीनाम् (१६७, १६८) ष० बहुचन । कतिषु सप्तमीका बहुवचन । **युष्मदस्मत्षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः ।** युष्मद् अस्मद् तथा षट्संज्ञक (२०७, ३२४) शब्दोंके रूप तीनों लिङ्गोंमें समान रहते हैं ॥

त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । त्रिशब्द नित्य बहुवचनान्त है । त्रयः (१८८) प्र० ब० । त्रीन् (१४३, १९६) द्वि० ब० । त्रिभिः–तृ० ब० । त्रिभ्यः–चतुर्थी तथा पंचमीका बहुवचन । त्रि+आम् षष्ठीके बहुवचनका प्रत्यय ॥ २११ ॥

(२१२) त्रेस्त्रयः । ७ । १ । ५३ ॥

त्रिशब्दस्य त्रयादेशः स्यादामि ॥

आम् प्रत्यय परे हुए सन्ते त्रिशब्दको त्रय आदेश हो । त्रय+आम्(१६७, १६८, १९७) त्रयाणाम् ष० बहुवचन । त्रिषु (१६९) स० ब० । **गौणत्वेऽपि** । जहां त्रिशब्दको गौणत्व है अर्थात् मुख्यता नहीं वहांभी बहुव्रीहिसमासमें ' प्रियत्रयाणाम् ' रूप होता है, इस स्थलमें भी त्रिशब्दको त्रय आदेश होता है ॥ द्विशब्द द्विवचनान्त है, इसका एकवचन और बहुवचन नहीं है । द्वि+औ प्रथमाके द्विवचनका प्रत्यय ॥ २१२ ॥

(२१३) त्यदादीनामः । ७ । २ । १०२ ॥

एषामकारोऽन्तादेशः स्यात् विभक्तौ परतः । द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः ।

विभक्ति प्रत्यय परे हो तो त्यदादि (१७०) को अकार अन्तादेश हो ।

त्यद् । तद् । यद् । एतद् । इदम् । अदस् । एक । द्वि । यह आठ सर्वनाम त्यदादि हैं, इन्हींमें यह विधि लगे, यह महाभाष्यकारका अभिप्राय है ।

द्व्इ+औ=द्व्अ+औ=द्व+औ=द्वौ (१४६, ४१) प्रथमा तथा द्वितीयाका द्विवचन । द्वाभ्यां (१६०) तृतीया, चतुर्थी तथा पंचमीका द्विवचन ।

---

१ आङ्गत्वात्तदन्तेऽपि त्रयादेश इति भावः । गौणमुख्यन्यायस्तु नेह प्रवृत्तिमर्हति, तस्य पदकार्यविषयत्वात् । तत्त्वं च स्त्रीत्वानिमित्तकत्वे सति विभक्त्यनिमित्तकत्वम् ।

२ द्विपर्यन्त ही त्यदादिकोंको अकार होता है, ऐसी भाष्यकारकी इष्टि–इच्छा–है ।

द्वि+ओस्=द्व[२३]+ओस्=द्वे[१३३]+ओस्=द्वय्+ओस्=द्वयोः, षष्ठी तथा सप्तमीका द्विवचन। **पाति लोकमिति पपीः सूर्यः।** लोकका रक्षण करनेवाला सूर्यवाचक दीर्घ ईकारान्त पपीशब्द। **प्रथमा**-पपीः। पपीं+औ (१४६) से पूर्वसवर्णदीर्घता पाई, परन्तु-॥२१३॥

(२१४) दीर्घाज्जसि च । ६ । १ । १०५ ॥

दीर्घात् जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः ॥

दीर्घसे जस् तथा इँच् परे होय तो पूर्वसवर्णदीर्घ न हो ॥

पपी+औ=पप्यौ पप्यौ[२१३,२१]:
द्वि० पपीम्[१४] पप्यौ पपीन् (१९६)
तृ० पप्या पपीभ्याम् पपीभिः
च० पप्ये पपीभ्याम् पपीभ्यः
पं० पप्यः पपीभ्याम् पपीभ्यः
ष० पप्यः पप्यो पप्याम्
दीर्घत्वान्नुडभावः। दीर्घ होनेके कारण (१६७) से नुट् न होकर यण् हुआ।
स० पपी (९९) पप्योः पपीषु (१६९)
स० हे पपीः हे पप्यौ हे पप्यः।

इसी प्रकार **वातप्रमी** (एकप्रकारके हरिणकी जाति) के रूप जानने। **बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी।** जिसके पास बहुतसी कल्याण करनेवालीं स्त्री हों, उसे बहुश्रेयसी कहते हैं ॥ २१४ ॥

(२१५) यू स्त्र्याख्यौ नदी । १ । ४ । ३ ॥

ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ[१] नदीसंज्ञौ स्तः। प्रथमलिंगग्रहणं च ॥

दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त नित्य स्त्रीलिंग शब्द नदीसंज्ञवाले हों। श्रेयसीशब्द नित्यस्त्रीलिंग है. परन्तु बहुव्रीहिसमाससे पुरुषका विशेषण हो पुंल्लिंग हो गया है, परन्तु भाष्यकारका अभिप्राय है कि ऐसे शब्दोंमें प्रथमलिंगका भी ग्रहण हो अर्थात् जो शब्द पहले स्त्रीलिंग हों समासादिमें विशेषण होकर पुँल्लिंग होजायं तो भी वे पहिले स्त्री वाचक थे इस कारण नदीसंज्ञक हों तो बहुश्रेयसीशब्दकी पुरुषवाचक होनेसे भी नदी संज्ञा हुई, कारण कि यह पहले स्त्रीलिंग श्रेयसी शब्द था। बहुश्रेयसी+सु=(१९९) से सकारका लोप होकर बहुश्रेयसी, बहुश्रेयस्यौ, बहुश्रेयस्यः। सं०-हे बहुश्रेयसी+सु ॥ २१५ ॥

(२१६) अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः । ७ । ३ । १०७ ॥

अम्बार्थानां नद्यन्तानां च ह्रस्वः स्यात् सम्बुद्धौ ॥

अम्बार्थ (माता वाचक) और नद्यन्त शब्दोंसे परे सम्बुद्धि प्रत्यय आवे तो उनको ह्रस्व हो।

---

१ लिंगान्तरानभिधायकत्वं नित्यस्त्रीत्वम्। २ समासवृत्तिसे पहले जो नित्य स्त्रीलिंग वाचक शब्द है, गौण होनेपर भी उसकी नदी संज्ञा होती है।

हे बहुश्रेयसि (१९२) हे बहुश्रेयस्यौ हे बहुश्रेयस्यः

द्वितीया । बहुश्रेयसीम् बहुश्रेयस्यौ बहुश्रेयसीन्

तृतीया । बहुश्रेयस्या बहुश्रेयसीभ्याम् बहुश्रेयसीभिः

चतुर्थी । बहुश्रेयसी+ङे ॥ २१६ ॥

(२१७) आण्नद्याः ।७।३। ११२ ॥

नद्यन्तात्परेषां ङितामाडागमः ॥

नद्यन्त शब्दसे परे ङित् (ङे ङसि ङस् ङि) प्रत्यय आवें तो उन्हें आट्का आगम हो । आट्मेंसे (९, ७) से आ शेष रहा, तब बहुश्रेयसी+आ+ए ॥ २१७ ॥

(२१८) आटश्च[1] । ६। १ । ९० ॥

आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः ॥

आट् (२१७) से अच् परे हुए सन्ते पूर्वपरके स्थानमें वृद्धि एकादेश हो ।

बहुश्रेयसी+ऐ=बहुश्रेयस्य्+ऐ=बहुश्रेयस्यै । बहुश्रेयसीभ्याम् । बहुश्रेयसीभ्यः

पं०बहुश्रेयस्याः (२१७, २१, २१८, १२४, १११) बहुश्रेयसीभ्याम् । बहुश्रेयसीभ्यः

ष०बहुश्रेयस्याः (") बहुश्रेयस्योः । बहुश्रेयसीनाम्

नद्यन्तान्नुट्—नदीसंज्ञक होनेके कारण नुट् हुआ ।

स०बहुश्रेयसी+ङि ॥ २१८ ॥

(२१९) ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ।७। ३। ११६ ॥

नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च परस्य ङेराम् ॥

नद्यन्त (२१९) आबन्त और नीशब्दसे परे ङिको आम् आदेश हो । बहुश्रेयसी+आम्=बहुश्रेयस्याम् (२१) बहुश्रेयस्योः । बहुश्रेयसीषु । **अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः** । अतिलक्ष्मीः । लक्ष्मीका अतिक्रमण करनेवाला । प्रथमा तथा संबोधनके एकवचनके सु के सकारका लोप (१९९) से प्राप्त था सो न हुआ, कारण कि, ' अतिलक्ष्मी ' शब्द ङ्यन्त नहीं है, इससे सु का लोप न हुआ तब ' अतिलक्ष्मीः ' हुआ । शेष बहुश्रेयसीके समान ॥ प्रधी–(महाबुद्धिवाला) ईकारान्त शब्द । **प्रथमा**–प्रधीः । प्रधी=औ ॥ २१९ ॥

(२२०) अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ । ६।४। ७७ ॥

---

[1] यद्यपि ङयि वृद्धिरेचि इत्येव सिद्धम्, ङसिङसोश्च सत्यपि सवर्णदीर्घे क्षतिर्नास्ति, तथापि ' ऐन्दत ' इत्याद्यर्थं सूत्रं न्याय्यत्वादिहाप्युपन्यस्तम् ।

श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रूइत्यस्य चाङ्गस्येयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे। इति प्राप्ते ॥

अजादि प्रत्यय परे रहते जिस अंगके अन्तमें श्नु प्रत्यय हो वा इवर्णान्त और उवर्णान्त धातु हो उसके स्थानमें और भ्रू अंगको इयङ् उवङ् (९९) आदेश हों । प्रधी+औ यहां अन्तमें इवर्णान्त धातु है, तब यह सूत्र लगा परन्तु-॥ २२० ॥

(२२१) एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य । ६ । ४ । ८२ ॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यणजादौ प्रत्यये।

जिस अंगके अन्तमें असंयोग पूर्व (पूर्वमें संयुक्त अक्षर न हो) धातुका अवयव इकारान्त आवै वह धातु जिस अनेकाच् अङ्गके अन्तमें हो उससे परे अजादि प्रत्यय हो तो इकारान्तको यण् आदेश हो। प्रधी शब्द अनेकाच् अंगवाला है, अन्तमें इवर्णान्त धातु भी है, धीके ईकारसे पहले धातुका अवयव संयोग (१९) भी नहीं है, इस कारण अजादि प्रत्य परे रहते प्रधीके ईकारको यण् हुआ ॥

प्रधी+औ=प्रध्य्[२२१]+औ=प्रध्यौ प्रध्यः ॥

द्वि०	प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्यः				
तृ०	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः	ष०	प्रध्यः	प्रध्योः	प्रध्याम् ।
च०	प्रध्ये	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः	स०	प्रध्यि (२२१)	प्रध्योः	प्रधीषु ।
पं०	प्रध्यः	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्यः	सम्बो०	हे प्रधीः	हे प्रध्यौ	हे प्रध्यः ।

इसी प्रकार ग्रामणी (गावोंमें श्रेष्ठ अधिपति) शब्दके रूप जानने, षष्ठीतक प्रधीके समान जानने ॥

सप्तमी=ग्रामणी+ङि न्यन्त है इसकारण(२१९) से ग्रामणी+आम्=ग्रामण्याम् (२२१) ग्रामण्योः ग्रामणीषु। (२२१) में (**अनेकाचः किम्**) अनेकाच् क्यों कहा ? कारण यह है कि अनेकाच् न हो तो यण् आदेश न हो, जैसे **नी**शब्दमें एक अच् है तो (२२०) से इयङ् आदेश हुआ.

प्रथमा । नीः नी+औ इयङ् इसमेंसे अङ् जाता रहा तो न्इय्+औ=नियौ, नियः ।

द्वितीया ।	नियम्	नियौ	नियः	षष्ठी ।	नियः	नियोः	नियाम्
तृतीया ।	निया	नीभ्याम्	नीभिः	सप्तमी ।	नियाम्	नियोः	नीषु
चतुर्थी ।	निये	नीभ्याम्	नीभ्यः	सम्बो०	हे नीः	हे नियौ	हे नियः
पंचमी ।	नियः	नीभ्याम्	नीभ्यः				

---

१ धातुका अवयव संयोग नहीं है पूर्वमें जिसके ऐसा जो इवर्ण, वह इवर्ण है अन्तमें जिसके ऐसा जो धातु, वह धातु है अन्तमें जिसके ऐसा जो अनेकाच् अंग, उसको यण् हो अजादि प्रत्यय परे रहते।

असंयोगपूर्वस्य किम् ? असंयोगपूर्व क्यों कहा ? (उ.) जब संयोगपूर्व रहे तब यण् नहीं होता (२२०) **से** इयङ् आदेश होता है । **सुश्री** शब्द (जिसकी श्रेष्ठ शोभा है)

प्र० सुश्रीः	सुश्रियौ (२२०)	सुश्रियः	**पं०** सुश्रियः	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्यः
द्वि० सुश्रियम्	सुश्रियौ	सुश्रियः	**ष०** सुश्रियः	सुश्रियोः	सुश्रियाम्
तृ० सुश्रिया .	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभिः	**स०** सुश्रियि	सुश्रियोः	सुश्रीषु
च० सुश्रिये	सुश्रीभ्याम्	सुश्रीभ्यः	**सं०** हे सुश्रीः	हे सुश्रियौ	हे सुश्रियः

इस प्रकार **यवक्री** (जौ लेनेवाला) शब्दके रूप जानने । **शुद्धधी** शब्द (जिसकी श्रेष्ठ बुद्धि है) **प्र०** शुद्धधीः शुद्धधी+औ (२२१) यण् प्राप्त हुआ परन्तु-॥ २२१ ॥

(२२२) गतिश्च । १ । ४ । ६० ॥

प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः ।

प्र (४८) आदि उपसर्ग क्रियाके योगमें गति संज्ञावाले हों । यद्यपि शुद्धशब्दकी गति संज्ञा नहीं है परन्तु **गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते** । भाष्यकारने कहा है कि जिस अङ्गका पूर्वपद गति वा कारकसे अन्य है तिसको यण् (२२१) न हो । यहां शुद्धधी शब्दमें धीशब्दसे पहले शुद्धशब्दकी गतिसंज्ञा तथा कारक[1] संज्ञा नहीं है, इससे यण् न होकर (२२०) इयङ् आदेश हुआ। शुद्ध ध्+इय्+औ=शुद्धधियौ । शुद्धधियः । शेष रूप सुश्रीशब्दके समान हैं । **सुधी** शब्द (श्रेष्ठबुद्धिमान्) प्र० सुधी+औ धीके पूर्व सु उपसर्ग गतिसंज्ञक है (२२२) से यण् (१२१) से प्राप्त हुआ, परन्तु-॥ २२२॥

(२२३) न भूसुधियोः । ६ । ४ । ८५ ॥

एतयोरचि सुपि यण्न स्यात् ।

अजादि सुप् परे रहते भू और सुधी शब्दको यण् न हो । तो यण्का निषेध होकर (२२०) से इयङ् आदेश हुआ, तब सुध् इय्+औ=सुधियौ सुधियः इत्यादि । शेषरूप सुश्री शब्दके समान जानने । **सुखमिच्छतीति सुखीः** (सुखकी इच्छा करनेवाला) **सुतमिच्छतीति सुतीः** (पुत्रकी इच्छा करनेवाला) (२२१) से यण् आदेश हुआ ।

---

१ " क्रियान्वयित्वं कारकत्वम् " जिसका क्रियाके साथ अन्वय हो, उसे कारक कहते हैं 'शुद्धा धीर्यस्य' इस विग्रहमें 'शुद्ध' शब्दका 'धी' शब्दके साथ अन्वय है किन्तु क्रियाके साथ नहीं, इससे वह कारक नहीं है । अगर इसका 'शुद्धं' ब्रह्म ध्यायति ऐसा विग्रह किया जाय तो यह कारक होगा, इससे यण् होगा ।

प्रथमा । सुखीः	सुख्यौ	सुख्यः	पं०	सुख्युः	सुखीभ्याम्	सुखीभ्यः
द्वितीया । सुख्यम्	सुख्यौ	सुख्यः	ष०	सुख्युः	सुख्योः	सुख्याम्
तृतीया । सुख्या	सुखीभ्याम्	सुखीभिः	स०	सुख्यि	सुख्योः	सुखीषु
चतुर्थी । सुख्ये	सुखीभ्याम्	सुखीभ्यः	सं०	हे सुखीः	हे सुख्यौ	हे सुख्यः

इसी प्रकार **सुती** शब्दके रूप जानने । **शंभुर्हरिवत्** । शम्भु शब्द हरिशब्दके समान है।

ह्रस्व उकारान्त शम्भु (शिव) शब्द—

प्र० शंभुः शम्भू शम्भवः (१८८ । २९ । १२४ । १११)
द्वि० शम्भुम् शम्भू शम्भून्
तृ० शम्भुना (१९० । १९१) शम्भुभ्याम् शम्भुभिः
च० शम्भवे (१९२) शम्भुभ्याम् शम्भुभ्यः
पं० शम्भोः (१९३) शम्भुभ्याम् शम्भुभ्यः
ष० शम्भोः शम्भ्वोः शम्भूनाम् (१६८)
स० शम्भौ (१९४) शम्भ्वोः शम्भुषु
सं० हे शम्भो (१८९) हे शम्भू हे शम्भवः

एवं भान्वादयः। इसी प्रकार भानु आदि शब्दोंके रूप जानने । **क्रोष्टु** (शृगाल) शब्द ।

(२२४) तृज्वत्क्रोष्टुः । ७ । १ । ९५ ॥

असंबुद्धौ सर्वनामस्थाने परे क्रोष्टुशब्दस्य स्थाने क्रोष्टृशब्दः प्रयोक्तव्य इत्यर्थः ।

सम्बुद्धि (१९१) को छोडकर सर्वनामस्थान परे हुए सन्ते **क्रोष्टु** शब्दके स्थानमें तृज्वत् अर्थात् क्रोष्टृशब्दका प्रयोग करना । प्रथमा क्रोष्टृ+सु–॥ २२४ ॥

(२२५) ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः । ७ । ३ । ११० ॥

ऋतोऽङ्गस्य गुणो ङौ सर्वनामस्थाने च ।

ऋदन्त अङ्गसे परे सर्वनामस्थानसंज्ञक तथा ङिप्रत्यय आवै तो ऋकारान्तके स्थानमें गुण हो । इससे क्रोष्टृको गुण प्राप्त हुआ तब–

(२२६) ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च । ७ । १ । ९४ ॥

ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्यादसंबुद्धौ सौ ॥

ऋकारान्त शब्द, उशनस्, पुरुदंशस् तथा अनेहस् इनको अनङ् आदेश हो जो असम्बुद्धिका सु परे होय तो । अनङ्के अङ्का लोप होकर शेष अन् क्रोष्टृ शब्दके अन्तर्गत ऋकारके स्थानमें हुआ तब क्रोष्ट्+अन् स्=क्रोष्ट्+अन्+(१९९)–

---

[1] अर्थकृत सादृश्यसे 'क्रोष्टु' शब्दके स्थानमें तृच् प्रत्ययान्त ' क्रोष्टृ ' शब्द होता है, कर्तृ आदि नहीं ।

(२२७) अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृ-प्रशास्तृणाम् । ६ । ४ । ११ ॥

अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने ॥

अप् शब्द, तृन् प्रत्ययान्त अथवा तृच् प्रत्ययान्त और स्वसृ नप्तृ नेष्टृ त्वष्टृ क्षत्तृ होतृ पोतृ प्रशास्तृ इन अंगोंसे परे असम्बुद्धि सर्वनामस्थान प्रत्यय आवे तो इनकी उपधा (१९६) को दीर्घ हो । क्रोष्टुशब्द तृच्प्रत्ययान्त है क्रोष्ट्+अन्में अ उपधा है उसे दीर्घ हुआ तो–

क्रोष्ट्+आन्=क्रोष्टान्=क्रोष्टाँ ।

क्रोष्टृ+औ=क्रोष्टर्+(३७, २२९) औ=क्रोष्टार्+औ=क्रोष्टारौ क्रोष्टारः ।

द्वि०–क्रोष्टारम् क्रोष्टारौ क्रोष्टॄन् (१४६, १९६)

तृ०–क्रोष्टु+टा+क्रोष्टु+ना (१४८, १९१) क्रोष्टुना अथवा क्रोष्टु+आ–

(२२८) विभाषा तृतीयादिष्वचि । ७ । १ । ९७ ॥

अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत् ।

तृतीया आदिके अजादिप्रत्यय परे हों तो क्रोष्टु शब्दको विकल्पकर तृज्वत् भाव हो । तब क्रोष्टृ और क्रोष्टु यह रूप रहे । क्रोष्टृ+आ (१४८) क्रोष्ट्र् (२१)+आ=

	क्रोष्ट्रा	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
चतुर्थी०	क्रोष्टवे [१९२] क्रोष्ट्रे [२९]	क्रोष्टुभ्याम् [२२८]	क्रोष्टुभ्यः

पं०–क्रोष्टु+ङसि=क्रोष्टो+अस्=क्रोष्टो+स्=क्रोष्टोः (१२४, १११) अथवा (२२८) क्रोष्टृ+अस्–

(२२९) ऋत उत् । ६ । १ । १११ ।

ऋतो ङसिङसोरति उदेकादेशः ॥

ऋदन्त अंगसे ङसि तथा ङस् प्रत्ययका अकार परे आवे तो पूर्वपरके स्थानमें उकार एक आदेश हो । सू० (३७) से उर् हुआ तो क्रोष्ट्+उर्+अस्–

(२३०) रात्सस्य । ८ । ८ । २४ ॥

रेफात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य । रस्य विसर्गः ॥

रेफसे परे संयोग (१९) के अन्तके सकारमात्रका लोप हो अन्यका नहीं । "खरवसानयोः" —से रेफको विसर्ग होता है ॥

क्रोष्टुः (१११) क्रोष्टुभ्याम् क्रोष्टुभ्यः ।

षष्ठी॰क्रोष्टोः क्रोष्टुः क्रोष्ट्वोः क्रोष्ट्रोः । क्रोष्टु+आम्—

(२२८) से तृज्वद्भाव प्राप्त हुआ और (१६९) से नुट्का आगम प्राप्त हुआ, फिर (१३२) से परकार्य तृच् है सो वही होना चाहिये परन्तु—

(२३१) नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन ।

वार्तिककारकी आज्ञा है कि आम् परे हो तो नुम् (२७१) अच् परे रहते रभाव (२४९) और तृज्वद्भाव (२२८) इन तीनोंको बाधकर नुट्का आगम हो । (१३२) सूत्रमें **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** तुल्य बलवाले सूत्रोंके विरोधमें परकार्य कहा है, परन्तु वार्तिककारकी आज्ञा है कि क्रोष्टुआदि शब्दसे परे आम् हो पूर्वविप्रतिषेधसे इसे बाधकर नुट् ही हो ।

क्रोष्टु+आम् में नुट्का आगम किया क्रोष्टु+न्+आम्=क्रोष्टूनाम् (१६७, १६८)
स॰ क्रोष्टौ अ॰ क्रोष्टरि (२२८, २२९ क्रोष्ट्वोः अ॰ क्रोष्ट्रोः क्रोष्टुषु ।
सं॰ हे क्रोष्टो हे क्रोष्टारौ हे क्रोष्टारः ।

पक्षे हलादौ च शम्भुवत् । पक्षमें और हलादि सुप् परे रहते शम्भुवत् रूप होते हैं ।

हूहू (गन्धर्व)

प्र॰	हूहूः	हूह्वौ (२१)	हूह्वः
द्वि॰	हूहूम्	हूह्वौ	हूहून्
तृ॰	हूह्वा	हूहूभ्याम्	हूहूभिः
च॰	हूह्वे	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः
पं॰	हूह्वः	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः
ष॰	हूह्वः	हूह्वोः	हूह्वाम्
स॰	हूह्वि	हूह्वोः	हूहूषु
सं॰	हे हूहूः	हे हूह्वौ	हे हूह्वः

अतिचमू शब्द (सेनाका अतिक्रमण करनेवाला) **अतिचमूशब्दे तु नदीकार्यं विशेषः ।** चमू शब्द नित्य स्त्रीलिंग है, इससे (२१९) से उसमें नदीसंज्ञाका कार्य विशेष होता है.

प्र॰	अतिचमूः	अतिचम्वौ	अतिचम्वः
द्वि॰	अतिचमूम्	अतिचम्वौ	अतिचमून्
तृ॰	अतिचम्वा	अतिचमूभ्याम्,	अतिचमूभिः
च॰	अतिचम्वै (२१७ २१८)	अतिचमूभ्याम्,	अतिचमूभ्यः
पं॰	अतिचम्वाः	अतिचमूभ्याम्	अतिचमूभ्यः
ष॰	अतिचम्वाः	अतिचम्वोः	अतिचमूनाम् (१३७)
स॰	अतिचम्वाम् (२२१)	अतिचम्वोः	अतिचमूषु
सं॰	हे अतिचमु	हे अतिचम्वौ	हे अतिचम्वः

खलपू शब्द (दुष्टोंको पवित्र करनेहारा)

प्रथमा—खलपूः खलपू+ औ—

(२३२) ओः सुपि । ६ । ४ । ८३ ॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि ॥[1]

जिस अङ्गके अन्तमें असंयोगपूर्व उकारान्त धातुका अवयव आवे ऐसा धातु जिस अनेकाच् अङ्गके अन्तमें हो उससे परे अजादि प्रत्यय (सुप्) आवे तो अङ्गके अन्त उकारको यण् आदेश हो ।

	खलप्व्+औ=खलप्वौ		खलप्वः
द्वि०	खलप्वम्	खलप्वौ	खलप्वः
तृ०	खलप्वा	खलपूभ्याम्	खलपूभिः
च०	खलप्वे	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
पं०	खलप्वः	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
ष०	खलप्वः	खलप्वोः	खलप्वाम्
स०	खलप्वि	खलप्वोः	खलपूषु
सं०	हे खलपूः	हे खलप्वौ	हे खलप्वः

इसी प्रकार **सुलू** (अच्छी प्रकार काटनेवाला) आदि शब्द जानने ॥

स्वभू (स्वयं उत्पन्न होनेवाले विष्णु) शब्द ।

प्रथमा स्वभूः (२२२) से यण् न हुआ। स्वभ्+उव् (२२०)+औ=स्वभुवौ । स्वभुवः

द्वि०	स्वभुवम्	स्वभुवौ	स्वभुवः
तृ०	स्वभुवा	स्वभूभ्याम्	स्वभूभिः
च०	स्वभुवे	स्वभूभ्याम्	स्वभूभ्यः
पं०	स्वभुवः	स्वभूभ्याम्	स्वभूभ्यः
ष०	स्वभुवः	स्वभुवोः	स्वभुवाम्
स०	स्वभुवि	स्वभुवोः	स्वभूषु
सं०	हे स्वभूः	हे स्वभुवौ	हे स्वभुवः

वर्षाभू (वर्षामें उत्पन्न होनेवाला) शब्द ।

प्रथमा वर्षाभूः । वर्षाभू+औ (२२३) से यण्का निषेध पाया परन्तु–

(२३३) वर्षाभ्वश्च । ६ । ४ । ८४ ॥

अस्य यण् स्यादचि सुपि ॥

वर्षाभू शब्दको यण् (२२३) आदेश हो अजादि सुप् प्रत्यय परे रहते । वर्षाभ्व्+औ=वर्षाभ्वौ । वर्षाभ्वः । शेषरूप खलपूशब्दके सदृश जानने ।

दृन्भू (हिंसक उत्पन्न होनेवाला सांप) शब्द.

(२३४) दृन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः ।

एवं करभ्वः । पुनर्भ्वः ।

---

१ धातुका अवयव संयोग पूर्व नहीं है जिसके ऐसा जो उवर्ण, वह उवर्ण है अन्तमें जिसके ऐसा जो धातु, वह धातु है अन्तमें जिसके ऐसा जो अनेकाच् अंग, उसको यण् हो, अजादि सुप् परे रहते ।

भू शब्दसे पूर्व दन्, कर अथवा पुनर् आवे तो उसे यण् हो । इस वार्तिकके अनुसार दन्भू, करभू और पुनर्भू शब्दोंके रूप वर्षाभूके समान जानने ।

ऋकारान्त **धातृ** (पोषण करनेवाला) शब्द.

प्रथमा । धातृ+सु=धात्अन्+स्+धात्+आ=धाता, धातारौ (२२९, २२७) धातारः

द्वि॰	धातारम् धातारौ	धातॄन्
तृ॰	धात्रा धातृभ्याम्	धातृभिः
च॰	धात्रे धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पं॰	धातुः धातृभ्याम्	धातृभ्यः
ष॰	धातुः धात्रोः	धातृ+आम् धातॄ+न् आम् (१६७)

(२३९) ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् ।

ऋवर्णसे परे नकारके स्थानमें णकार कहना । धातॄ+ण्+आम्=धातॄणाम् ।

सप्तमी । धातरि । धात्रोः । धातृषु ।

सम्बोधन । हे धातः (२२९, १९९, १११) हे धातारौ । हे धातारः ।

इसी प्रकारसे (२२७) **नप्तृ** (पौत्र) शब्दके रूप जानने । (२२७) से इनकी उपधाको दीर्घ होता है । **नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थं, तेनेह न । उद्गातृशब्दस्य तु भवत्येव, समर्थसूत्रे उद्गातार इति भाष्यप्रयोगात्** । पितृ भ्रातृ जामातृ शब्दोंका उपधासंज्ञक आकार दीर्घ (२२७) नहीं होता, (प्रश्न) जब कि नप्त्रादिकोंका पाठ उणादिमें है और उणादिमें तृन् तथा तृच्प्रत्ययान्त शब्दोंको दीर्घ होता ही है फिर (२२७) में नप्त्रादिग्रहण क्यों किया ? (उत्तर) इनके ग्रहण करनेका कारण यह है कि व्युत्पत्तिपक्षमें जो उणादिसिद्ध तृन्नन्त तृजन्तको दीर्घ हो तो केवल नप्त्रादिको दीर्घ हो, अन्यको नहीं । इसीसे जो उणादि शब्द तृन् तृच् प्रत्ययोंसे सिद्ध होते हैं तिनको दीर्घ नहीं होता । कारण कि उणादिमें तृन् तृच्प्रत्ययान्त पितृ भ्रातृ जामातृ भी हैं इनको दीर्घ न हो । क्योंकि नप्तृसे लेकर प्रशास्तृतकहीको दीर्घ हो अन्य जामातृ आदिको नहीं । क्यौंकि (**सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिर्नियमार्थः**) सिद्ध होनेपर फिर उसमें कोई विधि आरंभ की जाय तो नियमके निमित्त होती है, परन्तु उद्गातृ शब्दकी उपधाको तो दीर्घ होता ही है । कारण कि समर्थसूत्रमें 'उद्गातारः' ऐसा भाष्यकारने प्रयोग दिया है । यदि ऐसा न होता तो 'उद्गातरः' ऐसा लिखते ।

प्रथमा ।	पिता	पितरौ	पितरः
द्वितीया ।	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृतीया ।	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी ।	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पञ्चमी ।	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
षष्ठी ।	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
सप्तमी ।	पितरि	पित्रोः	पितृषु ।
सम्बो॰ ।	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

इसी प्रकार **जामातृ भ्रातृ** शब्दोंके रूप जानने ।

ऋकारान्त नृ शब्द (मनुष्य)

प्रथमा ।	ना	नरौ	नरः
द्वितीया ।	नरम्	नरौ	नॄन्
तृतीया ।	न्रा	नृभ्याम्	नृभिः
चतुर्थी ।	न्रे	नृभ्याम्	नृभ्यः
पंचमी ।	नुः	नृभ्याम्	नृभ्यः
षष्ठी ।	नुः	न्रोः[1]	नृ+आम्=नृनुँआम्=नृनाम्

(२३६) नृ च । ६ । ४ । ६ ॥

अस्य नामि वा दीर्घः स्यात् ॥

नाम् परे हुए सन्ते नृके अन्तर्गत ऋकारको विकल्प करके दीर्घ हो । नॄणाम्, जब दीर्घ न हुआ तब नृणाम् ।

सप्तमी ।	नरि	न्रोः	नृषु
सम्बो० ।	हे नः ।	हे नरौ ।	हे नरः

ओकारान्त गोशब्द (बैल)

(२३७) गोतो णित् । ७ । २ । ९० ॥

ओकाराद्विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत् ।

गोशब्दके समान ओकारान्त शब्दसे परे जो सर्वनामस्थान प्रत्यय आवे सो णिद्वत् हो । **प्रथमा** । गौः (२०२) गावौ (२०२) । (२९) गावः । **द्वितीया** । गो+अम्

(२३८) औतोऽम्शसोः । ६ । १ । ९३ ॥

औतोऽम्शसोरचि आकार एकादेशः ।

अम् अथवा शस् प्रत्ययका अकार ओकारसे परे रहे तो दोनोंके स्थानमें आकार एकादेश हो । ग्+आम्=गाम् गावौ (२३७, २०२, २९,) गाः (२३८)

तृतीया ।	गवा (२९)	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी ।	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पञ्चमीः ।	गोः (१९३)	गोभ्याम्	गोभ्यः
षष्ठी ।	गोः	गवोः	गवाम्
सप्तमी ।	गवि	गवोः	गोषु
सम्बो० ।	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

ऐकारान्त रै शब्द (धन)

प्रथमा रै+सु–

(२३९) रायो हलि । ७ । २ । ८५ ॥

अस्याकारादेशो हलि विभक्तौ ।

हलादि विभक्ति परे रहते रै शब्दको आकार आदेश हो ।

---

१ सूत्रे गकारोऽविवक्षित इति व्याचष्टे—ओकारादिति ।

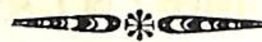
प्रथमा ।	राः	रायौ (२९)	रायः
द्वितीया ।	रायम्	रायौ	रायः
तृतीया ।	राया	राभ्याम्	राभिः
चतुर्थी ।	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पञ्चमी ।	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
षष्ठी ।	रायः	रायोः	रायाम्
सप्तमी ।	रायि	रायो	रासु
संबोध०	हे राः	हे रायौ	हे रायः

औकारान्त **ग्लौ** शब्द (चन्द्रमा)

प्रथमा ।	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
द्वितीया ।	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
तृतीया ।	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः
चतुर्थी ।	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
पञ्चमी ।	ग्लावः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
षष्ठी ।	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्
सप्तमी ।	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु
संबो० ।	हे ग्लौः	हे ग्लावौ	हे ग्लावः

अजन्त पुँल्लिङ्ग समाप्त ॥

अजन्त स्त्रीलिंग ।



आकारान्त **रमा** शब्द (लक्ष्मी)

प्रथमा । रमा (१३७ । ३६ । १९९) रमा+औ-

(२४०) औङ आपः । ७ । १ । १८ ॥

आबन्तादङ्गात्परस्यौङः शी स्यात् । औङित्यौकारविभक्तेः संज्ञा ।

आबन्त अङ्गसे परे जो औङ् (प्रथमा द्वितीयाके द्विवचनका प्रत्यय) उसके स्थानमें शी हो । औङ् (औं और औट् इन दो विभक्तियोंका नाम है)

रमा+शी=रमा+(१९९) ई=रमे (३९) रमाः । **सम्बोधनम्**-हे रमा+सु-

(२४१) संबुद्धौ च । ७ । ३ । १०६ ॥

आप एकारः स्यात्संबुद्धौ । एङ्ह्रस्वादिति संबुद्धिलोपः ।

संबोधनमें सुप्रत्यय परे हुए सन्ते आबन्त अङ्गको एकार हो ।

हे रमे (१९३) हे रमे (२४०) हे रमाः । **द्वितीया** । रमाम् (१९४) रमे रमाः । **तृतीया**-रमा+टा=रमा+आ (२४९)

(२४२) आङि चापः । ७ । ३ । १०५ ॥

आङि ओसि चाप एकारः ।

आङ् (टा) और ओस् प्रत्यय परे रहते आबन्त अङ्गको एकार हो ।

रमे+आ-रम्+अय् (२९)+आ=रमया, रमाभ्याम् रमाभिः । **चतुर्थी** । रमा+ङे=रमा+ए (१९९)

(२४३) याडापः। ७। ३। ११३॥

आपः परस्य ङिद्वचनस्य याडागमः स्यात्।

आबन्त अङ्गसे परे ङित् (ङे ङसि ङस् ङि) प्रत्ययोंको याट्का आगम हो। याट्मेंसे टकारका लोप हुआ। आदेश टित् है सो प्रत्ययके पूर्वमें हुआ, रमाया+ए=

	रमायै (४१)	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
पंचमी।	रमायाः (१३७, २४३)	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
षष्ठी।	रमायाः	रमयोः (१३७, २४२, २९)	रमाणाम् (१६७, १९७)
सप्तमी।	रमायाम् (२१९)	रमयोः	रमासु

इसीप्रकार **दुर्गा अम्बिका** आदि शब्दोंके रूप जानने।

सर्वा स्त्रीलिङ्ग (सर्वनाम)

प्रथमा।	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वितीया।	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृतीया।	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी।	सर्वा+ङे=		

(२४४) सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च। ७। ३। ११४॥

आबन्तात्सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः।

आबन्त सर्वनामसे ङित् सुप् परे हो तो उसको स्याट्का आगम और आबन्त अङ्गको ह्रस्व हो। स्याट्मेंसे टकारका लोप हुआ, स्याट् टित् है इस कारण ङेके पूर्व हुआ और आबन्त सर्वाके आकारको ह्रस्व हुआ।

	सर्व+स्या[४१]+ए=सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पञ्चमी।	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
षष्ठी।	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
स०	सर्वस्याम्[२१९]	सर्वयोः	सर्वासु
सं०	हे सर्वे	हे सर्वे	हे सर्वाः

इसी प्रकार **विश्वा** आदि आबन्त स्त्रीलिंग शब्द जानने।

उत्तरपूर्वा[१]शब्दके उत्तर और पूर्वके बीचकी दिशा (ईशानकोण)

(२४५) विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ। १। १। २८॥

अत्र सर्वनामता वा स्यात्।

दिशावाचक शब्दोंके अन्तर अर्थमें बहुव्रीहि समासकी विकल्पकरके सर्वनामसंज्ञा हो.

प्रथमा।	उत्तरपूर्वा	उत्तरपूर्वे	उत्तरपूर्वाः
द्वितीया।	उत्तरपूर्वाम्	उत्तरपूर्वे	उत्तरपूर्वाः
तृतीया।	उत्तरपूर्वया	उत्तरपूर्वाभ्याम्	उत्तरपूर्वाभिः

१ उत्तरस्याः पूर्वस्या अन्तरालं या दिक् सा "दिङ्नामान्यन्तराले" इति बहुव्रीहिः।

चतुर्थी ।	उत्तरपूर्वायै (२४३) उत्तरपूर्वस्यै (२४९, २४४)	उत्तरपूर्वाभ्याम्	उत्तरपूर्वाभ्यः
पञ्चमी ।	उत्तरपूर्वायाः (३४३) उत्तरपूर्वस्याः (२४९, २४४)	उत्तरपूर्वाभ्यां	उत्तरपूर्वाभ्यः
षष्ठी ।	उत्तरपूर्वायाः (२४३) उत्तरपूर्वस्याः (२४९, २४४)	उत्तरपूर्वयोः	उत्तरपूर्वासाम् उत्तरपूर्वाणाम्
सप्तमी ।	उत्तरपूर्वायाम् (२४३) उत्तरपूर्वस्याम् (२४९, २४४)	उत्तरपूर्वयोः	उत्तरपूर्वासु
संबोधन ।	हे उत्तरपूर्वे	हे उत्तरपूर्वे	हे उत्तरपूर्वाः

तीयस्येति वा संज्ञा । ङित्प्रत्यय परे तो तीयप्रत्ययान्त शब्दोंकी विकल्पकरके सर्वनामसंज्ञा हो ।

द्वितीया (दूसरी)

प्रथमा ।	द्वितीया	द्वितीये	द्वितीयाः
द्वितीया ।	द्वितीयाम्	द्वितीये	द्वितीयाः
तृतीया ।	द्वितीयया	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभिः
चतुर्थी ।	द्वितीयायै (२४३) द्वितीयस्यैः (१८०, २४४)	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
पञ्चमी ।	द्वितीयायाः (२४३) द्वितीयस्याः (१८०, २४४)	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
षष्ठी ।	द्वितीयायाः (२४३) द्वितीयस्याः (१८०, २४४)	द्वितीययोः	द्वितीयानाम्
सप्तमी ।	द्वितीयायाम् द्वितीयस्याम्	द्वितीययोः	द्वितीयासु
संबोधने ।	हे द्वितीये	हे द्वितीये	हे द्वितीयाः

इसी प्रकार **तृतीया** शब्दके रूप जानने ।

अम्बा शब्दके रूप रमावत् जानने पर (२१६) से सम्बोधनमें ह्रस्व होता है.

हे अम्ब	हे अम्बे	हे अम्बाः

इसी प्रकार **अक्क अल्ल** आदि अम्बावाचक शब्दोंके रूप जानने ।

जरा शब्द (वृद्धपन)

प्रथमा ।	जरा (१९९)	जरे (विकल्प) जरसौ (१८१)	जराः (विकल्प) जरसः
द्वितीया ।	जराम् (वि०) जरसम् (१८१)	जरे (वि०) जरसौ	जराः (वि०) जरसः
तृतीया ।	जरया (वि०) जरसा	जराभ्याम्	जराभिः
चतुर्थी ।	जरायै " जरसे	जराभ्याम्	जराभ्यः
पंचमी ।	जरायाः " जरसः	जराभ्याम्	जराभ्यः
षष्ठी ।	जरायाः " जरसः	जरयोः जरसोः	जराणाम् जरसाम्
सप्तमी ।	जरायाम् " जरसि	जरयोः जरसोः	जरासु
संबोधन ।	हे जरे	हे जरे, हे जरसौ	हे जराः हे जरसः

गोपा शब्दके रूप विश्वपा पुँल्लिग (१८१) शब्दके समान जानने ।

इकारान्त स्त्रीलिंग **मति**शब्द (बुद्धि)–

प्रथमा । मतिः मती मतयः
द्वितीया । मतिम् मती मतीः[१४६]

तृतीया । मत्या मतिभ्याम् मतिभिः
चतुर्थी । मति+ङे मतये (१९,१९२) अथवा

(२४६) ङिति ह्रस्वश्च[१] । १ । ४ । ६ ॥

इयङुवङ्[२]स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ ह्रस्वौ च इवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति ।

स्त्री शब्दको छोडकर नित्य स्त्रीलिंग ईकारान्त ऊकारान्तको इयङ् उवङ् (२२०) आदेश प्राप्त हुआ हो तथा स्त्रीवाचक इ, उवर्णान्त हो और इससे परे ङित् प्रत्यय आवे तो वे विकल्प करके नदीसंज्ञावाले हों ।

मत्यै (२१७, २१८) मतिभ्याम् मतिभ्यः
पंचमी। मत्याः (वि०) मतेः मतिभ्याम् मतिभ्यः

षष्ठी । मत्याः, मतेः मत्योः, मतीनाम्[१६७, १६]
सप्तमी । मतौ (१९४) (वि०) मति+ङि

(२४७) इदुद्भ्याम् । ७ । ३ । ११७ ॥

इदुद्भ्यां नदीसंज्ञकाभ्यां परस्य ङेराम् ।

नदीसंज्ञक इकारान्त उकारान्त अङ्गसे परे ङिको आम् (२१९) आदेश हो ।

मत्याम् मत्योः मतिषु
संबोधन । हे मते (१८९) हे मती हे मतयः

---

१ क्योंकि यह स्वाभाविक आकारान्त है, आबन्त नहीं ।

२ इयङ् उवङ्की स्थिति है जिनमें ऐसे जो स्त्री शब्दभिन्न नित्य स्त्रीलिङ्ग दीर्घ ईकार ऊकार तथा स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान जो ह्रस्व इवर्ण उवर्ण, सो ङित् परे रहते विकल्पसे नदीसंज्ञक हों ।

एवं बुद्ध्यादयः । इसी प्रकार बुद्धि आदि शब्दोंके रूप जानने ॥

त्रि (तीन—

(२४८) त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ । ७ । २ । ९९ ॥

स्त्रीलिङ्गयोरेतयोरेतौ स्तो विभक्तौ ।

स्त्रीलिंगवाचक त्रि तथा चतुर शब्दोंसे परे विभक्ति प्रत्यय आवे तो त्रिको तिसृ, चतुर्को चतसृ आदेश हों ।

प्रथमा । तिसृ+जस्=तिसृ+अस् । इसका एकवचन और द्विवचन नहीं होता ।

(२४९) अचि र ऋतः । ७ । २ । १०० ॥

तिसृ चतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि । गुणदीर्घोत्वानामपवादः।

तिसृ और चतसृ शब्दके ऋकारके स्थानमें रेफादेश हो अच् परे हुए सन्ते । गुण (२२९) दीर्घ (१४६) और उकार (२२९) को बाधकर रेफ आदेश होता है ।

तिसृर् +अस्=तिस्रः (१२४, १११) प्रथमा द्वितीयाका बहुवचन । **तृतीया**—तिसृभिः **चतुर्थी पञ्चमी**—तिसृभ्यः । **षष्ठी** तिसृ+आम्=तिसृ+न् (१६७) आम् (१६८) से दीर्घकी प्राप्ति हुई परन्तु

(२५०) न तिसृचतसृ । ६ । ४ । ४९ ॥

एतयोर्नामि दीर्घो न स्यात् ।

नाम् प्रत्यय परे हुए सन्ते तिसृ चतसृ शब्दोंको दीर्घ आदेश न हो । तिसृणाम् (२३९) **सप्तमी** तिसृषु ॥

द्वि० (दो) यह शब्द द्विवचनमात्रमें है ।

प्र० द्वि+औ=द्व (२१३)+औ । द्विशब्दको अ आदेश होनेके पीछे आ प्रत्यय होकर द्व+आ+औ=द्वा+औ फिर (२४०) से 'शी' आदेश होकर ई शेष रहा द्वा+ई=द्वे ।

द्वि० द्वे । तृतीया चतुर्थी पञ्चमी—द्वाभ्याम् । षष्ठी सप्तमी—द्वयोः (२४२, २९) ॥

ईकारान्त **गौरी** शब्द (पार्वती)

प्र०	गौरी (१९९)	गौर्यौ (२१४)	गौर्यः
द्वि०	गौरीम्	गौर्यौ	गौरीः
तृ०	गौर्या	गौरीभ्याम्	गौरीभिः
च०	गौर्यै (२१९,२१७,२१८)	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
पं०	गौर्याः	गौरीभ्याम्	गौरीभ्यः
ष०	गौर्याः	गौर्योः	गौरीणाम्

स० गौर्याम् (२१९)	गौर्योः	गौरीषु
सं० हे गौरि (२१६)	हे गौर्यौ	हे गौर्यः

एवं नद्यादयः । इसी प्रकार नदी वाणी आदि शब्दोंके रूप जानने ॥

लक्ष्मी शब्द ।

प्रथमा । लक्ष्मीः ङीबन्त न होनेके कारण (१९९) से लोप न हुआ । लक्ष्म्यौ लक्ष्म्यः

सं० हे लक्ष्मीः हे लक्ष्म्यौ हे लक्ष्म्यः । **शेषं रूपं गौरीवत् । एवं तरीतन्त्र्यादयः।** इसी प्रकार **तरी** (नौका) **तन्त्री** (वीणा) आदि शब्दोंके रूप लक्ष्मीवत् जानने ॥[1]

स्त्री शब्द ।

प्रथमा । स्त्री (१९९) स्त्री+औ–

(२५१) स्त्रियाः । ६ । ४ । ७९ ॥

अस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यये परे ।

स्त्री शब्दके आगे अजादि प्रत्यय आवे तो उसे इयङ् आदेश हो ।

स्त्र्+इय्+औ=स्त्रियौ । स्त्रियः । **द्वितीया ।** स्त्री+अम्=स्त्रीम् (१९४) अथवा स्त्री+अम्–

(२५२) वाम्शसोः । ६ । ४ । ८० ॥

अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा स्यात् ।

अम् तथा शस् परे रहते स्त्री शब्दको विकल्प करके इयङ् आदेश हो ।

स्त्रइय्+अम्=स्त्रियम् । स्त्रियौ स्त्रियः अ० स्त्रीः (१४६) ।

तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
च०	स्त्रियै[२२७।२१८]	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पं०	स्त्रियाः[२५१]	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
ष०	स्त्रियाः[२५१]	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्[१६७]

परत्वान्नुट् (२५१) से पर होनेके कारण (१६७) से नुट् ही हुआ ।

स०	स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु
सं०	हे स्त्रि(२१९, २१६)	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः

श्री शब्द (लक्ष्मी)

प्रथमा । श्रीः	श्रियौ (२२०)	श्रियः

संबो० हे श्री+सु=श्रीः २१६) से ह्रस्वता प्राप्त हुई कारण कि (२१९) से नदी-संज्ञक है परन्तु—

(२५३) नेयङुवङ्स्थानावस्त्री । १ । ४ । ४ ॥

इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु स्त्री ।

---

1 " अवीलक्ष्मीतरीतन्त्रीधीह्रीश्रीणामुदाहृतः । सप्तानामपि शब्दानां सुलोपो न कदाचन ॥ "

स्त्री शब्दको छोडकर जिन ईकारान्त, ऊकारान्त शब्दोंको इयङ्, उवङ् आदेश हों तो उनकी नदी (२१९) संज्ञा न हो।

	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः
द्वितीया ।	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृतीया ।	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
चतुर्थी ।	श्रियै (२४६, २१७, २१८) श्रिये	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
पञ्चमी ।	श्रियः अ० श्रियाः (२४६, २१७, २१८)	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
षष्ठी ।	श्रियः अ० श्रियाः (")	श्रियोः	श्री+आम्

(२५४) वामि । १ । ४ । ५ ॥

इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदीसंज्ञौ स्तो न तु स्त्री ॥[1]

स्त्री शब्दको छोड़कर स्त्रीवाचक ईकारान्त, ऊकारान्त शब्दोंको इयङ्, उवङ् (२००) आदेश होते हैं सो आम् परे रहते विकल्प करके नदी संज्ञक (११९) हों (१६७, १९७) श्रीणाम् अथवा श्रियाम् ।

सप्तमी । श्रियाम्, श्रियि, श्रियोः श्रीषु । **धेनुर्मतिवत् ।**

स्त्रीलिङ्ग उकारान्त **धेनु** शब्द (गाय)

प्र०	धेनुः	धेनू[१४६]	धेनवः[१८८]
द्वि०	धेनुम्	धेनू[१४६]	धेनूः[१४६]
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च०	धेनवे (अ०) धेन्वै	धेनुभ्यां	धेनुभ्यः
पं०	धेन्वाः(अ०)धेनोः,	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
ष०	धेन्वाः (अ०) धेनोः	धेन्वोः	धेनूनाम्
स०	धेन्वाम् (अ०) धेनौः	धेन्वोः	धेनुषु
सं०	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः

क्रोष्टु (शृगाली)

(२५५) स्त्रियां च । ७ । १ । ९६ ॥

स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते ॥

स्त्रीवाचक क्रोष्टुशब्दके रूप तृजन्तवत् (२२४) हो। यथा क्रोष्टृ ।

(२५६) ऋन्नेभ्यो ङीप् । ४ । १ । ५ ॥

ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप् ॥

ऋकारान्त और नकारान्त शब्दोंसे जो स्त्रीलिङ्गकी विवक्षा हो तो उनसे परे ङीप् प्रत्यय हो। क्रोष्टृ+ङीप्=क्रोष्टृ+ई (१९९, ७, ९)=क्रोष्ट्री। **शेषं गौरीवत ।** इसके शेष रूप गौरी (२९०) की तरह जानना।

---

१ इयङ् उवङ्की स्थिति है जिनमें ऐसे जो नित्य स्त्रीलिङ्ग दीर्घ ईकार ऊकार, सो आम् परे रहते विकल्पसे नदी संज्ञक हों किन्तु स्त्रीशब्द नदीसंज्ञक न हो।

भ्रू शब्दके रूप (२२०) से श्रीशब्दवत् होते हैं, परन्तु उवङ् आदेश होता है ।

प्र०	भ्रूः	भ्रुवौ	भ्रुवः	**पं०**	भ्रुवाः, भ्रुवः	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्यः
द्वि०	भ्रुवम्	भ्रुवौ	भ्रुवः	**ष०**	भ्रुवाः, भ्रुवः	भ्रुवोः	भ्रूणाम् भ्रुवाम्
तृ०	भ्रुवा	भ्रूभ्याम्	भ्रूभिः	**स०**	भ्रुवाम् भ्रुवि	भ्रुवोः	भ्रूषु
च०	भ्रुवै भ्रुवे	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्यः	**सं०**	हे भ्रूः	हे भ्रुवौ	हे भ्रुवः

स्वयम्भूः स्वभूवत । स्वयंभू शब्द पुँल्लिङ्ग (स्वभू शब्द २३२) के समान जानना ॥ ऋकारान्त **स्वसृ** शब्द (बहन) । (२९६) से ङीप् प्राप्त हुआ परन्तु–

(२९७) न[५] षट्स्वस्रादिभ्यः । ४ । १ । १० ॥

षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च ङीप्टापौ न स्तः ।

षट्संज्ञक तथा स्वस्रादि शब्दोंसे परे स्त्रीलिंगके प्रत्यय ङीप् तथा टाप् न हों ।

प्र०	स्वसा[२२६२२७१९९२००]	स्वसारौ	स्वसारः	**पं०**	स्वसुः[२२९]	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
द्वि०	स्वसारम	स्वसारौ	स्वसॄः	**ष०**	स्वसुः[२२९]	स्वस्रोः	स्वसॄणाम् (२३१, २३९)
तृ०	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः	**स०**	स्वसरि[२२५]	स्वस्रोः	स्वसृषु
च०	स्वस्रे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः	**सं०**	हे स्वसः[२२५] [३७]	हे स्वसारौ[२३०] [१११]	हे स्वसारः

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा ।
याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः ॥ १ ॥

स्वसृ, तिसृ, चतसृ, ननान्दृ, दुहितृ, यातृ, मातृ यह स्वस्रादिगणके शब्द हैं ॥

इत्यजन्ताः स्त्रीलिंगाः ।

अजन्तनपुंसकलिंगाः ।

ज्ञानशब्द ।

प्रथमा ज्ञान+सु–

(२९८) अतोऽम्[१] । ७ । १ । २४ ॥

अतोऽङ्गात्क्लीबात्स्वमोरम् ।

अकारान्त नपुंसकलिंग अङ्गसे परे सु और अम् प्रत्यय आवें तो उनके स्थानमें अम् आदेश हो । ज्ञान+अम्=ज्ञानम (१९४) ज्ञान+औ–

---

१ अमोऽम्विधानं लुङ् मा भूदित्यर्थम् ।

(२५९) नपुंसकाच्च । ७ । १ । १९ ॥

क्लीबादौङः शी स्यात् ॥

नपुंसकलिङ्ग अङ्गसे परे औङ् (१४०) के स्थानमें शी हो.
ज्ञान+शी=ज्ञान+ई (१९९) । (१८९), (१८३) से ज्ञानकी भसंज्ञा हुई।

(२६०) यस्येति च । ६ । ४ । १४८ ॥

ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः ॥

इत्यकारलोपे प्राप्ते ।

ईकार अथवा तद्धित प्रत्यय परे हो तो भसंज्ञक अङ्गके इवर्ण, अवर्णका लोप हो।
ज्ञान+ई इसमें नके अन्तर्गत अकारका लोप प्राप्त हुआ । परन्तु-

(२६१) औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः ॥

वार्तिककार कहते हैं कि औङ्के स्थानमें जो शी (२९९) आदेश, सो परे रहते लोप विधि (२६०) का निषेध हो । ज्ञान+ई=(३९) से ज्ञाने ।

ज्ञान+जस्-

(२६२) जश्शसोः शिः । ७ । १ । २० ॥

क्लीबादनयोः शिः स्यात् ॥

नपुंसकलिङ्गसे परे जस् तथा शस् आवें तो उनके स्थानमें शी आदेश हो । ज्ञान+शि=

(२६३) शि सर्वनामस्थानम् । १ । १ । ४२ ॥

शि इत्येतदुक्तसंज्ञं स्यात् ॥

शिकी सर्वनामस्थानसंज्ञा हो ।

(२६४) नपुंसकस्य झलचः । ७ । १ । ७२ ॥

झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात सर्वनामस्थाने ।

सर्वनामस्थान प्रत्यय परे हुए संते झलंत तथा अजंत नपुंसकलिंगको नुमका आगम हो ।

(२६५) मिदचोऽन्त्यात्परः । १ । १ । ४७ ॥

अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित्स्यात् ।

अचोंके मध्यमें जो अन्त्य अच् हो उससे परे उसीके अन्तका अवयव मित् (जिस आगमका मकार इत् संज्ञक हो सो) हो ।

---

१ अचोंके मध्यमें जो अन्त्य अच् उससे परे मित् हो और जिस समुदायको मित् विधान किया है उसीका अन्तावयव हो ।

नुम्मेंसे उम्का लोप होकर न् शेष रहा, ज्ञानमें नके अन्तर्गत अन्त्य अच् (अ) से परे नुम्का आगम होकर नुम्का नकार ज्ञान शब्दका अवयव होगया ।

=ज्ञानन्+शि=ज्ञानान्+इ=ज्ञानानि ।

द्वि०	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
तृ०	ज्ञानेन	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः
च०	ज्ञानाय	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
पं०	ज्ञानात्	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानेभ्यः
ष०	ज्ञानस्य	ज्ञानयोः	ज्ञानानाम्
स०	ज्ञाने	ज्ञानयोः	ज्ञानेषु
सं०	हे ज्ञान	हे ज्ञाने	हे ज्ञानानि

एङ्ह्रस्वादिति हल्मात्रलोपः (१९३) हल्मात्रका संबोधनमें लोप हुआ । **एवं धनवनफलादयः ।**

इसी प्रकार **धन वन फल** इत्यादि शब्दोंके रूप जानने ।

कतर (कौन)

प्रथमा कतर+सु–

(२६६) अद्डतरादिभ्यः पंचभ्यः । ७ । १ । २५ ॥

एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्डादेशः स्यात् ।

डतर डतम अन्य अन्यतर और इतर इन पांच नपुंसकलिंगोंसे परे सु तथा अम् आवें तो इनके स्थानमें अद्ड् आदेश हो ।

किम् शब्दसे डतर प्रत्यय होकर कतर रूप हुआ उससे परे सु आया उसके स्थानमें अद्ड् आदेश होकर अद्ड्मेंसे अद् शेष रहा और (१६५) अद्के दकारको तकार आदेश होकर (१८९) से भसंज्ञा हुई.

(२६७) टेः । ६ । ४ । १४३ ॥

डिति भस्य टेर्लोपः ।

भसंज्ञक अंगसे परे डित् प्रत्यय आवे तो अंगकी टि (९२) का लोप हो ।

प्रथमा । द्वितीया । कतर+अत्=कतरत्–द् कतरे कतराणि (२६२,२६४,२६५)

संबोधन । हे कतरत्–द्　　हे कतरे　　हे कतराणि

शेष रूप सर्व शब्दके समान जानना ।

इसी प्रकार **कतमत् इतरत् अन्यत्** और **अन्यतरत्** शब्दोंके रूप जानने । तथा **अन्यतमके** रूप ज्ञान शब्दके समान जानने । **अन्यतमशब्दस्य अन्यतममित्येव ।** अन्यतम शब्दका तो अन्यतमम् ऐसा ही रूप होता है, डतम प्रत्ययान्त न होनेसे (२६६) का कार्य नहीं होता ।

(२६८) एकतरात्प्रतिषेधः ॥

एकतर शब्दसे परे सु और अम्को अद्ड् आदेश न हो । एकतरम् एकतरे एकतराणि । शेषं सर्ववत् ।

नपुंसकलिंग आकारान्त **श्रीपा** शब्द (लक्ष्मीका पालनेवाला)

(२६९) ह्रस्वो[1] नपुंसके[2] प्रातिपदिकस्य । १ । २ । ४७ ॥

क्लीबे प्रातिपदिकस्याजन्तस्य ह्रस्वःस्यात् ।

नपुंसकलिंगमें जो प्रातिपदिकके अन्तमें दीर्घ अच् हो उसके स्थानमें ह्रस्व हो । **(ज्ञानवत्)** श्रीपाके स्थानमें श्रीप हुआ तब इसके रूप ज्ञानशब्दके समान हुए । श्रीपम् श्रीपे श्रीपाणि इत्यादि ॥

वारि शब्द (जल)

प्रथमा । वारि+सु–

(२७०) स्वमोर्नपुंसकात् । ७ । १ । २३ ॥

क्लीबात् स्वमोर्लुक् स्यात् । ७ । १ । २३ ॥

अकारान्त शब्दोंको छोडकर शेष नपुंसकलिंग शब्दोंसे परे सु तथा अम् प्रत्ययका लोप हो । वारि, वारि+औ=वारि+शी (२६९)=वारि+ई–

(२७१) इकोऽचि विभक्तौ । ७ । १ । ७३ ॥

इगन्तस्य क्लीबस्य नुमचि विभक्तौ ।

इगन्त नपुंसकलिंगशब्दसे परे अजादि विभक्ति आवे तो उसे नुमका आगम हो । वारिन्+ई=वारिणी (१९७) वारीणि (२६२, २६३, १९७, १९७)

सम्बो०–हे वारि+सु+(२७०) से सुका लोप हुआ परन्तु (१८९) से गुण प्राप्त होकर (२१०) सूत्र लगकर (२११) से निषेध पाया तथापि । **न लुमतेत्यस्यानित्यत्वात् पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः।** कोई वैयाकरण ' न लुमतांगस्य २११' इस सूत्रको नित्य नहीं मानते इससे पक्षमें (२१०) सम्बुद्धिनिमित्तक कार्य (१८९) होगा.

हे वारि, हे वारे, हे वारिणी हे वारीणि ।

द्वि०वारि वारिणी वारीणि तृ० वारिणा (१९१) वारिभ्याम् वारिभिः

च०वारि+ए (ङे) **घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते । वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन।** ' घेर्ङिति ' इस (१९२) से गुण प्राप्त हुआ (२०२) वृद्धि (१९४) औत्व (२२४) तृज्वद्भाव इन सबको बाधकर (१३२) से पूर्वविप्रतिषेध मानकर नुम्

---

१ ' एकाजुत्तरपदे णः ' इति णत्वम् ।

२ " इकोऽचि विभक्तौ " इति सूत्रस्थमज्ग्रहणमिह लिंगम् । हलादौ सत्यपि नुमि नलोपेन सिद्धेः, नच सबुद्धौ ' न ङिसंबुद्ध्योः ' इति निषेधान्नलोपो न स्यादिति तदर्थमज्ग्रहणमिहावश्यकामिति वाच्यम्, संबुद्धेर्लुका लुप्तत्वेन प्रत्ययलक्षणाभावेन विभक्तिपरत्वाभावादेव तत्र नुमोऽप्रवृत्तोरिति व्यर्थं सत् तत्सूत्रानित्यत्वं ज्ञापयति ।

(२७१) हो। वारिन्+ए=वारिणे, और **नुमाचिरेति नुट्।** आम् परे रहते नुट् (२३१, १६७) से वारीणाम्। (१६८) यह षष्ठीका बहुवचन है। **हलादौ हरिवत्।** हलादि विभक्ति परे रहते हरिवत् रूप जानने।

च०	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः	**ष०**	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
पं०	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः	**स०**	वारिणि	वारिणोः	वारिषु

इकारान्त **दधि** शब्द (दही)

प्र०	दधि[२७]	दधिनी[२५१]	दधीनि[२७१] (२६२, २६३, २६४)
द्वि०	दधि	दधिनी	दधीनि
तृ०	दधि+आ (टा)		

(२७२) अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः[६] । ७ । १ । ७५ ॥

एषामनङ् स्याट्टादावचि।

अस्थि, दधि, सक्थि (जंघा) और अक्षि इन शब्दोंको टा आदि अजादि विभक्ति परे रहते उदात्त अनङ् आदेश हो।

दध्+अन्+आ=(२७२)

(२७३) अल्लोपोऽनः । ६ । ४ । १३४ ॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः।

जो अन् अंगका अवयव हो उससे परे सर्वनामस्थानको त्यागकर यकारादि वा अजादि सुआदि प्रत्यय परे हो तो अन्के अकारका लोप हो।

दध् न्+आ=दध्न्+आ=

तृ०	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः	**ष०**	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
च०	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः	**स०**	दध् अन् इ (२७३) से नित्य लोप पाया–		
पं०	दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः				

(२७४) विभाषा ङिश्योः । ६ । ४ । १३६ ॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा स्यात् ङिश्योः परयोः।

सर्वनामस्थान जिससे परे न हो ऐसा जो अंगका अवयव अन् तिसके अकारका लोप विकल्प करके हो ङि शी विभक्ति परे हुए सन्ते। दध्नि, लोपाभावपक्षमें–

---

१ नुमि सति तस्याङ्गभक्तत्वेनानजन्तत्वान्नामीति दीर्घो न स्यादिति नुटो विधिः।

दधनि दध्नोः दधिषु । सं० हे दधे हे दधि, हे दधिनी हे दधीनि ।
एवम् अस्थि सक्थ्यक्षि । इसी प्रकार अस्थि सक्थि और अक्षिशब्दोंके रूप जानने ।

ईकारान्त नपुंसकलिंग **सुधी** शब्द (श्रेष्ठबुद्धिवाला)

प्र० सुधि[२६९] सुधिनी सुधीनि—**द्वि०** सुधि सुधिनी सुधीनि
सुधी+टा—

तृतीयादिषु भाषितपुंस्कम्पुंवद्गालवस्य[१] । ७ । १ । ७४ ॥

प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद्वा टादावचि ।

पुँल्लिंगमें कथित इगन्त नपुंसकलिंग शब्दप्रवृत्तिके निमित्तकी एकतामें पुँल्लिंगके सदृश हो टा आदि अच् परे रहते गालव आचार्यके मतमें ॥

प्रवृत्तिके निमित्तकी एकता यह—जो तीनों लिंगोंमें एक अर्थ दे, जैसे सुधीके[२] अर्थ तीनों लिंगोंमें शोभन बुद्धिवाले हैं, यही प्रवृत्तिके निमित्तकी एकता है । पीलु शब्द ऐसा नहीं, वह पुँल्लिंगमें वृक्ष और नपुंसकमें फलके अर्थको लेकर प्रवृत्त होता है ।

तृ० सुधिना[१९१] सुधिया[२२०], सुधिभ्याम् सुधिभिः
च० सुधिने[२२०] सुधिये, सुधिभ्याम् सुधिभ्यः
पं० सुधिनः सुधियः, सुधिभ्याम् सुधिभ्यः
ष० " " सुधिनोः, योः, सुधीनाम् सुधियाम्
स० सुधिनि सुधियि,सुधिनोःसुधियोः, सुधिषु
सं० हे सुधे हे सुधि, हे सुधिनी हे सुधीनि ।

नपुंसकलिंग ऋकारान्त **धातृ**[३]शब्द.

प्र० धातृ धातृणी[२३५] धातॄणि
द्वि० धातृ धातृणी धातॄणि
तृ० धातृणा[२७१] धात्रा[२१], धातृभ्याम् धातृभिः
च० धातृणे धात्रे, धातृभ्याम् धातृभ्यः
पं० धातृणः धातुः[२३९], धातृभ्याम् धातृभ्यः
ष० धातृणः धातुः[२३९], धातृणोः—त्रोः, धातॄणाम्
स० धातृणि धातरि[२३५] धातृणोः—त्रोः, धातृषु
सं० हे धातः[१९९] हेधातृ, हेधातृणी हे धातॄणि

इसी प्रकार **ज्ञातृ**[४] आदि शब्दोंके रूप जानने । उकारान्त **मधु**[५] (शहद) शब्द.

---

१ वाच्यत्वे सति वाच्यवृत्तित्वे सति वाच्योपस्थितौ प्रकारतया भासमानत्वं प्रवृत्तिनिमित्तत्वम् । प्रवृत्ति-शब्दकी अर्थमें प्रवृति उसका निमित्त–अर्थ उसकी एकता होनेपर यानी वह एक हो तो कहा है पुँल्लिंग जिसने ऐसा इगन्त क्लीब विकल्पसे पुंवत् हो टादि अच् परे रहते । " यन्निमिमुपादाय पुंसि शब्दः प्रतर्तते क्लीबवृत्ति तदेव स्यादुक्तपुंस्कं तदुच्यते " ॥

२ शोभनज्ञानवत्त्वं प्रवृत्तिनिमित्तं तच्च पुंसि क्लीबे चैकमेवेति भवति पुंवद्भावः, तेन ह्रस्वनुमोरभाव इति ज्ञेयम् ।

३ धारणकर्तृत्वं प्रवृत्तिनिमित्तं पुंसि क्लीबे चैकमेवेति पुंवत्त्वम् ।

४ ज्ञानवत्त्वं प्रवृत्तिनिमित्तं पुंसि क्लीबे च समानमेवेति पुंवत्त्वम् ।

५ वसन्ताद्यर्थबोधको मधुशब्दः पुंसि,पुष्परसाद्यर्थवाची च क्लीब इति नैकं प्रवृत्तिनिमित्तमिति नैव पुंवत्त्वम् ।

प्र०	मधु	मधुनी	मधूनि	पं०	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
द्वि०	मधु	मधुनी	मधूनि	ष०	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
तृ०	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः	स०	मधुनि	मधुनोः	मधुषु
च०	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः	सं०	हे मधो हे मधु,	हे मधुनी	हे मधूनि

इसी प्रकार **सुल्लू**[1] शब्द । (२६९) से लू के अन्तर्गत ऊ को ह्रस्व होकर सुलु हुआ, सुलु सुलुनी सुलुनि सुलुना–सुल्वा इत्यादि ॥ २७४ ॥

(२७५) एच[2] इग्घ्रस्वादेशे[1] । १ । १ । ४८ ॥

आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु मध्ये एच इगेव स्यात् ।

जब एच् (ए ओ ऐ औ) को ह्रस्व आदेश हो तब उसे अनुक्रमसे ह्रस्व इक् (इ उ) हो अर्थात् ए ऐ को इ और ओ औ को उकार हो ॥ २७५ ॥

ओकारान्त **प्रद्यो**[3] शब्द यहां ओकारके स्थानमें ह्रस्व उकार होकर प्रद्यु रूप हुआ, तब प्रद्यु प्रद्युनी प्रद्युनि प्रद्युना इत्यादि रूप मधुवत् जानने ।

नपुंसकलिंग ऐकारान्त प्रै[3] शब्द (जिसके पास बहुत द्रव्य है)।

(२७५) से रै के अन्तर्गत ऐके स्थानमें ह्रस्व इकार हुआ तब प्ररि हुआ तब इसके रूप वारिवत् हुए.

प्र० प्ररि प्ररिणी प्ररीणि । **द्वि०** प्ररि प्ररिणी प्ररीणि

एकदेशविकृतमनन्यवत् । एकदेशके विकारसे वस्तु दूसरी नहीं होजाती, जैसे कुत्तेकी पूँछ काटनेसे कुत्तेका कुत्तापन नहीं जाता रहता, ऐसे पूर्व (१८१) में कह आये हैं, इसी प्रकार प्रै शब्दको प्ररि विकार होने पर भी प्रै मूलरूप न जाता रहा, इस कारण जैसे (२३९) सूत्रसे हलादि विभक्ति भ्याम् और भिस् परे रहते पुंल्लिंगमें रैके अन्तर्गत ऐकारको आकार आदेश हुआ है, इसी प्रकार नपुंसकमें यहां प्ररिके इकारको आकार हुआ तो प्राभ्याम् प्राभिः यह रूप बदले । यथा–

तृ०	प्ररिणा	प्रराभ्याम्	प्रराभिः	ष०	प्ररिणः	प्ररिणोः	प्ररीणाम्
च०	प्ररिणे[२७१]	प्रराभ्याम्	प्रराभ्यः	स०	प्ररिणि	प्ररिणोः	प्रराम्रु
पं०	प्ररिणः	प्रराभ्याम्	प्रराभ्यः	सं०	हे प्रे–रि	हे प्ररिणी	हे प्ररीणि

१ शोभनलवनकर्तृत्वं प्रवृत्तिनिमित्तं पुंसि क्लीबे चैकमेवेति भवति पुंवद्भावः ।

२ एचां पूर्वभागोऽवर्णसदृश उत्तररस्त्विवर्णोवर्णसदृश इति ' ह्रस्वो नपुंसके '–इति सूत्रेण भवन् ह्रस्वः पूर्वभागसादृश्यमादाय कदाचिदकारोऽपि स्यात् स मा भूदिति सूत्रमिदं प्रारभ्यते ।

३ यद्यपि प्रकृष्टस्वर्गवत्त्वं प्रकृष्टधनवत्त्वं च प्रवृत्तिनिमित्तं पुंसि क्लीबे चैकमेव, तथापि योऽसौ भाषितपुंस्को नासौ क्लीबः, यश्च क्लीबो नासौ भाषितपुंस्क इत्युभयत्रापि (प्रद्योशब्दे, प्रैशब्दे च) नैव पुंवत्त्वम् ।

औकारान्त **सुनौ** शब्द (२७९) से नौके अन्तर्गत औके स्थानमें उकार हो सुनु रूप होकर मधुवत् रूप जानने (२७९) सुनु सुनुनी सुनूनि, सुनुना, हे सुनो हे सुनु ।

॥ इत्यजन्ता नपुंसकलिंगाः ॥

अथ हलन्ताः पुँल्लिङ्गाः ।

लिह् (चाटनेवाला)

प्र० लिह+सु-

(२७६) हो ढः । ८ । २ । ३१ ।

हस्य ढः स्यात् झलि पदान्ते च ।

हकार पदान्तमें वर्तमान होय अथवा उससे परे झल् होय तो हके स्थानमें ढकार हो। लिढ+(१९९) लिड् (८२) अथवा लिट् (१६९)

	लिहौ	लिहः	पं०	लिहः	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः
द्वि०	लिहम्	लिहौ	लिहः	ष०	लिहः	लिहोः	लिहाम्
तृ०	लिहा	लिड्भ्याम्	लिड्भिः	स०	लिहि	लिहोः	लिट्सु लिट्त्सु
च०	लिहे	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः	संबो०	हे लिट्-ड्	हे लिहौ	हे लिहः

दुह् शब्द[1] (दुहनेहारा)

प्र०दुह्+स्-(सु)

(२७७) दादेर्धातोर्घः । ८ । २ । ३२ ॥

झलि पदान्ते चोपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः ।

झल् परे रहते अथवा पदान्त विषयमें उपदेश (९) में जो दकारादि धातु तिसके हकारको घकार हो ।

दुघ्+स्-

१ शोभननौवत्त्वस्य प्रवृत्तिनिमित्तस्यैक्येऽपि यदिगन्तं न तद्भाषितपुंस्कं यच्च भाषितपुंस्कं न तदिगन्तमिति पुंवद्भावाभावः ।

२ अनडुह् (२८४) शब्दमें यह सूत्र नहीं लगता, क्योंकि वहाँ आम् और नुम् होनेपर संयोगान्त लोप बाधक हो जाता है ।

(२७८) एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः। ८। २। ३७॥

धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष् से ध्वे पदान्ते च।

पदान्तके विषे स् तथा ध्व परे हुए सन्ते धातुका अवयव जो एकाच् झषन्त तिसका अवयव जो बश् तिसके स्थानमें भष् हो।

दुघ् शब्दमें दु धातुका अवयव है इसमें उ एक अच्वाला बश् है उसके अन्तमें झष् में घ् है उससे परे स् है तो दकारके स्थानमें झष् ध् हुआ—धुघ्+स् (८२) से घ् झल् है उसके स्थानमें जश्का ग् हुआ फिर (१६५) से ग् झल् है उसके स्थानमें चर् क् विकल्प करके हुआ धुग् अथवा धुक् (१९९)

प्र० धुग्—क्	दुहौ	दुहः	पं० दुहः	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः
द्वि० दुहम्	दुहौ	दुहः	ष० दुहः	दुहोः	दुहाम्
तृ० दुहा	धुग्भ्याम् [२७८,२१]	धुग्भिः [१३८२]	स० दुहि	दुहोः [२७७ २ ९०]	धुक्षु [२६६]
च० दुहे	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः	सं० हे धुग्—क् हे दुहौ		हे दुहः

द्रुह् (द्रोही)

(२७९) वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम्। ८। २। ३३॥

एषां हस्य वा घो झलि पदान्ते च।

द्रुह्, मुह् (मोह करना) ष्णुह् (वमन करना) ष्णिह्; (स्नेह करना) इन धातुओंके हकारको विकल्प करके घ् हो झल् परे रहते वा पदान्तमें।

प्र०द्रुघ्+(सु) ध्रुघ्+स्—[२७८]

(२७९) से ह्के स्थानमें विकल्प करके घ् जब न हुआ तो (२७६) से द् हुआ घ्के स्थानमें ग् और ग् के स्थानमें (१३९) से विकल्प कर क् हुआ।

ध्रुक्—ग्=ट्—ड् [१६५]	द्रुहौ	द्रुहः	पं० द्रुहः	ध्रुग्—ड्-भ्याम्	ध्रुग्—ड्-भ्यः
द्वि० द्रुहम्	द्रुहौ	द्रुहः	ष० द्रुहः	द्रुहोः	द्रुहाम्
तृ० द्रुहा	ध्रुग्—ड्—भ्याम्	ध्रुग्—ड्—भिः	स० द्रुहि	द्रुहोः	ध्रुट्त्सु [१०२] ध्रुट्सु ध्रुक्षु
च० द्रुहे	ध्रुग् ड् भ्याम्	ध्रुग्—ड्—भ्यः	सं० हे ध्रुक्—ग्—ट्—ड्, हे द्रुहौ		हे द्रुहः

इसी प्रकार **मुह्के** रूप जानने।

ष्णुह्।

प्र० ष्णुह्+स् (सु) (१९९)

---

१ धातु कौन ? दुघ्, उसका अवयव एकाच् झषन्त कौन ? उघ्, उसका अवयव बश् कौन ? कोई नहीं। अगर ऐसा कहें धातुका अवयव एकाच् 'दु' है और उसका अवयव बश् 'द्' है, पर वह (दु) भषन्त नहीं, इससे यहां व्यपदेशिवद्भावसे ही भष्भाव समझना चाहिये। "अमुख्ये मुख्यव्यवहारो व्यपदेशिवद्भावः।" 'दुघ्' इस समुदायको ही यहाँ धातु और धातुका अवयव समझा जाता है।

(२८०) धात्वादेः षः सः । ६ । १ । ४५ ॥

धातोः आदेः षस्य सः स्यात् ।

धातुके आदि षकारके स्थानमें स हो ।

जब षकारको सकार हुआ तो इसी प्रकार णके स्थानमें नकार होकर स्नुह्+स् हकारके स्थानमें घ् विकल्प करके हुआ पक्षमें ढ् हुआ.

घ् के स्थानमें ग् ग्के स्थानमें विकल्प करके क् हुआ.

प्र०	स्नुक्-ग्-ट्-ड्	स्नुहौ	स्नुहः	**पं०**	स्नुहः	स्नुग्-ड्-भ्याम्	स्नुग्-ड्-भ्यः
द्वि०	स्नुहम्	स्नुहौ	स्नुहः	**ष०**	स्नुहः	स्नुहोः	स्नुहाम्
तृ०	स्नुहा	स्नुग्-ड्-भ्याम्	स्नुग्-ड्-भिः	**स०**	स्नुहि	स्नुहोः	स्नुट्त्सु स्नुट्सु स्नुक्षु
च०	स्नुहे	स्नुग्-ड्-भ्याम्	स्नुग्-ड्-भ्यः	**सं०**	हे स्नुक्-ग्-ट्-ड्	हे स्नुहौ	हे स्नुहः

इसी प्रकार **स्निह्** शब्दके रूप जानने ॥

विश्ववाह् शब्दके (सब संसारका धारण करनेवाला) (२७६) से ह् के स्थानमें ढ् फिर उस (८२) से ड् फिर विकल्प करके ट् (१६९) से हुआ । **प्र०** विश्ववाट्-ड् । विश्ववाहौ । विश्ववाहः । **द्वि०** विश्ववाहम् । विश्ववाहौ । विश्ववाह्+अस्-

(२८१) इग्यणः सम्प्रसारणम्[१] । १ । १ । ४५ ॥

यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स सम्प्रसारणसंज्ञः स्यात् ।

यण्के स्थानमें जो इक् किया गया है उसकी संप्रसारणसंज्ञा हो ।

(२८२) वाह ऊठ् । ६ । ४ । १३२ ॥

भस्य वाहः सम्प्रसारणमूठ्[२] ।

भसंज्ञक जो वाह् शब्द तिसको संप्रसारण ऊठ् हो ।

(१८९) से विश्ववाह् शब्द भसंज्ञक है और (२७१) से विश्ववाह् शब्दान्तर्गत वकार यण् है इससे व् के स्थानमें ऊठ् हुआ । ऊठ्का+ठ् इत्संज्ञक है तो विश्व ऊ आह्+अस्-

(२८३) सम्प्रसारणाच्च । ६ । १ । १०८ ॥

सम्प्रसारणादचि पूर्वरूपमेकादेशः ।

संप्रसारणसे परे अच् हो तो पूर्वपरके स्थानमें पूर्वरूप एकादेश हो ।

---

१ 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इति न्यायात् ।

२ वाह् शब्दान्त जो भसंज्ञक अङ्ग, उसका अवयव जो वाह् शब्द, उसको संप्रसारण भावी ऊठ् हो । ऐसा अर्थ करनेसे अन्योन्याश्रय दोष हट जाता है । अन्यथा जब ऊठ् हो ले तब संप्रसारण संज्ञा होवे और जब संज्ञा हो जावे तब ऊठ् होवे इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष बनाही रहता है ।

इससे आ ऊरूप हुआ। विश्व ऊह+अस् (४२) से श्व अन्तर्गत अकारसे परे ऊठ् इसको (४२) से औ एकादेश हुआ अ में ह् मिला सकारको विसर्ग हुआ–विश्वौहः ।

तृ० विश्वौहा; मिश्वैर्वाड्भ्याम् विश्ववाड्भिः | ष० विश्वौहः विश्वौहोः विश्वौहाम्
च० विश्वौहे, विश्ववाड्भ्याम् विश्ववाड्भ्यः | स० विश्वौहि विश्वौहोः विश्ववाट्त्सु-ट्सु ।
पं० विश्वौहः, विश्ववाड्भ्याम् विश्ववाड्भ्यः | सं० हे विश्ववाड्-ट् हे विश्ववाहौ हेविश्ववाहः॥

अनडुह्शब्द (बैल)

प्र० अनडुह्+ (सु)

(२८४) चतुरनडुहोरामुदात्तः। ७। १। ८२॥

अनयोराम् स्यात्सर्वनामस्थाने परे।

चतुर् और अनडुह् शब्दको सर्वनामस्थान परे रहते आम् आगम हो।

(२६१) आम् मित् है उसका शेष भाग अनडु अन्तर्गत उसे परे हुआ–अनडु+ आह्+स् (सु)

(२८५) सावनडुहः। ७। १। ९९॥

अस्य नुम् स्यात् सौ परे।

अनडुह् शब्दसे परे सु प्रत्यय आवे तो नुम (न्) का आगम हो। (२६१) से नुमका नकार आनेपर हुआ अनडु+आन्+ ह्+ स् (१९९) से सु (स्) का लोप हुआ (२६) से हकारका लोप हुआ नकार प्रातिपदिकके अन्तमें है, यहां (२००) सूत्र लगता परन्तु (२६) से हकारका लोप होकर (३९) से असिद्ध होकर नकारका लोप न हुआ.

अनडु+आन्=डुके उकारके स्थानमें यण् व् हुआ.

अनड्वान् अनड्वाहौ अनड्वाहः। सं० हे अनडुह्+सु–

(२८६) अम् सम्बुद्धौ। ७। १। ८३॥

चतुरः अनडुहश्च अम् स्यात् सम्बुद्धौ।

चतुर् और अनडुह् शब्दको अम्का आगम हो सम्बुद्धिका प्रत्यय परे हो तो। हे अन-डुह्+सु इसमें प्रथमाके एकवचनके अनुसार आम् आदेश होता, परन्तु उसके बदले संबोध-नमें अम हुआ।

सं० हे अनड्वन् हे अनड्वाहौ हे अनड्वाहः। द्वि० अनड्वाहम् अनड्वाहौ अनडुहः। तृ० अनडुहा। अनडुह्+भ्याम्–

(२८७) वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः। ८। २। ७२॥

सान्तवस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात्पदान्ते।

सान्त (सकारान्त) वसुप्रत्ययान्त तथा स्रंसु (गिरना) ध्वंसु (नीचे गिरना) और अनडुह् इन शब्दोंको पदान्तमें दकार आदेश हो ।

(१८४) अनडुह्की पद संज्ञा हुई तो । अनडुद्भ्याम् अनडुद्भिः ।

च०	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः	**ष०**	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
पं०	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः	**स०**	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु

सान्तेति किम् ? सकारान्त वसु प्रत्ययान्त क्यों कहा ? इसका कारण यह है कि **'विद्वान्'** यह वसु प्रत्ययान्त तो है परन्तु सान्त नहीं है, इस कारण यहां दकार नहीं हुआ ।

पदान्ते किम् ! पदान्त क्यों कहा ? **स्रस्तम् ध्वस्तम्** । यहां पदान्त नहीं है,इससे दकार न हुआ ।

तुरासाह् शब्द (इन्द्र)

प्र० तुरासाह् स् (सु)

(२७६) से ह् के स्थानमें ढ् हुआ फिर उसे (८२) से ड् विकल्प करके ट् (१६१) से हुआ फिर (१९९) से सकारका लोप होकर तुरासाड्–ट् रूप सिद्ध हुआ.

(२८८) सहेः साडः सः । ८ । ३ । ५६ ॥

साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्धन्यादेशः स्यात् ।

साड्रूप (जो हके स्थानमें ड् ट् हुआ है) सह् धातुके सकारके स्थानमें मूर्द्धन्य ष आदेश हो ।

प्र०	तुराषाड्–ट्	तुरासाहौ	तुरासाहः	**पं०**	तुरासाहः	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भ्यः
द्वि०	तुरासाहम्	तुरासाहौ	तुरासाहः	**ष०**	तुरासाहः	तुरासाहोः	तुरासाहाम्
तृ०	तुरासाहा	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भिः	**स०**	तुरासाहि	तुरासाहोः	तुराषाट्त्सु-ट्सु
च०	तुरासाहे	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भ्यः	**सं०**	हे तुराषाट्-ड्	हे तुरासाहौ	हे तुरासाहः

सुदिव् शब्द (श्रेष्ठ स्वर्गवाला)

प्र० सुदिव्+स् (सु)

(२८९ (दिव औत् । ७ । १ । ८४ ॥

दिव् इति प्रातिपदिकस्यौत्स्यात्सौ परे ।

दिव् प्रातिपदिकसे परे सु प्रत्यय आवे तो दिव्को औत् आदेश हो । ' अलोऽन्त्यस्य ' करके व् के स्थानमें औ आदेश हुआ तब सुदि+औ+ स् (२१) से इक्के स्थानमें यण् होकर सकारको विसर्ग हुआ.

---

१ प्रश्न–अनड्वाहौ, आदिको छोड़ कृदन्तमें क्यों पहुँचे ? उ०–पदान्तग्रहणाभावमें यहां ' झलि ' इस पदका सम्बन्ध होता है, इसलिये दूर पहुँचे ॥

प्र०	सुद्यौः	सुदिवौ	सुदिवः
द्वि०	सुदिवम्	सुदिवौ	सुदिवः

तृ० सुदिवा　　सुदिव्+भ्याम्–

(२९०) दिव उत् । ६ । १ । १३१ ॥

दिवोऽन्तादेश उकारः स्यात् पदान्ते ।

पदान्तमें दिव् शब्दको उकार अन्तादेश हो ।
व्के स्थानमें उ हुआ, पीछे दि अन्तर्गत इ (इक्) के स्थानमें यण्का य् हुआ,

		सुद्युभ्याम्	सुद्युभिः
च०	सुदिवे	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
पं०	सुदिवः	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
ष०	सुदिवः	सुदिवोः	सुदिवाम्
स०	सुदिवि	सुदिवोः	सुद्युषु
सं०	हे सुद्यौः	हे सुदिवौ	हे सुदिवः ॥

चतुर् शब्द (चार) बहुवचनान्त ।

प्र० ब० चतुर्+अस्=चतु आर् (२८४)+अस् (२१) से यण् उको व्=चत्वारः
द्वि० ब० चतुरः । **तृ० ब०** चतुर्भिः । **च० पं० ब०** चतुर्भ्यः **ष० ब०** चतुर्+आम्–

(२९१) षट्चतुर्भ्यश्च । ७ । १ । ५५ ॥

एभ्य आमो नुडागमः ।

षट् (३२४) संज्ञक और चतुर् शब्दसे परे आम् प्रत्यय आवे तो प्रत्यको नुट्का आगम हो । नुट्का न् (१०३) से आम्के पूर्व हुआ, चतुर् न्+आम्–

(२९२) रषाभ्यां नो णः समानपदे । ८ । ४ । १ ॥

एकपदस्थाभ्यां रषाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात् ।

रेफ और षकारसे परे एकपदमें नकार आवे तो उसको णकार हो । चतुर्+ण्+आम्= चतुर्णाम् ।

(२९३) अचो रहाभ्यां द्वे । ८ । ४ । ४६ ॥

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः ।

अच्से परे रेफ हकार हो उससे परे यर् हो तो यर्को विकल्प करके द्वित्व हो । चतुर्ण्णाम् **स० ब०** चतुर्+सु (सुप्)

(२९४) रोः सुपि । ८ । ३ । १६ ॥

सप्तमीबहुवचने परे रोः एव विसर्गः नान्यस्य ।

रुसे परे सप्तमी बहुवचन प्रत्यय आवे तो रुके स्थानमें विसर्ग हो केवल रेफके स्थानमें नहीं हो । तो (१११) से विसर्ग न हुआ, क्योंकि चतुर् शब्दमें रेफ र् है (१२४) से

रुको विसर्ग होता है यहां न होनेसे न हुआ तब चतुर्+सु रूप रहा (१६९) से सुके स्थानमें षु और (२९३) से षकारको द्वित्व पाया परन्तु-

(२९५) शरोऽचि ।८।४।४९॥

अचि परे शरो न द्वे स्तः ।

शर् प्रत्याहारसे अच् परे हो तो शर्को द्वित्व न हो । चतुर्षु ।

सं० हे चत्वारः ॥

प्रशाम् शब्द (अतिशान्त)-

प्र० प्रशाम्+स् (सु) (१९९) से सकारका लोप, (२०) से पद संज्ञा हुई ।

(२९६) मो नो धातोः ।८।२।६४॥

धातोर्मस्य नः पदान्ते ।

पदान्तमें धातुके मकारको नकार हो ।

प्र० प्रशान्	प्रशामौ	प्रशामः	**पं०** प्रशामः	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भ्यः
द्वि० प्रशामम्	प्रशामौ	प्रशामः	**ष०** प्रशामः	प्रशामोः	प्रशामाम्
तृ० प्रशामा	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भिः	**स०** प्रशामि	प्रशामोः	प्रशान्सु त्+सु ।
च० प्रशामे	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भ्यः	**सं०** हे प्रशान्	हे प्रशामौ	हे प्रशामः

किम् शब्द (कौन)

प्र० किम्+स्-

(२९७) किमः कः ।७।२।१०३॥

किमः कः स्यात् विभक्तौ ।

विभक्ति परे हुए सन्ते किम् शब्दको क आदेश हो । क+स्=पुँल्लिङ्ग सर्व शब्दके समान रूप हुए.

प्र० कः	कौ	के	**पं०** कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
द्वि० कम्	कौ	कान्			
तृ० केन	काभ्याम्	कैः	**ष०** कस्य	कयोः	केषाम्
च० कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः	**स०** कस्मिन्	कयोः	केषु

त्यद् आदि (२१३) का सम्बोधन नहीं होता ।

इदम् शब्द (यह)

प्रथमा । इदम्+स् (२१३) से म्के स्थानमें अकार प्राप्त हुआ परन्तु-

(२९८) इदमो मः । ७ । २ । १०८ ॥ सौ ॥

इदम् शब्दसे सु प्रत्यय आवे तो मकारको म्ही आदेश हो । **त्यदाद्यत्वापवादः ।** ' त्यदादीनामः ' इसका अपवाद सूत्र है ।

(२९९) इदोऽय् पुंसि । ७ । १ । १११ ॥

इदम इदोऽय् सौ पुंसि ।

पुँल्लिङ्गवाचक इदम् शब्दसे परे सु प्रत्यय आवे तो इद् भागके स्थानमें अय् आदेश हो । अय्+अस्=स् यकार अमें मिला (१९९) से सकारका लोप हुआ । अयम् । इदम्+औ इद् अ अ (२१३)+औ–

(३००) अतो गुणे । ६ । १ । ९७ ॥

अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः ।

अपदान्त असे गुण परे आवे तो पूर्वपरके स्थानमें पररूप एकादेश हो ।

द अन्तर्गत असे परे अ गुण है तो पूर्व परके स्थानमें पररूप अ एक आदेश हुआ इद+औ–

(३०१) दश्च । ७ । २ । १०९ ॥

इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ ।

इदम् शब्दसे परे विभक्ति प्रत्यय आवे तो दकारके स्थानमें मकार हो ।

इम+औ=इमौ, इमे[१७१] **द्वि०** इमम् इमौ इमान् **तृ०** इदम्+टा–

(३०२) अनाप्यकः । ७ । २ । ११२ ॥

अककारस्येदम इदोऽनापि विभक्तौ ।

ककार रहित (१३२२) इदम् शब्दसे परे आप् (तृतीयाके टा से सुप्तक) प्रत्यय आवे तो इद्भागके स्थानमें अन् आदेश हो । इद्+अम् (२१३) से मके स्थानमें अ हुआ=इद् अ अ (३००) पहला अ दूसरेमें गुण हो मिला तब इद्+अ=अन् (३०२) अ=अन+इन (१९९) अनेन । इद+भ्याम्=इद्+अ+भ्याम्–

(३०३) हलि लोपः । ७ । २ । ११३ ॥

अककारस्येदम इदो लोप आपि हलादौ ।

ककार (१३२२) रहित इदम् शब्दसे परे तृतीया आदि हलादि विभक्ति आवे तो इदम् शब्दके इद् भागका लोप हो (२७) से दकारका लोप पाया परन्तु–

---

१ टा इत्यारभ्य सुपः पकारेण आबिति प्रत्याहारः ।

(३०४) नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥

यह ' अलोऽन्त्यस्य ' सूत्र अभ्यास विकार (४२८, ५०९) को छोडकर अनर्थकमें नहीं लगता। यहां इद् अनर्थक ही है इस कारण अन्त्य दकारका लोप न होकर सम्पूर्ण इद्का लोप हुआ, अ शेष रहा तब अ+भ्याम् हुआ (१६०) सूत्रसे अको दीर्घता पाई परन्तु यह अदन्त अंग है कि नहीं यह शंका हुई तो अकारको अदन्तत्व प्रतिपादन करनेको अगला सूत्र लिखा—

(३०५ आद्यन्तवदेकस्मिन् । १ । १ । २१ ॥

एकस्मिन्[२] क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव स्यात् ।

एक वर्णमें भी वही कार्य किया जाय—जैसा आदि और अन्तमें कार्य किया जाता है। इससे (१६०) से जो कार्य अदन्त अंगको होता है सो इस अकारमें भी हो. आभ्याम्। इद+भिः—

(३०६) नेदमदसोरकोः । ७ । १ । ११ ॥

अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न ।

ककार (१३२२) रहित इदम् तथा अदस् शब्दसे परे भिस् प्रत्यय आवे तो उसके स्थानमें ऐस् आदेश (१६१) से न हो। (३०३) से इदम्के इद्का लोप हुआ शेष ' अ' रहा अ+भिस् (१६४) से अकारके स्थानमें एकार हुआ एभिः तृतीया बहुवचन.

च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः	ष०	अस्य	अनयोः[२१३ ३०० ३०२१६३३९]	एषाम्
पं०	अस्मात्-द्	आभ्याम्	एभ्यः	स०	अस्मिन्	अनयोः	एषु

(३०७) द्वितीयाटौस्स्वेनः । २ । ४ । ३४ ॥

द्वितीयायां टौसोश्च परतः इदमेतदोः एन आदेशः स्यात् अन्वादेशे ।

इदम् और एतद् शब्दोंसे परे द्वितीया तथा तृतीयाका एकवचन षष्ठी तथा सप्तमीके द्विवचनका प्रत्यय आवे तो इदम्, एतद् शब्दको एन आदेश हो, अन्वादेशका प्रसंग होय तो। **किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः[३]। यथा अनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोऽध्यापयेति। अनयोः पवित्रं कुलमेनयोः प्रभूतं स्वमिति।** कोई कार्य बोधन करनेके लिये किसी शब्दको कहकर दूसरे कार्यके बोधन करनेके लिये जो फिर उसका कहना उसको अन्वादेश कहते हैं, यथा इसने

---

१ समुदायो ह्यर्थवान् समुदायस्यैकदेशोऽनर्थकः।

२ आदि और अन्त होनेपर क्रियमाण जो कार्य सो असहाय-(एक) में भी हो।

व्याकरण पढा है, इसे वेद पढाओ । इन दोनोंका कुल पवित्र है और (एनयोः) इन दोनोंके धन बहुत है ।

द्वि०	एनम्	एनौ	एनान्	ष०	एनयोः
तृ०	एनेन			स०	एनयोः

राजन् शब्द (राजा)

प्र० राजन्+स् (१९९) (१९७) से जके अन्तर्गत अ उपधाको दीर्घ हुआ तो राजान् (२००) से नकारका लोप हुआ तो । राजा राजानौ राजानः (१९७) ॥

सं० हे राजन्+स्—

(३०७) न ङिसंबुद्धयोः । ८ । २ । ८ ॥

नस्य लोपो न ङौ संबुद्धौ च ।

सप्तमीके एकवचन ङि तथा सम्बोधनमें (२००) से नकारका लोप जो होता है सो न हो । हे राजन् हे राजानौ हे राजानः ।

(३०८) ङावुत्तरपदे प्रतिषेधो वक्तव्यः[1] ॥

ङि (सप्तमीके एकवचन) परे रहते उत्तरपदमें यह विधि न लगे अर्थात् उत्तरपद परे रहते ङि विभक्ति आवे तो नकारका लोप हो, यह वार्तिककारका वचन है । यथा ' ब्रह्मणि+निष्ठा अस्य ' यह बहुव्रीहिसमास है यहां ब्रह्मन् शब्दकी सप्तमीके एकवचनका ब्रह्मणि रूप है, परन्तु णि अन्तर्गत इ ङि के उत्तरपद निष्ठा है तो (३०७) से नकारके लोपका निषेध न होनेसे नकारका लोप होकर समासमें ' ब्रह्मनिष्ठः ' हुआ ।

द्वि० राजानम् राजानौ राजन्+अस् (शस्)

(१९२ से राजन् शब्दकी अङ्गसंज्ञा हुई राज्+अन् इसमें अन् अङ्गका अवयव है तथा (२७३) की संपूर्ण प्राप्ति है तब अन्के अकारका लोप हुआ तब राज्+न्+अस्(स्को विसर्गः) (७६) से न्के स्थानमें ञ् हुआ ज् और ञ् मिलकर ज्ञ् हुआ, यह अमें मिलकर ' राज्ञः ' हुआ । **तृ०** राज्ञा । राजन्+भ्याम्=राज (२००)+भ्याम् नकारका लोप सिद्ध है, इससे (१६०) से ज अन्तर्गत अकारको दीर्घता प्राप्त हुई परन्तु—

(३०९) नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति । ८ । २ । २ ॥

सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र ।

---

१ उत्तरपद परक ङि परे रहते ' न ङिसंबुद्धयोः ' इस निषेधका प्रतिषेध कहना चाहिये ।

सुप्विधि[1] (विभक्तिविषयक कार्यविधि) स्वरविधि, संज्ञाविधि (३२४) और कृत्प्रत्यय (८२८) परे रहते तुक्विधि (८२९) करनेमें (२००) से नकारका लोप असिद्ध(३९) होता है अन्यत्र नहीं. इससे नकारकी स्थिति पाई परन्तु (१६०) से अदन्त अङ्ग नहीं है, इससे ज अन्तर्गत अको दीर्घता प्राप्त न हुई तब यह सिद्ध हुआ-

राजभ्यां राजभिः

च० राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः	ष० राज्ञः		राज्ञोः	राज्ञाम्
पं० राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः	स० राजन्+इ (ङि)			

(२७४) से ज अन्तर्गत अकारका विकल्प करके लोप हुआ

राजनि, राज्ञि राज्ञोः राजसु । राजन्+अश्व-

यहां षष्ठीतत्पुरुष समास करनेमें (३०९) कहीं कोई विधि नहीं है तो (२००) से नकारका लोप सिद्ध होकर (९९) से ज अन्तर्गत अकारको दीर्घ हुआ तब ' राजाश्वः ' (राजाका घोडा) रूप सिद्ध हुआ । **इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वं च न** । जहां सुप् विधि है वहां (१६०) से आत्व (१६४) से अके स्थानमें ए और (१६१) से भिस्के स्थानमें ऐस् न हुआ ॥

यज्वन् (यज्ञ करनेवाला ।

प्र० यज्वा[१९६, १९७] यज्वानौ यज्वानः । द्वि० यज्वानम् यज्वानौ यज्वन्+अस् (शस्)

(३१०) न संयोगाद्वमंतात् । ६ । ४ । १३७ ॥

वमन्तसंयोगादनोऽकारस्य लोपो न ॥

वकारान्त और मकारान्त संयोगसे परे अन्के अकारका लोप (जो २७३ से होता है) न हो । द्वि० ब० यज्वन्+अस्=यज्वनः १९९ । १२४ । १११ ॥

तृ०	यज्वना	यज्वभ्याम्	यज्वभिः	ष०	यज्वनः	यज्वनोः	यज्वनाम्
च०	यज्वने	यज्वभ्याम्	यज्वभ्यः	स०	यज्वनि	यज्वनोः	यज्वसु
पं०	यज्वनः	यज्वभ्याम्	यज्वभ्यः	सं०	हे यज्वन्	हे यज्वानौ	हे यज्वानः

इसी प्रकार **ब्रह्मन्** शब्द (ब्रह्मा) के रूप जानने ॥

वृत्रहन् (इन्द्र)

प्र० वृत्रहन्+सु-

---

१ सुप् विधिमें दो प्रकारका समास होता है यथा सुप्के परे रहते जो विधि और सुप्के स्थानमें जो विधि । सुप्के परे रहते यथा राजभ्याम् यहां ' सुपि च ' से जो दीर्घता प्राप्त है सो नलोप असिद्ध होनेसे दीर्घ नहीं होता । सुप्के स्थानमें विधि राज भिस् यहां ' अतो भिस ऐस् ' भिस्के स्थानमें ऐस् प्राप्त है सो नहीं होता । स्वरविधि वैदिकीमें आवेगा ।

(३११) इन्हन्पूषार्यम्णां शौ । ६ । ४ । १२ ॥

इन् हन् पूषन् अर्यमन् एषां शौ एव उपधाया दीर्घो न अन्यत्र ।

इन्प्रत्ययान्त हन्, पूषन् (सूर्य), अर्यमन् (सूर्य) इन शब्दोंके आगे शिप्रत्यय आवे तो (१९७ से) उपधाको दीर्घ हो अन्यत्र नहीं । इससे दीर्घका निषेध प्राप्त हुआ ।

(३१२) सौ च । ६ । ४ । १३ ॥

इन्नादीनामुपधाया दीर्घोऽसंबुद्धौ सौ परे ।

सम्बोधनके सुप्रत्ययके विना इन् आदि (३११) से परे प्रथमाका एकवचन सु प्रत्यय आवे तो इन् आदिकी उपधाको दीर्घ हो. तो हके अन्तर्गत अ उपधाको दीर्घ हुआ (२००) से नकारका लोप हुआ, वृत्रहा ।

वृत्रहन्+औ–

(३१३) एकाजुत्तरपदे णः । ८ । ४ । १२ ॥

एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन् समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्थस्य नस्य णः[1] ।

जिस समासके पूर्व पदमें रेफ अथवा षकार (२९२) हो और उसके उत्तर पदमें एक अच् हो तो प्रातिपदिकान्त न् अथवा नुम् (२६४) के नकार वा विभक्तिके (१४९)नकार के स्थानमें णकार हो । वृत्रहन् (वृत्र राक्षसका मारनेवाला) इस प्रकार यह समासान्त शब्द है इसके पूर्वपदमें रेफ है और हन् उत्तरपदमें ह अन्तर्गत अ एक अच् है तो न् को ण् हुआ—

वृत्रहणौ वृत्रहणः । द्वि० वृत्रहणम् वृत्रहणौ वृत्रहन्+अस् (शस्)

(२७३) से हके अन्तर्गत अकारका लोप हुआ तब वृत्रह्न्+अः–

(३१४) हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु । ७ । ३ । ५४ ॥

ञिति णिति प्रत्यये नकारे च परे हन्तेः हकारस्य कुत्वम् ॥

हन् धातुसे परे ञकार और णकार जिसका इत् हो ऐसा प्रत्यय आवे अथवा ह्से परे नकार आवे तो हकारके स्थानमें कवर्ग हो । (१६) से ह् के स्थानमें घ् हुआ, हकारका संवार नाद और घोष (१६–३) प्रयत्न है तथा (१६–९) के अनुसार महाप्राण है यही प्रयत्न कवर्गमें घकारके हैं ।

तो ह् के स्थानमें घ् हुआ । वृत्रघ्न्+अः=वृत्रघ्नः ।

---

१ एकपदत्वाभावात् ' अट्कुप्वाङ् ' इति णत्वं नैव प्राप्नोतीति वचनम् ।

तृ०	वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्[२]	वृत्रहभिः
च०	वृत्रघ्ने	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
पं०	वृत्रघ्नः	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
ष०	वृत्रघ्नः	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्
स०	[३१३] वृत्रहणि	वृत्रघ्नि, [३१४] वृत्रघ्नोः	वृत्रहसु
सं०	हे वृत्रहन्	हे वृत्रहणौ	हे वृत्रहणः

एवं शार्ङ्गिन्, यशस्विन्, अर्यमन्, पूषन् इसी प्रकार **शार्ङ्गिन्**, (शार्ङ्गधनुषधारी विष्णु), **यशस्विन्**, (कीर्तिमान्) **अर्यमन्** पूषन् (सूर्य) इन शब्दोंके रूप जानने।

मघवन् शब्द (इन्द्र) प्र० मघवन्+स्-

(३१५) मघवा बहुलम् । ६ । ४ । १२८ ॥

मघवञ्छब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः स्यात् ।

मघवन् शब्दको तृ अन्तादेश विकल्प करके हो ।

न् को तृ आदेश हुआ तो मघवतृ रूप हुआ (३६) से तृ अन्तर्गत ऋका लोप होकर मघवत्=मघवत्+सु हुआ-

(३१६) उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः । ७ । १ । ७० ॥

अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात्सर्वनामस्थाने परे ॥

उक् (उ ऋ ऌ) जिसके इत् संज्ञक हों ऐसे धातु भिन्न शब्दसे परे वा जिसका लुप्त नकार हो ऐसे अञ्च् धातुसे परे सर्वनामस्थान (१८२) प्रत्यय आवे तो नुम्का आगम हो ।

मघवत् इसमें ऋ इत्संज्ञक है, (३६) से उसका लोप हुआ, उससे परे सर्वनामस्थानका सु प्रत्यय आया है, तब व और त् के बीचमें (२६९) से नुम् (न्) का आगम हुआ मघवन् त् (२६) से तकारका लोप होकर मघवन् रहा (१९७) से व अन्तर्गत उपधाको दीर्घ हुआ, मघवान्+सु रूप हुआ (१९९) से सकारका लोप हुआ ।

प्र०	मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्तः
द्वि०	मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवतः
तृ०	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भिः
च०	मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
पं०	मघवतः	मघवद्भ्यां	मघवद्भ्यः
ष०	मघवतः	मघवतोः	मघवताम्
स०	मघवति	मघवतोः	मघवत्सु
सं०	हे मघवन्	हे मघवन्तौ	हे मघवन्तः

तृत्वाभावे सुटि राजवत् । जब (३१५) से न्के स्थानमें तृ आदेश न हुआ तब औट्तक राजन् शब्दके समान रूप होंगे। शसादिमें विशेष है सो लिखते हैं-

प्र० मघवा मघवानौ मघवानः । द्वि० मघवानम् मघवानौ मघवन्+अस्-

---

१ यशस्विन्शब्दे विन् प्रत्ययोऽस्तीति तत्रनोऽर्थकत्वात्कथं दीर्घ इति तु नाशङ्क्यम् । "अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति " इति परिभाषणात् ।

२ आदेशे ऋकार इदिति अनेकाल्त्वाभावान्नैव सर्वादेशत्वम्, यदुक्तम्-"नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम् " इति।

(३१७) श्वयुवमघोनामतद्धिते । ६ । ४ । १३३ ॥

अन्नन्तानां भानामेषामतद्धिते परे सम्प्रसारणं स्यात् ॥

श्वन् युवन् और मघवन् जो अन् अन्त भसंज्ञक शब्द हैं उनसे परे तद्धित भिन्न प्रत्यय आवे तो (२८१) से संप्रसारण हो. मघवन् शब्दमें व यण् है उसके स्थानमें इक्में उ हुआ तब मघउन्+अस् (३९) से मघोन्+अस्=मघोनः ।

तृ०	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
च०	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
पं०	मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
ष०	मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
स०	मघोनि	मघोनोः	मघवसु
सं०	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवानः

युवन् शब्द (तरुण)

(१९७) से व अन्तर्गत अ उपधाको दीर्घ हुआ (२००) से नकारका लोप हुआ **प्र०** युवा युवानौ युवानः **द्वि०** युवानम् युवानौ युवन्+अस्—

(३१७) से वकारको संप्रसारण होकर उसके स्थानमें उ हुआ तब यु उन्+अस् रूप हुआ यु अन्तर्गत यकार यण् है उसे सप्रसारण प्राप्त हुआ परन्तु—[1]

(३१८) न संप्रसारणे संप्रसारणम् । ६ । १ । ३७ ॥

संप्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः संप्रसारणं न स्यात् ॥

एक संप्रसारग परे हुए सन्ते पूर्व यण्को संप्रसारण न हो । यूनः

तृ०	यूनों	युवभ्याम	युवभिः
च०	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
पं०	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः
ष०	यूनः	यूनोः	यूनाम्
स०	यूनि	यूनोः	युवसु
सं०	हे युवन्	हे युवानौ	हे युवानः

अर्वन् (घोडा) **प्र०** अर्वा (१९७, २००) अर्वन्+औ—

(३१९) अर्वणस्त्रसावनञः । ६ । ४ । १२७ ॥

नञा रहितस्यार्वन्नित्यस्याऽङ्गस्य तृ इत्यन्तादेशो न तु सौ ॥

नञ्रहित अर्वन् शब्द अंग अथवा अर्वन् शब्दान्त अंगको तृ अन्तादेश हो परन्तु सुपरे हो तो न हो । अर्वन्+औ, तृ अन्तर्गत ऋकार (३६) से इत्संज्ञक हुआ (७) से उसका लोप हुआ (३१६) से नूका आगम (२६९) से व और तूके मध्यमें हुआ तो अर्वन्तौ । अर्वन्तः ।

द्वि० अर्वन्तम् अर्वन्तौ अर्वतः

---

[1] यदि कहो कि प्रथम यकारकोही संप्रसारण करके पश्चात् वकारको संप्रसारण करलेंगे सो ठीक नहीं, कारण कि इसी (३१९) सूत्रके पहले अन्त्य यण्को संप्रसारण होता है, अर्थात् वकारको 'उ' करनेसे (३१८) व्यर्थ होजायगा।

शेष रूप मघवन्के प्रथम रूपके समान जानने । **अनञः किम् ? अनर्वा यज्ववत्** नञ् भिन्न कहनेसे अनर्वन् शब्दके रूप यज्वन्के समान होंगे ।

पथिन् शब्द (मार्ग) पथिन्+स् (सु)

(३२०) पथिमथ्यृभुक्षामात् । ७ । १ । ८५ ॥

एषामाकारोन्तादेशः स्यात् सौ परे ॥

पथिन् मथिन् (मथनेवाला) और ऋभुक्षिन् (इन्द्र) इन शब्दोंके परे सु आवे तो आकार अन्तादेश हो । पथि आ+स् यण्को बाधकर-

(३२१) इतोऽत्सर्वनामस्थाने । ७ । १ । ८६ ॥

पथ्यादेरिकारस्याकारः सर्वनामस्थाने परे ॥

पथिन् मथिन् ऋभुक्षिन् शब्दोंके इकारके स्थानमें अकार हो सर्वनामस्थान परे हुए सन्ते । पथ्+अ+आ स्-

(३२२) थो न्थः । ७ । १ । ८७ ॥

पथिमथोस्थस्य न्थादेशः स्यात् सर्वनामस्थाने परे ॥

पथिन् तथा मथिन् शब्दोंसे परे सर्वनामस्थान प्रत्यय आवें तो उनके थके स्थानमें न्थ् आदेश हो, पन्थ आ+स्-

प्र० पन्थाः (९९) पन्थानौ पन्थानः
द्वि० पन्थानम् पन्थानौ पथिन्+अस्

यहां इन् मात्रकी टि संज्ञा होकर-

(३२३) भस्य टेर्लोपः । ७ । १ । ८७ ॥

भसंज्ञकस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः स्यात् ॥

भसंज्ञक (१८९) पथिन् मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्दकी टिका लोप हो । पथिन्के इन्का लोप हुआ तो पथ्+अस्=पथः

तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
च०	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पं०	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
ष०	पथः	पथोः	पथाम्
स०	पथि	पथोः	पथिषु
सम्बो०	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः

इसी प्रकार **मथिन्** और **ऋभुक्षिन्के** रूप जानने ।

---

१ अनञ् इस से किस शब्दकी व्यावृत्ति होती है ? उत्तर-'अनर्वन्' शब्दकी इससे व्यावृत्ति होती है, यह अर्थ है, अन्यथा अनर्वा यह तो सुका रूप है इसमें तृ आदेश प्राप्त ही नहीं ।

पंचन् शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। बहुवचनान्त **पंचन् शब्द** (पाँच) पंचन्+अस् प्रथमाका बहुवचन–

(३२४) ष्णान्ता षट् । १ । १ । २४ ॥

षान्ता नान्ता च संख्या षट्संज्ञा स्यात् ॥

षकारान्त तथा नकारान्त संख्यावाचक शब्दकी षट् संज्ञा हो (२०८) से अस्का लोप (२००) से नकारका लोप हुआ, इसी प्रकार द्वितीयाके बहुवचनके शस् प्रत्ययका लोप हुआ

प्र० ब० पञ्च । **द्वि०** ब० पञ्च० । **तृ०** ब० पञ्चभिः । **च०** ब० पञ्चभ्यः । **पं०** ब० पञ्चभ्यः । **ष०** ब० पंचन्+आम् (२९१) से नुट्का आगम (१०३) से आम्के पूर्व हुआ पञ्चन्+न्+आम्=पञ्चन्+नाम्–

(३२५) नोपधायाः । ६ । ४ । ७ ॥

नान्तस्योपधाया दीर्घो नामि ॥

नान्त संख्यावाचक अङ्गकी उपधाको दीर्घ हो नाम् परे हुए सन्ते । च के अन्तर्गत अको दीर्घ हुआ (२००) से नकारका लोप पञ्चानाम् । **स०** ब० पञ्चसु (२००) **एवं सप्तन् नवन् दशन् प्रभृतयः** । ऐसे ही सप्तन् (सात) नवन् (नौ) दशन् (दश) शब्दोंके रूप जानने ।

अष्टन् (आठ) प्र० अष्टन्+जस्—

(३२६) अष्टन आ विभक्तौ । ७ । २ । ८४ ॥

अष्टन आत्वं वा स्यात् हलादौ विभक्तौ ।

अष्टन् शब्दसे परे हलादि विभक्ति आवें तो अष्टन् शब्दको विकल्प करके आकार हो, अष्टन्+अस्–

(३२७) अष्टाभ्य औश् । ७ । १ । २१ ॥

कृताकारादष्टनो जश्शसोरौश् स्यात् ॥

आकार आदेश किये हुए अष्टन्शब्दसे आगे जस् शस् विभक्ति आवें तो उनके स्थानमें औश् (औ) आदेश हो । **अष्टभ्य इति वक्तव्ये कृतात्वग्रहणं जश्शसोर्विषये आत्वं ज्ञापयति** । यद्यपि आत्व (३२६) की प्राप्ति जस् शस् परे रहते नहीं है, परन्तु पूर्वमें जो सूत्रकारने एकमात्राका लाघव पाकर भी ' अष्टभ्यः ' न पढकर ' अष्टाभ्यः ' पढा, इससे ही विदित होता है कि जस् शस् परे रहते भी आत्व होता है ।

प्र० ब० अष्टौ	**तृ०** ब० अष्टाभिः	**पं०** ब० अष्टाभ्यः	**स०** ब० अष्टासु । जब आत्व (३२६)
द्वि० ब० अष्टौ	**च०** ब० अष्टाभ्यः	**ष०** ब० अष्टानाम्	से न हुआ तब पञ्चन्वत् रूप जानने ।

(३२८) ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च । ३ । २ । ५९ ॥

ऋत्विज्, दधृष्, स्रज्, दिश्, उष्णिह्, अञ्चु, युज् क्रुञ्च्, एभ्यः क्विन् ॥

ऋत्विज्, (होम करनेवाला), दधृष् (धारण करनेवाला) स्रज् (माला), दिश् (दिशा), उष्णिह् (एक जातिका छन्द), अञ्चु (गति पूजा वाचक धातु) युज् (मिलना) क्रुञ्च् (कुटिलता वा अनादर), इनसे क्विन् प्रत्यय हो । **अञ्चेः सुप्युपपदे** । अञ्च धातुके पूर्वमें सुबन्त उपपद होवे तो क्विन् प्रत्यय हो । **युजिक्रुञ्चोः केवलयोः** । युज् और क्रुञ्च् धातुमें केवलहीसे क्विन् प्रत्यय हो उपपदकी अपेक्षा नहीं रहती । **क्रुञ्चेर्नलोपाभावश्च निपात्यते** । क्रुञ्च धातुमें (६६३) से नकारका लोप नहीं होता । क्योंकि इसमें हल् ञ् है वही न के स्थानमें हुआ है । **कनावितौ** । क्विन् प्रत्ययमें (१९९) से क की इत्संज्ञा होकर लोप हुआ, नकारकी (९) से इत्संज्ञा होकर लोप हुआ, (३६) से इनका लोप होकर शेष ' व् ' रहा ।

(३२९) कृदतिङ् । ३ । १ । ९३ ॥

अत्र धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः स्यात् ॥

तिङ् (४०८) धातुके (८१७) इस अधिकारमें अर्थात् (**धातोः** । ३ । २ । ९२) इसके अधिकारमें तिङ्भिन्न तीसरे अध्यायकी समाप्तितक जो प्रत्यय हैं वे कृदन्तसंज्ञावाले हों ।

(३३०) वेरपृक्तस्य । ६ । १ । ६७ ॥

अपृक्तस्य वस्य लोपः ॥

अपृक्त (१९८) वकारका लोप हो ।

क्विन् प्रत्ययमें से जो वकार शेष रहा था उसका भी लोप हुआ, कुछ भी शेष न रहा। परन्तु (३२९) से कृदन्त होनेसे (१३६) प्रातिपदिकसंज्ञा होकर विभक्तिके प्रत्यय आये ऋत्विज्+स्-

(३३१) क्विन्प्रत्ययस्य कुः । ८ । २ । ६२ ॥

क्विन्प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽन्तादेशः पदान्ते ॥

जिस शब्दसे परे क्विन् प्रत्यय हो उसको पदान्तमें कवर्ग अन्तादेश हो । यथा ऋत्विज्, शब्दसे (३२८) क्विन् प्रत्यय हुआ उससे परे प्रथमाका एकवचन सुका स् प्रत्यय हलादिविभक्ति आई जकारके स्थानमें ग् हुआ परन्तु यह सूत्र (**अस्यासिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वम्**), चोः कुः ' सूत्रकी अपेक्षा असिद्ध है इस कारण कुत्व ही होता है (१६९) से विकल्प और (१९९) से सकारका लोप हुआ ।

प्र०	ऋत्विक्-ग्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः	पं०	ऋत्विजः	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
द्वि०	ऋत्विजम्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः	ष०	ऋत्विजः	ऋत्विजोः	ऋत्विजाम्
तृ०	ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भिः	स०	ऋत्विजि	ऋत्विजोः	ऋत्विक्षु
च०	ऋत्विजे	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः	सं०	हे ऋत्विक्-ग्	हे ऋत्विजौ	हे ऋत्विजः

युज् (मिलनेला) युज्+स्

(३३२) युजेरसमासे । ७ । १ । ७१ ॥

युजेः सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे ।

समासको छोडकर युज् शब्दको सर्वनामस्थान परे रहते नुम्का आगम हो ।

यु न् ज्+स्((१८९) से सकारका लोप (२९) से ज्का लोप (३२८) से क्विन् प्रत्यय (३३१) से न्के स्थानमें कवर्गको ङ् अन्तादेश हुआ ।

प्र०	युङ्	युञ्जौ[1]	युञ्जः	पं०	युजः	युग्भ्याम्	युग्भ्यः
द्वि०	युञ्जम्	युञ्जौ	युजः	ष०	युजः	युजोः	युजाम्
तृ०	युजा	युग्भ्याम्	युग्भिः	स०	युजि	युजोः	युक्षु[2]
च०	युजे	युग्भ्याम्	युग्भ्यः	सं०	हे युङ्	हे युञ्जौ	हे युञ्जः

असमासे किम् ? असमास क्यों कहा ? तो **सुयुक् सुयुग्** । यहां नुम् नहीं होता, यहां सुके साथ समास है ।

(३३३) चोः कुः । ८ । २ । ३० ॥

चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च ।

चवर्गको कवर्ग हो झल् प्रत्याहार परे रहते वा पदान्तमें ।

सुयुज् इसमें ज्के स्थानमें ग् हुआ और (९०) से ग्के स्थानमें क् हुआ (१६९) से विकल्प और सकारका लोप (१९९) से हुआ.

प्र०	सुयुक्-ग्	सुयुजौ	सुयुजः	पं०	सुयुजः	सुयुग्भ्याम्	सुयुग्भ्यः
द्वि०	सुयुजम्	सुयुजौ	सुयुजः	ष०	सुयुजः	सुयुजोः	सुयुजाम्
तृ०	सुयुजा	सुयुग्भ्याम्	सुयुग्भिः	स०	सुयुजि	सुयुजोः	सुयुक्षु
च०	सुयुजे	सुयुग्भ्याम्	सुयुग्भ्यः	सं०	हे सुयुक्–ग्	हे सुयुजौ	हे सुयुजः

---

१ युज् +औ (३३२) से नुम्का आगम तब युनज्×औ (७६) से न्के स्थानमें ञ् हुआ । २ युज्×सु (३३१) से ज्के स्थानमें ग् (३२८) से क्विन् होकर सबका लोप (९०) से ग्के स्थानमें क् (१५१) से सके स्थानमें ष् क् ष् मिलनेसे क्ष हुआ ।

खजि धातुमें (४९८) से इ इत् होकर उसका लोप और नुम्का आगम (३१६) से होता है, तब खन्ज् रूप हुआ खन्ज् (लूला ।) प्र० ख न् ज्+सु इसमें (७६) से नकारको ञकार हुआ तब खञ् ज् सु (२६) से जकारका लोप जब जकार न रहा तो नकारको ञकार हुआ था सो भी न रहा कारण कि ' **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** ' जब निमित्तका अभाव होता है तब निमित्तके आश्रयभूत कार्यका भी अभाव हो जाता है (३३३) की विधि (३९) से असिद्ध है (१९९) से सकारका लोप हुआ ।

प्र०	खन्	खञ्जौ[७६]	खञ्जः	**पं०**	खञ्जः	खन्भ्याम्	खन्भ्यः
द्वि०	खञ्जम्	खञ्जौ	खञ्जः	**ष०**	खञ्जः	खञ्जोः	खञ्जाम्
तृ०	खञ्जा	खन्भ्याम्	खन्भिः	**स०**	खञ्जि	खञ्जोः	खन्सु त् सु
च०	खञ्जे	खन्भ्याम्	खन्भ्यः	**सं०**	हे खन्	हे खञ्जौ	हे खञ्जः

राज् (दीप्तिमान्) प्र० राज्+स्-

(३३४) व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः । ८ । २ । ३६ ॥

व्रश्चादीनां सप्तानां छशान्तयोश्च षकारोऽन्तादेशः स्याज्झलि पदान्ते च ॥

व्रश्च (छेदना) भ्रस्ज् (रांधना) सृज् (उत्पन्न करना), मृज् (मांजना), यज् (यज्ञ करना) राज् भ्राज् (शोभायमान वा प्रकाशमान) तथा छ और श् जिसके अन्तमें आवे इन शब्दोंसे परे झल् अथवा पदान्त हो तो इन सबको ष् अन्तादेश हो ।

राज्में ज्के स्थानमें ष् हुआ (८२) से ष्के स्थानमें ड् (९०) से ड्के स्थानमें ट् हुआ (१६५) से विकल्प हुआ.

प्र०	राट्—ड्	राजौ	राजः	**पं०**	राजः	राड्भ्याम्	राड्भ्यः
द्वि०	राजम्	राजौ	राजः	**ष०**	राजः	राजोः	राजाम्
तृ०	राजा	राड्भ्याम्	राड्भिः	**स०**	राजि	राजोः राट्त्सु	राट्सु
च०	राजे	राड्भ्याम्	राड्भ्यः	**सं०**	हे राट् ड्	हे राजौ	हे राजः

(**एवं**) इसी प्रकारसे **विभ्राट्** (महाशोभायुक्त) **देवेट्** (देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यज्ञ करनेवाला) **विश्वसृट्** (जगत् उत्पन्न करनेवाला) इन शब्दोंके रूप जानने । **विभ्राट्** भ्राज् धातुके षकारको (९०) से डकार (१६५) से विकल्प ड्को ट् हुआ ।

परिव्राज् (संन्यासी जो सबको त्याग कर जाय)

(३३५) परौ व्रजेः षः पदान्ते ।

परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्यात् दीर्घश्च, पदान्ते षत्वमपि ।

व्रज् धातुसे पूर्व जब परि (४८) उपसर्ग होय तो व्रज् धातुसे क्विप् प्रत्यय हो व्र अन्तर्गत अको दीर्घ और पदान्त (हलादिविभक्ति) रहते षकार भी हो। तब 'परिव्राष्' रूप हुआ (८२) से ष्के स्थानमें ड् (१६१) ड्के स्थानमें ट् विकल्प करके हुआ (३२४) से राज् शब्दके समान रूप जानने।

(३३६) विश्वस्य वसुराटोः। ६। ३। १२८॥

विश्वशब्दस्य दीर्घोऽन्तादेशः स्याद् वसौ राट्शब्दे च परे।

विश्व शब्दसे परे वसु तथा राट् (३३४) शब्द परे आवे तो दीर्घ अन्तादेश हो। सूत्रमें यह राट् पदान्तका उपलक्षण होता है, इससे जहां राड् है वहां भी दीर्घ सिद्ध होता है।

प्र०	विश्वाराट्–ड्	विश्वराजौ	विश्वराजः
द्वि०	विश्वराजम्	विश्वराजौ	विश्वराजः
तृ०	विश्वराजा	विश्वाराड्भ्याम्	विश्वाराड्भिः
च०	विश्वराजे	विश्वाराड्भ्याम्	विश्वाराड्भ्यः
पं०	विश्वराजः	विश्वाराड्भ्याम्	विश्वाराड्भ्यः
ष०	विश्वराजः	विश्वराजोः	विश्वराजाम्
स०	विश्वराजि	विश्वराजोः	विश्वाराट्त्सु–विश्वाराट्सु
सं०	हे विश्वाराट्–ड्	हे विश्वराजौ	हे विश्वराजः

भृस्ज् (पकाना) प्र० भृस्ज्+स्–

(३३७) स्कोः संयोगाद्योरन्ते च। ८। २। २९॥

पदान्ते झलि च यः संयोगस्तदाद्योः सकारककारयोर्लोपः॥

पदके अन्तमें वा झल् प्रत्याहार परे हुए सन्ते जो संयोग है यदि तिसके आदिमें सकार ककार हों तो उनका लोप हो। भृज्+स् रूप रहा। (३३४) से ज् के स्थानमें ष् (८२) से ष्के स्थानमें ड् हुआ (९०) तथा (१६१) से ड् के स्थानमें ट् विकल्प करके हुआ (१९९) से सकारका लोप हुआ।

प्र०	भृट्-ड्[1]	भृज्जौ	भृज्जः	पं०	भृज्जः	भृड्भ्याम्	भृड्भ्यः
द्वि०	भृज्जम्	भृज्जौ	भृज्जः	ष०	भृज्जः	भृज्जोः	भृज्जाम्
तृ०	भृज्जा	भृड्भ्याम्	भृड्भिः	स०	भृज्जि	भृज्जोः	भृट्त्सु-भृट्सु
च०	भृज्जे	भृड्भ्याम्	भृड्भ्यः	सं०	हे भृट्-ड्	हे भृज्जौ	हे भृज्जः

१ (३३४) से हलादि विभक्तिका प्रत्यय आवे तो अन्तादेश ष हो (८२, ९०, १६५) से ट ड् हुए अच् आदि विभक्ति आनेपर कुछ न्यूनाधिक नहीं होता इससे राज्रूप रहा तो विश्वमें श्व अन्तर्गत अकारको दीर्घ न हुआ।

२ (६७६) से रेफके स्थानमें संप्रसारण ऋकार हुआ तो भ्रको भृ हुआ। ३ (७६) से सके स्थानमें श् (२५) से शको ज् हुआ।

त्यद् शब्द (वह)

प्र०—त्यद्+स् (२१३) से अ होकर (३००) से त्य रूप हुआ त्य+स्—

(३३८) तदोः सः सावनन्त्ययोः । ७ । २ । १०६ ॥

त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात्सौ परे ॥

त्यदादि (२१३) के अन्तमें न होनेवाले तकार दकारसे सु प्रत्यय आवे तो त् द् के स्थानमें स हो । सो अन्तमें न होनेवाले त् के स्थानमें स् हुआ स्य+स्—

प्र०	स्यः	त्यौ	त्ये	पं०	त्यस्मात्	त्याभ्याम्	त्येभ्यः
द्वि०	त्यम्	त्यौ	त्यान्	ष०	त्यस्य	त्ययोः	त्येषाम्
तृ०	त्येन	त्याभ्याम्	त्यैः	स०	त्यस्मिन्	त्ययोः	त्येषु
च०	त्यस्मै	त्याभ्याम्	त्येभ्यः				

तद् शब्द (वह) तद्+सु—

(१२३) से त् अ रूप हुआ (३००) से त रूप हुआ (३३८) से त्के स्थानमें सकार हुआ पुँल्लिंग सर्ववत् रूप जानो ।

प्र०	सः	तौ	ते	पं०	तस्मात्-द्	ताभ्याम्	तेभ्यः
द्वि०	तम्	तौ	तान्	ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तैः	स०	तस्मिन्	तयोः	तेषु
च०	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः				

यद् शब्द (जो)

(२१३) से य् अ रूप हुआ (३००) से य रूप हुआ उससे सु प्रत्ययका स् आया उसे विसर्ग होकर पुँल्लिंग सर्वशब्दवत् रूप जानो । यः यौ ये इत्यादि ।

एतद् शब्द (यह)

(२१३) तथा (३००) से एत रूप हुआ (३३८) से तके स्थानमें स् (१६९) से स्को ष् हुआ ।

प्र०	एषः	एतौ	एते	पं०	एतस्मात्-द्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
द्वि०	एतम्	एतौ	एतान्	ष०	एतस्य	एतयोः	एतेषाम्
तृ०	एतेन	एताभ्याम्	एतैः	स०	एतस्मिन्	एतयोः	एतेषु
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः				

अन्वादेशमें एनम् एनौ एनान् एनेन एनयोः२

युष्मद् (तू) **अस्मद्** (मैं) शब्द । युष्मद्+सु, अस्मद्+सु+इसमें—

(३३९) ङे प्रथमयोरम्। ७। १। ८२॥

युष्मदस्मद्भ्यां परस्य ङे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः॥

युष्मद् तथा अस्मद् शब्दसे परे प्रथमा द्वितीया विभक्तिके सब प्रत्यय और चतुर्थीके ङे प्रत्ययके स्थानमें अम् आदेश हो।

प्रथमा। युष्मद्+अम्। अस्मद्+अम्

(३४०) त्वाहौ सौ। ७। २। ९४॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाहौ आदेशौ स्तः सौ परे।

युष्मद् अस्मद् शब्दके मपर्यन्तभागको त्व तथा अह आदेश अनुक्रमसे हों। युष्म्+अद्+अम्=त्व+अद्+अम्। अस्म्+अद्+अम्=अह+अद्+अम् (३००) से त्वद्+अम् (३००) से अहद्+अम्—

(३४१) शेषे लोपः। ७। २। ९०॥

आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तौ परतः युष्मदस्मदोः अन्त्यस्य लोपः।

आत्व (३४३) यत्व (३४८) निमित्तसे अन्य विभक्ति प्रत्यय आवे तो युष्मद् अस्मद् शब्दोंके अन्तका लोप हो। अ (३००) से पररूपको प्राप्त हुआ द् शेष रहा उसका लोप हुआ, त्व+अम्। तथा अह+अम् रूप हुआ (१९४) से त्वम् तथा अहम् प्रथमाके एकवचनमें सिद्ध हुए। **प्र०** द्वि० युष्मद्+औ। अस्मद्+औ। युष्मद्+अम् अस्मद्+अम्—

(३४२) युवावौ द्विवचने। ७। २। ९२॥

द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे सातों विभक्तिके द्विवचनके प्रत्यय आवें तो उनके मपर्यन्त भागको क्रमसे युव और आव आदेश हों। युव+अद्+अम्। आव+अद्+अम्। युवद् (३००)+अम्। आवद् (३०६)+अम्—

(३४३) प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्। ७। २। ८८॥

औङ्येतयोरात्वं लोके।

---

१ प्रथमा च प्रथमा च प्रथमे तयोरिति विग्रहः। एका प्रथमा प्रथमापरा, द्वितीया प्रथमा द्वितीयापरा। अतो व्याचष्टे—प्रथमाद्वितीययोरिति।

२ शेषस्य लोपः इत्येवं टिलोपपक्षोऽपि भाष्याभिमतः।

३ द्व्यर्थप्रतिपादक युष्मद् और अस्मद् शब्दके मपर्यन्त भागको युव—आव ये आदेश हों विभक्ति परे रहते।

प्रथमाके द्विवचन परे रहते युष्मद् तथा अस्मद् शब्दोंको आकार हो लोकमें अर्थात् वेदमें न हो। युव+आ+अम्=युवाम् (१९४) आव+आ+अम्=आवाम्। प्र० बहु० युष्मद्+अम् (३३९) (जस्) अस्मद्+अम् (३३९) (जस्)-

(३४४) यूयवयौ जसि । ७ । २ । ९३ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य यूयवयौ स्तो जसि ।

युष्मद् तथा अस्मद् शब्दोंके मपर्यन्त भागको यूय और वय आदेश हों जस् परे रहते। यूय+अद्+अम्। वय+अद्+अम्। यूयद् (३००)+अम्। वयद् (३००)+अम् (३४१)से दकारका लोप और (३००) से यूयम् । वयम् । द्वि० एक० युष्मद्+अम्। अस्मद्+अम्-

(३४५) त्वमावेकवचने । ७ । २ । ९७ ॥

एकस्योक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे एकवाचक विभक्ति परे रहते उनके मपर्यन्तभागको त्व म आदेश हो। त्व+अद्+अम्। म+अद्+अम्। त्वद् (३००)+अम्। मद् (३००)+अम् (३४१) से दकारका लोप त्व+अम्। म+अम्-

(३४६) द्वितीयायां च । ७ । २ । ८७ ॥

अनयोः आकारोऽन्तादेशः स्यात् द्वितीयायाम् ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे द्वितीया विभक्ति आवे तो उन शब्दोंको आकार अन्तादेश हो, त्वा+अम्=त्वाम् (१९४) और मा+अम्=माम्। द्वि० द्वि० युवाम्। आवाम् द्वि० ब० युष्मद्+शस्। अस्मद्+शस्-

(३४७) शसो न । ७ । १ । २९ ॥

आभ्यां शसो नः स्यात् । अमोऽपवादः ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे शस्के स्थानमें (३३९) से प्राप्त हुए अम्का बाधक न् हो। शस्का अस् (१९९) से रहा (८७, ८८) से अके स्थानमें न् हुआ युष्मद्+न्स्। अस्मद्+न्स् (३४१) से द्का लोप (३४६) से म अन्तर्गत अको आत्व हुआ (२६) से सकारका लोप होकर युष्मान् अस्मान् सिद्ध हुए। तृ० ए० युष्मद्+आ। अस्मद्+आ (३४५) से त्व म आदेश त्व+अद्+आ। म+अद्+आ त्वद् (३००)+ आ। मद् (३००)+आ-

---

१ एकार्थप्रतिपादक युष्मद्, और अस्मद् शब्दके मपर्यन्त भागको त्व, म ये आदेश हों विभक्ति परे रहते।

(३४८) योऽचि । ७ । २ । ८९ ॥

अनयोर्यकार आदेशः स्यादनादेशेऽजादौ परतः ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे जिसको कुछ आदेश नहीं हुआ ऐसी अजादि विभक्ति आवे तो युष्मद् अस्मद् शब्दोंको यकार आदेश हो । (२७) से द्के स्थानमें य् आदेश होकर त्वय्+आ=त्वया । मय्+आ=मया ।

तृ० द्वि० युष्मद्+भ्याम् । अस्मद्+भ्याम् । युव+अद्+भ्याम् आव+अद्+भ्याम् । युवद् (३००)+भ्याम् आवद् (३००)+भ्याम्–

(३४९) युष्मदस्मदोरनादेशे । ७ । २ । ८६ ॥

अनयोरात्स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे विना आदेशकी हलादि विभक्ति आवे तो उन शब्दोंको आकार आदेश हो । (३९२) से युव+आ+भ्याम्=युवाभ्याम् । आव+आ+भ्याम् आवाभ्याम्

तृ० ब० युष्मद्+भिः । अस्मद्+भिः (३४९) से द्के स्थानमें आदेश हुआ युष्माभिः । अस्माभिः । **च०** ए० युष्मद्+ङे । अस्मद्+ङे ।

(३५०) तुभ्यमह्यौ ङयि । ७ । २ । ९५ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यावेतावादेशौ स्तो ङयि ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे ङे प्रत्यय आवे तो मपर्यंत उन शब्दोंको क्रमसे तुभ्य और मह्य आदेश हों । तुभ्य+अद्+ङे । मह्य+अद्+ङे=तुभ्यद् (३००) ङे । मह्यद् (३००)+ङे (३४१) से द्का लोप (३३९) से ङेके स्थानमें अम् आदेश हुआ । तुभ्य+अम्=तुभ्यम् । मह्य+अम्=मह्यम् । **च०** द्वि० युवाभ्याम् (३४९) आवाभ्याम् । **च०** ब० युष्मद्+भ्यस् । अस्मद्+भ्यस्—

(३५१) भ्यसोऽभ्यम् । ७ । १ । ३० ॥

आभ्याम् परस्य भ्यसः भ्यम् अभ्यम् वा आदेशः स्यात् ।

युष्मद् अस्मद् शब्दसे परे भ्यस् प्रत्यय आवे तो भ्यस्के स्थानमें भ्यम् अथवा अभ्यम्

---

१ अंक (३४१) से म–तक आदेश हुए पीछेके शेषका लोप देखा जाता है तिसमें अकार सहित मकारके स्थानमें आदेश करनेमें आवे तो द शेष रहता और म् हलन्ततक आदेश किया जावे तो अद् शेष रहता है और (३००) के अनुसार अकारका पररूप होते ही शेष रहता उसका लोप होता है । इनमें पहला पक्ष अन्त्य लोप पक्षमें ही ठीक बैठता है । किन्तु अभ्यम् पक्ष तो क्या अन्त्य लोप और क्या टिलोप पक्ष दोनों ही पक्षोंमें युक्त है, अतः दूसरा पक्ष ही समीचीन है और भाष्यसम्मत भी है । जैसा कि भाष्यकार लिखते हैं –" अनादेशग्रहणं शक्यमकर्तुम् । कथम् १ ' हलि ' इत्यनुवर्तते । न चादेशो हलादिरस्ति " ।

आदेश हो (३४१) से अद्का लोप किया अभ्यम् आदेश हुआ द्का लोप किया (३००) से म अन्तर्गत अ पररूप हुआ और (३४१) से दका लोप किया तो भ्यम् आदेश हुआ, युष्मभ्यम् अस्मभ्यम् । पं० ए० युष्मद्+ङसि । अस्मद्+ङसि-

(३८२) एकवचनस्य च । ७ । १ । ३२ ॥

आभ्यां ङसेरत् स्यात् ।

युष्मद् अस्मद् शब्दसे परे ङसि प्रत्यय आवे तो प्रत्ययके स्थानमें अत् आदेश हो (३४९) मपर्यन्तको त्व और म आदेश हुआ त्व+अद्+अ+त् । म+अद्+अत् । त्वद् (३००)+अत् । मद् (३००)+अत् (४४१) से द्का लोप हुआ तो त्वत् मत् (३००) पं० द्वि० युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । पं० ब० युष्मद्+भ्यस् । अस्मद्+भ्यस्-

(३८३) पञ्चम्या अत् । ७ । १ । ३१ ॥

आभ्यां पञ्चम्या भ्यसोऽत्स्यात् ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे पंचमीका भ्यस् प्रत्यय आवे तो भ्यस्के स्थानमें अत् आदेश हो । युष्मद्+अत् । अस्मद्+अत् (३४१) से दका लोप=युष्मद् । अस्मद् । ष० ए० युष्मद्+ङस् । अस्मद्+ङस्-

(३८४) तवममौ ङसि । ७ । २ । ९६ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ स्तो ङसि ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे ङस् आवे तो इन शब्दोंके मपर्यन्त भागको तव मम आदेश हों । तव+अद्+ङस् । मम+अद्+ङस्=तवद् (२००)+ङस् । ममद् (३००)+ङस् । तव (३४१)+ङस्=मम (३४१)+ङस्

(३८५) युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् । ७ । १ । २७ ॥

अनयोः परस्य ङसः अश् आदेशः स्यात् ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे ङस् आवे तो ङस्के स्थानमें अश् आदेश हो । तव+अश् । मम+अश् (९-६) श् का लोप (३००) से वमके अन्तर्गत अकारको पररूप हुआ तब ष० ए० तव, मम रूप हुए । युष्मद्+ओः अस्मद्+ओः । (३४२) से मपर्यंतको युव आव आदेश हुआ तब युव+अद्+ओः । आव+अद्+ओः-युवद् (३००)+ओः । आवद् (३००)+ओः (३३८) द्के स्थानमें य् हुआ तब युवय्+ओः-युवयोः । आवय्+

---

१ शित्वात्सर्वादेशः ।

ओः=आवयोः । ष० व० युष्मद्+आम् । अस्मद्+आम् (३४१) से द्का लोप (१७४) से (सुट्) स् आम्के पूर्व हुआ । युष्म+स्+आम्=युष्म+साम् । अस्म+स्+आम्-अस्म+साम्-

(३५६) साम[६] आकम्[१] । ७ । १ । ३३ ॥

आभ्यां परस्य साम आकं स्यात् ।

भाविनः सुटो निवृत्त्यर्थं ससुट्कनिर्देशः ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे परे साम् आवे अर्थात् विद्यमान जो आम् और भविष्यत् जो सुट् उसके स्थानमें आकम आदेश हो, होनेवाला सुट् न हो, इसलिये सुट् सहित (साम्) कहा । ष० ब० युष्म+आकम्=युष्माकम् । अस्म+आकम्=अस्माकम् । स० ए० युष्मद्+इ । अस्मद्+इ (३४९) से मपर्यन्तको त्व, म, आदेश यथा–त्व+अद्=इ ।=म+अद्+इ । त्वद् (३००)+इ मद् (३००)+इ (३४८) से द्के स्थानमें य् । त्वय्+इ=त्वयि मय्+इ=मयि । स० द्वि० युवयोः । आवयोः । स० ब० युष्मद्+सु । अस्मद्+सु । (३०१) से द्का लोप (३४९) म अन्तर्गत अकारको आकार हुआ तब युष्मा+सु=युष्मासु । अस्मा+सु=अस्मासु सिद्ध हुए ।

(३५७) युष्मद[६]स्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थ[६]योर्वान्नावौ[१] । ८ । १ । २० ॥

पदात्परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोरनयो-र्वान्नावौ इत्यादेशौ स्तः ।

जब युष्मद् अस्मद् शब्द किसी पदसे परे हों परन्तु किसी श्लोकके चरण (पाद) के आदिमें न हों षष्ठी चतुर्थी और द्वितीया युक्त हों तो उन शब्दोंके स्थानमें वाम् और नौ आदेश हों । यह सूत्र नीचे लिखे तीन सूत्रोंसे बाधित होकर केवल द्विवचनमें ही लगता है ।

(३५८) बहुवचन[६]स्य वस्नसौ[१] । ८ । १ । २१ ॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोर्वस्नसौ स्तः । वान्नावोरपवादः ।

पदसे परे अपादकी आदिमें स्थित षष्ठी आदि बहुवचन युक्त युष्मद् अस्मद् शब्द हों तो उनके स्थानमें वस् और नस् आदेश हों अर्थात् जो षष्ठी आदिमें सब वचनोंको (३५७) वाम् और नौ कहा था, यह उसका अपवाद है कि द्वितीया चतुर्थी और षष्ठीके बहुवचनमें वस् नस् हों ।

---

१ इदं चान्त्यलोप पक्ष एव । टिलोपपक्षे तु ' गोतो णित् ' इत्यत्र गकारोच्चारणमिवात्रापि सकारोच्चारणम-विवक्षितमेवेति ।

(३५९) तेमयावेकवचनस्य । ८ । १ । २२ ॥

उक्तविधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्ते मे एतौ स्तः ।

पदसे परे अपादकी आदिमें स्थित युष्मद् अस्मद् शब्द षष्ठी और चतुर्थीके एकवचन युक्त हों तो उनको ते मे आदेश हों ।

(३६०) त्वामौ द्वितीयायाः । ८ । १ । २३ ॥

द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा इत्यादेशौ स्तः ।

(३५७) में कहे विधिके विषयमें युष्मद् अस्मद् शब्द द्वितीयाके एकवचन युक्त हों तो उनको क्रमसे त्वा, मा आदेश हों । (३५७ से ३६०) तकका उदाहरण.

श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः ॥
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः ॥ १ ॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः ॥
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः ॥ २ ॥

(श्रीशः) लक्ष्मीके स्वामी, (त्वा) तुझको, (मा) मुझको, (अवतु) रक्षा करे(इह) यहां, (ते) तुझे, (मे) मुझे, (शर्म) सुख, (दत्तात्) दे, (सः) वह, (हरिः) नारायण, (ते) तेरा, (मे) मेरा, (स्वामी) स्वामी है । (विभुः) वह सामर्थ्यवान् ईश्वर, (वां) तुम दोनोंको, (नौ) हम दोनोंको, (पातु) पालन करै ॥ १ ॥

(ईशः) ईश्वर, (वां) तुम दोनोंको, (नौ) हम दोनोंको, (सुखं) सुख, (ददातु) दे, (हरिः) ईश्वर, (वां) तुम दोनोंका, (नौ) हम दोनोंका, (पतिः) स्वामी है । (सः) वह (वः) तुमको, (नः) हमको, (अव्यात्) पाले, और (वः) तुमको, (नः) हमको (शिवम्) कल्याण, (दद्यात्) देवै (अत्र) यहाँ, (वः) तुम्हारे, (नः) हमारे, (सः) वह, (सेव्यः) सेवा करने योग्य है ॥ २ ॥ इन श्लोकोंमें ऊपर लिखे जो जो आदेश हुए हैं, उनके नीचे (–) ऐसा चिह्न कर दिया है ।

(३६१) एकवाक्ये[1] निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः ।

युष्मद् अस्मद् शब्दोंको जो आदेश (३५७ से ३६० तक) कहे हैं सो एकवाक्यमेंही हों । **एकतिङ् वाक्यम्** । जिसमें एक क्रिया मुख्य हो उसको वाक्य कहते हैं । यथा **शालीनां ते ओदनं दास्यामि** । मैं (ते) तुझे चावलोंका भात दूंगा । यहां एक

---

१ एकवाक्यमें अनुदात्त, युष्मद् अस्मद् शब्दको आदेश कहने चाहिये । एकतिङन्तार्थनिष्ठमुख्यविशेष्यताकबोधजनकं वाक्यम् इत्यर्थः । तेन पश्य मृगो धावति इत्यादौ न दोषः । धावन्तं मृगं पश्येति तदर्थादिति बोध्यम् ।

क्रिया होनेसे (ते) आदेश हुआ । **ओदनं पच, तव भविष्यति ।** चावल पकाओ-तेरा होगा, यहांपर एक वाक्य नहीं है । **तेनेह न ।**[1] इस कारण यहां आदेश न हुअ कारण कि ' पच ' और ' भविष्यति ' इसमें दो क्रिया हैं । **एते वांनावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः ।** जहां अन्वादेश नहीं होता वहां तो यह विकल्प करके हों परन्तु **अन्वादेशे तु नित्यं स्युः ।** अन्वादेश (३०६) में यह आदेश नित्य हों । यथा **धाता ते भक्तोऽस्ति धाता तव भक्तोऽस्ति ।** ब्रह्मा तुम्हारा भक्त है, ऊपरके वाक्यमें ' अस्ति ' क्रियापद है इससे वह वाक्य है इसकारण विकल्प करके तवके स्थानमें ते आदेश हुआ । **तस्मै**[2] **ते नमः** (तस्मै) तिस (ते) तेरे निमित्त (नमः) नमस्कार है, यहां तस्मैके उपरान्त ते आनेसे अन्वादेश हुआ, तब तवके स्थानमें नित्य ते हुआ॥

सुपाद् शब्द (जिसके श्रेष्ठ चरण हों)

प्र० सुपाद्-त् (१६९) सुपादौ सुपादः । **द्वि०** सुपादम् सुपादौ सुपाद्+अस्—

(३६२) पादः पत् । ६ । ४ । १३० ॥

पाच्छब्दान्तं यदङ्गं भं तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः स्यात् ।

जिसके अन्तमें पाद् शब्द हो ऐसे भसंज्ञक (१८९) अंगके अवयव पाद् शब्दके स्थानमें पद् आदेश हो । सुपद्+अस्=सुपदः ।

तृ०	सुपदा	सुपाद्भ्याम्	सुपाद्भिः	**ष०**	सुपदः	सुपदोः	सुपदाम्
च०	सुपदे	सुपाद्भ्याम्	सुपाद्भ्यः	**स०**	सुपदि	सुपदोः	सुपात्सु
पं०	सुपदः	सुपाद्भ्याम्	सुपाद्भ्यः	**सं०**	हेसुपाद्-त्	हे सुपादौ	हे सुपादः

अग्निमथ् शब्द (अग्नि मथनेहारा)

प्र० अग्निमथ् स् (१९९) से सकारका लोप (८२) से थके स्थानमें द् (१६९) से द्के स्थानमें विकल्प करके त् हुआ.

प्र०	अग्निमद्-त्	अग्निमथौ	अग्निमथः	**पं०**	अग्निमथः	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भ्यः
द्वि०	अग्निमथम्	अग्निमथौ	अग्निमथः	**ष०**	अग्निमथः	अग्निमथोः	अग्निमथाम्
तृ०	अग्निमथा	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भिः	**स०**	अग्निमथि	अग्निमथोः	अग्निमत्सु
च०	अग्निमथे	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भ्यः	**सं०**	हे अग्निमद्-त्	हे अग्निमथौ	हे अग्निमथः

प्र-अन्च् (प्र+अन्च्) (पूर्वदिशा ।

---

१ यहां ' पच ' पदसे परे ' तव ' को ' ते ' नहीं होता, क्यों कि ' पच ' दूसरे वाक्यका पद है और तव दूसरे पदमें, एक पदमें नहीं । पद और युष्मद् अस्मद् शब्द दोनों एकपदमें हों तभी आदेश होते हैं ।

२ यहां "योऽग्निर्हव्यवाट् तस्मै ते नमः" इस प्रकार अन्वादेश समझना चाहिये ।

(३६३) अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति । ६ । ४ । २४ ॥

हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः किति ङिति ।

हलन्त अंग जो इदित् न हो अर्थात् जिसके इकारकी इत् संज्ञा न हुई हो तिस अंगकी उपधा (१९६) के नकारका लोप हो कित् और ङित् प्रत्यय परे रहते । (३२८) से क्विन् प्रत्यय होकर फिर प्र अन्च्मेंसे नकारका लोप होकर प्रअच् रहा (३१६) से नुम्का आगम होकर (२३९से) प्र अन् च् हुआ (१९९) से सुके सकारका लोप (२६) से च्का लोप (३३१) से न्को ङ् और (९९) से प्र अन्तर्गत अकारको दीर्घ हुआ ।

प्र० प्राङ् प्राञ्चौ प्राञ्चः **द्वि०** प्राञ्चम् प्राञ्चौ । प्राञ्चौ में न् पदान्त न था इससे (३३१) से न्के स्थानमें ङ् न हुआ. (७६) से ञ् हुआ । प्र अन्च्+शस् (३६३) से प्र अच्+अस्-

(३६४) अचः । ६ । ४ । १३८ ॥

लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याकारस्य लोपः ॥

अञ्च् धातुके नकारका लोप हुआ हो तो उसके भसंज्ञक (१८९) अकारका लोप हो । प्रच्+अस्-

(३६५) चौ । ६ । ३ । १३८ ॥

लुप्ताकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः ॥

अञ्च् धातुके अकार नकारका लोप हुआ हो तो उसके पूर्व अण् (अ इ उ) को दीर्घ हो । प्राच्+अस्=प्राचः ।

तृ०	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः	ष०	प्राचः	प्राचोः	प्राचाम्
च०	प्राचे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः	स०	प्राचि	प्राचोः[333 82]	प्राक्षु
पं०	प्राचे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः	सं०	हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्चः

प्रत्यङ् (प्रति अञ्च्) शब्द (पश्चिम दिशा)

प्र०	प्रत्यङ्[36]	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः	पं०	प्रतीचः	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
द्वि०	प्रत्यञ्चम्	प्रत्यञ्चौ	प्रतीचः	ष०	प्रतीचः	प्रतीचोः	प्रतीचाम्
तृ०	प्रतीचा[36]	प्रत्यग्भ्याम्[25333]	प्रत्यग्भिः	स०	प्रतीचि	प्रतीचोः	प्रत्यक्षु
च०	प्रतीचे	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः	सं०	हे प्रत्यङ्	हे प्रत्यञ्चौ	हे प्रत्यञ्चः

उदङ् (उद्+अञ्च्) शब्द (उत्तर दिशा)

प्र० उदङ् उदञ्चौ उदञ्चः । **द्वि०** उदञ्चम् उदञ्चौ । उद् अन् च्+अस् (शस्) (३६२) से न्का लोप तब उद् अच्+अस्–

(३६६) उद ईत् । ६ । ४ । १३९ ॥

उच्छब्दात्परस्य लुप्तनकाराञ्चतेर्भस्याकारस्य ईत् ॥

उद् शब्दसे परे नकार लोप हुआ है जिसका ऐसी अञ्च् धातुके भसंज्ञक (१८९) अकारके स्थानमें ईत् आदेश हो । उद्+ईच्+अस्+उदीचः ।

तृ०	उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः	**ष०**	उदीचः	उदीचोः	उदीचाम्
च०	उदीचे	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः	**स०**	उदीचि	उदीचोः	उदक्षु
पं०	उदीचः	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः	**सं०**	हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्चः

सम् अन्च् (३२८) से क्विन् (०) प्रातिपदिक संज्ञा होकर **प्र०** ए० सु आया सम् अन् च्+सु–

(३६७) समः समि । ६ । ३ । ९३ ॥

अप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ ॥

अप्रत्यय अर्थात् जब अञ्च् धातुसे परे प्रत्यय विद्यमान न हो, और सम्से परे अञ्च धातु हो तो समके स्थानमें समि आदेश हो । समि अन् च्+सु (३६२) से न्का लोप । (३१६) से नुम् (२६) से च्का लोप होकर समि+अन् रूप होकर (२१) से सम्यन् हुआ (३३१) से न्के स्थानमें ङ् हुआ–

प्र०	सम्यङ्	सम्यञ्चौ	सम्यञ्चः	**पं०**	समीचः	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भ्यः
द्वि०	सम्यञ्चम्	सम्यञ्चौ	समीचः	**ष०**	समीचः	समीचोः	समीचाम्
तृ०	समीचा	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भिः	**स०**	समीचि	समीचोः	सम्यक्षु
च०	समीचे	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भ्यः	**सं०**	हे सम्यङ्	हे सम्यञ्चौ	हे सम्यञ्चः

सह अन्च् शब्द (साथ चलनेवाला)

(३६८) सहस्य सध्रिः । ६ । ३ । ९५ ॥

अप्रत्ययेऽञ्चतौ परे सहस्य सध्रिः आदेशः स्यात् ।

सहसे परे प्रत्ययरहित अञ्च धातु आवे तो सहके स्थानमें सध्रि आदेश हो । सध्रि अन् च् (३६७) सम्यङ् शब्दके समान रूप हुए ।

---

१ क्विन् प्रत्ययका सर्वापहारी लोप हो जाता है, इस लिये वह अविद्यमान प्रत्यय कहलाती है ।

प्र०	सध्र्यङ्	सध्र्यञ्चौ	सध्र्यञ्चः	पं०	सध्रीचः	सध्र्यग्भ्याम्	सध्र्यग्भ्यः
द्वि०	सध्र्यञ्चम्	सध्र्यञ्चौ	सध्रीचः	ष०	सध्रीचः	सध्रीचोः	सध्रीचाम्
तृ०	सध्रीचा	सध्र्यग्भ्याम्	सध्र्यग्भिः	स०	सध्रीचि	सध्रीचोः	सध्र्यक्षु
च०	सध्रीचे	सध्र्यग्भ्याम्	सध्र्यग्भ्यः	सं०	हे सध्र्यङ्	हे सध्र्यञ्चौ	हे सध्र्यञ्चः

तिरस् अन् च् (तिरछी गतिवाला)

(३६९) तिरसस्तिर्यलोपे । ६ । ३ । ९४ ॥

अलुप्ताकारेऽञ्चतौ अप्रत्ययान्ते तिरसस्तिर्यादेशः ।

जिसके अकारका लोप (३६४) से नहीं हुआ और जिसके अन्तमें प्रत्यय नहीं ऐसे अन्च् धातुके परे हुए सन्ते तिरस्के स्थानमें तिरि आदेश हो । तिरि अन् च्+स्-

(१९९) से स् का लोप (३६७) की सब विधि (३६३) से न् का लोप (३१६) से नुम् (२६) से चकारका लोप रि अन्तर्गत इ को य् (२१) हुआ (३३१) से न् के स्थानमें ङ् हुआ.

प्र०	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः	पं०	तिरश्चः	तिर्यगभ्याम्	तिर्यग्भ्यः
द्वि०	तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिरश्चः [1]	ष०	तिरश्चः	तिरश्चोः	तिरश्चाम्
तृ०	तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम् [2]	तिर्यग्भिः	स०	तिरश्चि	तिरश्चोः	तिर्यक्षु
च०	तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः	सं०	हे तिर्यङ्	हे तिर्यञ्चौ	हे तिर्यञ्चः

प्र अन्च् (पूजावाचक अञ्च् धातु)

(३७०) नाञ्चेः पूजायाम् । ६ । ४ । ३० ॥

पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न ॥

पूजा अर्थवाले अञ्च् धातुके उपधाभूत नकारका (३६३) से लोप न हो । (१९९) से स्--का लोप (२६) से चकारका लोप (३३१) से न् के स्थानमें ङ् (९१) से प्र अन्तर्गत अकारको आकार हुआ,

प्र०	प्राङ्	प्राञ्चौ [3]	प्राञ्चः	पं०	प्राञ्चः	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भ्यः
द्वि०	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः	ष०	प्राञ्चः	प्राञ्चोः	प्राञ्चाम्
तृ०	प्राञ्चा	प्राङ्भ्याम् [4]	प्राङ्भिः	स०	प्राञ्चि	प्राञ्चोः	प्राङ्षु-क्षु [5]
च०	प्राञ्चे	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भ्यः	सं०	हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्चः

१ (१६४) से अकारका लोप होनेसे तिरि आदेश (३६९) से न हुआ । २ (१८५) से भसंज्ञा न हुई इससे अकारका लोप न हुआ तो (३६९) की विधि लगी । ३ (नलोपाभावादलोपो न) (३६४) से नकारका लोप न हुआ तो अकाभी न हुआ तब (७६) से न्को ञ् हुआ । ४ (२६) से च्का लोप (३३३) से न्के स्थानमें ङ् हुआ । । ५ (२६) च्का लोप (३३३) से न्के स्थानमें ङ् (१०४) से कुक्का आगम विकल्प करके हुआ (१५९) से सुके स्थानमें षु हुआ क् मिलकर क्षु हुआ ।

एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः । इसी प्रकार प्रत्यङ् आदि पूजार्थ अञ्च् धातुके शब्दोंके रूप जानने. (यथा—सम्यङ्, और तिर्यङ्)

क्रुन्च् (कुटिलगामी)

प्र०	क्रुङ्	क्रुञ्चौ	क्रुञ्चः	पं०	क्रुञ्चः	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्भ्यः
द्वि०	क्रुञ्चम्	क्रुञ्चौ	क्रुञ्चः	ष०	क्रुञ्चः	क्रुञ्चोः	क्रुञ्चाम्
तृ०	क्रुञ्चा	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्भिः	स०	क्रुञ्चि	क्रुञ्चोः	क्रुङ्षु-क्षु
च०	क्रुञ्चे	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्भ्यः	सं०	हे क्रुङ्	हे क्रुञ्चौ	हे क्रुञ्चः

पयोमुच् शब्द (मेघ)

(३३३) से च्के स्थानमें क् (१६९) से क्के स्थानमें विकल्पसे ग् हुआ.

प्र०	पयोमुक्-ग्	पयोमुचौ	पयोमुचः	पं०	पयोमुचः	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भ्यः
द्वि०	पयोमुचम्	पयोमुचौ	पयोमुचः	ष०	पयोमुचः	पयोमुचोः	पयोमुचाम्
तृ०	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः	स०	पयोमुचि	पयोमुचोः	पयोमुक्षु
च०	पयोमुचे	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भ्यः	सं०	हे पयोमुक्-ग्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः

महत् (मह+तृ) शब्द (बडा)

पृषत् महत् बृहत् और जगत् इन शब्दोंको शतृप्रत्ययान्त कार्य होता है. शतृमेंसे श् और ऋका लोप होकर अत् बाकी रहा तब मह+अत्=महत् महत्+स् (१९९) से स्का लोप (३१६) से नुम् हुआ (२६) से त्का लोप होकर महन् हुआ.

(३७१) सान्तमहतः संयोगस्य । ६ । ४ । १० ॥

सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे ॥

सम्बुद्धिरहित सर्वनामस्थान परे रहते सान्तसंयोग और महत् शब्दके नकारकी उपधाको दीर्घ हो । इससे ह अन्तर्गत आकारको दीर्घ हुआ.

प्र०	महान्	महान्तौ	महान्तः	पं०	महतः	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
द्वि०	महान्तम्	महान्तौ	महतः	ष०	महतः	महतोः	महताम्
तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः	स०	महति	महतोः	महत्सु
च०	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः	सं०	हे महन्	महान्तौ	हे महान्तः

धीमत् शब्द (बुद्धिमान्) धीमत्+सु—

(३७२) अत्वसन्तस्य चाधातोः । ६ । ४ । १४ ॥

१ तत्फलस्येत्यर्थः । पारिभाषिकोपधात्वस्यात्रासंभवात् ।

अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ सौ परे ॥

अतु जिसके अन्तमें हो ऐसा शब्द तथा धातुको छोडकर अस् जिस शब्दके अन्तमें हो तिन शब्दोंसे परे संबुद्धिभिन्न सु प्रत्यय आवे तो तिनकी उपधाको दीर्घ हो ।

धीसे मतुप् करनेसे धीमत् शब्द हुआ, इससे परे प्रथमा विभक्तिका सु प्रत्यय आया (३१६) से नुम्का न् आगम मकार अन्तर्गत अकारसे परे हुआ (१९९) सुके शेषभाग सकारका लोप हुआ, (२६) से त्का लोप (२७२) से म अन्तर्गत अकारकी उपधाको दीर्घ हुआ, तब धीमान् रूप सिद्ध हुआ । शेष रूप महत् (२७१) शब्दके समान जानो ।

भा धातुसे परे डवतु होकर (२६७) से भा अन्तर्गत टिसंज्ञक। अकारका लोप हुआ, डवतुमेंसे अवत् रहा तब (३६२, ३१६, १९९, २६) से भवान् (आप) रूप सिद्ध हुआ । जो भवत् शब्द शतृ (८८३) प्रत्ययान्त है, उसकी उपधाको तो दीर्घ न होगा, क्योंकि वह अत्वन्त नहीं है, तब ' भवन् ' रूप होगा, शेष रूप महत् शब्दके समान जानो ॥ ददत्+सु–

(३७३) उभे अभ्यस्तम् । ६ । १ । ५ ॥

षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्तः ।

अष्टाध्यायीके छठे अध्यायमें जो द्वित्व प्रकरण कहा है अर्थात् जो किसी सूत्रसे द्वित्व हुआ है उससे पूर्व तथा उत्तर रूपकी अभ्यस्त संज्ञा हो अर्थात् दोनों इकट्ठोंकी अभ्यस्त संज्ञा हो ।

(३७४) नाभ्यस्ताच्छतुः । ७ । १ । ७८ ॥

अभ्यस्तात्परस्य शतुर्नुम् न स्यात् ।

अभ्यस्तसंज्ञकसे परे शतृ प्रत्यय आवे तो नुम् (३१६) का आगम न हो । दा धातुसे शतृ प्रत्यय आया तब उसको द्वित्व होकर ' ददत् ' रूप हुआ ।

ददत् (दान देनेवाला)

प्र०	ददत्–द्	ददतौ	ददतः	पं०	ददतः	ददद्भ्याम्	ददद्भ्यः
द्वि०	ददतम्	ददतौ	ददतः	ष०	ददतः	ददतोः	ददताम्
तृ०	ददता	ददद्भ्याम्	ददद्भिः	स०	ददति	ददतोः	ददत्सु
च०	ददते	ददद्भ्याम्	ददद्भ्यः	सं०	हे ददत्–द्	हे ददतौ	हे ददतः

---

१ अत्वन्तकी उपधाको दीर्घ हो और धातु भिन्न जो अस् तदन्तकी उपधाको दीर्घ हो संबुद्धिभिन्न सु परे रहते ।

(३७५) जक्षित्यादयः षट् । ६ । १ । ६ ॥

षड् धातवोऽन्ये जक्षितिश्च सप्तम एते अभ्यस्तसंज्ञाः स्युः ।

छः धातु अन्य और सातवां जक्षिति (जक्ष) इन सबकी अभ्यस्त संज्ञा हो । **जक्षत्** (खानेवाला) **जाग्रत्** (जागनेवाला) **दरिद्रत्** (कंगालीवाला **शासत्**) (शिक्षा करनेवाला) (**चकासत्**) प्रकाश पानेवाला इन सब शब्दोंके रूप ददत्के समान जानने । जक्षत्–जक्षद् जक्षतौ जक्षतः । जक्षत्सु ॥

गुप् (छिपानेवाला)

इसके रूप ददत् शब्दके समान जानने । गुप्–गुब् गुपौ गुपः । हलादि विभक्ति (८२) से प्के स्थानमें ब् हुआ ' गुब्भ्याम् ' इत्यादि ॥

तादृश् (उस सरीखा)

(३७६) त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च । ३ । २ । ६० ॥

त्यदादिषूपपदेषु अज्ञानार्थाद् दृशेः कञ्, चात् क्विन् ॥

त्यद् आदि सर्वनाम (१७०) शब्द अज्ञानार्थ दृश् धातुके उपपदमें हों तो दृश् धातुसे परे कञ् और क्विन् प्रत्यय हो । तद्+दृश्+क्विन् प्रत्ययका सर्वापहारी लोप हुआ ।

(३७७) आ सर्वनाम्नः । ६ । ३ । ९१ ॥

सर्वनाम्न आकारोऽन्तादेशः स्याद् दृग्दृशवतुषु ।

सर्वनामसंज्ञक शब्दोंसे परे दृग् दृश शब्द और वतु प्रत्यय आवे तो उसे आकार अन्तादेश हो ।

तद्+दृश्+तादृश् (२७, ९९) तादृश्+सु (१९९, ३३४, ८२, ३३१, १६९) ।

प्र०	तादृक्–ग्	तादृशौ	तादृशः	**पं०**	तादृशः	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
द्वि०	तादृशं	तादृशौ	तादृशः	**ष०**	तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
तृ०	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः	**स०**	तादृशि	तादृशोः	तादृक्षु
च०	तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः	**सं०**	हे तादृक्-ग्	हे तादृशौ	हे तादृशः

विश् शब्द (प्रवेश करनेवाला)

व्रश्चेति षः जश्त्वचर्त्वे । विश+सु–

(३३४) ष् अन्तादेश हुआ. (८२, १६९) से विट्-विड् ।

प्र०	विट्-ड्	विशौ	विशः	**पं०**	विशः	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
द्वि०	विशम्	विशौ	विशः	**ष०**	विशः	विशोः	विशाम्
तृ०	विशा	विड्भ्याम्	विड्भिः	**स०**	विशि	विशोः	विट्सु-त्सु
च०	विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्यः	**सं०**	हे विट्-ड्	हे विशौ	विशः

१ "जक्षि-जागृ-दरिद्रा-शास-दीधीङ्-वेवीङ्-चकास्तथा । अभ्यस्तसंज्ञा विज्ञेया धातवो मुनिभाषिताः॥ "

नश् (नाश पानेवाला)।

(३७८) नशेर्वा । ८ । २ । ६३ ॥

नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा पदान्ते ।

पदान्तके विषे नश्को कवर्ग अन्तादेश विकल्प करके हो ।

प्र०	नक्[३३४]-ग्[८२]-नट्[१६५]-ड्	नशौ	नशः	**पं०**	नशः	नड्-ग्-भ्याम्	नड्-ग्-भ्यः
द्वि०	नशम्	नशौ	नशः	**ष०**	नशः	नशोः	नशाम्
तृ०	नशा	नड्-ग्-भ्याम्	नड्-ग् भिः	**स०**	नशि	नशोः	नक्षु-नट्सु त्सु
च०	नशे	नड्-ग-भ्याम्	नड्-ग् भ्यः	**सं०**	हे नक्-ग्-नट्-ड्	हे नशौ	हे नशः

घृतस्पृश् शब्द (घीका स्पर्श करनेवाला)

घृतस्पृश्+सु-

(३७९) स्पृशोऽनुदके क्विन् । ३ । २ । ५८ ॥

अनुदके सुप्युपपदे स्पृशेः क्विन् ।

उदक शब्दसे रहित सुबन्त उपपद आवे तो उससे परे क्विन् प्रत्यय हो । क्विन् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप होकर (३३१) कवर्ग और (१९९) से सुका लोप हुआ ।

प्र० घृतस्पृक्-ग् घृतस्पृशौ घृतस्पृशः । **तृ० च० पं०** घृतस्पृग्भ्याम् **स०** ब० घृतस्पृक्षु । शेष रूप नश्के समान जानो ।

दधृष् (धारण करनेवाला)

प्र० ए० दधृक् (१९९, ३२८, ३३१) दधृग् **तृ० च० पं०** दधृग्भ्याम् (८२) **स०** ब० दधृक्षु ।

रत्नमुष् शब्द (रत्न चुरानेवाला.)

प्र० ए० रत्नमुड्-ट् (१९९, ८२, १६५) रत्नमुषौ रत्नमुषः । **तृ० च० पं०** रत्नमुड्भ्याम् **स०** ब० रत्नमुट्सु-त्सु ।

षष् (छः)

(३२४, २०८, ८२, १३२) से **प्र० द्वि०** ब० षट् ड् । **तृ०** ब० षड्भिः । **च० पं०** ब० षड्भ्यः । **ष०** ब० षण्णाम् (२९१, ८२, ७८, ८४) **स०** ब० षट्सु-षट्त्सु (८२, ९०) **पिपठिस्** शब्द (पढनेकी इच्छा करनेवाला)

रुत्वं प्रति षत्वस्याऽसिद्धत्वात ससजुषोरुरिति रुत्वम् । पिपठिस् इसमें (१६९) से सन् प्रत्ययके स्के स्थानमें ष् होता है परन्तु (१२४) से स्के स्थानमें र् हुआ, कारण कि इस सूत्रसे ष् असिद्ध है तब पिपठि र् हुआ-

(३८०) र्वोरुपधाया दीर्घ इकः । ८ । २ । ७६ ॥

रेफवान्तयोरुपधाया इको दीर्घः पदान्ते ।

रेफ वकार जिसके अन्तमें हों ऐसे धातुके उपधाभूत इक् प्रत्याहारको पदान्तमें दीर्घ हो। ठिअन्तर्गत इ दीर्घ हुई तब पिपठी र् रूप हुआ—

प्र० पिपठीः	[१११]पिपठिषौ	पिपठिषः
द्वि० पिपठिषम्	पिपठिषौ	पिपठिषः
तृ० पिपठिषा	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भिः
च० पिपठिषे	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भ्यः
पं० पिपठिषः	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भ्यः
ष० पिपठिषः	पिपठिषोः	पिपठिषाम्
स० पिपठिषि	पिपठिषोः	पिपठीस्सु

(१८०, १२४, १११)

(३८१) नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि । ८ । ३ । ५८ ॥

एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इण्कुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः । ष्टुत्वेन पूर्वस्य षः ।

नुम् विसर्ग और शर् प्रत्याहार इनके व्यवधानमें भी इण् अथवा कवर्गसे परे सकार आवे तो उसके स्थानमें षकार हो। पिपठीःषु विसर्ग (११३) से विकल्प करके हुआ. जब न हुआ तब स् रहा उसके स्थानमें (७९) से ष् हुआ—पिपठीष्षु ।

सं० हे पिपठीः हे पिपठिषौ हे पिपठिषः ।

चिकीर्ष् (करनेको इच्छा करनेवाला)

प्र० ए० चिकीर्स्+सु (१३९) से स् के स्थानमें ष् प्राप्त हुआ परन्तु (३९) से असिद्ध हुआ (१९९) से स् का लोप (२६ और २३०) से पहले सकारका लोप (१११) से र् को विसर्ग चिकीः चिकीर्षौ चिकीर्षः । शेषरूप पिपठिस् शब्दके समान जानने, परन्तु सप्तमीका बहुवचन सुप् प्रत्यय आवे तो स् का लोप (२३०) से हुआ परन्तु रेफको विसर्ग (२९४) से न हुआ इससे चिकीर्षु रूप रहा.

विद्वस् शब्द (जाननेवाला)

विद् धातुसे शतृ प्रत्यय हो तो शतृके स्थानमें (८८९) से वसु प्रत्यय होकर विद्वस् रूप सिद्ध हुआ फिर (३१६) से नुम्का आगम होकर विद्वन्+स् हुआ (३७१) से द्वके अन्तर्गत अ उपधाको दीर्घ हुआ (२६) से सकारका लोप हुआ.

प्र० विद्वान् । विद्वांसौ । विद्वांसः । **द्वि०** विद्वासम् विद्वांसौ । विद्वस्+शस्—

(३८२) वसोः संप्रसारणम् । ६ । ४ । १३१ ॥

वस्वन्तस्य भस्य संप्रसारणं स्यात् ।

वसु प्रत्यय (८८९) जिसके अन्तमें हो ऐसे भसंज्ञक (१८९) अंगको सम्प्रसारण

---

१ आदेशप्रत्यययोः इति तु पदान्तत्वान्न प्रवृत्तिमर्हतीति भावः ।

(१८१) से हो। विद्वस् शब्दके द्व अन्तर्गत व् के स्थानमें उकार हुआ तब विद्+उ+अस् हुआ (१८३) से विदुस्+अस् हुआ (१६९) से स्को ष्=विदुषस्=विदुषः। (१२४ ,१११)

तृ० विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः	**ष०**	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
च० विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः	**स०**	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु
पं० विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः	**सम्बो०**	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः

पुंस् शब्द शब्द (पुरुष)

पुंस्+सु

(३८३) पुंसोऽसुङ् । ७ । १ । ८९ ॥

सर्वनामस्थाने विवक्षिते पुंसोऽसुङ् स्यात् ।

पुंस् शब्दसे परे सर्वनामस्थान (१८३)प्रत्यय हो तो पुंस्के स्थानमें असुङ् आदेश हो। (९, ३६, ९९) से असुङ्मेंसे अस् शेष रहा वह अन्त्य सकारके स्थानमें हो गया अनुस्वार फिर अपने मकारके रूपको प्राप्त हुआ, तब पुम्+अस्+स्=पुमस्+स् रूप हुआ (२१६, २७१) से पुमान्+स् (१९९) से लोप ।

प्र०	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः	**पं०**	पुंसः	पुंभ्याम्	पुंभ्यः
द्वि०	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः	**ष०**	पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्
तृ०	पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः	**स०**	पुंसि	पुंसोः	पुंसु
च०	पुंसे	पुंभ्याम्	पुंभ्यः	**सं०**	हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः

उशनस् शब्द (शुक्र)

प्र० ए० उशनस्+स् (२२६) से स्के स्थानमें अनङ् आदेशका अन् भाग शेष रहा तब उशनन् (१९७) से न अन्तर्गत अको दीर्घता प्राप्त हुई, तब उशनान् (२००) और (१९९) से न् और स् का लोप हुआ।

प्र०	उशना	उशनसौ	उशनसः	**पं०**	उशनसः	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः
द्वि०	उशनसम्	उशनसौ	उशनसः	**ष०**	उशनसः	उशनसोः	उशनसाम्
तृ०	उशनसा	उशनोभ्याम्[2]	उशनोभिः	**स०**	उशनसि	उशनसोः	उशनः-सुत्सु
च०	उशनसे	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः	**सं०**	उशनस्+सु-		

(३८४) अस्य संबुद्धौ वाऽनङ् नलोपश्च वा वाच्यः ।

१ सर्वनामस्थानकी विवक्षामें पुंस् शब्दको असुङ् आदेश हो।

२ उशनस्+भ्याम् (१२४) से स्के स्थानमें रु (१२६) से उ (२३५) से गुण हुआ।

उशनस् शब्दसे परे सम्बोधनका सु प्रत्यय आवे तो अनङ् आदेश और नकारका लोप विकल्प करके हो। अनङ् होकर सु और न का लोप (२९९) हे उशन, अनङ् होकर लोप नहीं तब हे उशनन्, दोनों ही नहीं तो सकारको विसर्ग हे उशनः हे उशनसौ हे उशनसः

अनेहस् शब्द (समय)

प्र० ए० अनेहस्+सु प्रत्यय आया (२२६) से अस् और अन्त्यके स्थानमें अनङ्का आदेश हुआ. तब अनेहन् रूप हुआ, (१९७) से नान्तउपधाके ह अन्तर्गत अ को दीर्घ और (२००) से नकारका लोप हुआ.

प्र०	अनेहा	अनेहसौ	अनेहसः
द्वि०	अनेहसम्	अनेहसौ	अनेहसः
तृ०	अनेहसा	अनेहोभ्याम्	अनेहोभिः
च०	अनेहसे	अनेहोभ्याम्	अनेहोभ्यः
पं०	अनेहसः	अनेहोभ्याम्	अनेहोभ्यः
ष०	अनेहसः	अनेहसोः	अनेहसाम्
स०	अनेहसि	अनेहसोः	अनेहस्सु-सु।
सं०	हे अनेहः	हे अनेहसौ	हे अनेहसः

वेधस् शब्द (ब्रह्मा)

प्र० ए० (३७२) से स् की उपधामें ध अन्तर्गत अको दीर्घता प्राप्त हुई (१२४) से स् के स्थानमें रु उसमें उकार जाकर रकार रहा फिर (१११) से र्को विसर्ग यथा—वेधाः वेधसौ। हे वेधः। वेधोभ्याम् इत्यादि। शेष रूप अनेहस् शब्दके समान जानने।

अदस् शब्द (वह) प्र० अदस्+सु—

(३८५) अदस औ सुलोपश्च। ७। २। १०७॥

अदस औत्स्यात्सौ परे सुलोपश्च।

सु परे रहते अदस् शब्दको औकार अन्तादेश हो और सुका लोप हो। अद औ और (३३८) से द्के स्थानमें स्=असौ। अदस्+औ (२१३) से स्के स्थानमें अ अद अ (३००) से अका पररूप तब अद+औ (४१) वृद्धि हुई अदौ—

(३८६) अदसोऽसेर्दादु दो मः। ८। २। ८०॥

अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उदूतौ दस्य मश्च। आन्तरतम्याद् ध्रस्वस्य उः, दीर्घस्य ऊः।

असान्त (जिसके अन्तमें सकार न हो ऐसे) अदस् शब्दके दकारसे परे ह्रस्व स्वर होय तो उसके स्थानमें ह्रस्व उ हो और दीर्घ स्वर हो तो उसके स्थानमें दीर्घ ऊ हो और दकारके

स्थानमें मकार हो। यहां औके स्थानमें ऊ हुआ. अद+ऊ और दके स्थानमें म् हुआ तब अमू हुआ। अदस्+अस् (२१३) से स्के स्थानमें अ (१७१) से जस्के स्थानमें शी पीछे (३९) से गुण हुआ अद+ अ+ई (शी)=अदे=

(३८७) एत ईद्बहुवचने। ८।२।८१॥

अदसो दात्परस्यैत ईत्स्याद्दस्य च मो बह्वर्थोक्तौ।

पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक् पश्चादुत्वमत्वे।

अदस् शब्दके बहुवचनमें दकारसे परे एकार आवे तो एकारके स्थानमें ईकार हो और दकारके स्थानमें मकार हो। अमी।

अदस्+अम्। अ के स्थानमें (३८६) से उत्व मत्व प्राप्त है (२२३) से अत्व प्राप्त होता है (३९) से अत्व लगता है इस कारण पहले विभक्ति मानके जो अत्व आदि कार्य हैं सो होते हैं पीछे उत्व मत्व होता है तब (अद्) रूप हुआ फिर (३८६) से दकारके स्थानमें मकार और अकारके स्थानमें उकार हुआ अमु+अम्=(१९४) से पूर्वरूप-

द्वि० अमुम् अमू अमून्। तृ० अदस्+टा-

(२१३) से स्के स्थानमें अ हुआ=अद+टा (३७६) से अमु (१९०) से घि संज्ञा हुई फिर (१९१) से टाके स्थानमें ना आदेश हुआ, अमु+ना परन्तु (३८६) के मतसे (१९१) सूत्रकी घि संज्ञा असिद्ध है तो नाका बाधक हुआ कारण कि ना आदेश घि-संज्ञाको मानकर होता है तब अगला सूत्र लगा-

(३८८) न मु ने। ८।२।३॥

नाभावे कर्तव्ये[1] कृते च मुभावो नासिद्धः।

नाभाव किया हो या करनेको हो तो (३८६) का मुत्वभाव असिद्ध न हो।

तृ०	अमुना अमूभ्याम् अमीभिः[३८७]	
च०	अमुष्मै[१७२ १६९] अमूभ्याम् अमीभ्यः	
पं०	अमुष्मात् अमूभ्याम् अमीभ्यः	
ष०	अमुष्य अमुयोः अमीषाम्[१७४]	
स०	अमुष्मिन् अमुयोः अमीषु	

इति हलन्तपुँल्लिंगाः समाप्ताः॥

---

१ 'कर्तव्ये' इत्युक्त्या घिसंज्ञा निराबाधा, कृते चेत्युक्त्या च 'सुपि च' इति दीर्घाभावः सिध्यति।

अथ हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।

उपानह् शब्द (जूता)

(३८९) नहो धः । ८ । २ । ३४ ॥

नहो हस्य धः स्यात् झलि पदान्ते च ।

पदान्तमें अथवा झल् प्रत्याहार परे हुए सन्ते नह् धातुके हकारके स्थानमें ध् हो । नह्=क्विप् प्रत्यय होकर उप पूर्वपद लगा, उप+नह् क्विप्=उप=नध्+क्विप्—

(३९०) नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ । ६ । ३ । ११६ ॥

क्विबन्तेषु पूर्वपदस्य दीर्घः ।

नहि[1] वृति वृषि व्यधि रुचि सहि तनि इन धातुओंके आगे क्विप् आवे तो पूर्वपदको दीर्घ हो । (३३०) से क्विप्का लोप उपके अकारको दीर्घ हुआ । उपा+नध्=उपानध् (८२, १६९) से ध्को त् हुआ ।

प्र०	उपानत्-द्	उपानहौ	उपानहः	पं०	उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
द्वि०	उपानहम्	उपानहौ	उपानहः	ष०	उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः	स०	उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु
च०	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः	सं०	हे उपानत्-द्	हे उपानहौ	हे उपानहः

उष्णिह् शब्द (वेदका एक छन्द.)

क्विन्नन्तत्वात् कुत्वेन घः ।

(३२८) से क्विन् हुआ, (३३१) से ह्के स्थानमें स्थान प्रयत्न मिलाकर कवर्ग घ् हुआ (१६९) से घ्के स्थानमें क् हुआ ।

प्र०	उष्णिक्-ग्[१६५]	उष्णिहौ	उष्णिहः	पं०	उष्णिहः	उष्णिग्भ्याम्	उष्णिग्भ्यः
द्वि०	उष्णिहम्	उष्णिहौ	उष्णिहः	ष०	उष्णिहः	उष्णिहोः	उष्णिहाम्
तृ०	उष्णिहा	उष्णिग्भ्याम्	उष्णिग्भिः	स०	उष्णिहि	उष्णिहोः	उष्णिक्षु
च०	उष्णिहे	उष्णिग्भ्याम्	उष्णिग्भ्यः	सं०	हे उष्णिक्-ग्	हे उष्णिहौ	हे उष्णिहः

दिव् शब्द (स्वर्ग.)

(२८९) से व्के स्थानमें औ (२१) से यण् होकर विभक्तिके सकारको विसर्ग हुआ, द्यौः रूप हुआ. दिवौ दिवः, द्युभ्याम् शेषं पुंवत् ।

---

१ नह् बांधना, वृत् होना, वृष् बरसना, व्यध ताडन करना, रुच् चमकना, सह सहना, तन् फैलाना (ता[illegible]ना)

गिर् शब्द (वाणी,)

प्र०	गीः[१९९ ३८० १११]	गिरौ	गिरः	**पं०**	गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
द्वि०	गिरम्	गिरौ	गिरः	**ष०**	गिरः	गिरोः	गिराम्
तृ०	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः	**स०**	गिरि	गिरोः	गीर्षु
च०	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः	**सं०**	हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः

पुर् शब्द (नगर)

प्र० पूः पुरौ पुरः । शेष ऊपरके शब्दके समान जानो ।

चतुर् शब्द (चार)

(२४८) से स्त्रीलिंग चतुर् शब्दको चतसृ आदेश हुआ (२४९) से परे स्वर आवे तो सृ अन्तर्गत ऋके स्थानमें रेफ होता है, चतस्रः प्र० बहुवचन । षष्ठीके बहुवचनमें (२९०) से दीर्घ न होकर ' चतसृणाम् ' रूप हुआ ।

किम् शब्द (क्या)

(२४४) से सर्वा शब्दके समान (२९७) से किम्के स्थानमें क हुआ शेष सब सर्वावत् ' का के काः ' इत्यादि ।

इदम् शब्द (यह)

इदम्+सु–

(३९१) यः सौ । ७ । २ । ११० ॥

इदमो दस्य यः स्यात् सौ परे ।

इदम् शब्दसे परे सु प्रत्यय आवे तो दके स्थानमें य् हो । प्र० (२९८) से इयम् इदम्+औ (२१६) से अ अन्तादेश हुआ । दके अन्तर्गत अकार (३००) से पररूप हुआ फिर स्त्रीलिंग है इससे (१३४१) से टाप् हुआ फिर (३०१) से इतर विभक्ति परे रहते द्को म हुआ (२४०) से औ प्रत्ययके स्थानमें शीकी ई रहकर गुण हुआ तब–इमे इमाः । **द्वि०** इमाम इमे इमाः । **तृ०** इदम्+आ (टा)—

(३०२) से इद् भागके स्थानमें अन् आदेश हुआ (२१३) से मके स्थानमें अ(३००) से (२४२)से अन्+अङ्के अ के स्थानमें एकार हुआ तब अने+आ (२०९) अनया । इदम्+भ्याम् (२१३, ३००) से इद अ (३०३) से इद् शब्दका लोप हुआ [अभ्याम्= (१६०) आभ्याम् आभिः ।

च०	अस्यै (२४४)	आभ्याम्	आभ्यः	**स०**	अस्याम् (२१९,२४४)	अनयोः (३०२, २४२) आसु
पं०	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः			
ष०	अस्याः, अनयोः २४२,१७४,२२		आसाम्			

स्रज् शब्द (माला)

प्र० स्रज्+सु (३२८) क्विन् प्रत्यय लगा (३३१) कवर्ग अन्तादेश हुआ (१९९) से स् का लोप हुआ. (अथवा) और भी विवरणसे (३२८, १९९, ३३४, ८२, ३३१) स्रक्

प्र०	स्रक्–ग्	स्रजौ	स्रजः	पं०	स्रजः	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः
द्वि०	स्रजम्	स्रजौ	स्रजः	ष०	स्रजः	स्रजोः	स्रजाम्
तृ०	स्रजा	स्रग्भ्याम्[८२]	स्रग्भिः	स०	स्रजि	स्रजोः	स्रक्षु
च०	स्रजे	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः	सं०	हे स्रक्–ग्	हे स्रजौ	हे स्रजः

त्यद् शब्द (वह)।

त्यदाद्यत्वम्। टाप्।

(२१३) से अकार अन्तादेश (३००) से पररूप (१३४१) स्त्रीलिङ्गका प्रत्यय टाप् होकर आ रहा तब त्या (३३८) से त्के स्थानमें स् हुआ यथा–

प्र०	स्या	त्ये	त्याः	पं०	त्यस्याः	त्याभ्याम्	त्याभ्यः
द्वि०	त्याम्	त्ये	त्याः	ष०	त्यस्याः	त्ययोः	त्यासाम्
तृ०	त्यया	त्याभ्याम्	त्याभिः	स०	त्यस्याम्	त्ययोः	त्यासु
च०	त्यस्यै	त्याभ्याम्	त्याभ्यः				

तद् शब्द (वह।)

प्र०	सा	ते	ताः	पं०	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
द्वि०	ताम्	ते	ताः	ष०	तस्याः	तयोः	तासाम्
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः	स०	तस्याम्	तयोः	तासु
च०	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः				

एतद् शब्द (यह)

(२१३, ३००, १३४१, ३३८. १९९)=एषा।

प्र०	एषा	एते	एताः	पं०	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
द्वि०	एताम्	एते	एताः	ष०	एतस्याः	एतयोः	एतासाम्
तृ०	एतया	एताभ्याम्	एताभिः	स०	एतस्याम्	एतयोः	एतासु
च०	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः				

वाच् शब्द (वाणी)

प्र०	वाक्–ग्[१६५ ३८२]	वाचौ	वाचः	पं०	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
द्वि०	वाचम्	वाचौ	वाचः	ष०	वाचः	वाचोः	वाचाम्
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्[८२]	वाग्भिः	स०	वाचि	वाचोः	वाक्षु[३३३]
च०	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः	सं०	हे वाक्–ग्	हे वाचौ	हे वाचः

अप् शब्द (जल)

अप्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । अप्शब्द नित्य बहुवचनान्त है (२२७) से प्रथमाके बहुवचनमें अ को दीर्घ हुआ–

प्र० ब० आपः । **द्वि०** ब० अपः **तृ०** ब० अप्+भिः ।

(३९२) अपो भि । ७ । ४ । ४८ ॥

अपस्तकारो भादौ प्रत्यये ।

अप् शब्दसे परे भकारादि प्रत्यय आवे तो तकार अन्तादेश हो । (८२) से त् के स्थानमें द् हुआ=अद्भिः **च० पं०** ब० अद्भ्यः । **ष०** ब० अपाम् **स०** ब० अप्सु ।

दिश् शब्द (दिशा) ।

(३२८) से क्विन् (१३१) से क् अन्तादेश अथवा (१६२) से ग् हुआ ।

प्र०	दिक्–ग्	दिशौ	दिशः	**पं०**	दिशः	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
द्वि०	दिशम्	दिशौ	दिशः	**ष०**	दिशः	दिशोः	दिशाम्
तृ०	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः	**स०**	दिशि	दिशोः	दिक्षु
च०	दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः	**सं०**	हे दिक्–ग्	हे दिशौ	हे दिशः

दृश् शब्द (दृष्टि)

त्यदादिष्विति दृशेः क्विनो विधानादन्यत्रापि कुत्वम् । दृश् धातुसे क्विन् (३७६) से किया है इस कारण अन्यत्र क्विन् न होते भी इसके अन्तको कुत्व होता है, जैसे ' दृक् वा दृग् दृशौ दृग्भ्याम् ' दिग्वत् ।

त्विष् शब्द (ज्योति)

(१९९) से सु लोप (८२) से ष्के स्थानमें ड् हुआ (१६९) से विकल्प करके ड्को ट् हुआ.

प्र०	त्विट्-ड्	त्विषौ	त्विषः	**पं०**	त्विषः	त्विड्भ्याम्	त्विड्भ्यः
द्वि०	त्विषम्	त्विषौ	त्विषः	**ष०**	त्विषः	त्विषोः	त्विषाम्
तृ०	त्विषा	त्विड्भ्याम्	त्विड्भिः	**स०**	त्विषि	त्विषोः	त्विट्सु त्सु
च०	त्विषे	त्विड्भ्याम्	त्विड्भ्यः	**सं०**	हे त्विट्–ड्	हे त्विषौ	हे त्विषः

सजुष् शब्द (मित्र)

(१९९) से सुका लोप (१२४) ष्को रेफ (३८०) से जु अन्तर्गत उ उपधाको दीर्घ (१११) रकारको विसर्ग ।

प्र०	सजूः	सजुषौ	सजुषः	**पं०**	सजुषः	सजूर्भ्याम्	सजूर्भ्यः
द्वि०	सजुषम्	सजुषौ	सजुषः	**ष०**	सजुषः	सजुषोः	सजुषाम्
तृ०	सजुषा	सजूर्भ्याम्	सजूर्भिः	**स०**	सजुषि	सजुषोः	सजूष्षु-ःषु
च०	सजुषे	सजूर्भ्याम्	सजूर्भ्यः	**सं०**	हे सजूः	हे सजुषौ	हे सजुषः

आशिष् शब्दके सब रूप इसी प्रकार जानो. इसमें मूर्धन्य षकार असिद्ध होकर (१२४) से रु होकर ' आशी:' बनेगा.

अदस् शब्द (वह)[1]

(३८९) से औ अन्तादेश और सुका लोप होकर (३३८) से दके स्थानमें स् हुआ.

प्र०	असौ	अमू[३८६]	अमूः	पं०	अमुष्याः[२४४ ३८६ १६९]	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
द्वि०	अमूम्	अमू	अमूः	ष०	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्[१७४]
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः				
च०	अमुष्यै[२४४]	अमूभ्याम्[३८६ १६२]	अमूभ्यः	स०	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु (२१९)

इति हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।

अथ हलन्ता नपुंसकलिङ्गाः ।

स्वनडुह् शब्द (सुन्दर बैल जिस स्थानमें वा जिसके पास हो)

सु+अनडुह्=स्वनडुह्+सु

(३९३) स्वमोर्लुक् [स्वमोर्नपुंसकात् । ७ । १ । २३ ॥

नपुंसकलिङ्ग शब्दोंसे परे सु और अम् प्रत्यय आवे तो (२७०) से लोप हो]

प्र० स्वनडुत्[२८७] द् स्वनडुही[२५९] स्वनड्वांहि[२८४ २६४] । **द्वि०** स्वनडुत्–द्[२५७] स्वनडुही[२५९] स्वनड्वांहि[२८४ २६४] ।

शेषरूप पुँल्लिङ्गवत् जानने (२८४) में ।

वार् शब्द (जल)

प्र०	वाः[२७० १११]	वारी[२५९]	वारि[२६२]	पं०	वारः	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
द्वि०	वाः[२७० १११]	वारी[२५९]	वारि[२६२]	ष०	वारः	वारोः	वाराम्
तृ०	वारा	वार्भ्याम्	वार्भिः	स०	वारि	वारोः	वार्षु
च०	वारे	वार्भ्याम्	वार्भ्यः	सं०	हे वाः	वारी	हे वारि

चतुर् शब्द (चार)

प्र० तथा **द्वि०** (२८४) 'चत्वारि,' शेषं पुंवत् ।

किम् शब्द (कौन)

प्र० तथा **द्वि०** किम् (२७०) के (२९९, २९७) कानि (२६४, १९७) शेषं पुंवत् ।

---

१ इदमस्तु सन्निकृष्टे समीपतरवर्ति चैतदो रूपम् । अदसस्तु सन्निकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयादिति वृद्धाः ॥

इदम् शब्द (यह)

प्र० तथा द्वि० इदम् (२७०, २९८) इमे (२२३, ३००, ३०१, २९९) इमानि शेषं पुँल्लिङ्गवत् जानो।

(३९४) अन्वादेशे नपुंसके एनद् वक्तव्यः।

नपुंसकलिङ्गमें जब अन्वादेश (३०७) अर्थ हो तब इदम् और एतद् शब्दके स्थानमें एनत् आदेश हो।

प्र०	एनत् (द्) (२७०)	एने (२१३, ३००, २९९, ३९)	एनानि
द्वि०	एनत् (द्) (२७०)	एने (२१३, ३००, २९९, ३९)	एनानि
तृ०	एतेन एनेन (३०७)	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पं०	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
ष०	एतस्य	एतयोः एनयोः (३०७)	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयोः एनयोः	एतेषु

ब्रह्मन् शब्द (परब्रह्म)

प्र० तथा द्वि० ब्रह्म (२७०, २००) ब्रह्मणी ब्रह्माणि।

संबुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः ॥ ❀ ॥

संबुद्धिमें नपुंसकलिङ्ग वाचक शब्दोंके नकारका विकल्पसे लोप कहना चाहिये। हे ब्रह्मन् हे ब्रह्म। शेषं पुँल्लिङ्गवत्।

(**अहन्** शब्द (दिन)

प्र० द्वि० अहः (२७०, १२९, १११) अहनी, अह्नी (२७४) अहानि-(२६२, २६३, १९७) **तृ०** अह्ना (२७३)

अहन्+भ्याम्—

(३९५) अहन्। ८। २। ६८॥

अहन्नित्यस्य रुः स्यात् पदान्ते॥

पदान्तमें वर्तमान अहन् शब्दके नकारके स्थानमें रु हो (१२६) से रुके स्थानमें उ हुआ (३९) से उको ओ हुआ—

		अहोभ्याम्	अहोभिः
च०	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पं०	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः

ष०	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
स०	अह्नि, अहनि	अह्नोः	अहस्सु-ःसु
सं०	हे अहः	हे अहनी, हे अह्नी	हे अहानि

---

१ यह ' एनत् ' आदेश केवल द्वितीयाके एकवचनमें ही होता है और अन्य सब जगह "द्वितीयाटौस्स्वेनः" इस सूत्रसे एनादेश ही होता है। जैसा कि वार्तिककारने कहा है-" एनदिति नपुंसकैकवचने "।

दण्डिन् शब्द (दण्ड ग्रहण करनेवाला)

प्र०	दण्डि [२७०]	दण्डिनी [२००]	दण्डीनि [२५९, २६२१९७]	**पं०**	दण्डिनः	दण्डिभ्याम्	दण्डिभ्यः
द्वि०	दण्डि [२७०]	दण्डिनी [२००]	दण्डीनि [२५९, २६२१९७]	**ष०**	दण्डिनः	दण्डिनोः	दण्डिनाम्
तृ०	दण्डिना	दण्डिभ्याम् [५८४]	दण्डिभिः [२००]	**स०**	दण्डिनि	दण्डिनोः	दण्डिषु
च०	दण्डिने	दण्डिभ्याम्	दण्डिभ्यः	**सं०**	हे दण्डिन्-दण्डि	हे दण्डिनी	हे दण्डीनि

सुपथिन् शब्द (श्रेष्ठ मार्गमें जानेवाला)

प्र० सुपथि (३२३, २००) सुपथी (३२३, २५९) सुपथिन्+जस् (२६२)=शि (२६३) से सर्वनामस्थानसंज्ञा हुई (३२१) से थि अन्तर्गत इके स्थानमें अ हुआ (१९७) से अकार उपधाको दीर्घ हुआ (३२२) से थ्को न्थ आदेश हुआ.

प्र० ब० सुपन्थानि। **द्वि०** सुपथि सुपथी सुपन्थानि

हे सुपथिन्–हे सुपथि **शेषं पुंवत्।**

ऊर्ज्–(बलयुक्त,)

प्र०	ऊर्क्-र्ग् [३३३८]	ऊर्जी	ऊर्न्जि [२६४, २६५]	**पं०**	ऊर्जः	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भ्यः
द्वि०	ऊर्क्-र्ग् [३३३८]	ऊर्जी	ऊर्न्जि [२६४, २६५]	**ष०**	ऊर्जः	ऊर्जोः	ऊर्जाम्
तृ०	ऊर्जा	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भिः	**स०**	ऊर्जि	ऊर्जोः	ऊर्क्षु
च०	ऊर्जे	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भ्यः	**सं०**	हेऊर्क्–र्ग्	हे ऊर्जी	हे ऊर्न्जि

नरजानां संयोगः। न्र्ज्का संयोग कहनेका आशय यह कि नकारको रका संयोग है जका नहीं। इसलिये यहां श्चुत्व नहीं होता।

तद् शब्द (वह)

प्र० द्वि० तत्, तद् (२७०, १६९, ८२) ते (२१३, २५९) तानि। शेषं पुँल्लिङ्गवत्। **यद्** (जो) **एतद्** (यह) इनके रूप तद् शब्दके समान जानो। यत्, ये, यानि। एतत्, एते, एतानि इत्यादि।

गो+अन्च् (गाय+गमन)

प्र० गवाक्–ग् (३६३, ६०, ३३३, १६९, ८२) (गायको प्राप्त करनेवाला अथवा गायके समान चलनेवाला) गोची (३६३, ३३४, २५९) गवाञ्चि (६०, ३६३, ३६४, २६९, २६२, २६३, २६४, ७६)।

द्वि०	गवाक्-ग्	गोची	गवाञ्चि				
तृ०	गोचा	गवाग्भ्याम्	गवाग्भिः	ष०	गोचः	गोचोः	गोचाम्
च०	गोचे	गवाग्भ्याम्	गवाग्भ्यः	स०	गोचि	गोचोः	गवाक्षु
पं०	गोचः	गवाग्भ्याम्	गवाग्भ्यः	सं०	हे गवाक्-ग्	हे गोची	हे गवाञ्चि

चान्तः गोअञ्चूशब्दः ।

गतौ ।

अञ्चुधातुके गमन और पूजा दो अर्थ हैं प्रथम गमनार्थ प्रयोग लिखते हैं—

	एकवचन.	द्विवचन.	बहुवचन.
प्र०	गवाक्-ग् गोअक्-ग् (९७) गोऽक्-ग् (९६)	गोची	गवाञ्चि गोअञ्चि (९७) गोऽञ्चि (९६)
द्वि०	गवाक्-ग् गोअक्-ग् (९७) गोऽक्-ग्	गोची	गवाञ्चि गोअञ्चि (९७) गोऽञ्चि (९६)
तृ०	गोचा (३६३, ३६४)	गवाग्भ्याम् (६०, ३३३) गोअग्भ्याम् (९७, ३३३) गोग्भ्याम् (९६, ३३३)	गवाग्भिः गोअग्भिः गोग्भिः
च०	गोचे	गवाग्भ्याम् गोअग्भ्याम् गोग्भ्याम्	गवाग्भ्यः गोअग्भ्यः गोग्भ्यः
पं०	गोचः	गवाग्भ्याम् गोअग्भ्याम् गोग्भ्याम्	गवाग्भ्यः गोअग्भ्यः गोग्भ्यः
ष०	गोचः	गोचोः	गोचाम्

१—गवाक्छब्दस्य रूपाणि क्लीबेऽर्चागतिभेदतः ॥
असंध्यवङ्पूर्वरूपैर्नवाधिकशतं मतम् ॥ १ ॥
स्वमुसुप्सु नव षड् भादौ षट्के स्युस्त्रीणि जश्शसोः ॥
चत्वारि शेषे दशके रूपाणीति विभावय ॥ २ ॥

अर्थः—नपुंसकलिङ्गमें गवाक् शब्दके रूप अर्चा और गतिके भेदसे असंधि अवङ् और पूर्वरूपसे एकसौ नौ होते हैं सो पृष्ठ १२६ व १२७ में लिखे समझ लेना । १ ॥ २ ॥

स०	गोचि	गोचोः	गवाक्षु गोअक्षु गोक्षु

पूजायाम् ।

पूजा अर्थमें 'नाञ्चेः पूजायाम्' इससे नकारके लोपका निषेध है इससे पूजा अर्थमें (२७०) से सुका लोप होकर (२६) से चकारका लोप और (३३१) का कार्य होकर अवङ् आदि होते हैं ।

	एकवचन.		द्विवचन.		बहुवचन
प्र०	गवाङ् (३३१, ६०) गोअङ् (९७) गोङ् (९६)		गवाञ्चौ (६०, ९९, ७६, २९९) गोअञ्चौ (९७, ९९, ७६, २९९) गोञ्चौ (९६, ९९, ७६, २९९)		गवाञ्चि गोअञ्चि गोञ्चि
द्वि०	गवाङ् गोअङ् गोङ्		गवाञ्चौ गोअञ्चौ गोञ्चौ		गवाञ्चि गोअञ्चि गोञ्चि
तृ०	गवाञ्चा गोअञ्चा गोञ्चा		गवाङ्भ्याम् गोअङ्भ्याम् गोङ्भ्याम्		गवाङ्भिः गोअङ्भिः गोङ्भिः
च०	गवाञ्चे गोअञ्चे गोञ्चे		गवाङ्भ्याम् गोअङ्भ्याम् गोङ्भ्याम्		गवाङ्भ्यः गोअङ्भ्यः गोङ्भ्यः
पं०	गवाञ्चः गोअञ्चः गोञ्चः		गवाङ्भ्याम् गोअङ्भ्याम् गोङ्भ्याम्		गवाङ्भ्यः गोअङ्भ्यः गोङ्भ्यः
ष०	गवाञ्चः गोअञ्चः गोञ्चः	गवाञ्चोः गोअञ्चोः गोञ्चोः	गवाञ्चाम् गोअञ्चाम् गोञ्चाम्		'चयो द्वितीयाः' से ख् हुआ
सं०	गवाञ्चि गोअञ्चि गोञ्चि	'' '' ''	गवाङ्क्षु गोअङ्क्षु गोङ्क्षु	गवाङ्ख्षु गोअङ्ख्षु गोङ्ख्षु	गवाङ्षु गोअङ्षु गोऽङ्षु

शकृत (विष्ठा)

०	शकृत्-द्[२६१]	शकृती	शकृन्ति[२६२]
द्वि०	शकृत्	शकृती	शकृन्ति
तृ०	शकृता	शकृद्भ्याम्	शकृद्भिः
च०	शकृते	शकृद्भ्याम्	शकृद्भ्यः
पं०	शकृतः	शकृद्भ्याम्	शकृद्भ्यः
ष०	शकृतः	शकृतोः	शकृताम्
स०	शकृति	शकृतोः	शकृत्सु
सं०	हे शकृत्	हे शकृती	हे शकृन्ति

ददत् शब्द (देनेवाला)

प्र-ददत्-द् ददती ददत्+शि-

(३९६) वा नपुंसकस्य । ७ । १ । ७९ ॥

अभ्यस्तात्परो यः शता तदन्तस्य क्लीबस्य वा नुम् सर्वनामस्थाने परे ।

जिसके अन्तमें शतृप्रत्यय हो ऐसे अभ्यस्तसंज्ञक (३७३) से सर्वनामस्थान (२६३) प्रत्यय आवे तो शतृप्रत्ययके पूर्व विकल्प करके नुम्का आगम हो नपुंसकलिङ्गमें ।

प्र० ब० ददन्ति अथवा ददति **द्वि०** ददत् ददती ददन्ति शेषं पुंवत् ।

तुदत् शब्द (पीडा करनेवाला)

तुद् से (१९४) शतृ प्रत्यय हुआ=तुद्+अ+अत् और (३००) से अका पररूप हुआ सुका लोप (२७०) से होकर एकवचनमें तुदत् । तुदत्+शी २५९)

(३९७) आच्छीनद्योर्नुम् । ७ । १ । ८० ॥

अवर्णान्तादङ्गात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् वा शीनद्योः ।

अवर्णान्त अङ्गसे परे शतृप्रत्ययका अवयव तकार जिसके अन्तमें हो तिसको विकल्प करके नुम्का आगम हो शी (२५९) वा नदी (२७५) परे रहते ।

प्र० द्वि०+तुदन्ती, तुदती ब० तुदन्ति[२६४] । **द्वि०**। तुदत्-द् तुदन्ती तुदती, तुदन्ति शेषरूप पुँल्लिङ्गके समान ददत्वत् जानो ।

भात् शब्द (शोभा पाता हुआ.)

भा धातु दीप्ति अर्थमें है उससे शतृ प्रत्यय आया तब-

प्र० भात्-भाती, भान्ती भान्ति । **द्वि०** भात्-द् भाती, भान्ती भान्ति शेषरूप पुँल्लिङ्ग तुदत् शब्दके समान ।

पचत् शब्द (रसोई बनाता हुआ) ।

पच् धातुका अर्थ पचाना वा पकाना है, उससे आगे शप् प्रत्यय (४२०) आकर कृदन्तमें शतृप्रत्यय होकर पचत् शब्द सिद्ध हुआ. पचत्+स्=पचत् (२७०) पचत्+औ= पचत्+शी (२५९)-

(३९८) शप्श्यनोर्नित्यम् । ७ । ८ । ८१ ॥

शप्श्यनोरात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नित्यं नुम् शीनद्योः ।

---

१ अभ्यस्तसे परे जो शतृ प्रत्यय तदन्त जो क्लीब वाचक अङ्ग उसको विकल्पसे नुम् आगम हो सर्वनामस्थान परे रहते ।

शप् (४२०) और श्यन् (६७०) के अकारसे परे जब शतृप्रत्ययका अवयव तकार आवे तो शतृप्रत्ययान्तको नित्य नुम्का आगम हो शी और नदी (२१९) परे रहते । पचन् त्+ई=पचन्ती, पचन्ति । शेष रूप तुदत् वत् ।

दीव्यत् शब्द (क्रीडा करता हुआ)

दिव् (६७०) धातुसे श्यन् प्रत्यय होके श्यन्मेंसे यकार रहा । कृदन्त शतृप्रत्ययका शेष भाग अत् लगा.

प्र० दीव्यत्-द् दीव्यन्ती (३९७) दीव्यन्ति **द्वि०** दीव्यत्-द् दीव्यन्ती दीव्यन्ति शेष रूप तुदत् वत् ।

धनुष् शब्द (धनु)

(२७०) से सुका लोप (१२४) से ष्के स्थानमें रेफ होकर (१११) से रेफको विसर्ग हुआ.

प्र०	धनुः	[१६९] धनुषी [२६]	[१] धनूंषि	**पं०**	धनुषः	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
द्वि०	धनुः	धनुषी	धनूंषि	**ष०**	धनुषः	धनुषोः	धनुषाम्
तृ०	धनुषा	[१२४] धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः	**स०**	धनुषि	धनुषोः	धनुःषु धनुष्षु
च०	धनुषे	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः	**सं०**	हे धनुः	हे धनुषी	हे धनूंषि

चक्षुष् (नेत्र) **हविष्** (हवनकी सामग्री) इनके रूप धनुष्के समान जानो ।

पयस् शब्द (जल)

प्र० तथा **द्वि०** पयः (२७०, १२४, १११) पयसी पयांसि (३७१)

तृ० पयसा पयोभ्याम् (१२४, १२९, ३९) पयोभिः शेष रूप अनेहसूवत् जानो ।

सुपुंस् शब्द (श्रेष्ठ पुरुष जिसमें हों)

प्र०	[२७०२] सुपुम्	[२६९] सुपुंसी [३३] [१६]	[३७१२६] सुपुमांसि	**पं०**	सुपुंसः	सुपुंभ्याम्	सुपुंभ्यः
द्वि०	सुपुम्	सुपुंसी	सुपुमांसि	**ष०**	सुपुंसः	सुपुंसोः	सुपुंसाम्
तृ०	सुपुंसा	सुपुंभ्याम्	सुपुंभिः	**स०**	सुपुंसि	सुपुंसोः	सुपुंसु
च०	सुपुंसे	सुपुंभ्याम्	सुपुंभ्यः	**सं०**	हे सुपुम्	हे सुपुंसी	हे सुपुमांसि

अदस् शब्द (वह)

अदः । **विभक्तिकार्यम् उत्वमत्वे** । अदस् शब्दको प्रथम विभक्ति कार्य फिर उत्व मत्व होते हैं । **प्र०** तथा **द्वि०** अदः (२७०, १२४, ११) अमू (२१३, २९९, ३८६) अदस्+जस् (२१२) से विभक्ति कार्य (२६२) अद+इ (२६४, ३८६, १९७) अमूनि । शेषं पुंवत् ॥

इति हलन्तनपुंसकलिङ्गाः समाप्ताः ।

अथाव्ययानि ।

(३९९) स्वरादिनिपातमव्ययम्[1] । १ । १ । ३७ ॥

स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसंज्ञाः स्युः ।

स्वर् आदि गणमें जिनकी गणना की है और जिनकी निपात (६६) संज्ञा है उनकी अव्यय संज्ञा है.

१ **स्वर्** स्वर्ग वा परलोक
२ **अन्तर्** मध्य
३ **प्रातर्** प्रातःकाल
४ **पुनर्** फिर वा विशेष
५ **सनुतर्** छिपना
६ **उच्चैस्** ऊँचे
७ **नीचैस्** नीचे
८ **शनैस्** धीरे
९ **ऋधक्** यथार्थ वा शुद्ध
१० **ऋते** विना
११ **युगपत्** एककालमें
१२ **आरात्** दूर वा निकट
१३ **पृथक्** अलग
१४ **ह्यस्** बीता हुआ (कल्ह)
१५ **श्वस्** आनेवाला, कलका दिन
१६ **दिवा** दिनमें
१७ **रात्रौ** रातमें
१८ **सायं** सन्ध्याकालमें
१९ **चिरम्** बहुतसमयतक
२० **मनाक्** थोडा
२१ **ईषत्** थोडा
२२ **जोषम्** चुप मौन वा सुख
२३ **तूष्णीम्** मौन
२४ **बहिस्** बाहर
२५ **अवस्** बाहरकी ओर
२६ **समया** निकट वा मध्यमें
२७ **निकषा** निकट
२८ **स्वयं** आप ही
२९ **वृथा** निष्फल, निष्प्रयोजन
३० **नक्तम्** रातमें
३१ **नञ्** नहीं
३२ **हेतौ** कारणमें
३३ **इद्धा** प्रकाशतासे
३४ **अद्धा** स्पष्टता वा निश्चयसे
३५ **सामि** आधा वा निन्दित
३६ **वत्**[1] सदृश
३७ **ब्राह्मणवत्** ब्राह्मणके तुल्य
३८ **क्षत्रियवत्** क्षत्रियके तुल्य
३९ **सना** सदा नित्य
४० **उपधा** विभाग
४१ **तिरस्** टेढा वा गुप्त होना
४२ **सनत्** } सदा
४३ **सनात्** } सदा

---

१ " वत् " यह गणसूत्र है और ' ब्राह्मणवत् ' इत्यादि इसके उदाहरण जानो ।

४४ अन्तरा } विना वा मध्य
४५ अन्तरेण } वर्जन
४६ ज्योक् { शीघ्रता संप्रति वा काल-बाहुल्य वा प्रश्न
४७ कम् { जल, सुख, निन्दा, मस्तक
४८ शम् सुख
४९ सहसा { एकसाथ अकस्मात् वा अविचारसे
५० विना छोडकर
५१ नाना अनेक वा विना
५२ स्वस्ति कल्याण, मङ्गल
५३ स्वधा पितृसम्बन्धी दानविषय
५४ अलम् { पूर्ण वा शक्ति निवारण वा भूषण
५५ वषट्
५६ श्रौषट्
५७ वाषट् } देव सम्बन्धी दानमें यह तीनों शब्द आते हैं
५८ अन्यत् और रीतिसे
५९ अस्ति है
६० उपांशु { गुप्तरूपसे उच्चारण वा रहस्य
६१ क्षमा सहन
६२ विहायसा आकाश
६३ दोषा रात्रि
६४ मृषा
६५ मिथ्या } झूठ
६६ मुधा निष्प्रयोजन
६७ पुरा { पहलेमें, निरन्तर, समीप वा भविष्य
६८ मिथो
६९ मिथस् } परस्पर एकान्त

७० प्रायस् बहुधा
७१ मुहुस् वारंवार
७२ प्रवाहुकम्
७३ प्रवाहिका } उसी समय अथवा ऊपर
७४ आर्यहलम् क्रूरतासे
७५ अभीक्ष्णम् वारंवार निरंतर
७६ साकम्
७७ सार्द्धम् } साथ
(समम्, सह)
७८ नमस् नमस्कार
७९ हिरुक् विना
८० धिक् धिकार वा धमकाना
८१ अथ अनन्तर वा प्रश्न अधिकार
८२ अम् शीघ्रतासे वा अल्पतासे
८३ आम् अङ्गीकार करना
८४ प्रताम् थकावट वा ग्लानि
८५ प्रशान् सदृश
८६ प्रतान् विस्तार, बढाव
८७ मा
८८ माङ् } मत निषेध वा आशंका

आकृतिगणोऽयम् ।

यह स्वरादि आकृतिगण है अर्थात् स्वरूपसे जाने जाते हैं.

अब निपातसंज्ञक लिखते हैं—

१ च और, समुच्चयवाचक
१ वा अथवा
३ ह प्रसिद्धिमें
४ अह आदरसे बोलनेके सम्बोधनमें
५ एव निश्चयार्थक वा केवल
६ एवम् ऐसा
७ नूनम् निश्चय करके वा संभावना

८ शश्वत् निरतर सर्वदा वा साथ
९ युगपत् एककालमें
१० भूयस् बहुधा वा अधिकता
११ कूपत् प्रश्न वा प्रशंसा (कुपत्)
१२ सूपत् अच्छा
१३ कुवित् बाहुल्य वा प्रशंसा
१४ नेत् शंका, निषेध, विचार
१५ चेत् यदि जो
१६ चण् जो
१७ यत्र } निन्दा, अक्षमा, आश्चर्य, अनिश्चय
१८ तत्र तहां
१९ कच्चित् क्या प्रश्न
२० नह नहीं
२१ हन्त खेद वा हर्ष, अनुकम्पा वाक्यारम्भ
२२ माकिः
२३ माकिम् } नहीं छोडकर
२४ नकिः
२५ नकिम् } ठीक ठीक
२६ माङ् नहीं
२७ नञ् नहीं
२८ यावत् जितना वा जबतक
२९ तावत् तितना वा तबतक
३० त्वै कदाचित्, विशेष, वितर्क
३१ न्वै
३२ द्वै } वितर्क कदाचित्
३३ रै अपमान, दान
३४ श्रौषट्
३५ वौषट्
३६ स्वाहा } देवतार्पण
३७ स्वधा पितृ अर्पणमें
३८ वषट् देवार्पणमें, ईश्वरार्पण यज्ञ विषे
३९ आम् } ब्रह्मा, विष्णु महेश स्वीकार सूचक
४० तुंम्[1] तुकार तू कहना
४१ तथाहि इस प्रकारसे, इस प्रमाणसे
४२ खलु } निश्चय, अवश्य, निषेध वाक्यालंकार
४३ किल निश्चयार्थक, वार्तावाचक
४४ अथ (अथो) मंगलवाचक,
४५ सुष्ठु उत्तम, श्रेष्ठ
४६ स्म भूतकालसूचक पादपूरण
४७ आदह धिकार, हिंसा, आरम्भ ।

उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपका श्च ।

जो उपसर्ग विभक्ति और स्वरके तुल्य हों परन्तु उपसर्ग, विभक्ति और स्वर न हों किन्तु उनकेसा उनका रूप हों तो वे भी अव्यय हों । यथा **अवदत्तम्** (दिया हुआ) इस प्रयोगमें अव उपसर्ग (४७) नहीं है किन्तु उसकेसा स्वरूप है. जो उपसर्ग होता तो अवत्तम्

---

१ गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः । श्मशाने जायते वृक्षः कङ्कगृध्रोपसेवितः ॥

रूप होता, इसीसे अव्यय है । **अहंयुः**, **अस्तिक्षीरा**[3] विभक्तिप्रत्ययरूप अव्यय हैं, क्योंकि **अहं** प्रथमा विभक्तिका रूप होता है सो नहीं है किन्तु अव्यय है, कारण कि समासमें क्रियापद प्रथम नहीं रहता

अ सम्बोधन, अधिक्षेप निषेधवाचक
आ वाक्य और स्मरणार्थक
इ सम्बोधन, निन्दा, और विस्मयवाचक
ई उ ऊ ए ऐ ओ औ—सम्बोधनवाचक
पशु सरस (अच्छा)
शुकम् शीघ्रता
यथाकथाच किसी प्रकारसे
पाट्, **प्याट्**, **अ** — यह सम्बोधन

हे, **है** — सम्बोधनार्थक
भोः, **अये** — "
द्य सम्बोधन, हिंसा, पादपूरण, प्रतिकूल
विषु नामार्थक, सर्वत्र, जहां तहां
एकपदे अकस्मात् एकसमयमें
युत् दोष, निन्दा
अतः इससे

चादिरप्याकृतिगणः ।

च आदि भी आकृतिगण हैं (६६)

तसिलादयः प्राक् पाशपः शसप्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः । तद्धित-प्रत्ययान्त (१०६८) अर्थात् तसिल् (१२८७) से आरम्भकर पाशप् प्रत्ययतक सब अव्य-यसंज्ञक हों शस् (१३३१) से आरम्भकर समासान्तके पूर्व जितने हैं सब अव्ययसंज्ञक हों । **अम् आम् कृत्वोर्थाः । तसिवती । नानाञौ** । एतदन्तमप्यव्ययम् । अतः अम्, आम् (१३१०) कृत्वोर्थ अर्थात् कृत्वसुच् प्रत्यय धा तसि वत् ना नाञ् यह प्रत्यय जिसके अन्तमें हों सो अव्यय हो ।

(४००) कृन्मेजन्तः । १ । १ । ३९ ॥

कृद्यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययम् ।

जिस कृत्के अन्तमें म् अथवा एच् (ए ओ ऐ औ) प्रत्याहार हो तदन्त कृदन्तकी अव्यय संज्ञा हो । यथा स्मारंस्मारम् (वारंवार स्मरण करके) जीवसे (जीना) पिबध्यै (पीना) स्मारम्में मकार, जीवसे, पिबध्यैमें एच् प्रत्याहार होनेसे अव्यय संज्ञा हुई ।

---

१ अर्थात् " अच उपसर्गात्तः " इस सूत्रसे तादेश हो जाता । २ 'अहम्' यह अस्मद्के समानाकार शब्दान्तर है, इससे " अहंशुभमोर्युस् " इस सूत्रसे युस् प्रत्यय होकर 'अहंयुः' रूप बनता है, अस्मद् होता तो 'मद्युः' रूप होता ।

३ 'अस्ति' यह तिङन्त समानाकार शब्दान्तर है, क्रिया होती तो समास न होता, क्योंकि सुबन्तोंका ही समास होता है ।

(४०१) क्त्वातोसुन्कसुनः । १ । १ । ४० ॥

एतदन्तमव्ययं स्यात् ।

क्त्वा (९३६) तोसुन् , कसुन्, यह प्रत्यय जिसके अन्तमें हों उनकी भी अव्यय संज्ञा हो । यथा—कृत्वा, उदेतोः (उदय होकर) विसृपः (जाकर) यहां क्त्वासे 'कृत्वा' तोसुन्से उदेतोः और कसुन् करके 'विसृपः' बना है ।

(४०२) अव्ययीभावश्च । १ । १ । ४१ ॥

अव्ययीभाव समासँ भी अव्ययसंज्ञक हो । यथा—अधिहरि (हरिमें)

(४०३) अव्ययादाप्सुपः । २ । ४ । ८२ ॥

अव्ययाद्विहितस्यापः सुपश्च लुक् स्यात् ।

अव्यय संज्ञकसे परे जो आप् अथवा सुप् प्रत्यय आवे तो प्रत्ययका लोप (२१०) से हो । यथा—तत्र शालायाम् (उस शालामें) इस उदाहरणमें स्त्रीलिङ्गवाचक आप्का और विभक्तिका क्रमसे लोप हुआ है.

अव्ययका लक्षण ।

(४०४) अथर्ववेदश्रुतिः ॥

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति[1] तदव्ययम् ॥ १ ॥
वष्टि[2] भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥ २ ॥

जो तीनों लिङ्ग, सब विभक्ति और सब वचनोंमें समान रहे. विकारको प्राप्त न हो उसे अव्यय कहते हैं ॥ १ ॥ व्याकरणकर्ता भागुरि आचार्यका मत है कि, अव और अपि उपसर्गों (४७) के अकारका लोप और हलन्त शब्दोंसे स्त्रीलिंग प्रत्यय करना हो तो हलन्तोंसे आप् प्रत्यय हो ॥ २ ॥ यथा (अवगाहः) का रूप 'वगाहः' (स्नान) (अपिधानम्) का 'पिधानम्' (आच्छादन) अकारका लोप हुआ । वाक्शब्दका 'वाचा' निश्का 'निशा' दिश्का दिशा' रूप हुआ । हलन्तोंसे आप् प्रत्यय हुआ ॥

॥ इत्यव्ययप्रकरणं समाप्तम् ॥

---

१ न व्येति=न विकारं प्राप्नोति ।

२ पृषोदरादि और अजादि दोनों आकृति गण हैं, इसलिये भागुरिके लोपका पृषोदरादिमें और आप् प्रकृतिक हलन्त शब्दोंका अजादि गणमें समावेश जानना चाहिये । जैसा कि भगवान् भाष्यकारने कहा है— "इहान्ये वैयाकरणा आरभन्ते तादिहापि साध्यम्" ।

अथ भ्वादयः ।

(४०५) लट् । लिट् । लुट् । लृट् । लेट् । लोट् । लङ् । लिङ् । लुङ् । लृङ् ।

एषु[1] पंचमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः ।

यह दशों लकार धातुओंसे परे लगते हैं, इन लकारोंसे काल जाना जाता है और यह लकार इत्संज्ञक वर्णसे निश्चित है, प्रथम वह काल दो प्रकारसे विभक्त है, एक अद्यतन और एक अनद्यतन, आधीरातसे लेकर, दूसरी आधीरात बीचका काल अद्यतन है, इससे बाहरका समय अनद्यतन कहलाता है । भूत वर्तमान और भविष्यकालकी संज्ञाका नाम अद्यतन है, और भूत और भविष्यमात्रमें अनद्यतन काल कहा जाता है ।

१ **लट्**–वर्तमान अर्थमें आता है, देखो सूत्र (४०७)
२ **लिट्**–परोक्षअनद्यतनभूत अर्थात् विना देखे अनद्यतन भूत अर्थमें (४२४)
३ **लुट्**–अनद्यतनभविष्य होनेवाले अर्थमें (४३९)
४ **लृट्**–अनद्यतन तथा सामान्यभविष्य अर्थमें (४४१)
५ **लेट्**-वेदविषयप्रेरणा अर्थमें.
६ **लोट्**–सामान्यप्रेरणा अर्थमें (४४२)
७ **लङ्**–अनद्यतन भूत अर्थमें (४५७)
८ **लिङ्**–विधि तथा निमन्त्रण अर्थमें (४६०)
९ **लुङ्**-भूत अर्थमें (४२९)
१० **लृङ्**–कार्यकारणभाव तथा क्रियाकी असिद्धिसूचक भूत तथा भविष्य अर्थमें (४७७)

(४०६) लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः । ३ । ४ । ६९ ॥

लकाराः[2] सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च ॥

(४०५) में वर्णन किये लकारोंको कर्त्ता वा कर्म अर्थके जनानेके लिये सकर्मक धातुसे परे स्थापन करो । और कर्ता वा भाव अर्थके लिये अकर्मक धातुसे परे स्थापन करो *

---

१ इनमें पाँचवाँ लकार (लेट्) केवल वैदिक विषयोंसे संबन्ध रखता है, अर्थात् इसका लोकमें प्रयोग नहीं होता ।

२ लकार, सकर्मक धातुओंसें कर्म और कर्तामें हों और अकर्मक धातुओंसे भाव और कर्ता में हों ।

*यथा–' यज्ञदत्त चावल पकाता है ' यहां यज्ञदत्त कर्त्ता है, कारण कि, पकाना किया यज्ञदत्तके अधीन है जो यज्ञदत्त न हो ता वस क्रियाकी सिद्धि न हो सके, चावलकर्म है क्योंकि, उसपर क्रियाके फलका आश्रय है–

क्रियाका व्यापार जिसके आधीन रहता है उसको कर्ता कहते हैं, और
क्रियाफलका जो आश्रय है उसको कर्म कहते हैं।

(४०७) वर्तमाने लट्[1] । ३ । २ । १२३ ॥

वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् ।

वर्तमानकार्यके प्रकाश करनेमें जब धातुका व्यवहार करना हो तब उससे परे लट् लकार (४०९) हो । लट्में अ और ट् इत्संज्ञक है (१९९) से लट्के लकारकी भी इत्संज्ञा प्राप्त हुई परन्तु व्याकरणशास्त्रमें कोई वर्ण निष्प्रयोजन नहीं लिखा जाता, ल्की इत्संज्ञा करनेसे सम्पूर्ण लट् नष्ट होगा तो उसके उच्चारण करनेका फल निरर्थक होगा, इस कारण उच्चारण सामर्थ्यसे ल्की इत्संज्ञा न हुई । भू धातु (होना अर्थ) जब उससे कर्तृवाचक प्रयोग बनानेकी इच्छा हुई, तब भू+लट् इस प्रकारका रूप हुआ--

(४०८) तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथां-ध्वमिड्वहिमहिङ् । ३ । ४ । ७८ ॥

एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः ॥

नीचे लिखे अठारह आदेश लकारोंके स्थानमें हों ।

	परस्मैपद ।			आत्मनेपद ।		
	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम	तिप्	तस्	झि	त	आताम्	झ
मध्यम	सिप्	थस्	थ	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम	मिप्	वस्	मस्	इट्	वहि	महिङ्

(४०९) लः[६] परस्मैपदम्[१] । १ । ४ । ९९ ॥

लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः ।

—और यदि इस वाक्यको यों लिखैं कि चावल यज्ञदत्तसे पकाये जाते हैं, तो भी चावल कर्महो रहेगा हां इन दोनों वाक्योंको यदि संस्कृतमें लिखैं तो क्रियाके रूपमें अन्तर होगा, एक उनमें ऐसा होगा जिससे केवल कर्ता हीका अर्थ विदित हो यथा–पचति, पकाता है । और दूसरे रूपसे कर्मका अर्थ प्रकाश होगा, यथा ‘ पच्यते ’ पकाया जाता है जो अकर्मक धातु हैं उनमें कर्म नहीं होता, इस कारण लकार एक अवस्थामें केवल उसकी क्रिया (भाव) को ही दिखाता है यथा–‘ भूयते ’ होना । और दूसरी दशामें अकर्मक क्रिया भी सकर्मक पच धातुके समान कर्ताके अर्थको प्रकाश करती है, यथा–‘ भवति ’ होता है । फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्व सकर्मकत्वम् । फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वम् अकर्मकत्वम् ।

१ क्रियाया वर्तमानत्वं नाम प्रारब्धापरिसमाप्तत्वम् ।

लके स्थानमें जो आदेश (४०८, ८८१, ८८२, ८८४ और ८८८ होते हैं वे परस्मैपद संज्ञावाले हों ।

(४१०) तङानावात्मनेपदम् । १ । ४ । १०० ॥

तङ्प्रत्याहारः शानच्कानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः ।

तसे प्रारम्भकर महिङ्तक जो प्रत्ययसमूह तङ्प्रत्याहारसे ज्ञात होता है तथा शानच्(८८४) और कानच् (८८१) प्रत्यय जिनमेंसे आन् मात्र बाकी रहता है, उनकी आत्मनेपदसंज्ञा हो । (४०९) से तङ्प्रत्याहारकी परस्मैपद संज्ञा हुई थी सो इस सूत्रसे जाती रही और तिप्से प्रारम्भकर मस्तक नौ प्रत्यय समूह तथा क्वसु और शतृ (८८४) प्रत्यय परस्मैपदसंज्ञावाले हों अर्थात् नौ प्रत्यय पहले परस्मैपद और तसे महिङ्तक आत्मनेपद कहलाते हैं ।

(४११) अनुदात्तङित आत्मनेपदम् । १ । ३ । १२ ॥

अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् ।

जो धातु अनुदात्तेत् हो (११) अथवा जिसका ङ् इत् हो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय तङ् तथा शानच् कानच् (४१०) हों ।

किस धातुमें क्या इत् होता है, इसका ज्ञान धातुपाठसे होगा ।

(४१२) स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले । १ । ३ । १३ ॥

स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले ॥

जिस धातुमें स्वरित (१२) अथवा ञ् इत् हो और जब व्यापारका फल कर्तामें पहुँचता हो तब उससे परे आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हो ।

(४१३) शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् । १ । ३ । ७८ ॥

आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात् ॥

जो धातु आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्ययके स्थापन करनेके निमित्त (४११, ४१२) से हीन हो उसके आगे परस्मैपद प्रत्यय कर्ता अर्थमें हो, परस्मैपद कर्ममें कभी नहीं दीखता ।

(४१४) तिङस्त्रीणित्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः ।१।४।१०१ ॥

तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः ॥

---

१ क्रियाका फल यहां स्वर्गादि ही लेना, क्योंकि जिस उद्देश्यसे क्रियाकी प्रवृत्ति होती है वही उसका फल कहा जा सकता है किन्तु दक्षिणा आदि फल यहां नहीं लिये जाते क्योंकि वे अन्यथा भी सिद्ध हैं । जैसा कि भाष्यकारने कहा है–" नचान्तरेण यजिं यजिफलं लभन्ते । याजकाः पुनरन्तरेणापि यजिं गां लभन्ते " ।

परस्मैपद तथा आत्मनेपदके तिङ् प्रत्याहारमें जो प्रत्यय (४०८) के अन्तर्गत हैं उनके परस्मैपद और आत्मनेपद जो दोनों समूहके तीन २ त्रिक हैं सो क्रमसे प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष कहे जायँ ।

(४१५) तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः । १ । ४ । १०२ ॥

लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रत्येकमेकवचनादि-संज्ञानि स्युः ।

ऊपरके प्रमाणसे प्रथमादिसंज्ञाको प्राप्त वे तिङ् प्रत्याहारके तीन २ त्रिक प्रत्येक तिप् तस् झि इत्यादि क्रमसे एकवचन द्विवचन और बहुवचन संज्ञावाले हों ।

(४१६) युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः । १ । ४ । १०५ ॥

तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः ॥

जो लकार अर्थात् तिङ् (४०८) कारक (कर्ता तथा कर्म) बताता हो और उसी कारकको युष्मद् शब्द दिखाता हो और युष्मद् शब्द उच्चारण किया हो वा न किया हो तो लकारके स्थानमें मध्यम पुरुष (४१४) हो ।

(४१७) अस्मद्युत्तमः । १ । ४ । १०७ ॥

तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः ॥

जब अस्मद् (४१७) की अवस्था युष्मद् (४१६) कीसी हो तब लकारके स्थानमें उत्तमपुरुष (४१४) हो ।

(४१८) शेषे प्रथमः । १ । ४ । १०८ ॥

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात् ॥

युष्मद् (४१६) तथा अस्मद् (४१७) की अवस्थाके सिवाय शेष अवस्थामें लकार (४०७) के स्थानमें प्रथम पुरुष (४१४) हो । भू=ल् (४०७,४०८) से लकारके स्थानमें प्रथमपुरुषके एकवचनमें तिप् प्रत्यय हुआ इसमें प्की इत्संज्ञा होकर लोप हुआ तब भू+ति रहा-

---

१ जहाँ युष्मद् अस्मद् दोनों इकट्ठे हों वहाँ परे होनेसे उत्तम पुरुष होता है । जैसे अहं च त्वं च साधू भवावः । इसी प्रकार 'स च त्वं च अहं च साधवो भवामः ' उत्तम ही होगा । स च त्वं च साधू भवथः । मध्यमके विषयमें तथा उत्तमके विषयमें प्रथम तो होता ही नहीं ।

(४१९) तिङ्शित्सार्वधातुकम् । ३ । ४ । ११३ ॥

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः ॥

(८१७) में ' धातोः ' यह सूत्र है, इसके अधिकारमें जो तिङ् प्रत्यय । (४१४) और जिसका शकार इत् है उसका नाम सार्वधातुक है ।

(४२०) कर्तरि शप् । ३ । १ । ६८ ॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् ॥

कर्ता अर्थ वाचक सार्वधातुक (४१) परे हुए सन्ते धातुसे परे शप् प्रत्यय हो । (१९९) से शप्का श् तथा (९) से प्की इत्संज्ञा (७) से लोप होकर अ शेष रहा तब भू+अ+ति रूप रहा–

(४२१) सार्वधातुकार्धधातुकयोः । ७ । ३ । ८४ ॥

अनयोः परयोरिगन्तांगस्य गुणः ॥

सार्वधातुक (४१९) तथा आर्धधातुक (४३७) परे रहते जिस (१९२) अंगके अन्तमें इक् हों उसे गुण हो । भू अन्तर्गत ऊ इक् है उसके स्थानमें ओ गुण आदेश होकर भो रूप हुआ (२९) से ओके स्थानमें अव् होकर भव्+अ+ति=भवति रूप सिद्ध हुआ । अर्थ (वह होता है) **द्वि०**–भू+अ+तः (तस्) (४२१) से ' भवतः ' बना (वे दोनों होते हैं) । **बहुवचन** भू+अ+झि–

(४२२) झोऽन्तः । ७ । १ । ३ ॥

प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः ॥

प्रत्ययके अवयव झके स्थानमें अन्त् आदेश हो । भू+अ+अन्त्+इ झिमेंकी इ शेष रही (४२१) से भूको भव् हुआ और शप् प्रत्यय (४२०) से हुआ तब भव हुआ, अन्तके अ अवयवको और भवके अकारको मिलाकर (३००) एकसे अ हुआ तब मिलकर ' भवंति ' रूप हुआ (वे होते हैं)

म० ए० भू+अ+सि (सिप्)=भव्+अ+सि=भवसि (तू होता है)
म० द्वि० भू+अ+थः =भव्+अ+थः=भवथः (तुम दोनों होते हो)
म० ब० भू+अ+थ =भव्+अ+थ=भवथ (तुम सब होते हो)
उ० ए० भू+अ+मि (मिप्)=भव्+अ+मि=भव+मि–

(४२३) अतो दीर्घो यञि । ७ । ३ । १०१ ॥

अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके ॥

यञ् आदिवाला सार्वधातुक (४१८) प्रत्यय परे हो तो अकारान्त अंगको दीर्घ आदेश हो। भव अंगसे आगे मि यञ् आदि है तो उसके व अन्तर्गत अकारको दीर्घ हुआ तब ' भवामि ' रूप सिद्ध हुआ (मैं होता हूँ)

उ० द्वि० भू+अ+वः (वस्)=भव् [४२३] अँ+वः=भवावः (हम दोनों होते हैं)

उ० ब० भू+अ+मः (मस्)=भव् आ+मः=भवामः (हम सब होते हैं)

भूधातुमें सर्वनाम लगानेसे वर्तमानकालमें जो रूप होते हैं सो नीचे लिखे हैं विना सर्वनामके पहले लिख दिये हैं।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सः भवति (वह होता है)	तौ भवतः (वे दोनों होते हैं)	ते भवंति (वे सब होते हैं)
म०	त्वं भवसि (तू होता है)	युवां भवथः (तुम दोनों होते हो)	यूयं भवथ (तुम सब होते हो)
उ०	अहं भवामि(मैं होता हूँ))	आवाम् भवावः(हम दोनों होते हैं)	वयं भवामः (हम सब होतेहैं)

(४२४) परोक्षे[१] लिट्[२]। ३। २। ११५॥

भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्। लस्य तिबादयः॥

जो बात देखीहुई न हो उसके प्रकाश करनेके निमित्त जिस धातुका व्यवहार किया जाय उससे परे अनद्यतन भूतमें लिट् हो। लिट् में इ और ट् इत्संज्ञक हैं उनका लोप होकर ल् रहा लकारको तिप् आदि आदेश हुए।

(४२५) परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः। ३। ४। ८२॥

लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयः स्युः॥

लिट्के परस्मैपदसंज्ञक तिप् (४०८) आदि नौ प्रत्ययोंके स्थानमें क्रमसे नीचे लिखे णल् आदि आदेश हों।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	णल्	अतुस्	उस्
म०	थल्	अथुस्	अ
उ०	णल्	व	म

---

१ अत्रेदं बोध्यम् -लक्षणं कर्तृवाच्यस्य प्रथमा कर्तृकारके। द्वितीयान्तं भवेत्कर्म कर्त्रधीनं क्रियापदम्॥ इति॥

२ भूत अनद्यतन परोक्षकालिका जो क्रिया तद्वृत्ति धातुसे लिट् लकार हो। प्रयोक्तुरिन्द्रियागोचरत्वं परोक्षत्वम्। यथा बलिर्बलवान् बभूव। अतीताया रात्रेः पश्चार्धेन आगामिन्याः पूर्वार्धेन च सहितः सकलो दिवसोऽद्यतनस्तद्भिन्नोऽनद्यतनः॥

णल्में ल् तथा ण्का लोप (१४८, ९) से हुआ अ शेष रहा तब भू+अ (प्रथम पुरुषका एकवचन) हुआ–

(४२६) भुवो वुग्लुङ्लिटोः । ६ । ४ । ८८ ॥

भुवो वुगामम: स्यात् लुङ्लिटोरचि ॥

भू धातुसे परे लुङ् अथवा लिट् सम्बन्धी अच् परे आवे तो भू धातुको वुक्का आगम हो। वुक्में उक्की इत्संज्ञा होकर लोप हुआ (४२९) से भूसे आगे णल् आदेशका शेष भाग अ है वह अच् है भूको वुक्मेंसे शेष रहे व्का आगम हुआ भूव्+अ–

(४२७) लिटि धातोरनभ्यासस्य । ६ । १ । ८ ॥

लिटि परे अनभ्यासधात्ववयस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य ॥

जिस धातुको द्वित्व न हुआ हो और उससे परे लिट् लकार हो उस धातुके एकाच् प्रथम भागको द्वित्व हो. आदि भूत अच्से परे तो दूसरे एकाच्को द्वित्व हो (भूव् भूव्+अ यह स्थिति हुई)–

(४२८) पूर्वोऽभ्यासः । ६ । १ । ४ ॥

अत्र[1] ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात् ॥

(४२७) से जो दो रूप हुए हैं, उन रूपोंमें पहलेकी अभ्यास संज्ञा हो।

(४२९) हलादिः शेषः । ७ । ४ । ६० ॥

अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते अन्ये हलो लुप्यन्ते ॥

अभ्यासके आदिका हल् शेष रहे औरोंका लोप हो। भू भूव्+अ–

(४३०) ह्रस्वः । ७ । ४ । ५९ ॥

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात् ॥

अभ्यासके अच्के स्थानमें ह्रस्व आदेश हो। भूके ऊके स्थानमें ह्रस्व उ हुआ तब भुभूव्+अ हुआ–

(४३१) भवतेरः । ७ । ४ । ७३ ॥

भवतेरभ्यासस्योकारस्य अः स्याल्लिटि ॥

---

१ अत्र=षष्ठद्वित्वप्रकरणे विहिते=उच्चारिते।

भू धातुके अभ्यास संबन्धी उके स्थानमें अकार हो यदि उससे परे लिट् हो तौ। भभूव्+अ

(४३२) अभ्यासे चर्च। ८। ४। ५४॥

अभ्यासे झलां चरः स्युर्जशश्च। झशां जशः खरां चर इति विवेकः॥

अभ्यास (४२८) के झल्के स्थानमें जश् और चर् हों। झश्के स्थानमें जश् और खर्के स्थानमें चर् हों। भके स्थानमें ब हुआ तब बभूव्+अ=बभूव रूप सिद्ध हुआ (वह हुआ)

प्र० द्वि० बभूव+अतुः (अतुस्)=बभूवतुः (वे दोनों हुए.)

प्र० ब० बभूवु+उः (उस्)=बभूवुः (वे सब हुए.)

म० ए० बभूव्+थ (थल्)

(४३३) लिट् च। ३। ४। ११५॥

लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञः॥

लिट्के स्थानमें जो तिङ् (४०८) आदेश (४१९) हो उसकी आर्धधातुक संज्ञा हो। बभूव्+थ इसमें थकी आर्धधातुक संज्ञा हुई।

(४३४) आर्धधातुकस्येड्वलादेः। ७। २। ३५॥

वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात्।

जो आर्धधातुक (४३३) के आदिमें वल् प्रत्याहार आवे तो उसे इट्का आगम हो। इट्मेंसे इ शेष रही, (१०३) से वह थ आर्धधातुक प्रत्ययके आदिमें स्थित हुई, बभूव्+इथ=बभूविथ (तू हुआ)

म० द्वि० बभूव्+अथुः (अथुस्) =बभूवथुः (तुम दोनों हुए)

म० ब० बभूव्+अ =बभूव (तुम सब हुए)

उ० ए० बभूव्+अ (णल्) =बभूव (मैं हुआ)

उ० द्वि० बभूव्+व =बभूव्+इ+व=बभूविव (हम दोनोंहुए)

उ० ब० बभूव्+म =बभूव्+इ+म=बभूविम (हम सब=हुए

(४३५) अनद्यतने लुट्। ३। ३। १५॥

भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट्॥

अनद्यतन भविष्य अर्थ प्रकाश करना हो तो धातुसे परे लुट् हो। प्र० पु० ए० भू लुट्-

(४३६) स्यतासी लृलुटोः। ३। १। ३३॥

धातोः स्यतासी एतौ प्रत्ययौ स्तोर्लृलुटोः परतः॥

धातुसे परे ऌ (ऌट् तथा ऌङ्) और लुट् हो तो स्य और तासि क्रमसे हों अर्थात् ऌट् हो तो स्य और लुट् हो तो धातुसे तासि प्रत्यय हो। (**शबाद्यपवादः**) यह सूत्र (४२१) से शप् तथा श्यन् (६७०) आदिका अपवाद है। **ऌ इति ऌङ्ऌटोर्ग्रहणम्।** ऌसे ऌङ् और ऌट्का ग्रहण करना।

(४३७) आर्धधातुकं शेषः। ३। ४। ११४॥

तिङ्शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञः स्यात्। इट्॥

तिङ् तथा शित् प्रत्यय (४१९) छोडकर शेष प्रत्यय जो 'धातोः' इस शब्दका उच्चारण करके किसी धातुसे विधान किये जायँ उन प्रत्ययोंकी आर्धधातुक संज्ञा हो। भू+तासि (४३४) से इका आगम (४२१) से भव् (४३६) से तासि प्रत्ययके सिके इकारकी इत्संज्ञा होकर तास् रहा तो–भव्+इ+तास् रूप हुआ।

(४३८) लुटः प्रथमस्य डारौरसः। २। ४। ८५॥

डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः।

लुट्के प्रथमपुरुषसंज्ञक प्रत्ययोंके स्थानमें क्रमसे डा, रौ, रस् प्रत्यय हों। जब डित् प्रत्यय परे हो तो पूर्वकी भसंज्ञक टि (१८९) का लोप (२६७) से होता है यहां (४३७) से भवितास् रूप हुआ है इस कारण (१८९) से भसंज्ञा नहीं हो सकती तब उसकी टि आस्का भी लोप न हो परन्तु निरर्थक कोई वर्ण इत् नहीं हो सकता, यहां भी डकारकी इत्संज्ञा की है शेष ' आ ' रहा है, यदि इत्संज्ञासे कोई प्रयोजन सिद्ध न होता तो इतना व्यर्थ क्यों लिखते, इसी इत्संज्ञाके होनेसे भवितास् जिसकी भसंज्ञा नहीं है, उसके भी टिका लोप हुआ, तब भवितास्का भवित् और डाके आमें मिलानेसे—

प्र० **ए०** भवित्+आ (डा)=भविता सिद्ध हुआ (वह होगा)

प्र० **द्वि०** भवितास्+रौ–

(४३९) तासस्त्योर्लोपः। ७। ४। ५०॥

तासेरस्तेश्च लोपः स्यात्सादौ प्रत्यये परे।

तास् (४३६) तथा अस् धातुसे परे सकारादि प्रत्यय आवे तो तास् और अस्का लोप हो।

(४४०) रि च। ७। ४। ५१॥

रादौ प्रत्यये तथा।

तास् प्रत्यय और अस् धातुसे परे जब ऐसा प्रत्यय आवे कि जिसके आदिमें रेफ हो तब तास् प्रत्यय और अस् धातुका लोप हो। भवितास्+रौ इसमेंसे तास्का लोप कहा सो (२७) से अन्त्य स्का हुआ.

भविता+रौ रूप हुआ तब=भवितारौ (वे दोनो होंगे)

प्र० ब०	भवितास्+रस्	भविता[४४०]+रः=भवितारः।	(वे सब होंगे)
म० ए०	भवितास्+सि (सिप्)	=भविता[४३९]+ सि=भवितासि।	(तू होगा)
म० द्वि०	भवितास्+थः	=भवितास्थः।	(तुम दोनों होंगे)
म० ब०	भवितास्+थ	=भवितास्थ।	(तुम सब होंगे)
उ० ए०	भवितास्+मि	=भवितास्मि।	(मैं हूंगा)
उ० द्वि०	भवितास्+वः	=भवितास्वः।	(हम दोनों होंगे)
उ० ब०	भवितास्+मः	=भवितास्मः।	(हम सब होंगे)

(४४१) लृट् शेषे च । ३ । ३ । १३॥

भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् स्यात् क्रियार्थायां क्रियायां[१] सत्यामसत्यां वा ॥

भविष्य अर्थमें धातुका व्यवहार करनेमें आवे तो उससे परे लृट् हो परन्तु दूसरी क्रिया जो भविष्यत् कार्यके फलके लिये एक कार्यको प्रगट करती है, वह रहे अथवा न रहे । 'वह पढने जाता है' इस प्रयोगमें पढना जो क्रिया है,सो भविष्यत् कालकी है, कारण कि, अभीतक पढना हुआ नहीं है, परन्तु आगेको होगा और इस कार्यके फलके निमित्त 'जाना' एक दूसरी क्रिया आई है, इस ही दूसरी क्रियाको 'क्रियार्थ क्रिया ' कहते हैं (९०४) सूत्रमें ऐसा नियम किया गया है कि जब ऐसी क्रियाके अर्थकी क्रिया रहे, तब भविष्य अर्थमें धातुसे परे तुमुन् और ण्वुल् दो प्रत्यय लगाये जायं, परन्तु यहां (४४१) में कहा है कि ऐसी क्रिया रहे वा न रहे भविष्य अर्थमें धातुसे परे लृट् हो, जब क्रियार्थ क्रिया रहे तब एक भविष्यत् क्रियाके दो रूप हो सकते हैं, एक लृट् और दूसरा तुमुन् ण्वुल्का, परन्तु कर्ता, कर्म और भाव तीनों अर्थोंमें लृट् होता है और तुमुन् तथा ण्वुल् प्रत्यय ' अव्ययकृतो भावे ' तथा ' कर्तरि कृत् ' (८२०) इन दोनोंके अनुसार क्रमसे भाव और कर्तामें होते हैं, लुट् (४३९) तथा लृट् (४४१) इन दो लकारोंका उपयोग भविष्य अर्थमें होता है, भेद इतना है कि अद्यतन भविष्यमें लृट् लकार होता है और अनद्यतन भविष्य (जिसमें कार्यके प्रारम्भकी अवधि रहती है) में लुट् होता है, यथा ' श्वः मथुरां प्रयातासि '। कल तू मथुरा जायगा ' यहां कालकी अवधि है, इस कारण लुट् हुआ और जहां केवल भविष्यका प्रकाश

१ क्रियार्थक क्रिया उपपदका उदाहरण जैसे-" धनी भविष्यामीति व्रजति "।

करना है वहां ऌट्का प्रयोग होगा, यथा ' सूर्यस्तप्स्यति निःशंकम् ' निःसन्देह सूर्य प्रकाश करेगा। इसमें पहले ऌट्के समान कोई कालका नियम नहीं है। इस कारण भविष्यत् कालके बतानेवाले प्रयोगमें ऌट् लगा।

प्र० ए० भव्[४२१]+इ[४३४]+(४३६)से(स्य)(१६९) से ष्य+ति=भविष्यति। (वह होगा)
प्र० द्वि० भव्[४२१]+इ[४३४]+(४३६)से (स्य)(१६९) से ष्य+तः=भविष्यतः (वे दोनों होंगे)
प्र० ब० भव्[४२१]+इ[४३४]+(४३६)से(स्य) (१६९) से ष्य+अन्ति=भविष्यन्ति (वे सब होंगे)
म० ए० भव्+इ+स्य+सि=भविष्यसि (तू होगा)
म० द्वि० भव्+इ+स्य+थः=भविष्यथः (तुम दोनों होंगे)
म० ब० भव्+इ+स्य+थ=भविष्यथ (तुम सब होंगे)
उ० ए० भव्+इ+ष्या[४२३]+मि=भविष्यामि (मैं हूँगा)
उ० द्वि० भव्+इ+ष्या[४२३]+वः=भविष्यावः (हम दोनों होंगे)
उ० ब० भव्+इ+ष्या[४२३]+मः=भविष्यामः (हम सब होंगे)

(४४२) लोट् च। ३। ३। १६२॥

विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट्।

विधि आदि (४६०) अर्थमें धातुसे परे लोट् हो।

(४४३) आशिषि लिङ्लोटौ। ३। ३। १७३॥

आशीर्वाद अर्थमें धातुसे परे लिङ् (४६०) तथा लोट् (४४२) हो।

(४४४) एरुः। ३। ४। ८६॥

लोट इकारस्य उः॥

लोट्के स्थानमें जो प्रत्यय आदेश हुआ है उसके इकारके स्थानमें उ हो। प्रथम पुरुषके प्रत्यय तिप् और झि (४०८) के इकारके स्थानमें ही उकार हो। और स्थानमें नहीं। प्र० ए० भव (४२०, ४२१)+तु (४४४) भवतु (वह होय)

(४४५) तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्। ७। १। ३५॥

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा। परत्वात्सर्वादेशः।

आशिष् अर्थमें तु (४४४) और हि (४४८) के स्थानमें विकल्प करके तातङ् आदेश हो। यद्यपि तातङ् आदेश ङित् है (५९) से अन्तके स्थानमें होना चाहिये परन्तु (९८) से सम्पूर्ण प्रत्यय तु और हि के स्थानमें हुआ कारण कि (९८ ' अनेकाल् '–(१।१।५५)

---

१ स्वस्य परस्य चेष्टार्थस्य शंसनमाशीः। यथा धनं मे भवतु, पुत्रस्ते भवतु।

वां है और (९९ 'ङिच' १ । १ । ३९) वां है सो (९८) वां सूत्र अष्टाध्यायीके क्रमसे (९९) से पर है सो (१३२) के अनुसार बलवान् होकर यहां लगता है । तातङ्में अङ् इत्संज्ञक है उसका लोप हुआ भव्+अ (४२०)+तात्=भवतात् सिद्ध हुआ । ईश्वर करे वह हो. प्रश्न–जब (१३२) के अनुसार (९८) वां सूत्र सदा लग सकता है तो (९९) का क्या फल है ? उत्तर–जब केवल इसी कार्यके निमित्त ङ् है तब तो (९९) ही लगता है और जब कोई विशेष प्रयोजन रहता है तब (९८) लगता है तातङ्के ङ्से गुण और वृद्धिका निषेध और सम्प्रसारण आदि होते हैं ।

(४४६) लोटो लङ्वत् । ३ । ४ । ८५ ॥

लोटस्तामादयः सलोपश्च ॥

लोट्को ही लङ् (४९७) के समान 'ताम्' आदि आदेश होते हैं और सका लोप (४९६) से होता है ।

(४४७) तस्थस्थमिपां तांतंतामः । ३ । ४ । १०१ ॥

ङितश्चतुर्णां तामादयः क्रमात्स्युः ॥

ङित् लकार (लङ् लिङ् लुङ् और लृङ्) इनको आदेश जो तस् थस् थ और मिप् उनके स्थानमें ताम् तम् त और अम् अनुक्रमसे हों ।

प्र० पु० द्वि० भव+ताम्=भवताम् (वे दोनों हों)
प्र० पु० ब० भव+अन्तु=भवन्तु (ईश्वर करे वे सब हों)
म० पु० ए० भव+सि–

(४४८) सेर्ह्यपिच्च । ३ । ४ । ८७ ॥

लोटः सेर्हिः सोऽपिच्च ॥

लोट्के स्थानमें जो सि (सिप्) उसको हि आदेश हो परन्तु पित् न हो अर्थात् पित् मानकर जो कार्य होते हैं सो इसको न हों । भव+हि–

(४४९) अतो हेः । ६ । ४ । १०५ ॥

अतः परस्य हेर्लुक् ॥

ह्रस्व अकारसे परे जो हि (४४८) उसका लुक् हो । भव+हि इसमें हिका लोप हुआ तब 'भव' रूप हुआ ।

म० पु० ए० भव अथवा भवतात् (४४५) (तू हो)
म० पु० द्वि० भव+तम् (४४७)=भवतम (तुम दोनों हों)

म० पु० ब० भव+त (४४७)=भवत (तुम सब हों)
उ० पु० ए० भव+मि–

(४५०) मेर्निः । ३ । ४ । ८९ ॥

लोटो मेर्निः स्यात् ॥

लोट्के स्थानमें जो मि (मिप्) आदेश है उसके स्थानमें नि हो।

(४५१) आडुत्तमस्य पिच्च । ३ । ४ । ९२ ॥

लोडुत्तमस्याट् पिच्च । हिन्योरुत्वं न, इकारोच्चारणसामर्थ्यात् ॥

लोट्के स्थानमें उत्तमपुरुषसंज्ञक प्रत्यय आदेश किये जाते हैं उनको आट्का आगम हो और वह पित् माना जाय। हि (४४८) तथा नि के इकारके स्थानमें उ (४४४) नहीं होता यदि उ होता तो इके उच्चारण करनेका प्रयोजन नहीं रहता। आट्में ट् इत्संज्ञक है उसका लोप हुआ भव्+आ (१०३)+नि=भवानि। (मैं होऊँ)।

(४५२) ते प्राग्धातोः । १ । ४ । ८० ॥

ते गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः ।

वे गति (२२२) तथा उपसर्ग (४७) संज्ञावाले धातुसे प्रथम लगाये जायँ॥

(४५३) आनि लोट् । ८ । ४ । १६ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्यानीत्यस्य नस्य णः स्यात् ॥

उपसर्गमें रहनेवाले र् तथा ष् (१५७) तिससे परे लोट्के स्थानमें जो आनि आदेश (४९१, ४९०) उसके नकारके स्थानमें णकार हो। यथा=प्रभवाणि (मैं समर्थ होऊँ)।

(४५४) दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः ।

स् को ष् और न् को ण् करने हों तो दुर् शब्दकी उपसर्ग संज्ञा (४७) न हो। इसी रीतिसे दुःस्थितिः। दुर्भवानि (मैं दुःखी होऊं)।

(४५५) अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम् ॥

अङ् प्रत्यय तथा (९१८) कि प्रत्ययके विधान करनेको नकारके स्थानमें णकार करनेको अन्तर् शब्दकी उपसर्गसंज्ञा (४९३) हो ऐसा कहना चाहिये। यथा-' अन्तर्भवाणि (मैं भीतर होऊं)।

(४५६) नित्यं ङितः । ३ । ४ । ९९ ॥

सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः । अलोऽन्त्यस्येति सलोपः ।

ङित् लकारके स्थानमें सकारान्त उत्तमपुरुषको जो आदेश हुआ है उसका नित्य ही लोप हो। (२७) से अन्त्य अक्षर सकारका लोप हुआ (९४६) यह सूत्र लोट्में लगता है इससे वस् मस् के सकारका लोप हुआ।

उ० पु० द्वि० भवा (४२१, ४२३,)+व (४९६,)=भवाव (हम दोनों हों)
उ० पु० ब० भवा (४२१, ४२३)+म (४९६)=भवाम (हम सब हों)

(४९७) अनद्यतने लङ्। ३। २। १११॥

अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

अनद्यतन भूत अर्थका व्यवहार करना हो तो धातुसे परे लङ् हो।
प्र० ए० भव+ल् (लङ्)।

(४९८) लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः। ६। ४। ७१॥

एष्वङ्गस्याट्॥

अंग (१९२) से परे लुङ् (४६९) लङ् (४९७) और लृङ् (४७७) से लकार आवे तो अङ्गको उदात्त अट्का आगम हो.
अ (१०३)+भव+ल्-

(४९९) इतश्च। ३। ४। १००॥

ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तस्य लोपः॥

ङित् लकारके स्थानमें जो इकारान्त परस्मैपद (४०९) आदेश-ति अंति सि और मि इनका लोप हो, इसकारण इनमें सबके इकारका लोप हुआ।

प्र० पु० ए०	अ+भव[४५८]+त् (३९९)	=अभवत्	(वह हुआ)
प्र० पु० द्वि०	अ+भव+ताम् (४४७)	=अभवताम्	(वे दोनों हुए)
प्र० पु० ब०	अ+भव+अन् (४२२, ४९९, २६)	-अभवन्	(वे सब हुए)
म० पु० ए०	अ+भव+स[४९९] (१२४, १११)	=अभवः	(तू हुआ)
म० पु० द्वि०	अ+भव+तम् (४४७)	=अभवतम्	(तुम दोनों हुए)
म० पु० ब०	अ+भव+त (४४७)	अभवत	(तुम सब हुए)
उ० पु० ए०	अ+भव+अम् (४४७)	=अभवम्	(मैं हुआ)
उ० पु० द्वि०	अ[४५८]भवा[४२१४२३] +व (४९६)	=अभवाव	(हम दोनों हुए)
उ० पु० ब०	अ[४५८]भवा[४२१४२३] +म (४९६)	=अभवाम	(हम सब हुए)

१ जैसे 'ह्योऽभवत् त्वत्पुत्रः' इत्यादि।

(४६०) विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् । ३ । ३ । १६१ ॥

एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् स्यात् ॥

विधि[1], निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न और प्रार्थना इतने अर्थोंमें धातुसे परे लिङ् हो (८१६) में इन अर्थोंका विस्तार करेंगे ।

(४६१) यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च । ३ । ४ । १०३ ॥

लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिच्च ॥

लिङ्के स्थानमें जो परस्मैपद आदेश उनको यासुट् (१०३) का आगम हो सो ङित् तथा उदात्त हो ।

(४६२) लिङः स लोपोऽनन्त्यस्य । ७ । २ । ७९ ॥

सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः ॥

लिङ्के स्थानमें जो सार्वधातुक आदेश (४१९) उसके अवयव सकारका लोप हो परन्तु वह सकार अन्तमें न हो तो। यासुट्मेंसे उट् इत्संज्ञकका लोप होकर यास् रहा, उसके स्का लोप प्राप्त हुआ पर–

(४६३) अतो येयः । ७ । २ । ८० ॥

अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय् ॥

ह्रस्व अवर्णसे परे सार्वधातुकके अवयव यास् (४६१) के स्थानमें इय् आदेश हो ।

(४६४) लोपो व्योर्वलि । ६ । १ । ६६ ॥

वल् प्रत्याहार परे हुए सन्ते व् तथा य्का लोप हो ।

प्र० पु० ए० भवे+त्= भवेत् (वह हो)
प्र० पु० द्वि० भवे+ताम् (४३७)=भवेताम् (वह दोनों हों)
प्र० पु० ब० भवेय्+झि

(४६५) झेर्जुस् । ३ । ४ । १०८ ॥

लिङो झेर्जुस् स्यात् ।

लिङ्–सम्बन्धी झिको जुस् हो (१४८) से ज्का लोप होकर उस् शेष रहा ।

---

[1] स्वामी भृत्यं वदति–भवान् वस्त्रं प्रक्षालयेत्, इत्यादि उदाहरण जानो ।

प्र०	पु०	ब०	भवेय्+उः	=भवेयुः	(वे सब हों)
म०	पु०	ए०	भवे (४६४)+स्[४५]	=भवेः[१४२]	(तू हो)
म०	पु०	द्वि०	[४३४]भवे+तम्[४४७]	=भवेतम्	(तुम दोनों हों)
म०	पु०	ब०	[४३४]भवे+त[४४७]	=भवेत	(तुम सब हों)
उ०	पु०	ए०	भवेय्+अम्[४४७]	=भवेयम्	(मैं होऊँ)
उ०	पु०	द्वि०	भवे [४६४] +व	=भवेव	(हम दोनों हों)
उ०	पु०	ब०	[४६४]भवे +म	=[४५६]भवेम	(हम सब हों)

(४६६) लिङाशिषि । ३ । ४ । ११६ ॥

आशिषि लिङस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात् ॥

आशिष अर्थवाची लिङ्के स्थानमें जो तिङ् आदेश (४०८) उसकी आर्धधातुक संज्ञा हो।

(४६७) किदाशिषि । ३ । ४ । १०४ ॥

आशिषि लिङो यासुट् कित् ॥

आशीर्वाद अर्थमें जो लिङ् तत्सम्बन्धी जो यासुट् (४६१) सो कित् हो । भू+यास्+त् (४६९) ऐसी स्थिति है इसमें (३३७) से तकारकी संयोगसंज्ञा होकर उसके आदिभूत सकारका लोप हुआ तब ' भूयात् ' रूप हुआ.

(४६८) क्ङिति च । १ । १ । ५ ॥

गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः ।

(४२१) से सार्वधातुक आर्धधातुक परे हुए सन्ते इगन्त अङ्गको गुण हो परन्तु जो प्रत्यय गित् कित् अथवा ङित् हो तो उसे मानकर गुण और वृद्धि न हो । इस सूत्रमें इग्-लक्षणका आशय यह है जिस सूत्रसे गुण या वृद्धि होती हो उसमें इक् पदकी प्राप्ति होती हो. जैसे इक् प्रत्याहारमें भूका ऊ है उसके स्थानमें गुणकी प्राप्ति है कारण कि उससे सार्व-धातुक यासुट् प्रत्यय परे है, परन्तु यहां यासुट् प्रत्यय कित् है इससे भू अन्तर्गत ऊकारके स्थानमें गुण न हुआ.

प्र०	पु०	ए०	भूया+त्	=भूयात्	(वह होवे)
प्र०	पु०	द्वि०	भूयास्*ताम्[४४७]	=भूयास्ताम्	(वे दोनों होवें)
प्र०	पु०	ब०	भूयास्+उः[४३]	=भूयासुः	(वे सब होवें)

---

* (३३७) से ता अन्तर्गत आ अच्का व्यवधान है इससे आमें संयोगसंज्ञा न होकर सकारका लोप न हुआ " स श्रीमान् भूयात् " इत्यादि उदाहरण जानो ।

म०	पु०	ए०	भूयास्+स्[४६५]	[१२४]=भूयाः[१११]	(तू हो)
म०	पु०	द्वि०	भूयास्+तम्[४४७]	=भूयास्तम्	(तुम दोनों हों)
म०	पु०	ब०	भूयास्+त[४४७]	=भूयास्त	(तुम सब हों)
उ०	पु०	ए०	भूयास्+अम्[४४७]	=भूयासम्	(मैं होऊँ)
उ०	पु०	द्वि०	भूयास्+व[४५६]	=भूयास्व	(हम दोनों होवें)
उ०	पु०	ब०	भूयास्+म[४५६]	—भूयास्म	(हम सब होवें)

(४६९) लुङ् । ३ । २ । ११० ॥

भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात् ॥

भूत अर्थमें धातुसे लुङ्, अनद्यतनभूत अर्थमें लङ् ही होता है । जब परोक्ष अपरोक्ष अद्यतन अनद्यतनका कुछ विचार नहीं रहे और केवल भूतकालका प्रगट करना हो तो लुङ् लकार हो अन्यथा परोक्ष अनद्यतनमें लिट् और अपरोक्ष अनद्यतनमें लङ् दोनों क्रमसे बाधकर होते हैं ।

(४७०) माङि लुङ् । ३ । ३ । १७५ ॥

सर्वलकारापवादः ।

धातुसे पहले माङ् उपपद हो तो सब लकारोंका अपवाद लुङ् हो । ऐसी अवस्थामें वर्तमान आदिकालका निश्चय प्रसङ्गसे होता है ।

(४७१) स्मोत्तरे लङ् च । ३ । ३ । १७६ ॥

स्मोत्तरे माङि लङ् स्याच्चाल्लुङ् ॥

स्म है उत्तर भागमें जिसके ऐसा माङ् उपपद हुए सन्ते धातुसे लङ् तथा लुङ् हो । लङ् लुङ्की प्राप्तिमें जो अपनेको इष्ट हो सोई प्रयोग करना (४७६) । सूत्रमें उदाहरण देखो ।

(४७२) च्लि लुङि । ३ । १ । ४३ ॥

शबाद्यपवादः ।

लुङ् परे हुए सन्ते धातुसे च्लि प्रत्यय हो । यह शप् आदि (४२०) का अपवाद है ।

(४७३) च्लेः सिच् । ३ । १ । ४४ ॥

इचावितौ ॥

च्लि (४७२) के स्थानमें सिच् हो । सिच् में इ और च् इत् हैं ।

(४७४) गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु । २ । ४ । ७७ ॥

एभ्यः सिचो लुक् स्यात् । गापाविहे[1]णादेशपिबती गृह्येते ॥

जब गा स्था और छओं[2] घुसंज्ञक (६६३) तथा पा और भू इन धातुओंसे परे परस्मैपद प्रत्यय आवे तो सिच् (४७३) का लोप हो, यह 'गा' यहां गमन अर्थमें इण् धातुको आदेश हुआ है, जो पा धातु पान अर्थमें है जिसे पिब आदेश होता है, इन दोनोंका यहां ग्रहण है.

(४७५) भूसुवोस्तिङि । ७ । ३ । ८८ ॥

भू सू एतयोः सार्वधातुके तिङि परे गुणो न ॥

भू तथा सू धातुसे परे सार्वधातुक तिङ् प्रत्यय आवे तो गुण (४२१) न हो

प्र०	पु०	ए०	अ[458]+भू+त्[459]=अभूत्[3]	(वह हुआ,)
प्र०	पु०	द्वि०	अ[458]+भू+ताम्[447]=अभूताम्	(वे दोनों हुए.)
प्र०	पु०	ब०	अ[458]+भू+व्[42]+अन्=अभूवन्	(वे सब हुए.)
म०	पु०	ए०	अ+भू+स्[459]=अभूः	(तू हुआ.)
म०	पु०	द्वि०	अ+भू+तम्[447]=अभूतम्	(तुम दोनों हुए.)
म०	पु०	ब०	अ+भू+त[447]=अभूत	(तुम सब हुए.)
उ०	पु०	ए०	अ+भू+वम्[447]=अभूवम्	(मैं हुआ.)
उ०	पु०	द्वि०	अ+भू+व[4]=अभूव	(हम दोनों हुए.)
उ०	पु०	ब०	अ+भू+म[456]=अभूम	(हम सब हुए.)

(४७६) न माङ्योगे । ६ । ४ । ७४ ॥

अडाटौ न स्तः ॥

जब धातुसे माङ्का योग हो तो तब अट् (४५८) तथा आट् (४७९) न हों । लुङ्=मा भवान् भूत् । (आप न होवें) लङ्=मा स्म भवत् (वह न हो) (४७१) मा स्म भूत् (वह न हो)

(४७७) लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ । ३ । ३ । १३९ ॥

हेतुहेतुमद्भावादिलिङ्निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात् क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् ॥

---

१ इह 'गातिस्था'-इति सूत्रे । "गापोर्ग्रहणे इण्पिबत्योर्ग्रहणम्" इति भाष्यम् ।

२ दारूप चार हैं-"डुदाञ्" "दाण्" "दो" देङ्" और धारूप दो हैं-"डुधाञ्" " धेट् " इस प्रकार घुसंज्ञक धातु छः होते हैं । ३ " अभून्नृपो दशरथ इत्युदाहृतः " इत्यादि उदाहरण जानो ।

लिङ् लकारकी प्राप्तिमें कार्यकारणभाव विधिनिमन्त्रणआदि (४६०) निमित्तमें कोई हो और क्रियाकी असिद्धि समझमें आती हो तो भविष्य अर्थमें लृङ् हो।

अ[४५८] +भव्[४२१]+इ[४३४] +स्य[४३४] (ष्य[१६९])=अभविष्य--

प्र०	ए०	अभविष्य+त्[४५१]=अभविष्यत्	(जो वह हो)
प्र०	द्वि०	अभविष्य+ताम्[४]=अभविष्यताम्	(जो वे दोनों हों)
प्र०	ब०	अभविष्य+अन्[४५९]=अभविष्यन्[३००]	(जो वे सब हों)
म०	ए०	अभविष्य+स्=अभविष्यः	(जो तू हो)
म०	द्वि०	अभविष्य+तम्[४४७]=अभविष्यतम्	(जो तुम दोनों हो)
म०	ब०	अभविष्य+त[४४७]=अभविष्यत	(जो तुम सब हो)
उ०	ए०	अभविष्य+अम्[४४७]=अभविष्यम्[३००]	(जो मैं हूँ)
उ०	द्वि०	अभविष्या[४२३]+व[४५]=अभविष्याव	(जो हम दोनों हों)
उ०	ब०	अभविष्या[४२३]+म[४५६]=अभविष्याम	(जो हम सब हों)

जो कि इस सूत्रकी वृत्तिमें लिखा है कि भविष्य[१] अर्थमें लृङ् हो परन्तु लृङ् भूत अर्थमें भी होता है। यथा "जो बहुत वर्षा हो तो बहुत धान भी हो, अथवा जो वह आता तो मैं आता"। इनमें पहले वाक्यका यह प्रयोजन है कि वर्षा होनेका लक्षण नहीं दीखता इससे धान अधिक होना भी असंभव है, दूसरेका आशय यह है कि वह नहीं आया इससे मैं भी नहीं आया (यही हेतुहेतुमद्भाव है)

अत् धातु (सातत्यगमने) निरन्तर गमन अर्थमें है। उसको साधकर लिखते हैं।

लट्।

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष-अतति वह निरन्तर जाता है,	**अततः** वे दोनों जाते हैं,	**अतन्ति** वे सब जाते हैं,
मध्यमपुरुष-अतसि तू जाता है,	**अतथः** तुम दोनों जाते हो,	**अतथ** तुम सब जाते हो.

---

१ भविष्यका उदाहरण-सुवृष्टिश्चेदभविष्यत् सुभिक्षमभविष्यत्। भूतका उदाहरण-इन्धनं चेदभविष्यत् ओदनमपक्ष्यत्। परन्तु पाणिनि भूतकालमें लृङ्का प्रयोग नहीं मानते। उपसर्गके योगमें धातुका अर्थ बदल जाता है-"उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते"। जैसे-प्र=सामर्थ्य-जैसे दाने प्रभवति। सम्=सम्भव-यत्ने सिद्धेः सम्भवति। उद्=उत्पत्ति-क्षेत्रे बीजमुद्भवति। अभि=अभिभव-बलवान् शत्रूनभिभवति। परि--तिरस्कार-खलः साधुं परिभवति। अनु--अनुभव-उद्योगी सुखमनुभवति। परा-पराभव-बली परान् पराभवति। इत्यादि।

उत्तमपुरुष-अतामि[४२३] मैं जाता हूं, **अतावः** हम दोनों जाते हैं, **अतामः** हम सब जाते हैं,

लिट् ।

अत्+अत्=अअत्+अ-

(४७८) अत[६] आदेः[६] । ७ । ४ । ७० ॥

अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात् ॥

अभ्यास (४२८) के आदिके ह्रस्व अकारको दीर्घ हो । यह सूत्र पररूपका अपवाद है।
आ अत्+अ-

प्र० पु० आत वह गया, **आततुः** वे दो गये, **आतुः** वे सब गये.
म० पु० आतिथ[४३४] तू गया, **आतथुः** तुम दो गये, **आत** तुम सब गये.
उ० पु० आत मैं गया, **आतिव** हम दो गये, **आतिम** हम सब गये.

लुट् ।

प्र० पु०	**अतिता**[४३४] वह जायगा	**अतितारौ** वे दो जायँगे	**अतितारः** वे सब जायँगे
म० पु०	**अतितासि**[४३९] तू जायगा	**अतितास्थः** तुम दो जाओगे	**अतितास्थ** तुम सब जाओगे
उ० पु०	**अतितास्मि** मैं जाऊंगा	**अतितास्वः** हम दो जायंगे	**अतितास्मः** हम सब जायँगे

लृट् ।

प्र० पु०	**अतिष्यति** वह जायगा	**अतिष्यतः** वे दो जायँगे	**अतिष्यन्ति** वे सब जायँगे
म० पु०	**अतिष्यसि** तू जायगा	**अतिष्यथः** तुम दो जाओगे	**अतिष्यथ** तुम सब जाओगे
उ० पु०	**अतिष्यामि** मैं जाऊंगा	**अतिष्यावः** हम दो जायँगे	**अतिष्यामः** हम सब जायँगे

लोट् ।

प्र० पु०	**अततु**[४४४]**-अततात्**[४४०] वह जाय	**अतताम्**[४४६] वे दो जायँ	**अतन्तु** वे सब जायँ

म० पु०	अत[448]-अततात[449] तू जा	अततम् तुम दो जाओ	अतत तुम सब जाओ
उ० पु०	अतानि[451] मैं जाऊं	अताव हम दो जायँ	अताम हम सब जायँ

(४७९) आडजादीनाम् । ६ । ४ । ७२ ॥

अजादेरङ्गस्याट् लुङ्लङ्लृङ्क्षु ।

अजादि अङ्गसे परे लुङ् लङ् लृङ् लकार आवे तो अङ्गको आट्का आगम हो ।

प्र० पु० आतत्[450] वह गया **आतताम्** वे दो गये **आतन्**[423, 459] वे सब गये
म० पु० आतः तू गया **आततम्** तुम दोनों गये **आतत** तुम सब गये
उ० पु० आतम् मैं गया **आताव** हम दोनों गये **आताम** हम सब गये

१ लिङ् (विधि)

प्र० पु० अतेत्[452] वह जावे, **अतेताम्** वे दोनों जावें, **अतेयुः** वह सब जांय.
म० पु० अतेः तू जावे, **अतेतम्** तुम दोनों जाओ, **अतेत** तुम सब जाओ.
उ० पु० अतेयम् मैं जाऊं, **अतेव** हम दोनों जायँ, **अतेम** हम सब जायँ,

२ लिङ् (आशिष्)

प्र० अत्यात्[330] भगवान् करें वह जाय, **अत्यास्ताम्** वे दोनों जायँ,
अत्यासुः वे सब जायँ,
म० अत्याः तू जाय, **अत्यास्तम्** तुम दो जाओ, **अत्यास्त** तुम सब जाओ,
उ० अत्यासम् मैं जाऊं, **अत्यास्व** हम दो जायँ, **अत्यास्म** हम सब जायँ,

लुङ् ।

अत् ल् (४७९) से आत्+(४७२=च्लि ४४३ से इसके स्थानमें) सिच् हुआ (इसमें इच् इत्संज्ञक है) आतस् (४३४) से इट्का आगम=आत्+इस्=आतिस् **प्र० पु० ए०** आतिस्+त्–

(४८०) अस्तिसिचोऽपृक्ते । ७ । ३ । ९६ ॥

विद्यमानात्सिचोऽस्तेश्च परस्यापृक्तस्य हल ईडागमः ।

विद्यमान (जिसका लोप न हुआ हो) सिच् अथवा अस् (धातु) से परे जो अपृक्त (१९८) हल् उसको ईट्का आगम हो ।

---

१ " सर्वादेशेनानपहृतत्वं विद्यमानत्वम् । "

(४८१) इट ईटि । ८ । २ । २८ ॥

इटः परस्य सस्य लोपः स्यादीटि परे ॥

जिससे परे ईट् (४८०) हो ऐसे इट् (४३४) से परे जो स् तिसका लोप हो। सिच्के सकारका लोप (४८१) से किया इस कारण सवासात अध्यायका (९९) वां सूत्र लोपकी असिद्धि प्रगट करता है तो यहां संधि न हो इस कारण यह करना योग्य है कि

" सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः " *

एकादेश करनेमें सिच् लोपको सिद्ध कहना चाहिये। जहां एकसे अधिक स्वरके स्थानमें एक ही अच् आदेश हो। यथा इ+ईके स्थानमें केवल ई (९९) आदेश हुआ यहां सिच्का लोप सिद्ध मानो। आत्+ईत्=**आतीत्** सिद्ध हुआ। वह गया **प्र० द्वि०** आतिस्+ताम्[४४७]=आतिष्[१६९]+ताम्[४४७]=**आतिष्टाम्** वे दोनों गये.

(४८२) सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च । ३ । ४ । १०९ ॥

सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस् ।

सिच् अथवा अभ्यस्तसंज्ञकधातु (३७९) अथवा विद्धातुसे परे ङित् लकारके स्थानमें जो झि प्रत्यय उसको जुस् हो।

प्र० ब० आतिस्+उः (जुस्) **आतिषुः** (१६९) (वे सब गये।
म० ए० आतिस्+स्=आतिस् (४८१) ई+स्=**आतीः** (९९) (तू गया)
म० द्वि० आतिस्+तम्[४४७]=**आतिष्टम्** (१६९, ७८) तुम दो गये.
म० ब० आतिस्+त=**आतिष्ट** (१६९, ७८) तुम सब गये.
उ० ए० आतिस्+अम्[४४७]=**आतिषम्**[१६९] मैं गया.
उ० द्वि० आतिस्+व=**आतिष्व**[१६९] हम दो गये.
उ० ब० आतिस्+म=**आतिष्म**[१६९] हम सब गये.

लृङ् ।

प्र० ए० अ[४५०] +अत् ई[४३४] +स्य[४४३]+त्=

प्र० पु०	**आतिष्यत्** जो वह जाय	**आतिष्यताम्** जो वह दो जायँ	**आतिष्यन्** जो वह सब जायं
म० पु०	**आतिष्यः** जो तू जाय	**आतिष्यतम्** जो तुम दो जाओ	**आतिष्यत** जो तुम सब जाओ
उ० पु०	**आतिष्यम्** जो मैं जाऊँ	**आतिष्याव** जो हम दो जायँ	**आतिष्याम** जो हम सब जायँ

षिधू (गत्याम्) जाना।

---

१ नि तथा प्रतिके योगमें वारण-हटाना अर्थ होता है। जैसे शिष्यमकार्यात् प्रतिषेधाति । प्र-प्रसिद्ध- जैसे प्रसिद्धः ।

(४८३) ह्रस्वं लघु । १ । ४ । १० ॥

ह्रस्व अच्की लघुसंज्ञा हो ।

(८८४) संयोगे गुरु । १ । ४ । ११ ॥

संयोगे परे ह्रस्वं गुरु स्यात् ॥

संयोग परे रहते ह्रस्व अच्की गुरु संज्ञा हो ।

(४८५) दीर्घं च । १ । ४ । १२ ॥

गुरु स्यात् ॥

दीर्घ अच्की भी गुरु संज्ञा हो ।

(४८६) पुगन्तलघूपधस्य च । ७ । ३ । ८६ ॥

पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः ॥

जो अङ्ग पुगन्त (७५०) वा लघूपध हो अर्थात् जिसके अन्तमें पुक् आगम हुआ हो अथवा जिस अङ्गकी उपधा (१९६) लघु (४८३) हो तो सार्वधातुक आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते उसके इक्को गुण हो । (२८०) से धातुके प्रथमाक्षर ष्के स्थानमें स् आदेश हो–सिध्=सेध–

लट् ।

प्र० पु० सेधति वह जाता है, **सेधतः** वे दो जाते हैं, **सेधन्ति** वे सब जाते हैं ।
म० पु० सेधसि तू जाता है, **सेधथः** तुम दो जाते हो, **सेधथ** तुम सब जाते हो ।
उ० पु० सेधामि मैं जाता हूँ, **सेधावः** हम दो जाते हैं, **सेधामः** हम सब जाते हैं ।

लिट् ।

सिध्+अ[४२५]=सिध्[४२७] सिध्+अ=सिसिध्[४२९]=सिषेध्[१६०]+अ[४८]=**सिषेध** वह गया.

सिषिध्[१६५]+अतुस् (४८६) से षि अन्तर्गत (इक्) को गुण प्राप्त हुआ. परन्तु–

(४८७) असंयोगाल्लिट् कित् । १ । २ । ५ ॥

असंयोगात्परोऽपिल्लिट् कित् स्यात् ॥

लिट् (४२४) के स्थानमें जो जो आदेश हुआ है वह संयोगसे परे न हो तथा पित् न हो तो उसकी गणना कित्में हो (४६८) से अतुः कित् है । उसको गुण न हो ।

सिषिधतुः वे दो गये, **सिषिधुः** वे सब गये ।
म० पु० सिषेधिथ[४३४] तू गया, **सिषिधथुः** तुम दो गये, **सिषिध** तुम सब गये ।
उ० पु० सिषेध मैं गया, **सिषिधिव**, हम दो गये, **सिषिधिम** हम सब गये ।

लुट्-सेधिता[430]	वह जायगा.	लिङ्-(विधि०) सेधेत्[466]	वह जावे.
लृट्-सेधिष्यति	वह जायगा.	लिङ्-(आशि०) सिध्यात्[469]	भगवान् करें वह जाय.
लोट्-सेधतु[444]	वह जाय.	लुङ्-असेधीत्[481]	वह गया.
लङ्-असेधत्[459]	वह गया.	लृङ्-असेधिष्यत्[474]	जो वह जाय.

चित् (चिती) चेतकरना। **शुच्**। खेद करना इन धातुओंके रूप इसीप्रकार जानने॥

गद् स्पष्ट बोलना।

लट्।

लट्-प्र० पु० ए० गदति रूप होता है, **गदति**-वह बोलता है। शेषरूप भूधातुके समान जानने परन्तु यदि उसमें उपसर्ग लगे तो नीचे लिखा सूत्र लगता है।

(४८८) नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च[6] । ७ । ४ । १७ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्णो गदादिषु परेषु ॥

उपसर्गविषे स्थित र् और ष् जिसके निमित्त हैं अर्थात् णकार होनेके निमित्त हैं (२९२) उससे परे नि उपसर्गके नकारके स्थानमें ण् हो जो गदआदि नीचे लिखे धातु उससे परे होंय तो।

गद् स्पष्ट बोलना.	**षो** नाश होना.	**वप्** बोना,
नद् नाद करना.	**हन्** मारना.	**वह्** ले जाना.
पत् गिरना.	**या** जाना.	**शम्** शान्त होना.
पद् चलना.	**वा** वहना (पवनादि)	**चि** इकट्ठा करना.
घु[63] संज्ञक धातु.	**द्रा** दौडना.	**दिह्** लीपना वा पोतना,
मा मापना.	**प्सा** खाना	

गद् धातुसे पूर्व प्र तथा नि उपसर्ग आये तो प्रनिगद् ऐसी स्थिति हुई तब (४८८) प्रणिगद् रूप बना **प्र० ए० प्रणिगदति**-वह स्पष्ट बोलता है.

लिट्।

प्र० ए० गद्+अ (४२९)=गद् (४२७)+गद्+अ=गगद् (४२९)+अ=

(४८९) कुहोश्चुः[6] । ७ । ४ । ६२ ॥

अभ्यासकवर्गहकारयोश्चवर्गादेशः ॥

अभ्यास (४२८) के कवर्ग अथवा हकारको चवर्ग आदेश हो। जगद्+अ (णल्)

(४९०) अत उपधायाः । ७ । २ । ११६ ॥

उपाधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये परे ॥

ञित् अथवा णित् प्रत्यय परे हुए सन्ते अकार उपधाको वृद्धि हो । तब ग अन्तर्गत अ उपधाको आ हुआ जगाद्+अ=

प्र० पु० जगाद वह बोला, **जगदतुः** वे दो बोले, **जगदुः** वे सब बोले
म० पु० जगदिथ तू बोला, **जगदथुः** तुम दो बोले, **जगद** तुम सब बोले

(४९१) णलुत्तमो वा । ७ । १ । ९१ ॥

उत्तमो णल् वा णित्स्यात् ॥

उत्तम पुरुषका (४१७) का णल् (४२९) विकल्प करके णित् हो । **उ० पु० जगाद, जगद** मैं बोला, **जगदिव** (४३४) हम दो बोले, **जगदिम** हम सब बोले,

लुट्–गदिता [४६८] वह स्पष्ट बोलेगा	**लङ्–अगदत्** वह स्पष्ट बोला.
लृट् गादिष्यति [४४१] वह स्पष्ट बोलेगा.	**लिङ्–(विधि०) गदेत्** वह स्पष्ट बोले,
लोट् गदतु [४४१] वह स्पष्ट बोले	**लिङ्–(आशी०)गद्यात्** ईश्वर करें वह बोले,

(४९२) अतो हलादेर्लघोः । ७ । २ । ७ ॥

हलादेर्लघोरकारस्य वृद्धिर्वेडादौ परस्मैपदे सिचि ॥

जिस धातुके आदिमें हल् और उससे परे इट्का आगम तथा परस्मैपद प्रत्यय सहित सिच् परे हो तो उसके लघु (४८३) संज्ञक अकारको विकल्प करके वृद्धि हो । **लुङ्० अगदीत्, (४९२) अगादीत्** वह स्पष्ट बोला, **लृङ्–अगदिष्यत्** (४७६) जो वह स्पष्ट बोले.

(४९३) णो नः । ६ । १ । ६५ ॥

धात्वादेर्णस्य नः ॥

धातुके आदिमें ण् हो तौ उसको नकार हो ।

णोपदेशास्त्वनर्दनाटिनाथ्नाध्नन्द्नक्कनॄनृतः ।

इन नीचेवाले धातुओंको छोडकर जितने धातु हैं उनके आदिमें नकार हो तो उपदेशमें णकारयुक्त जानो.

नर्द शब्द करना.	**नाध्** मांगना.	**नॄ** ले जाना.
नाटि (नट्) नाचना.	**नन्द्** (टुनदि) समृद्ध होना	**नृत** नाचना.
नाथ् मांगना.	**नक्क** नाश करना.	

(४९४) उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य । ८ । ४ । १४ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः ॥

समास हो तथा समास (९६२) न हो तो भी उपसर्ग स्थित निमित्त[१५७] र् ष् इनसे परे ण् उपदेशविषयक (४९६) धातुके न् को ण हो । **प्रणदति** । वह बहुत अच्छे प्रकार शब्द करता है। **लट् प्रथम पु० ए० व०** के रूपमें णद्‌के स्थानमें नद् (४९३) हुआ फिर (४९४) से न्‌के स्थानमें ण् हुआ ॥ **लट्–प्रणिनदति** (४८८) वह बहुत अच्छी भांतिके शब्द करता है। उपसर्गरहित केवल धातुके रूप नीचे लिखे अनुसार जानो । **लट् प्र० पु० ए० नदति** । वह शब्द करता है । **लिट् प्र० ए० व० ननाद** (४९०) उसने शब्द किया । **लिट् प्र० पु० द्वि०** नद्+अतुस्=नद् (४१७)+नद्+अतुस्–

(४९५) अत[६] एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि[७] । ६ । ४ । १२० ॥

लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्यासंयुक्तहल्मध्यस्थस्यात एत्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि ॥

कित् (४८७) संज्ञक लिट् परे रहते लिट् को निमित्त मानकर जिस अङ्गके अभ्यासके आदि अक्षरको आदेश न हुआ हो उस अङ्गके असंयुक्त हलोंके मध्यमें रहनेवाले अकारके स्थानमें एकार हो और अभ्यासका लोप हो । नद्+नद्+अतुः+नेद्=न् अद्+अतुः । न् तथा द्‌के बीचमें न अन्तर्गत अ जो पृथक् है उसके स्थानमें ए हुआ । नद् अभ्यासका (४२८) लोप हुआ तब नेद्+अतुः=**नेदतुः** उन दोनोंने शब्द किया । **नेदुः** उन सबने शब्द किया.

(४९६) थलि च सेटि[७] । ६ । ४ । १२१ ॥

प्रागुक्तं स्यात् ।

जब इट् (२३४) सहित थल् प्रत्यय (४२९) हो तो पूर्वोक्त (४९५) कार्य हो ।

म० पु० नेदिथ तूने शब्द किया, **नेदथुः** तुम दोनोंने शब्द किया, **नेदुः** तुम सबने शब्द किया ।

उ० पु० ननाद[४११]**-ननद** मैंने शब्द किया. **नेदिव** हम दोनोंने शब्द किया **नेदिम** हम सबने शब्द किया.

लुट्-प्र० ए० नदिता–वह शब्द करेगा.
लृट्-प्र०ए०नदिष्यति–वह शब्द करेगा.
लोट्-प्र० ए० नदतु–वह शब्द करे.
लङ्-प्र० ए० अनदत्–उसने शब्द किया
लिङ्-प्र० ए० नदेत्–वह शब्द करे.

लिङ्–प्र० ए० नद्यात्–भगवान् करे वह शब्द करे.
लुङ्–प्र०ए० अनादीत् अनदीत्[४९२] उसने शब्द किया.
लृङ्–प्र०ए०अनदिष्यत्-जो वह शब्द करे

नद् (टुनदि समृद्धौ) समृद्धि । आदि उच्चारणमें इसका रूप टुनदि है.

(४९७) आदिर्ञिटुडवः । १ । ३ । ५ ॥

उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः ॥

उपदेशमें धातु उच्चारण करते समय आदिमें जो ञि, टु और डु हों तो उनकी इत्संज्ञा हो.

(४९८) इदितो नुम् धातोः । ७ । १ । ५ ॥

इदित् धातु जिसका इकार इत्सञ्ज्ञक हो उस धातुको नुम्का आगम हो । टुनदिमेंसे टुके लोप (४९७) से हुआ, दि अन्तर्गत इ अनुबंधसे लुप्त हुई तब नद् शेष रहा इसको नुम हुआ तब नन्द रूप हुआ.

लट्–प्र० ए० नन्दति-वह समृद्ध होता है.
लिट्–प्र० ए० ननन्द-वह समृद्ध हुआ.
लुट्–प्र० ए० नन्दिता-वह समृद्ध होगा.
लृट्–प्र० ए० नन्दिष्यति-वह समृद्ध होगा.
लोट्–प्र० ए० नन्दतु-वह समृद्ध हो.
लङ्–प्र० ए० अनन्दत्-वह समृद्ध हुआ.
लिङ्+प्र० ए० नन्देत्-वह समृद्ध होवे.
लिङ्–प्र० ए० नन्द्यात्-भगवान् करे वह समृद्ध हो.
लुङ्–प्र० ए० अनन्दीत्-वह समृद्ध हुआ
लृङ्–प्र० ए० अनन्दिष्यत्-जो वह समृद्ध हो.

अर्च (अर्च पूजायाम्) पूजा करना ।

लट् प्र० पु०ए ० अर्चति--वह पूजा करता है.

(४९९) तस्मान्नुड् द्विहलः । ७ । ४ । ७१ ॥

द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतात्परस्य नुट् स्यात् ॥

दो हल् जिसमें हों ऐसे धातुके अभ्यासको दीर्घता (४७८) पाये हुए स्वरसे परे जो वर्ण उसको नुट्का आगम हो (१०३) आ+अर्च्+अ–

लिट्–प्र० ए० आनर्च-उसने पूजा की
लुट्–प्र० ए० अर्चिता-वह पूजा करेगा.
लृट्–प्र० ए० अर्चिष्यति-वह पूजा करेगा
लोट्–प्र० ए० अर्चतु-वह पूजा करे.
लङ्–प्र०ए०आर्चत्(४७९)उसने पूजाकी
लिङ्–प्र० ए० अर्चेत्-वह पूजा करे.
२ **लिङ्–प्र० ए० अर्च्यात्**-भगवान्‌करे वह पूजा करे.
लुङ्–प्र० ए० आर्चीत्–उसने पूजा की.
लृङ्–प्र०ए०आर्चिष्यत्-जो वह पूजा करे.

व्रज् १० (व्रज गतौ) गमन करना ।

व्रजति वह जाता है । इस धातुके रूपमें लुङ् लकारमात्रमें भेद होता है सो नीचे लिखते हैं, अ+व्रज्+ई+स्+ई+त्––

(५००) वदव्रजहलन्तस्याचः । ७ । २ । ३ ॥

एषामचो वृद्धिः सिचि परस्मैपदेषु ॥

वद (स्पष्ट बोलना,) व्रज (जाना) और हलन्त धातु इनके अच्को नित्य वृद्धि हो

परस्मैपद प्रत्ययवाला सिच् प्रत्यय परे हो तो। **लुङ् प्र० ए० अव्राजीत्**-वह गया॥

कट् (कटे वर्षावरणयोः) बरसना और घेरना।

लट्-प्र० ए० कटति-वह बरसता है
लिट्-प्र० ए० चकाट[४८९]-वह बरसा.
लुट्-प्र० ए० कटिता-वह बरसेगा.
लृट्-प्र० ए० कटिष्यति-वह बरसेगा.
लोट्-प्र० ए० कटतु-वह बरसे.
लङ्-प्र० ए० अकटत्-वह बरसा.
लिङ्-प्र० ए० कटेत्-वह बरसे.
२ लिङ्-प्र० ए० कट्यात्-भगवान् करे वह बरसे।

अकट्+इ+स्+ई+त्-

(५०१) ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्[१] । ७ । २ । ५ ॥

हमयान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्नेडादौ सिचि ॥

जिस धातुके अन्तमें ह् म् अथवा य् हो उसे और क्षण् (मारना), श्वस् (श्वास लेना), जागृ (जागना) तथा जिन धातुओंके अन्तमें णि प्रत्यय (७४८, ७४२) हो और श्वि (वृद्धिको प्राप्त होना वा जाना) और एदित् धातु इन सबको वृद्धि एकादेश न हो, जो इट् आदि सिच् प्रत्यय परे हो तो। (५००) सूत्रसे कट्के क अन्तर्गत अकारको वृद्धि प्राप्त हुई परन्तु इस धातुका रूप अनुबन्धयुक्त (कटे) ऐसा है तो (५०१) से यह एदित् (एकी इत्संज्ञावाला) हुआ इससे इसे वृद्धि न हुई। **लुङ् प्र० ए० अकटीत्** (मेघ बरसा) **लङ् प्र० ए० अकटिष्यत्** जो मेघ बरसे।

गुपू (गुपू रक्षणे) रक्षा करना।

(५०२) गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः । ३ । १ । २८ ॥

एभ्य आयः प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे ।

गुप् (रक्षा करना), धूप् (तप्त करना), विच्छ् (समीप आना), पण् (स्तुति करना) इन धातुओंसे परे स्वार्थमें आय प्रत्यय हो । बहुतसे प्रत्यय ऐसे भी हैं, जब वे धातुओंसे परे आते हैं तब उनका अर्थ बढ जाता है परन्तु आय प्रत्ययमें ज्योंका त्यों रहता है, वह जिस धातुसे आवे उसका वही अर्थ रहता है।

(५०३) सनाद्यन्ता धातवः । ३ । १ । ३२ ॥

सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातुसंज्ञाः स्युः ॥

सन्से आरम्भकर ' कमेर्णिङ् ' (६६१) के णिङ् पर्यन्त जो बारह प्रत्यय हैं उनमेंसे कोई भी धातुसे परे आवे तो वह प्रत्ययविशिष्ट धातु कहा जाय। गुप्+आय (५०२) गोपाय (४८६) यह धातु प्रत्यययुक्त हुआ। **लट् प्र० ए० व० गोपायति** वह रक्षा करता है।

---

१ " सन्-क्यच्-काम्यच्-क्यङ्क्यषोऽथाचारक्विब्णिज्यङौ तथा। यगाय ईयङ् णिङ्चेति द्वादशामी सनादयः॥"

(५०४) आयादय आर्धधातुके वा । ३ । १ । ३१ ॥

आर्धधातुविवक्षायामायादयो वा स्युः ॥

जब आर्धधातुक धातुसे करनेकी इच्छा हो तब आय आदि (आय ईयङ् और णिङ्) (९६१) विकल्प करके हो।

(५०५) कास्यनेकाच आम् वक्तव्यः ॥ ❀ ॥ लिटि ।

आस्कासोराम्विधानान्मस्य नेत्त्वम् ॥

कास् (चमकना) तथा जिसमें बहुत अच् हों ऐसे धातुसे आम् प्रत्यय हो जो लिट् परे हो तो। आस् (बैठना), कास (चमकना) इनसे परे आम् विधान करनेसे यह निश्चय होता है कि आम्के मकारकी इत्संज्ञा नहीं होती, कारण कि जो इत् हो तो मित् मानकर अच्के अन्तमें (२६९) से आम् होगा; फिर दीर्घ (९९) होनेसे आस् और कास् धातुका जिस प्रकार जैसा स्वरूप है वैसा ही रहेगा और आम् विधान करना ही निरर्थक हो जायगा।

गोपाय्+आम्—

(५०६) अतो लोपः । ६ । ४ । ४८ ॥

आर्धधातुकोपदेशे यददन्तं तस्यातो लोप आर्धधातुके ।

जब धातुसे आर्धधातुक करनेकी इच्छा हो और अदन्त धातु हो तब ऐसा जिस धातुके अन्तमें अकार हो तो अकारका लोप हो आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो। ' गोपाय ' यह प्रत्यय विशिष्ट अकारान्त है उसको लिट् आर्धधातुक प्रत्यय परे होनेसे य अन्तर्गत अकारका लोप (९७६) हुआ तब ' गोपाय् ' ऐसा रूप हुआ, उससे परे (९०९) से आम् लगा तब गोपाय्+आम्+लिट् ऐसी स्थिति हुई–

(५०७) आमः । २ । ४ । ८१ ॥

आमः परस्य लुक् ॥

आम् (९०९) से परे प्रत्ययका लुक् हो। (४२९) से प्राप्त हुए लिट् प्रत्ययका लोप होकर ' गोपायाम् ' यह रूप रहा–

(५०८) कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि । ३ । १ । ४० ॥

आमन्ताल्लिट्पराः कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते ॥

कृञ् प्रत्याहारके अन्तर्गत कृ (करना), भू (होना), अस् (होना) यह आमन्त (जिसके अन्तमें आम्) है धातुके आगे स्थापन किये जायँ और उनसे परे लिट् लकार हो। **तेषां द्वित्वादि।** इनको द्वित्व और लिट्के सब कार्य होते हैं। (९०७) से लिट्का लोप होकर

कृकी प्राप्ति हुई गोपायाम्+कृ+अ (णल्) गोपायाम् रूपमें लिट् लकार नहीं है और लिट्की कोई भी क्रिया उसको नहीं होकर कृधातुको होती है । इस कृको द्वित्वादि लिट्के सब कार्य होंगे गोपायाम्+कृ+कृ+(४२७)+अ-

(५०९) उरत् । ७ । ४ । ६६ ॥

अभ्यासऋवर्णस्यात् ॥

अभ्यासके ऋवर्णके स्थानमें अत् (अ) हो । गोपायाम्+कर् (५०९)+कृ+अ (२०२) से कृ अन्तर्गत ऋ अच्से परे णित् प्रत्यय है. उसे आर् वृद्धि हुई. और पहले कके स्थानमें (४८९) से च हुआ, तब गोपायाम्चकार रूप हुआ और म्के स्थानमें (९४) से अनु॰ स्वार हुआ, अथवा (९७) से ञ् हुआ, तब **गोपायाञ्चकार** उसने रक्षा की । **द्वित्वात्परत्वाद्यणि प्राप्ते । प्र० पु० द्विव०** गोपायाम्+कृ+अतुस् (४२७) से कृधातुको द्वित्व प्राप्त हुआ, परन्तु कृसे परे अतुस् है तो (२१) से यण् (१३२) से (४२७) को बाधकर हुआ, कारण कि (२१) वां उससे परे है ऐसा होनेपर-

(५१०) द्विर्वचनेऽचि । १ । १ । ५९ ॥

द्वित्वनिमित्तेऽचि अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये ॥

द्वित्वके निमित्त (४२७) अजादि प्रत्यय परे रहते जबतक द्वित्व न हुआ हो और उसके होनेकी अपेक्षा रहे, तब तक उसको कोई आदेश न हो अर्थात् द्वित्व होजानेके पीछे आदेश होता है (४२७, ५०९, ४८९, २१)। **गोपायाञ्चक्रतुः** (४८७, ४९८) उन दोनोंने रक्षा की । **गोपायाञ्चक्रुः**-उन सबने रक्षा की । **लिट्-म० पु० ए० व०** गोपायाम्+कृ+थ=गोपायाम् चकृ+थ-

(५११) एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् । ७ । २ । १० ॥

उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च ततः परस्य वलादेरार्धधातुकस्येण्न स्यात् ॥

उपदेशमें (९) जो उच्चारण किया हुआ धातु एकाच् और अनुदात्त हो उससे परे वल् आदि आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो इट् (४३४) का आगम न हो । एकाच् अजन्त धातु सब ही अनुदात्त हैं, केवल नीचे लिखे श्लोकोंके धातु उदात्त हैं, इनको इट्का आगम होता है ।

ऊदृदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशीङ्स्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभिः ।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ॥

जिनके अन्तमें ऊ अथवा ऋ उन्हें छोडकर और नीचे लिखे धातुओंको छोडकर एकाच् अजन्त धातु सब अनुदात्त हैं ।

यु मिलाना, अलग करना.	**स्नु** चूना वा चुआना.	**डीङ्** उडना.
रु शब्द करना.	**नु** प्रशंसा करना.	**श्रि** सेवा करना.
क्ष्णु तीक्ष्ण करना.	**क्षु** छींकना.	**वृ** (वृङ्) सेवा करना.
शीङ् सोना.	**श्वि** बढना. गमन करना.	**वृ** (वृञ्) स्वीकार करना.

कान्तेषु शक्लेकः । चान्तेषु पच्-मुच्-रिच्-वच्-विच्-सिचः षट् । छांतेषु प्रच्छेकः। जान्तेषु त्यज्-निजिर्-भज्-भञ्ज् भुज्-भ्रस्ज्-मस्ज्-यज्-युज्-रुज् रञ्ज्-विजिर्-स्वञ्ज्-सञ्ज् सृजः पंचदशः । दान्तेषु, अद्-क्षुद्-खिद्-छिद्-तुद्-नुद्-पद्य-भिद्-विद्य-विनद्-विन्द्-शद्-सद्-स्विद्य-स्कन्द्-हदः षोडश । धान्तेषु क्रुध्-क्षुध्-बुध्य-बन्ध्-युध्-रुध्-राध्-व्यध्-शुध्-साध्-सिध्याएकादश। नान्तेषु, मन्यहनौ द्वौ । पान्तेषु, आप्-क्षिप्-क्षुप्-तप्–तिप्–तृप्-दृप्य–लिप्-लुप्-वप्-शप्-स्वप्-सृपस्त्रयोदश । भान्तेषु, यभ्-रभ्-लभस्त्रयः । मान्तेषु गम्-नम्-यम्-रमश्चत्वारः । शान्तेषु क्रुश्-दंश्-दिश्-दृश्-मृश्-रिश्-रुश्-लिश्-विश्-स्पृशो दश । षान्तेषु, कृष्-त्विष्-तुष-द्विष्-दुष्-पुष्य पिष्-विष्-शिष्-शुष्-श्लिष्य-एकादश।सान्तेषु, घस्-वसतीद्वौ। हान्तेषु, दह्-दिह्-दुह्-नह्-मिह्-रुह्-लिह् वहोऽष्टौ । अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिकं शतम्।[1]

कृ धातु अनुदात्त और एकाच् है इस कारण इसको इट्का आगम नहीं हुआ । **म० पु० ए० व० गोपायाञ्चकर्थ**(४२१)तैने रक्षा की । थल् जो सिप्के स्थानमें आदेश है सो पित् है इस कारण (४६८) से गुणका निषेध न हुआ । **म० पु० द्वि० गोपायाञ्चक्रथुः** तुम दोनोंने रक्षा की । **म० पु० ब० गोपायाञ्चक्र**–तुम सबने रक्षा की । **उ० पु० गोपायाञ्चकार, गोपायाञ्चकर** मैंने रक्षा की । **गोपायाञ्चकृव**-हम दोनोंने रक्षा की । **गोपायाञ्चकृम** हम सबने रक्षाकी । गुप्धातुके रूप गोपायाम्के आगे (५०८) से भूधातु आवै तो प्रथम पुरुषके एकवचनमें **गोपायांबभूव** इत्यादि और गोपायाम्से अस्धातु आवे तो **गोपायामास** (उसने रक्षा की) ॥ अब उन धातुओंका विवरण अर्थ सहित लिखते हैं जिनको इट् नहीं होता क्योंकि एकाच् हलन्त अनुदात्त हैं–

ककारान्त (१)	**विच्** अलग करना.	**भज्** सेवा करना.
शक् (शक्लृ) समर्थ होना	**सिच्** छिडकना वा सींचना.	**भञ्ज्** तोडना.
चकारान्त (६)	**छकारान्त (१)**	**भुज्** भोग करना.
पच् रांधना.	**प्रच्छ्** पूछना.	**भ्रस्ज्** भूनना.
मुच् छोडना.	**जकारान्त (१५)**	**मस्ज्** डूबना.
रिच् (**रेच्**) दस्त कराना.	**त्यज्** त्यागना.	**यज्** यज्ञ करना.
वच बोलना.	**निजिर्** शुद्ध करना.	**युज्** जोडना.

१ कान्तोंमें एक, चान्तोंमें छः, छान्तोंमें एक, जान्तोंमें पंद्रह, दान्तोंमें सोलह, धान्तोंमें ग्यारह, पान्तोंमें तेरह, नान्तोंमें दो, भान्तोंमें तीन, मान्तोंमें चार, शान्तोंमें दश, सान्तोंमें दो, हान्तोंमें आठ इस प्रकार हलन्त धातुओंमें एक सौ तीन धातु अनुदात्त हैं, इनके अलावा जो अन्य हलन्त धातु हैं, सबको सेट् समझो ।

रुज् रोगी होना.
रञ्ज् रंगना.
विजिर् अलग करना.
स्वंज् गले लगाना.
सञ्ज् मिलना.
सृज् त्याग करना.

दकारान्त (१६)

अद् खाना.
क्षुद् कूटना.
खिद् दुखी होना.
छिद् काटना.
नुद् प्रेरण करना.
तुद् दुःख देना.
पद्य (दिवादिगणका) पद जाना.
भिद् तोडना.
विद्य (दिवादि) विद होना
विनद् (रुधादिगण) विद विचारना.
विन्द–विद् (तुदादिगणका) उपार्जन करना.
शद् मुरझाना वा नष्ट होना
सद् जाना.
स्विद्य (दिवादिगणका) स्विद् पसीजना.
स्पंद् जाना सुखना सुखाना
हद् मलत्यागना.

धकारान्त (११)

क्रुध् क्रोध करना.
क्षुध् भुखाना.
बुध्य–(बुध् दिवादिगणका) बुध जानना.
बन्ध् बांधना.
युध् लडना.
रुध् रूंधना घेरना.
राध् सिद्ध करना.
व्यध् ताडनकरना वा वेधना.
शुध् स्वच्छ होना.
साध् सिद्ध करना.
सिध्य–सिध् (दिवादिगण)का पूरा होना.

नकारान्त (२)

मन्य (दिवादिका) मन, मानना.
हन् मारना.

पकारान्त (१३)

आप् प्राप्त करना वा प्राप्त होना.
तृप्य (दिवादि) परितुष्ट होना वा तुष्ट करना.
दृप्य (दिवादि) दृप् अभिमानी होना.
लिप् लीपना.
लुप् काटना.
वप् बोना.
शप् शापदेना, शपथ करना.
स्वप् सोना.
सृप् रंगना.
क्षिप् फेकना.
छुप् छूना.
तप् तपना.
तिप् चूना.

भकारान्त (३)

यभ् मैथुन करना.
रभ् शीघ्रता करना.
लभ् प्राप्त करना.

मकारान्त (४)

गम् जाना.
नम् नमस्कार करना.
यम् निवृत्त होना.
रम् क्रीडा करना.

शकारान्त (१०)

क्रुश् ऊंचेस्वरसे रोना.
दश् डसना व काटना.
दिश् दान करना दिखाना.
दृश् देखना.
मृश् स्पर्श करना वा बोध करना.
स्पृश् छूना.
रिश् हिंसा करना.
रुश् हिंसा करना.
लिश् घटना.
विश् प्रवेश करना.

षकारान्त (११)

कृष् आकर्षण करना.
त्विष् चमकना.
तृष् तृप्त होना.
द्विष् द्वेष करना.
दुष् बिगडना
पुष्य् (दिवादि) पुष्, पुष्ट करना.
पिष् पीसना.
विष् व्याप्त होना.

शिष् विशिष्ट करना.
शुष् सुखाना.
श्लिष् आलिंगन करना.

सकारान्त (२)

घस् खाना.
वस् वास करना.

हकारान्त (८)

दह् जलाना.
दिह् लीपना.
दुह् दुहना.
नह् बांधना.
मिह् सींचना.
रुह् जमना.
लिह् चाटना.
वह् ले जाना.

इस प्रकार हलन्त धातुमेंसे अनुदात्तधातु एकसौ तीन हैं.

(५१२) स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ।७।२।४४॥

स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात्॥

स्वृ (शब्द करना) तथा षू (उत्पन्न करना) सूति (अदादि गणका धातु क्योंकि उसमें ऐसा रूप बनता है) सूयति (दिवादिगणका धातु उस गणका ऐसा रूप है) और धूञ् (कांपना) इनसे तथा ऊदित्धातुओंसे परे वल् आदि आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो विकल्प करके इट्का आगम हो। (५०४) से जब आय प्रत्यय नहीं किया तब नीचे लिखे अनुसार रूप हुए.

प्र०पु० जुगोप[४८६]*उसने रक्षा की **जुगुपतुः** उन दोनोंने रक्षा की **जुगुपुः** उन सबने रक्षा की.
म० पु० जुगोपिथ / जुगोप्थ तूने रक्षा करी, **जुगुपथुः** तुम दोनोंने रक्षा की, **जुगुप** तुम सबने रक्षा की
उ० पु० जुगोप मैंने रक्षा की **जुगुपिव / जुगुप्व** हम दोनोंने रक्षाकी, **जुगुपिम / जुगुप्म** हम सबने रक्षा की

लुट्।

प्र० पु०

गोपायिता आय प्रत्यय होकर (५०४)
गोपिता आय न करके इट् किया
गोप्ता आय और इट् दोनों न किये
} वह रक्षा करेगा,

लृट्।

प्र० पु० ए० व० गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति वह रक्षा करेगा,

लोट्।

प्र० पु० ए० व० गोपायतु[४४२ ४४४] (यहां विकल्प सूत्र–नहीं, लगता) वह रक्षा करे,

लङ्।

प्र० पु० ए० व० अगोपायत्[५४८ ५५१] उसने रक्षा की,

---

* पित् लिट् कित् नहीं है इससे गुणका निषेध न हुआ।

विधिलिङ् ।

प्र० पु० ए० व० **गोपायेत्** वह रक्षा करे,

आशीर्लिङ् ।

प्र० पु० ए० व० **गोपाय्यात्**[५०२], **गुप्यात्**[५०४] ईश्वर करे वह रक्षा करे,

लुङ् ।

(५१३) नेटि । ७ । २ । ४ ॥

इडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धिर्न ॥

हलन्त धातुसे परे इट् आदि सिच् आवे तो धातुको वृद्धि (५००) से न हो ।

प्र० पु० ए० व० (४५८) गो (४८६) पाय (५०२) ई, त्, **अगोपायीत्** (४७२, ४७३) से सिच् हुआ (३३४) इका आगम पीछें (४८०) से ई फिर (४८१) से सकारका लोप हुआ ।

अथवा **अगोपीत्** (आय न किया) यहां (५००) से गो अन्तर्गत ओ को वृद्धि प्राप्त हुई परन्तु (५१३) से निषेध हुआ. अथवा **अगौप्सीत्**[४८०] (उसने रक्षा की) । जब इट् न किया तब (५००) लगा । लुङ्-प्र० पु० द्वि० अगुप्+स्+ताम्-

(५१४) झलो झलि । ८ । २ । २६ ॥

झलः परस्य सस्य लोपो झलि ॥

झल्से परे स् हो और उससे परे झल् आवे तो सकारका लोप हो । तब सकारका लोप होकर (५००) से गु अन्तर्गत उको वृद्धि हुई.

अगौप्ताम् उन दोने रक्षा की, **अगौप्सुः** उन सबने रक्षा की.

म०पु०**अगौप्सीः** तैने रक्षा की, **अगौप्तम्** तुम दोनोंने रक्षाकी, **अगौप्त** तुम सबने रक्षा की,
उ०पु०**अगौप्सम्** मैंने रक्षाकी, **अगौप्स्व** हम दोनोंने रक्षाकी, **अगौप्स्म** हम सबने रक्षाकी,

लृङ् ।

प्र० पु० **अगोपायिष्यत्, अगोपिष्यत्**[५८४] **अगोप्स्यत्**[५१२] जो वह रक्षा करे,

क्षि (क्षये) घटना) १३ ।

लट्-प्र० पु० ए० व० **क्षयति** [२०, ४२१, २९] वह घटता है । **लिट्**-क्षि+अ(४२९।४८९)

लिट्-प्र० पु० ए० व० **चिक्षाय** वह घटा,(२०२) से इके स्थानमें ए (२९) से आय्

लिट्-प्र० पु० द्विव० **चिक्षियतुः** वे दोनों घटे, (२२०) इको इयङ् आदेश हुआ,

---

१ (४७२-४७३) के अनुसार स् (सिच्) होनेके पीछे (३३४) इ आगम हुआ फिर पीछे यह (४८०) के अनुमान ईका आगम हुआ फिर (४८१ के अनुसार सका लोप हुआ.

लिट्० प्र० पु० ब० व० चिक्षियुः ये सब घटे (२२०)
लिट्-म० पु० ए० व० चिक्षि+थ् (थल्)

(४६४) से इट्का आगम प्राप्त हुआ परन्तु (५११) से निषेध हुआ तथापि-

(५१५) कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिँटि । ७ । २ । १३ ॥

क्रादिभ्य एव लिट इण्न स्यादन्यस्मादनिटोऽपि स्यात् ॥

कृ (बनाना), सृ (जाना), भृ (पालन करना), वृ (अंगीकार करना), स्तु (ष्टु) (बडाई करना), द्रु (दौडना), स्रु (चूना), श्रु (श्रवण करना) इन धातुओंसे परे लिट् आवे तो इट् (४३४) का आगम न हो, परन्तु (५११) से कोई धातु यदि अनिट् भी हो उससे परे बल् प्रत्याहारका कोई अक्षर जिसके आदिमें हो ऐसे सार्वधातुक लिट्को इट्का आगम हो परन्तु-

(५१६) अचँस्तास्वँत्थँल्यनिँटो नित्यँम् । ७ । २ । ६१ ॥

उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततस्थल इण्न स्यात् ॥

जो धातु उपदेश (९) (उच्चारणकरने) में अजन्त हो और तास् (तासि) (४३६) प्रत्यय परे रहते नित्य अनिट् हो उससे परे थल् (४२९) आवे तो उसको इट्का आगम न हो,

(५१७) उपँदेशेऽत्वतँः । ७ । २ । ६२ ॥

उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इण्न स्यात् ।

जो हलन्तधातु उपदेशमें अकारवान् हो और तासि प्रत्ययके परे होनेपर नित्य अनिट् हो उससे परे थल् आवे तो उसे इट्का आगम न हो,

(५१८) ऋँतो भारद्वाजस्य । ७ । २ । ६२ ॥

तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो न इट् भारद्वाजस्य मते ॥

भारद्वाजके मतमें तासि प्रत्यय परे हुए सन्ते नित्य अनिट् ऋदन्त धातुसे परे ही थल्को इट्का आगम न हो । **तेन अन्यस्य स्यादेव** । भारद्वाजके मतसे ऋदन्त हीं धातुको इट्का निषेध है इस कारण जो धातु ऋदन्त नहीं है तिससे परे थल्को इट्का आगम होना चाहिये, इसी कारण (५१९, ५१६) से विकल्प कर इट् होता है.

"अजन्तोऽकारवान्वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् ॥"[1]

---

१ अयमर्थः-लिटि क्राद्यन्यः सेड् भवेत् । तासि अनिट् यः अजन्तः अथवा अकारवान् अयं थलि वेट् ईदृक् तासि अनिट् ऋदन्तः थलि नित्यानिट्, इति ।

अजन्त धातु अथवा ऐसा हलन्त धातु जिसके उपदेशमें अकार हो, यदि वह तासि प्रत्यय परे हुए सन्ते अनिट् हो तो उससे आगे थल्को विकल्प कर इट्का आगम हो परंतु ऐसी अवस्थामें ऋदन्त धातु अनिट् होता है, और कृ आदि (५१९) धातुओंके विना अन्य धातुओंसे परे लिट् हो तो इट् हो सकता है। इन विकल्प सूत्रोंपर विशेष ध्यान रखना उचित है॥

थल् परे होनेपर इट्का आगम हुआ तो-

चिक्षयिथ, चिक्षेथ तू घटा, **चिक्षियथुः** तुम दोनों घटे, **चिक्षिय** तुम सब घटे. **उ०पु०चिक्षाय, चिक्षय**[४९१] मैं घटा, **चिक्षियिव** हम दोनों घटे, **चिक्षियिम** हम सब घटे,

लुट्-प्र० ए० क्षेता वह घटेगा
लृट्-प्र० ए० क्षेष्यति वह घटेगा
लोट्-प्र० ए० क्षयतु वह घटे
लङ्-प्र० ए० अक्षयत् वह घटा

लिङ्-प्र ए० क्षयेत् वह घटे
२ लिङ् प्र० ए० क्षि+यास्+त् **(३३७)** से स्का लोप हुआ-

(५१९) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः । ७ । ४ । २५ ॥

अजन्ताङ्गस्य दीर्घो यादौ प्रत्यये न तु कृत्सार्वधातुकयोः ।

अजन्त अङ्गसे परे (३२९) कृत्संज्ञक प्रत्यय तथा सार्वधातुक प्रत्यय छोडकर यकारादि प्रत्यय परे आवे तो अजन्त अङ्गको दीर्घ हो.

प्र० पु० ए० व० क्षीयात् ईश्वर करे वह घटे.

लुङ्-प्र० पु० ए० व० क्षि+स् (सिच्) त्-

(५२०) सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु । ७ । २ । १ ॥

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः स्यात् परस्मैपदे सिचि ॥

इक् जिसके अन्तमें हो ऐसे अङ्गसे परे परस्मैपदवाला सिच् प्रत्यय आवे तो अङ्गको वृद्धि हो।

अ[४५८ व ५२७] क्षै[१६९] षी[४८०] त्-**अक्षैषीत्**-वह घटा।

लृङ्-प्र० पु० ए० व० अक्षेष्यत्-जो वह घटे।

तप् (संतापे) १४ जलना।

लट्-प्र० ए० तपति वह दुःखी होता है, तपता है वा जलता है।

लिट्-प्र० पु० तताप[४९०] वह जला, **तेपतुः**[४९५] वे दोनों जले, **तेपुः** वे सब जले।

लिट्-म० पु० तेपिथ[४५७], **ततप्थ**[५१७, ५१८] तू जला।

लुट्-तप्ता वह जलेगा।
लृट्-तप्स्यति-वह तपेगा।
लोट्-तपतु वह तपे।
लङ्-अतपत् वह जला।

लिङ्-तपेत् वह तपे।
२ लिङ्-तप्यात् भगवान् करे वह तपे।
लुङ्-अताप्सीत् वह जला। **अताप्ताम्**[५१४],
लृङ्-अतप्स्यत् जो वह जले।

क्रमु[१] (पादविक्षेपे) चलना, टहलना ।

(५२१) वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः । ३ । १ । ७० ॥

एभ्यः श्यन्वा कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे । पक्षे शप् ।

भ्राश (चमकना), भ्लाश (चमकना), भ्रमु (घूमना), क्रमु (चलना), क्लमु (खेदित होना), त्रस् (डरना, व्याकुल होना), त्रुट् (टूटना) लष् (अभिलाषा वा इच्छा करना) इन धातुओंसे परे कर्ता अर्थमें श्यन् (६७०) विकल्प करके हो ।(श्यन्‌में य शेष रहता है) पक्षमें शप् हो ।

(५२२) क्रमः परस्मैपदेषु । ७ । ३ । ७६ ॥

क्रमो दीर्घः स्यात् परस्मैपदे शिति ।

परस्मैपद जिससे परे हो ऐसे शित् प्रत्ययके परे होनेमें क्रम् धातुके अच्‌को दीर्घ हो ।

लट्—[५२२] [५२१] क्राम्यति, [४२०] क्रामति	वह चलता है।	लङ्—अक्राम्यत्, अक्रामत्	वह चला।
लिट्—चक्राम	वह चला ।	लिङ्—क्राम्येत् क्रामेत्	वह चले ।
लुट्—क्रमिता	वह चलेगा।	२ लिङ्—क्रम्यात्	भगवान् करे वह चले ।
लृट्—क्रमिष्यति	वह चलेगा ।	लुङ्—अक्रमीत्	वह चला ।
लोट्—क्राम्यतु, [४२०] क्रामतु	वह चले ।	लृङ्—अक्रमिष्यत्	जो वह चले ।

पा (पाने) पीना ।

(५२३) पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः । ७ । ३ । ७८ ॥

पादीनां पिबादयः स्युरित्सञ्ज्ञकशादौ प्रत्यये परे ।

पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः ॥

अधो लिखित पा आदि धातुओंको इत्संज्ञक शकारादि प्रत्यय (४२०) परे हुए सन्ते पिब आदि नीचे लिखे आदेश हों ।

---

१ आ=आक्रमण–शत्रुमाक्रामति । अति=अतिक्रमण–धर्ममतिक्रामति अतिक्रमते वा । सम्=सहगमन–मित्रैः संक्रामति । निष्=निष्क्रमण–गृहान्निष्क्रामति। परा=पर क्रम–युद्धे शूराः पराक्रमन्ते । प्र=उप=आरंभ और उत्साह, [illegible] प्रक्रमते उपक्रमते वा । अध्ययनाय प्रक्रमते उपक्रमते वा ।

पा पिब पीना । **घ्रा जिघ्र** सूंघना । **ध्मा धम** फूंकना । **स्था तिष्ठ** स्थित होना
म्ना मन अभ्यास करना । **दाण् यच्छ** देना । **दृश् पश्य** देखना । **ऋ ऋच्छ** जाना ।
सृ धौ दौडना । **शद्ल शीय** मुरझाना । **षद्ल सीद्** क्षय होना ।

पाको पिब, घ्राको जिघ्र, ध्माको धम, स्थाको तिष्ठ, म्नाको मन, दाण्को यच्छ, दृश्को पश्य, ऋको ऋच्छ, सृको धौ, शद्को शीय षद्को सीद आदेश हों । **लट्-पिबति,** पिबमें ब-अन्तर्गत अका व्यवधान है (४८६) से गुण न हुआ ।

(५२४) आत औ णलः । ७ । १ । ३४ ॥

आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः स्यात् ॥

आकारान्त धातुसे परे णल् (४२९) आवे तो उसके स्थानमें औ हो ।

लिट्-प्र० पु० ए० पपौ (४३०) से प ह्रस्व हुआ । उसने पिया ।

(५२५) आतो लोप इटि च । ६ । ४ । ६४ ॥

अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः ॥

जो आर्धधातुकप्रत्ययकी आदिमें कित् अथवा ङित् अच् हो अथवा इट् आगम परे हो तो आकारका लोप हो ।

लिट् प्र० द्वि० पपतुः उन दोनोंने पिया, **पपुः** उन सबोंने पिया.
म० पु० पपिथ, पपाथ तूने पिया, **पपथुः** तुम दोनोंने पिया. **पप** तुम सबने पिया.
उ० पु० पपौ मैंने पिया, **पपिव** हम दोनोंने पिया, **पपिम** हम सबोंने पिया.

लुट्-पाता वह पियेगा
लृट्-पास्यति वह पियेगा ।
लोट्-पिबतु वह पिये
लङ्-अपिबत् उसने पिया
लिङ्-पिबेत् वह पिये
२ आ० लिङ्-पा+यात्

(५२६) एर्लिङि । ६ । ४ । ६७ ॥

घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि ॥

घुसंज्ञक धातु (६६३) तथा मा, स्था (६२६) इत्यादि धातुओंके अच्को ए हो जो लिङ् (४६६) के स्थानमें कित् (४६७) आर्धधातुक परे हो तो । **आशीर्लिङ् पेयात** ईश्वर करे वह पिये । **लुङ् अपात्** । (४७४) उसने पिया । **अपाताम्** उन दोनोंने पिया । अपा+झि--

(५२७) आतः । ३ । ४ । ११० ॥

सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस् ॥

जहाँ सिच्का लोप (४७४) से हो उस आकारान्तधातुसे परे झि (४८२) के स्थानमें जुस् हो । अपा+उस्–

(५२८) उस्यपदान्तात् । ६ । १ । ९६ ॥

अपदान्तादकारादुसि पररूपमेकादेशः स्यात् ॥

अपदान्त अवर्णसे परे उस् आवे तो पूर्वपरके स्थानमें पररूप एकादेश हो ।

अपामें पा अन्तर्गत आ अपदान्त है और यह अकारान्त भी है आगे उस्का उकार, पर होनेसे पररूप उकार ही हुआ ।

अपुः उन सबने पिया । **लङ्–अपास्यत्** जो वह पिये ।

ग्लै (हर्षक्षये) ग्लानि करना । धातुक्षय ।

लट्–प्र० ए० ग्लायति वह ग्लानि करता है ।

(५२९) आदेच उपदेशेऽशिति । ६ । १ । ४५ ॥

उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्वं न तु शिति ॥

उपदेशकालमें जो एजन्त धातु उसको आकार अन्तादेश हो, परन्तु शित् प्रत्ययके परे हुए सन्ते न हो ।

लिट् प्र० ए० ग्लै+णल्=ग्ला+णल्=ग्ला+णल्–

लिट् ग्लै अन्तर्गत ऐके स्थानमें आ हुआ (५२४) से णल्के स्थानमें औ हुआ तब **जग्लौ**––उसने ग्लानि की । **लुट्–ग्लाता** वह ग्लानि करेगा । **लट्–ग्लास्यति** वह ग्लानि करेगा । **लोट्–ग्लायतु** वह ग्लानि करे । **लङ्–अग्लायत्** उसने ग्लानि की । **विधिलिङ्–ग्लायेत्** वह ग्लानि करे । **आशीर्लिङ्**–ग्लै+यास्+त्––

(५३०) वाऽन्यस्य संयोगादेः । ६ । ४ । ६८ ॥

घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वार्धधातुके किति लिङि ॥

घु (६६२) संज्ञक तथा मा, स्था आदि (६२६) धातुओंको छोडकर शेष संयोगादि धातुओंके आकारके स्थानमें विकल्प करके एकार हो, जो लिङ्के स्थानमें कित् (४६७)

अर्धधातुक[466] परे हों तो। ग्लैके स्थानमें (९२९) से ग्ला हुआ, उससे परे यासुट् कित् आया तो (९३०) से ग्ले हुआ, तब **ग्लेयात्** और एकार न किया तब **ग्लायात्** ईश्वर करे वह ग्लानि करे। **लुङ्**–अ+ग्लै+त् (४९८) ग्ला+(९२९)+स्+त्–

(९३१) यमरमनमातां सक् च। ७। २। ७३॥

एषां सक् स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात्परस्मैपदेषु॥

यम् (निवृत्ति होना), रम् (रमना), नम् (नवना) इनको तथा आकारान्त धातुओंको सक्का आगम हो। और इनके सिच्को इट्का आगम हो जो परस्मैपद प्रत्यय परे हो तो। अ+ग्लास् (९६१)+इ(९३१)+स्+ई (४८०)+त् **अग्लासीत्** (४८१) उसने ग्लानि की। लृङ्–**अग्लास्यत्** जो वह ग्लानि करे।

ह्वृ (कौटिल्ये) कुटिलता।

लट्–**ह्वरति** वह कुटिलता करता है,

(९३२) ऋतश्च संयोगादेर्गुणः। ७। ४। १०॥

ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणो लिटि॥

जिसके आदिमें संयोग हो ऐसे ऋदन्त अङ्गसे परे लिट् आवे तो गुण हो। **लिट्** ह्वृ ह्वृ द्वित्व हुआ=जह्वृ (४८९)+अ (णल्) (४८८) से अकारको कित्व न रहा इससे(४२१) गुण हुआ जह्वर्+अ (४९०) से उपधाको वृद्धि कर **जह्वार** उसने कुटिलपना किया। **जह्वरतुः** (९३२) उन दोनोंने कुटिलपन किया। **जह्वारुः** उन सबने कुटिलपन किया। **जह्वर्थ** तैने कुटिलता की। **जह्वरथुः** तुम दोनोंने कुटिलता की। **जह्वर** तुम सबने कुटिलता की। **जह्वार, जह्वर** (४९१) मैंने कुटिलता की। **जह्वरिव** हम दोनोंने कुटिलता की। **जह्वरिम** हम सबने कुटिलता की।

लुट्–प्र० ए० **ह्वर्ता** वह कुटिलता करेगा। **लृट्** प्र० ए० ह्वृ+स्य+ति–

(९३३) ऋद्धनोः स्ये। ७। २। ७०॥

ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट्॥

ऋदन्त धातु तथा हन् धातुसे परे स्य (४३६) आवै तो उसे इट्का आगम हो। **ह्वरिष्यति** वह कुटिलता करेगा। **लोट्**–**ह्वरतु** वह कुटिलता करे। **लङ्**–**अह्वरत्** उसने कुटिलता की। **विधिलिङ्**–**ह्वरेत्** वह कुटिलता करे। **आशीर्लिङ्**–ह्वृ+या+त्–(४२१) गुण प्राप्त हुआ फिर (४९८) से निषेध हुआ परन्तु–

(५३४) गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः । ७ । ४ ।२९ ॥

अर्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणः स्यात् यकि यादावार्धधातुके लिङि च ॥

गमनार्थ ऋ धातु तथा जिसके आदिमें संयोग हो ऐसे ऋदन्तधातुको गुण हो जो यक् (८०२) परे हो अथवा लिङ्के स्थानमें होनेवाला यकारादि आर्धधातुक परे हो तो । **ह्वर्यात्** ईश्वर करे वह कुटिलता करे । **लुङ्-अह्वार्षीत्** (९२०) उसने कुटिलता की। **लृङ्-अह्वरिष्यत्** जो वह कुटिलता करे ।

श्रु (श्रवणे) १९ सुनना ।

(५३५) श्रुवः शृ च । ३ । १ । ७४ ॥

श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात् श्नुप्रत्ययश्च ॥

श्रु धातुको शृ आदेश हो और उससे आगे श्नु प्रत्यय हो (६८८) यह सूत्र शप्का बाधक है। **लट्**-शृ+श्नु+ति (१९९) से श्का लोप (२३९) से नुको णु फिर गुण होकर णो हुआ । **शृणोति** वह सुनता है । **लट्--प्र० द्वि०** शृणु+तः (४२१) से गुण प्राप्त हुआ-

(५३६) सार्वधातुकमपित् । १ । २ । ४ ॥

अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत् ।

अपित् सार्वधातुक जो प्रत्यय सो ङित् ।(६२६) के समान हो। (४६८) से गुण न हुआ तब **शृणुतः** वह दो सुनते हैं **लट्-प्र० ब०** शृणु+अन्ति (२२०) से उवङ प्राप्त हुआ परन्तु-

(५३७) हुश्नुवोः सार्वधातुके । ६ । ४ । ८७ ॥

हुश्नुवोरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके ॥

अनेक अच् जिसमें हों ऐसे धातुसे परे श्नु प्रत्यय हो श्नुके पूर्व संयोग न हो तो श्नु अन्तर्गत उ तथा हु धातुके उसे परे अच् आदि सार्वधातुक प्रत्यय आवे तो उकारके स्थानमें **यण्** हो। शृणु+अन्ति इस स्थितिमें णु अन्तर्गत उके स्थानमें यण् व् हुआ तब **शृण्वन्ति** वे सब सुनते हैं ।

---

१ प्रति-आ-सम्=अङ्गीकार-पितुरादेशं प्रतिशृणोति आशृणोति वा। वाचा संशृणुते । इत्यादि ।

२ हुधातुके और श्नुप्रत्ययान्त अनेकाच् अङ्गके असंयोगपूर्वक उवर्णको यण् हो अजादि सार्वधातुक परे रहते ।

म० पु० शृणोषि तू सुनता है. **शृणुथः** तुम दोनों सुनते हो, **शृणुथ** तुम सब सुनते हो
उ० पु० शृणोमि मैं सुनता हूं शृणु+वः=**शृणुवः** हम दो सुनते हैं । अथवा-

(५३८) लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः । ६ । ४ । १०७ ॥

असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा म्बोः परयोः ॥

जो उकारान्त प्रत्यय के पूर्व संयोग **न** हो उससे परे म् अथवा व् आवे तो उकारका विकल्प करके लोप हो । उकारका लोप किया तव **शृण्वः** । **शृणुमः**अथवा **शृण्मः** हम सब सुनते हैं
लिट्-प्र० शुश्राव[२०२, २९] उसने सुना, **शुश्रुवतुः** उन दोनोंने सुना, **शुश्रुवुः** उन्होंने सुना.
"**म० शुश्रोथ**[५१८] तूने सुना, **शुश्रुवथुः** तुम दोनोंने सुना. **शुश्रुव** तुम सबने सुना.
"**शुश्राव, शुश्रव**[४९] मैंने सुना. **शुश्रुव** हम दोनोंने सुना, **शुश्रुम** हम सबने सुना.
लुट्-प्र० श्रोता वह सुनेगा, **लट्-श्रोष्यति** वह सुनेगा ।
लोट्-प्र०पु०शृणोतु,शृणुतात वह सुने, **शृणुताम्** वे दोनों सुनें, **शृण्वन्तु** वे सब सुनें
"**म० पु०** शृणु हि=

(५३९) उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् । ६ । ४ । १०६ ॥

असंयोगपूर्वात्प्रत्ययोतो हेर्लुक् ॥[१]

उकारान्त असंयोगपूर्व जो अङ्ग उससे परे हि (४४९) का लोप हो । हिका लोप हुआ तो-**शृणु, शृणुतात्**[४४५] तू सुन, **शृणुतम्** तुम दोनों सुनो, **शृणुत** तुम सब सुनों ।
लोट्-उ०पु० शृणवानि[४५१, ४२१, २९] मैं सुनूं **शृणवाव**[४५१, ४२१, २९] हम दोनों सुनें, **शृणवाम** हम सब सुनें.
लङ्-प्र०पु०अशृणोत[४२१] उसने सुना **अशृणुताम्**, उन दोनोंने सुना,**अशृण्वन्**[५३७] उन्होंने सुना
"**म० पु०अशृणोः** तैने सुना,**अशृणुतम्**, तुम दोनोंने सुना, **अशृणुत** तुम सबने सुना,
"**उ०पु०अशृणवम्** मैंने सुना, **अशृण्व**[५३८], **अशृणुव** हम दोनोंने सुना, **अशृण्म, अशृणुम** हम सबने सुना । **लिङ्-प्र० पु० शृणुयात्**[४६१, ३६२] वह सुने, **शृणुयाताम्** वे दो सुने **शृणुयुः**[३६२, ६२८] वे सब सुने. **लिङ् म० पु० शृणुयाः** तू सुनें, **शृणुयातम्** तुम दोनों सुने, **शृणुयात** तुम सब सुनो. **लिङ् उ० पु० शृणुयाम्** मैं सुनूं, **शृणुयाव** हम दो सुनें **शृणुयाम** हम सब सुनें, **आशीः लिङ्-प्र० पु० श्रूयात** (५१९,४६७,४६७) ईश्वर करे वह सुने इत्यादि ।

लुङ् प्र० ए० अश्रौषीत (४८०, ५२०) उसने सुना,
लृङ्-प्र० ए० अश्रोष्यत-जो वह सुने.

गम्[२] (गम्लृ गतौ) जाना,

---

१ नहीं है संयोग पूर्वमें जिसके ऐसे प्रत्ययसंबन्धी उकारसे परे हिका लुक् हो ।

२ आ=आगमन=ग्रामादागच्छति । अधि=प्राप्ति-विद्यामधिगच्छति । सम्-संगति-सभायां संगच्छते, अनु=अनुगमन-गुरुमनुगच्छति, इत्यादि ।

(५४०) इषुगमियमां छः । ७ । ३ । ७७ ॥

एषां छः स्यात् शिति ।

इष् (इच्छा करना), गम् (जाना), यम्, (निवृत्त होना) इन धातुओंके अन्त्य अक्षरको छ आदेश हो शित् प्रत्यय परे हो तो । (४२०) से शप्के अकार होनेसे गछ्+अति रूप हुआ (१२०) से त् (तुक्) का आगम हुआ (७६) से त्को च् हुआ तब लट् **प्र० पु० ए० व० गच्छति** वह जाता है । **लिट्–प्र० पु० ए० जगाम** (४८९, ४९०) वह गया **द्विव०** जगम्+अतुः–

(५४१) गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि । ६ । ४ । ९८ ॥

एषामुपधाया लोपोऽजादौ क्किति ङिति न त्वङि ॥

गम् (जाना), हन् (मारना), जन् (उत्पन्न होना,) खन् (खोदना,) घस (खाना) इन धातुओंकी उपधाका लोप हो, जो अङ् (५४३) विना अच् आदि कित अथवा ङित् प्रत्यय परे आवे तो.

जग्मतुः[४८१, ४४१] वे दो गये, **जग्मुः** वे सब गये.

लिट्–म० पु० जगमिथ, जगन्थ[५१८, ४९९] तू गया, **जग्मथुः** तुम दोनों गये, **जग्म** तुम सब गये,

लिट्–उ० पु० जगाम, जगम मैं गया, **जग्मिव**[४३४] हम **दोनों** गये, **जग्मिम** हम सब गये,

लुट्–प्र० ए० गन्ता–वह जायगा.

लृट्–प्र० ए० गम्+स्य+ति (५२१) से इट्के आगमका निषेध हुआ परन्तु–

(५४२) गमेरिट् परस्मैपदेषु । ७ । २ । ५८ ॥

गमेः परस्य सादेरार्धधातुकस्येट् स्यात् परस्मैपदेषु ॥

परस्मैपदमें गम् धातुसे परे जो सकार आदि आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो उसे इट्का आगम हो ।

गमिष्यति वह जायगा. **लोट् प्र० पु० ए० व० गच्छतु**[५४०] वह जाय.

लङ्–प्र०ए०व०अगच्छत् वह गया. **विधिलिङ्–प्र०पु०ए०व० गच्छेत्** वह जाय,

आशीर्लिङ्–प्र० पु० ए० व० गम्यात् भगवान् करे वह जाय.

लुङ्–अगम्+त्=अगम्+च्लि+त्–

(५४३) पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु । ३ । १ । ५५ ॥

श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेर्ॢदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु ।

परस्मैपदविषयक श्यन् (६७०) विकरणके योग्य अर्थात् दिवादि गणके पुष् आदि

---

१ यद्धि प्रकृतिप्रत्यययोर्मध्ये पतति तद् विकरणम् ।

धातुओंसे परे तथा द्युत् आदि गणसे परे तथा जिनका ऌ इत्संज्ञक है ऐसे धातुओंसे परे जो च्लि (४७२) उसके स्थानमें सिच्का अपवाद अङ् आदेश हो । अङ्मेंसे अमात्र शेष रहा–

लुङ्–प्र०पु०ए०व०अगमत् वह गया।**लृङ्०प्र०पु०ए०व०अगमिष्यत्** जो वह जाय.
म० पु० ए० व० अगमः तू गया । **म० पु० ए० व० अगमिष्यः** जो तू जाय.
उ० पु० ए० व० अगमम्–मैं गया । **उ०पु०ए०व० अगमिष्यम्**–जो मैं जाऊँ.

इति भ्वादिपरस्मैपदी धातु समाप्त ॥

अथ

आत्मनेपदी धातु ।

एध् (वृद्धौ) वृद्धि होना,

(५४४) टित आत्मनेपदानां टेरे । ३ । ४ । ७९ ॥

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम् ।

टित् लकार (४०९) के स्थानमें जो आत्मनेपदसंज्ञक आदेश (४१०) की टि (५२) उसको ए आदेश हो । **लट् प्र० पु० ए० व०** एध्+अ (४२०)+त (४०८) आत्मनेपदसंज्ञक आदेश त (त् अ) है इसमें अ (टि) है उसके स्थानमें ए आदेश हुआ । तब **एधते वह** बढता है । **द्विव०** एध्+अ (४२०)+आताम्–

(५४५) आतो ङितः । ६ । २ । ८१ ॥

अतः परस्य ङितामाकारस्य इय् स्यात् ।

अकारसे परे जो ङित् प्रत्यय (५३६) उसके आकारके स्थानमें इय् आदेश हो ।

एध्+अ+इय्+ताम् (त् आम्)

ताम्में आम् टि–संज्ञक है. उसके स्थानमें (५४४) से एकार हुआ, तब एधे (३५–ए, ४६४) से य्का लोप+ते=**एधेते** वे दो बढते हैं.

लट्–प्र० ब० एध्+अन्त=**एधन्ते** (३००, ५४४) वे बढते हैं.

लट्–म० पु० एध्+अ+थास्–

(५४६) थासः से । ३ । ४ । ८० ॥

टितो लस्य थासः से स्यात् ॥

टित् लकारके स्थानमें जो थास् उसको से आदेश हो । एध+से=**एधसे** तू बढता है.
लट्–म० पु० द्वि० व० एध्+अ+आथाम् (४०८, ५४५) से आके स्थानमें

इय् आदेश हुआ तब गुण होकर **एधेय** रूप हुआ । शाम् अन्तर्गत आकारके स्थानमें एकार हुआ (४६४) से यकारका लोप **एधेथे** तुम बढते हो । **लट्० म० पु० ब० व०** एध्+अंध्वम् ध्वम्में अम् टिसंज्ञक है उसके स्थानमें (९४४) से एकार हुआ तब **एधध्वे** तुम बढते हो । **लट् उ० पु० ए० व०** एध्+अ+इट् (४०८, ९९४) से इट्के स्थानमें ए हुआ **एधे** (३००) मैं बढता हूं । **लट्-उ० पु० द्वि० व०** एध्+अ+वहि इसमें हि अन्तर्गत इ टि है उसके स्थानमें ए हुआ (४२३) से अको दीर्घ होकर **एधावहे** हम दो बढते हैं । **लट्-उ० पु० ब० एधामहे** हम सब बढते हैं, द्विवचनवत् जानना ।

(९४७) इंजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः । ३ । १ । ३६ ॥

इजादिर्यो धातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तत आम् स्याल्लिटि ॥

ऋच्छ धातुको छोडकर इच् आदि तथा गुरुसंज्ञक (४८४, ४८९) अच् सहित जो धातु उससे परे लिट् लकार आवे तो उस धातुसे आम् प्रत्यय हो ।

(९४८) आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य । १ । ३ । ६३ ॥

आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात्कृञोऽप्यात्मनेपदम् ॥

जिस धातुसे आम् प्रत्यय (९४७, ९०९) आवे उसे यहां आम्प्रत्यय कहा है यह अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि समास है (१०३९) आम् जिससे किया जाय उसके तुल्य कृञ्से भी आत्मनेपद हो । एध् धातु आत्मनेपदी है (४११) उससे आगे आम् प्रत्यय होकर एधाम्

---

१ यहां यह विचारना उचित है कि बहुव्रीहि समास दो प्रकारका होता है-' तद्गुणसंविज्ञान और अतद्गुणसंविज्ञान ' जिस लक्षणसे किसी पदार्थका ज्ञान हो वह उस पदार्थमें दीख पडे और उस लक्षणके संग उस पदार्थका विशिष्ट बोध होना भी अभिमत हो वह तद्गुणसंविज्ञान है, यथा--' लम्बकर्णमानय ' लम्बे कानवालेको लाओ, इस प्रयोगमें लम्बे कानवाले व्यक्तिको मांगा है सो लम्बा कान उस लक्षणका परिचय करानेवाला है और वह लम्बाकान उसी वस्तुमें स्थित है और उसीके संग उस लक्षणका विशिष्टज्ञान होना भी अभिलषित है ।

अतद्गुणसंविज्ञानमें यह रीति नहीं हैं यथा-'दृष्टमथुरमानय' जिसने मथुरा देखी हैं उसे लाओ, यह विचार कर्तव्य है कि जिसने मथुरा देखी है, उसका लक्षण मथुरा तो हो सकता है परन्तु मथुराकी स्थिति उसमें नहीं और मथुराविशिष्ट पुरुषका लाना भी अभिमत नहीं है, इसी प्रकार सूत्रमें स्थित जो आम् प्रत्यय है उसमें भी अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि है, कारण कि जिस धातुके आगे आम् होता है केवल उसी धातुका आम्प्रत्यय शब्दसे यहां ग्रहण है आम प्रत्यय युक्त धातुका नहीं ' आशय यह है कि जिस धातुसे आम् प्रत्यय विहित होता है उसी धातुके समान कृञ् धातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो । जिस धातुसे आम् प्रत्यय होता है यदि वह आत्मनेपदी हो तो कृञ् धातुसे भी आत्मनेपद हो अन्यथा नहीं हो, आम्के आनेमें आगेसे प्रत्ययका लुक् होता है । तस्य=अन्यपदार्थस्य गुणाः=विशेषणानि तेषां क्रियान्वयितया संविज्ञानं यत्र स तद्गुणसंविज्ञानः, तद्भिन्नोऽतद्गुणसंविज्ञानः ।

पद हुआ (५०७) से एधाम्से परे लिट् लकारप्रत्ययका लोप हुआ (५०८) से कृञ् प्रत्याहार अन्तर्गतक्ष धातुका अनुप्रयोग हुआ (५४८) से कृ धातुकी आत्मनेपदसंज्ञा हुई उससे परे लिट् लकारका प्रत्यय होकर एधाम्+कृ+त स्थिति हुई एधाम्+चकृ+त-

(५४९) लिटस्तझयोरेशिरेच् । ३ । ४ । ८१ ॥

लिडादेशयोस्तझयोरेशिरेचौ स्तः ॥

लिट्को जो त और झ आदेश हुए हैं तिन्हें अनुक्रमसे एश् और इरेच् आदेश हों । हल् (श् च्) का लोप होकर ए, इरे शेष रहे.

प्र० पु० **एधाञ्चक्रे** वह बढा, **एधाञ्चक्राते** वे दो बढे, **एधाञ्चक्रिरे** वे बढ़े.
म० पु० **एधाञ्चकृषे** तू बढा, **एधाञ्चक्राथे** तुम दो बढे, एधाञ्चकृ+ध्वे-

(५५०) इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् । ८ । ३ । ७८ ॥

इण्णन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः स्यात् ॥

जो अङ्गके अन्तमें इण् प्रत्याहारका कोई वर्ण हो, उससे आगे षीध्वं तथा लुङ् लिट्के आदेशका जो धकार उसके स्थानमें ढकार हो । एधाञ्चकृमें ऋ इण् है उससे परे ध्वके ध्के स्थानमें ढ् होकर **एधाञ्चकृढ्वे** तुम बढे.

उ० पु० **एधाञ्चक्रे** मैं बढा, **एधाञ्चकृवहे** हम दोनों बढे, **एधाञ्चकृमहे** हम बढे, कृञ् प्रत्याहारसे भू तथा असुका सम्बन्ध करनेसे नीचे लिखे रूप हुए,

प्र० पु० **एधाम्बभूव**, **एधामास** इत्यादि ।

लुट् ।

प्र० पु० ए० एध्+इ (४३४)+तास् (४३६) आ (४३८) तास् में आस् का लोप हुआ (२६७) तब-

एधिता वह बढेगा, **एधितारौ** वे दोनों बढेंगे, **एधितारः** वे बढेंगे. म० पु० **एधितासे**[५४६] तू बढेगा, **एधितासाथे** तुम दोनों बढोगे, एधितास्+ ध्वे-

(५५१) धि च । ८ । २ । २५ ॥

धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपः ॥

ध् आदि प्रत्यय परे हुए सन्ते सकारका लोप हो । **एधिताध्वे** तुम बढोगे । उ० पु० ए० व० एधि तास्+ ए (इट्)--

(५५२) ह एति । ७ । ४ । ५२ ॥

तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे ॥

अस् तथा तास् प्रत्ययके सकारसे आगे एकार आवे तो सकारके स्थानमें हकार हो ।

एधिताहे मैं बढूंगा, **एधितास्वहे** हम दो बढेंगे, **एधितास्महे** हम बढेंगे.
लट्-प्र० पु० एधिष्यते वह बढेगा, **एधिष्येते** वे दोनों बढेंगे, **एधिष्यन्ते** वे बढेंगे
लट्-म० पु० एधिष्यसे तू बढेगा, **एधिष्येथे** तुम दोनों बढोगे, **एधिष्वध्वे** तुम बढोगे
लट्-उ० पु० एधिष्ये मैं बढूंगा, **एधिष्यावहे** हम दोनोंबढेंगें, **एधिष्यामहे** हम बढेंगे
लोट्-प्र० पु० ए० व० एध्+अ+त+ए[५४४] –

(५५३) आमेतः । ३ । ४ । ९० ॥

लोट एकारस्याम् स्यात् ॥

लोट्के एकारके स्थानमें आम् हो ।
एधताम् वह बढ़े, **एधेताम्** वे दो बढें, **एधन्ताम्** वे बढें.
लोट्-म० पु० ए० व० एध्+अ+से

(५५४) सवाभ्यां वामौ । ३ । ४ । ९१ ॥

सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद्वामौ स्तः ॥

स् तथा व्से परे लोट्के एकारके स्थानमें क्रमसे व तथा अम् आदेश हों । **एधस्व** तू बढ । **एधेथाम्** (५४५, ४६४, ५४४, ५५३) तुम दोनों बढो । **एधध्वम्** (५४४) (५५४,) तुम बढो । **लोट् उ० पु०** एध+ए (५४४)–

(५५५) एत ऐ । ३ । ४ । ९३ ॥

लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात् ॥

लोट्के उत्तम पुरुषके एकारके स्थानमें ऐ हो ।
एधै मै बढूं, **एधावहै** हम दो बढै, **एधामहै** हम सब बढै,

लङ् ।

प्र० पु० ऐधत वह बढा, **ऐधेताम्** वे दोनों बढे, **ऐधन्त** वे बढे,
म० पु० ऐधथाः तू बढा, **ऐधेताम्** तुम दोनों बढे, **ऐधध्वम्** तुम सब बढे,
उ० पु० ऐधे मै बढा, **ऐधावहि** हम दोनों बढै, **ऐधामहि** हम सब बढे,

विधिलिङ्।

(५५६) लिङः सीयुट् । ३ । ४ । १०२ ॥

सलोपः ।

लिङ् लकारको सीयुट्का आगम हो (इसमें उट् इत् है) एध्+अ+सीय्+त (४६२) सीयुट्के सकार और (४६४) से य्का लोप हुआ तब–

प्र० पु० एधेत वह बढे, **एधेयाताम्,** वे दोनों बढें, एध्+सीय्+झ–

(५५७) झस्य रन् । ३ । ४ । १०५ ॥

लिङो झस्य रन् स्यात् ॥

लिङ्के झ प्रत्ययके स्थानमें रन् आदेश हो (४६२) से सका लोप और (४६४) से य्का लोप हो । **एधेरन्** वे बढें,
म० पु० एधेथाः तू बढ **एधेयाथाम्** तुम दोनों बढो, **एधेध्वम्** तुम सब बढो.
उ० पु० एध्+अ+ईय् (सीय)+इट्–

(५५८) इटोऽत् । ३ । ४ । १०६ ॥

लिङादेशस्य इटोऽत्स्यात् ॥

लिङ्के इट् आदेशके स्थानमें अत् हो (इसमें त् इत् है)
एधेय मैं बढूं, **एधेवहि** हम दो बढें, **एधेमहि** हम सब बढें,

आशीर्लिङ् ॥

प्र० पु० ए० व० एध्+सीय्+त–

(५५९) सुट् तिथोः । ३ । ४ । १०७ ॥

लिङस्तथोः सुट् । यलोपः ॥

आर्धधातुकत्वात्सलोपो न ।

लिङ्के तकार थकारको सुट्का आगम हो, (सुट्में उट् इत् है)
एध् सीय[1] स्[५५]+त्–

---

१ आर्धधातुक प्रत्यय है, इस कारण (४६२) से सका लोप न हुआ–

सीय्‌की आर्धधातुकसंज्ञा (४६६) से है तो इसे (४३४) से इट्‌का आगम हुआ सीके स्थानमें ष (१६९) हुआ (४६४) से यकारका लोप होकर सको ष् और त्‌को ट् (७८)

प्र० पु० **एधिषीष्ट** **एधिषीयास्ताम्** **एधिषीरन्**

भगवान् करै वह बढे, भ० वे दोनों बढें, भगवान् करे वे बढें,

म० पु० **एधिषीष्ठाः**[552, 78] **एधिषीयास्थाम्** **एधिषीध्वम्**

भ० तुम बढो, भगवान् करे तुम दोनों बढो, भगवान् करे तुम सब बढो,

उ० पु० **एधिषीय**[558] **एधिषीवहि** **एधिषीमहि**

भग० मैं बढूं, भ० हम दोनो बढें, भ० हम सब बढें,

लुङ् ।

प्र० पु० ए० व० ऐधिष्ट (४८९, ४७२, ४७३, ४३४, १६९, ७८) वह बढा.
प्र० पु० द्वि० व० ऐधिषाताम् वे दोनों बढे.
प्र० पु० ब० व० ऐधिस्+झ–

(५६०) आत्मनेपदेष्वनतः । ७ । १ । ५ ॥

अनकारात्परस्यात्मनेपदेषु झस्य अदित्यादेशः स्यात् ॥

आत्मनेपद झ प्रत्यय अकारसे परे न हो तो उसके स्थानमें अत् हो। **ऐधिषत** वे बढे थे. **म० पु० ऐधिष्ठाः** तू बढा, **ऐधिषाथाम्** तुम दोनों बढे, **ऐधिढ्वम्**[550, 551] तुम बढे. **उ० पु० ऐधिषि** मैं बढा, **ऐधिष्वहि** हम दोनों बढे, **ऐधिष्महि** हम बढे, **लृङ्० प्र० पु० ऐधिष्यत** जो वह बढे, **ऐधिष्येताम्** जो वे दोनों बढें, **ऐधिष्यन्त** जो वे बढें, **म० ऐधिष्यथाः** जो तू बढे, **ऐधिष्येथाम्** जो तुम दोनों बढें, **ऐधिष्यध्वम्** जो तुम बढें. **उ० ऐधिष्ये** जो मैं बढूं, **ऐधिष्यावहि**[423] जो हम दोनों बढें, **ऐधिष्यामहि** जो हम बढें.

कम् (कमु कान्तौ) इच्छा करना

(५६१) कमेर्णिङ् । ३ । १ । ३० ॥

स्वार्थे । ङित्वात्तङ् ॥

कम् धातुसे परे णिङ् (९०३) प्रत्यय हो परन्तु धातुके अर्थमें । णिङ् प्रत्ययान्तकी धातुसंज्ञा होती है (४१०) आत्मनेपदसंज्ञावाले प्रत्यय रक्खे जाते हैं कारण कि (४११) से णिङ् ङित् है । णिङ् में णूङ्की इत्संज्ञा होकर इ.शेष रही.

लट्-प्र० पु० ए० व० कम्+इ[५६१]+अ[४२०]+ते (९४४) का[४९०]+अय्[४२१]+अ[४२०] ते **कामयते** वह इच्छा करता है.

लिट्-प्र० ए० का+म्+इ (णि) +त=

(९६२) अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु । ६ । ४ । ५५ ॥

आम् अन्त आलु आय्य इत्नु इष्णु एषु णेरयादेशः स्यात् ॥

जब आम् अन्त (९०४) आलु, आय्य, इत्नु तथा इष्णु इनमेंसे कोई प्रत्यय धातुसे परे हो तो णिको अय् आदेश हो । (९६१) णिङ् प्रत्यय (९०४) विकल्प करके हुआ-

प्र० पु० काम्+अय्[५६२]+आं[५०५]+कामयाम्+कृ[५०८]+ते[५४९] =

कामयाञ्चक्रे	**कामयाञ्चक्राते**	**कामयाञ्चक्रिरे**
उसने इच्छा की,	उन दोनोंने इच्छा की,	उन्होंने इच्छा की.

आम् न किया तो अय् होकर वृद्धि (४९०) न हुई-

प्र० पु० चकमे	**चकमाते**	**चकमिरे**[५४९]
उसने इच्छा की,	उन दोनोंने इच्छा की,	उन्होंने इच्छा की.
म० पु० चकमिषे	**चकमाथे**	**चकमिध्वे**
तूने इच्छा की,	तुम दोनोंने इच्छा की,	तुमने इच्छा की,
उ० पु० चकमे	**चकमिवहे**	**चकमिमहे**
मैंने इच्छा की,	हम दोनोंने इच्छाकी,	हमने इच्छाकी,

लुट्-प्र० पु० ए० व०	**कामयिता, कमिता**	वह इच्छा करेगा,
लुट्-म० पु० ए० व०	**कामयितासे, कमितासे**	तू इच्छा करेगा,
लृट्-प्र० पु० ए० व०	**कामयिष्यते, कमिष्यते**	वह इच्छा करेगा,
लोट्-प्र० पु० ए० व०	**कामयताम्**	वह इच्छा करे,
लङ्-प्र० पु० ए० व०	**अकामयत**	उसने इच्छा की,
लिङ्-प्र० पु० ए० व०	**कामयेत**	वह इच्छा करे,

लिङ्-प्र० पु० ए० व० कामयिषीष्ट, कमिषीष्ट (५९९) भगवान् करे वह
कामयिषीढ्वम् , कामयिषीध्वम् (९८३) इच्छा करे.

लुङ् कामि+च्लि+त-

(९६३) णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् । ३ । १ । ४८ ॥

ण्यन्ताच्छ्र्यादिभ्यश्च च्लेश्चङ् स्यात् कर्त्रर्थे लुङि परे ॥

श्रि (सेवा करना), द्रु (दौडना), स्रु (चूना) इन धातुओंसे परे और जिसके अन्तमें णिङ् (९६१) णिच् (७४२, ७४८) हो उससे परे कर्ता अर्थमें लुङ् आवे तो च्लि (४७२) के स्थानमें चङ् हो । चङ्में च् ङ् इत् होकर अ रहा-

कामि+(९६१) अ (९६३)+त-

(९६४) णेरनिटि । ६ । ४ । ५१ ॥

अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः स्यात् ॥

जिस आर्धधातुकके पहले इट् न हो सो जब परे रहे तब णि (९६१, ७४२, ७४८,) का लोप हो । काम्+अत-

(९६५) णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः । ७ । ४ । १ ॥

चङि परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात् ॥

जिस अङ्गसे परे णि (९६१, ७४२, ७४८) हो उससे परे चङ् (९६३) हो तो उस अंगकी उपधाको ह्रस्व हो । कम्+अत-

(९६६) चङि । ६ । १ । ११ ॥

चङि परे अनभ्यासस्य धात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य ॥

जिससे चङ् परे हो वह अनभ्यास धातुका अवयव जो एकाच् प्रथम भाग तिसको द्वित्व हो और जो अजादि हो तो दूसरे एकाच् भागको द्वित्व हो । क + कम् = चकम् (४८९)+अत-

(९६७) सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे । ७ । ४ । ९३ ॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरः तस्य सनीव कार्यं स्याण्णावग्लोपेऽसति ॥

जिससे परे चङ् हो ऐसी णि जिस अङ्गसे परे हो और णि निमित्त मानकर अक् प्रत्याहार सम्बन्धी किसी वर्णका लोप न हुआ हो तो उस लघुपरके अभ्यासको कार्य जैसा सन् (७९३) परे रहते होता है वैसा हो।

(६६८) सन्यतः । ७ । ४ । ७९ ॥

अभ्यासस्यात इत्स्यात्सनि ॥

अभ्याससे परे सन् आवे तो अभ्यासके अकारके स्थानमें इकार हो। सन् (६६७) भाव होकर च अभ्यास अन्तर्गत अकारके स्थानमें इकार हुआ । चिकम्+अत–

(६६९) दीर्घो लघोः । ७ । ४ । ९४ ॥

लघोरभ्यासस्य दीर्घः स्यात्सन्वद्भावविषये ॥

सन्वद्भावविषय हो तो अभ्यासके लघुको दीर्घ हो (४९८) अचीकम्+अत=अचीकमत प्र० ए० व० **अचीकमत** उसने इच्छा की। (५०४) से णिङ् विकल्प करके होता है जब न हुआ तब अ+चकम्+च्लि+त–

(६७०) कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः ॥

कम् धातुसे परे च्लिके स्थानमें चङ् आदेश हो ऐसा कहना चाहिये ।

अचकम्+अ+त=**अचकमत** उसने इच्छा की,

लृङ्–प्र० पु० ए० व० अकामयिष्यत, अकामिष्यत जो वह इच्छा करे ॥

अय[1] (अय गतौ) जाना ।

लट् प्र० पु० ए० व० अयते वह जाता है इत्यादि ।

(६७१) उपसर्गस्यायतौ । ८ । २ । १९ ॥

अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लत्वं स्यात् ॥

अय् धातु परे हो तो उपसर्ग (४७) के रेफके स्थानमें लकार हो ।

प्र+अयते (६७१, ६६) **प्लायते** वह भागता है,
परा+अयते (६७१, ६६) **पलायते** वह भागता है,

---

१ प्र–परा=पलायन–भागना । पलायते कातरो युद्धे ।

लिट् ।

(५७२) दयायासश्च । ३ । १ । ३७ ॥

दय् अय् आस् एभ्य आम् स्याल्लिटि ।

दय् (देना), अय् (जाना), आस् (बैठना) इन धातुओंसे लिट् परे रहते आम् हो। **प्र० ए०** अय्+आम्=अयाम् (५०३) धातुसंज्ञा हुई (५०७) लिट् लकारका लोप होनेके पीछे (५०८) से कृ धातु आई तो अयाम्+कृ हुआ–

अयाञ्चक्रे वह गया,

लुट्–प्र० ए० अयिता वह जायगा

लृट्–प्र० ए० अयिष्यते वह जायगा

लोट्–प्र० ए० अयताम् वह जाय

लङ्–प्र० ए० आयत वह गया

लिङ्–प्र० ए० अयेत वह जाय.

लिङ्–२ (आशीः) **प्र० ए० अयिषीष्ट** भगवान् करे वह जाय

म० ए० अयिषीष्ठाः भगवान् करे तू जाय

म० ब० अय्+सी+इ+ध्वम्=**अयिषीध्वम्**

(५७३) विभाषेटः । ८ । ३ । ७९ ॥

इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य वा ढः ॥

इण् प्रत्याहारान्त अङ्गसे परे इट् उसके आगे षीध्वं तिसके और लुङ् तथा लिट्के स्थानमें जो आदेश उसके धकारको विकल्प करके ढकार (११०) हो। **अयिषीढ्वम्** ईश्वर करे तुम जाओ,

लुङ्–प्र० पु० ए० व० आयिष्ट वह गया,

लुङ्–म० पु० ब० व० आयिध्वम्, आयिढ्वम्, तुम गये.

लृङ्–प्र० पु० ए० व आयिष्यत जो वह जाय,

द्युत् (द्युत दीप्तौ) चमकना

लट्–प्र० पु० ए० व० द्योतते (४२०, ४८६) वह चमकता है,

लिट्–प्र० पु० ए० व० द्युत्+त—

(५७४) द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम् । ७ । ४ । ६७ ॥

अनयोरभ्यासस्य संप्रसारणं स्यात् ॥

द्युत् (चमकना) तथा स्वापि (सोना) इन धातुओंके अभ्यासको सम्प्रसारण (२८१)

हो। द्युद्युत् रूपमें द्यु अभ्यास है उसके अन्तर्गत यकार यण् है इसके स्थानमें इक्की इ हुई **दिद्युते** वह प्रकाशित हुआ । **द्योतिता । द्योतिष्यते । द्योतताम् । अद्योतत । द्योतेत । द्योतिषीष्ट** । अद्युत्+लुङ्—

(५७५) द्युद्भ्यो लुङि । १ । ३ । ९१ ॥

द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा स्यात् ॥

द्युत् इत्यादि धातुओंसे परे लुङ्को परस्मैपद प्रत्यय विकल्प करके हो । (९४३.) से च्लि (४७२) के स्थानमें अङ् आदेश हुआ । **अद्युतत्** (४९८) तिप् परस्मैपद प्रत्यय (वा)

(४९८) अद्युत्+इ+सँ[४७३]+=**अद्योतिष्ट** (१६९ ७८,) वह प्रकाशित हुआ; **लृङ् प्र० पु० ए० व अद्योतिष्यत** जो वह प्रकाशित हो ।

इसी प्रकार नीचे लिखे धातुओंके रूप जानो। **श्वित्** (श्विता) श्वेत होना **मिद्** (ञिमिदा) चिकना होना, **ष्विद्** (ञिष्विदा) चिकना होना, वा त्यागना '**मोहनयोरित्येके**' कोई आचार्य कहते हैं कि इस धातुका चिकना होना और मोहित होना अर्थ है । '**ञिक्ष्विदा चेत्येके**' क्ष्विद्-धातु भी चिकना होना और मोहित होना इस अर्थमें है ऐसा कोई कहते हैं।

रुच्	(रुच)	(दीप्तौ अभिप्रीतौ च)	दीप्ति वा प्रीति करना.
घुट्	(घुट)	(परिवर्तने)	घोटना लौटना.
शुभ्	(शुभ)	(दीप्तौ)	शोभित होना.
क्षुभ्	(क्षुभ)	(संचलने)	चलना (व्याकुल होकर कांपना)
णभ्	(णभ)	(हिंसायाम्)	हिंसा करना.
तुभ्	(तुभ)		
स्रंस्	(स्रंसु)	अवस्रंसने	गिरना.
भ्रंस्	(भ्रंसु)		
ध्वंस्	(ध्वंसु)	(गतौ च)	जाना और गिरना,
स्रंभ्	(स्रंभु)	(विश्वासे)	विश्वास करना ॥

वृत् (**वृतु** वर्तने) वर्तना, होना.

लट्-प्र० ए० वर्तते वह है. | **लुट्-प्र० ए० वर्तिता** वह होगा.

लिट्-प्र० ए० ववृते[६४९] वह था,

१ अति-अतिवर्तन, अतिक्रमण । अनु-अनुवर्तन । नि-निवृत्ति । निर्-निर्वृत्ति । विनि-विनिवर्तन प्रत्यागमन । वि-परि-वर्तन-मनोभ्रम । अभि=अभिवर्तन-सन्मुख आगमन।आ=आवृत्ति। वि-आ=व्यावृत्ति इत्यादि ।

(६७६) वृद्भ्यः स्यसनोः । १ । ३ । ९२ ॥

वृतादिभ्यः पञ्चभ्यो वा परस्मैपदं स्यात्स्ये सनि च ॥

वृत् इत्यादि जो पांच धातु हैं इनमें जब स्य (४३६) अथवा सन् (७९३) प्रत्यय स्थापनका विचार हो तब इनसे परे विकल्प करके परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय हों ।

(६७७) न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः । ७ । २ । ५९ ॥

वृतु–वृधु–शृधु–स्यन्दूभ्यः सकारादेरार्धधातुकस्येण्न स्यात्तङानयोरभावे ॥

वृतु (वर्तने) होना.	शृधु (कुत्सितशब्दे) कुत्सित शब्द करना.
वृधु (वृद्धौ) बढना.	स्यन्दू (प्रस्रवणे) बहना.

इन चार धातुओंसे परे तङ् (आत्मनेपदे[४१]) प्रत्यय तथा शानच् कानच् प्रत्ययका अभाव हो तो सकारादि आर्धधातुक प्रत्ययको इट्[४६४]का आगम न हो.

लट्–परस्मै०	प्र०	ए०	वर्त्स्यति	(जब इट् न हुआ) वह होगा,
लट्–आत्मने०	प्र०	ए०	वर्तिष्यते	(यहां इट् हुआ) वह होगा.
लोट्–	प्र०	ए०	वर्तताम्	वह हो.
लङ्–	प्र०	ए०	अवर्तत	वह था,
लिङ्–विधि	प्र०	ए०	वर्तेत	वह हो.
लिङ्–आशीः–	प्र०	ए०	वर्तिषीष्ट[४२]	ईश्वर करे वह हो.
लुङ्–	प्र०	ए०	अवर्तिष्ट	वह था.
लृङ्–	प्र०	ए०	अवर्त्स्यत्[६७७]	जो वह हो,
लृङ्–आत्मने.	प्र०	ए०	अवर्तिष्यत	जो वह हो ॥

दद् (दाने २०) दान देना.

लट्–प्र० पु० ए० व० ददते वह देता है.

लिट्–प्र० पु० ए० व० दद्द्+त–

(६७८) न शसददवादिगुणानाम् । ६ । ४ । १२६ ॥

शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन विहितो योऽकारस्तस्य एत्वाभ्यासलोपौ न ॥

शस् (शसु हिंसायाम्) हिंसा करनी, दद् (दाने) दान देना, वकारादि धातु तथा गुण-शब्दसे विहित जो अकार (६९४) इन सबको एकार (४९९, ४९६) न हो और अभ्यासका लोप भी न हो ।

लिट्–प्र० ए० ददद उसने दिया **दददाते** उन दोनोंने दिया, **दददिरे** उन्होंने दिया.
लुट्–प्र० ए० ददिता वह देगा । **लृट्–प्र० ए० ददिष्यते** वह देगा.

लोट्–प्र० ए० ददताम् वह दे.
लङ्–प्र० ए० अददत उसने दिया.
लिङ्–प्र० ए० ददेत वह दे.
२लिङ्–प्र०ए० ददिषीष्ट[५५९] ईश्वर करे वह दे
लुङ्–प्र०ए० अददिष्ट उसने दिया.
लृङ्–प्र० ए० अददिष्यत जो वह दे ॥

त्रप (त्रपूष् लज्जायाम् २१) लजाना.

लट्–प्र० ए० त्रपते वह लज्जित होता है ।

(५७९) तॄफलभजत्रपश्च । ६ । ४ । १२२ ॥

एषामत एत्वमभ्यासलोपश्च स्यात् किति लिटि सेटि थलि च ॥

तॄ (तरना) फल् (फलना), भज् (सेवा करना) और त्रप् (त्रपूष्) लज्जा करना इन धातुओंसे परे कित् (४८७) लिट् तथा इट् युक्त थल् आवे तो इन धातुओंके अकारको एकार हो और अभ्यासका लोप भी हो ।

लिट्–प्र०	ए०	त्रेपे	वह लज्जित हुआ.
लुट्–प्र०	ए०	त्रपिता, त्रप्ता[५१२]	वह लज्जित होगा.
लृट्–प्र०	ए०	त्रपिष्यते, त्रप्स्यते	वह लज्जित होगा.
लोट्–प्र०	ए०	त्रपताम्	वह लज्जित हो.
लङ्–प्र०	ए०	अत्रपत	वह लज्जित हुआ.
लिङ्–प्र०	ए०	त्रपेत	वह लज्जित हो.
२लिङ्–प्र०	ए०	त्रपिषीष्ट[५५९], त्रप्सीष्ट[५१२]	भगवान् करे वह लज्जित हो.
लुङ्–प्र०	ए०	अत्रपिष्ट अत्रप्त[५१४५१२]	वह लज्जित हुआ.
लृङ्–प्र०	ए०	अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत[५१२]	जो वह लज्जित हो.

॥ इति भ्वाद्यात्मनेपदी धातु समाप्त ॥

---

(५८०) * अथ उभयपदी धातु ।

अब जिन धातुओंसे आत्मनेपद और परस्मैपद होते हैं वह, लिखते हैं ।

१ श्रिञ्[१] (सेवायाम्) सेवा करना ।

परस्मैपद आत्मनेपद ।

---

* यहां भेद दिखाने मात्रको ५८० अङ्क लगाया है सूत्रादि नहीं है । १ उपसर्गयोगे—

१ आ=आश्रयण । प्र=प्रश्रयण–नम्रता । अधि=अधिश्रयण–चुल्हे आदिपर चढ़ाना । उद्–समुद्=उच्छ्रय, समुच्छ्रय, ऊंचापन । सम्–आ=समाश्रय सहारा । व्यपा=व्यपाश्रय साष्टाङ्ग प्रणाम इत्यादि ।

लट्–प्र०	ए०	श्रयति	श्रयते	वह सेवा करता है.
लिट्–प्र०	ए०	शिश्राय	शिश्रिये	उसने सेवा की.
लुट्–प्र०	ए०	श्रयिता	श्रयिता	वह सेवा करेगा.
लृट्–प्र०	ए०	श्रयिष्यति	श्रयिष्यते	वह सेवा करेगा.
लोट्–प्र०	ए०	श्रयतु	श्रयताम्	वह सेवा करे.
लङ्–प्र०	ए०	अश्रयत्	अश्रयत	उसने सेवा की.
लिङ्–प्र०	ए०	श्रयेत्	श्रयेत	वह सेवा करे.
२ लिङ्–प्र०	ए०	श्रीयात्[५१९]	श्रयिषीष्ट	भगवान् करे वह सेवा करे.
लुङ्–प्र०	ए०	अशिश्रियत्[५६३]	अशिश्रियत	उसने सेवा की.
लृङ्–प्र०	ए०	अश्रयिष्यत्	अश्रयिष्यत	जो वह सेवा करे.

१ भृ (भृञ् भरणे) पालना।

लट्–प्र०	ए०	भरति	भरते	वह पालता है
लिट्–प्र०	ए०	बभार	बभ्रे[५४९]	उसने पाला.
लिट्–प्र०	द्वि०	बभ्रतुः[४२४]	बभ्राते	उन दोनोंने पाला.
लिट्–प्र०	ब०	बभ्रुः	बभ्रिरे	उन्होंने पाला.
लिट्–म०	ए०	बभर्थ	बभृषे	तैंने पाला.
लिट्–म०	द्वि०	बभ्रथुः	बभ्राथे	तुम दोनोंने पाला.
लिट्–म०	ब०	बभ्र	बभृढ्वे	तुमने पाला.
लिट्–उ०	ए०	बभार, बभर	बभ्रे	मैंने पाला.
लिट्–उ०	द्वि०	बभृव	बभृवहे	हम दोनोंने पाला.
लिट्–उ०	ब०	बभृम	बभृमहे	हमने पाला.
लुट्–प्र०	ए०	भर्ता	भर्ता	वह पालेगा.
लृट्–प्र०	ए०	भरिष्यति	भरिष्यते	वह पालेगा.
लोट्–प्र०	ए०	भरतु	भरताम्	वह पाले.
लङ्–प्र०	ए०	अभरत्	अभरत	उसने पाला.
लिङ्–प्र०	ए०	भरेत्	भरेत	वह पाले.

(५८१) रिङ् शयग्लिङ्क्षु। ७। ४। २८॥

शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङ् आदेशः स्यात् ॥ ऋकारसे परे श (६९४) अथवा यक् (८०२) अथवा लिङ् स्थानमें आदेश यकारादि आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो ऋकारके स्थानमें रिङ् आदेश हो । **रीङि प्रकृते रिङ्विधानसामर्थ्याद्दीर्घो न ।** (५१९) से रिको दीर्घता प्राप्त हुई थी सो नहीं होती कारण कि (११२९) वां सूत्र इस (५८१) वें सूत्रके पूर्व है जिसमें रीङ् विधान किया है उसीकी अनुवृत्ति यहां आजाती परन्तु ऐसा न करके फिर भी रिङ्का विधान किया है इससे स्पष्ट ही है (५१९) से जो दीर्घ पाया था सो नहीं होता, दीर्घ इष्टमें तो रीङ्की अनुवृत्ति ही आजाती फिर रिङ् विधानका आशय ही क्या था किन्तु दीर्घविधायक सूत्रके स्मरणका भी प्रयोजन न होता । २ **लिङ् प्र० पु० ए० व० भ्रियात्** ईश्वर करे वह पाले (परस्मैपद) ।

(५८२) उश्च । १ । २ । १२ ॥

ऋवर्णान्तात् परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि ॥

ऋवर्णसे परे जो झलादि लिङ् और सिच् सो कित् हो जब तङ् प्रत्याहार (आत्मनेपदसंज्ञक) प्रत्यय परे हो । जब (४६८) से गुण न किया तब (५१९) प्र० **पु० ए० भृषीष्ट**- ईश्वर करे वह पाले ।

लिङ्-प्र० द्विव० भृषीयास्ताम् ईश्वर करे वे दोनों पालें,
लुङ्-परस्मैपद-अभार्षीत् (४५८, ४१७, ४७३) उसने पाला.
लुङ्-आत्म० अभृ+स्+त-

(५८३) ह्रस्वादङ्गात् । ८ । २ । २७ ॥

सिचो लोपो झलि ॥

ह्रस्वान्त अंगसे परे सिच्का लोप हो झल् प्रत्याहार परे हो तो । **अभृत** उसने पाला.
लृङ्-परस्मै० अभरिष्यत् । आत्म० अभरिष्यत जो वह पाले ॥

३ हृ[1] (हृञ् हरणे) हरना ।

परस्मैपद. आत्मनेपद.

---

१ उपसर्गयोगे-प्र=प्रहार । अप=अपहार-दूर करना । सम्-संहार । वि=विहार-क्रीडा । आ=आहार-भोजन । उद्=उद्धार । उपसम्=उपसंहार-समाप्ति । वि-आ=व्याहार-भाषण । अभि-अव=अभ्यवहार-खाना। वि-अति=व्यतिहार-विपर्यय । वि अव=व्यवहार इत्यादि ।

लट्-प्र०	ए०	हरति	हरते	वह हरता है.
लिट्-प्र०	ए०	जहार[४८९, २०२]	जह्रे	उसने हरलिया.
लिट्-म०	ए०	जहर्थ	जह्रिषे	तूने हरलिया.
लिट्-उ०	द्वि०	जह्रिव	जह्रिवहे	हम दोनोंने हरलिया.
लिट्-उ०	ब०	जह्रिम	जह्रिमहे	हमने हरलिया.
लुट्-प्र०	ए०	हर्ता	हर्ता	वह हरलेगा.
लृट्-प्र०	ए०	हरिष्यति	हरिष्यते	वह हरलेगा.
लोट्-प्र०	ए०	हरतु	हरताम्	वह हरले.
लङ्-प्र०	ए०	अहरत्	अहरत	उसने हरलिया.
लिङ्-प्र०	ए०	हरेत्	हरेत	वह हरले.

२ लिङ्० प्र० ए० ह्रियात्[५८१] हृषीष्ट[५५६] भगवान्[५९५, ५२२] करे वह हरले । **हृषीयास्ताम्** भगवान् करे वह दोनों हरलें.

लुङ्-प्र०	ए०	अहार्षीत्[५५२]	अहृत[५८३]	उसने हरलिया,
लृङ्-प्र०	ए०	अहरिष्यत्	अहरिष्यत	जो वह हरले,

४ धृ (धृञ् धारणे) धारण करना ।

लट्-प्र०	ए०	धरति	धरते	वह धारण करता है,

५ णी (णीञ् प्रापणे) ले जाना ।

लट्-प्र०	ए०	नयति	नयते	वह ले जाता है,

६ पच् (डुपचष् पाके) पाक करना ।

लट्-प्र०	ए०	पचति	पचते	वह पाक करता है,
लिट्-प्र०	ए०	पपाच	पेचे[४२५]	उसने पाक किया
लिट्-म०	ए०	पेचिथ[५१८, ४९६] / पपक्थ[५१७]	पेचिषे	तैने पाक किया.
लुट्-प्र०	ए०	पक्ता	पक्ता	वह पकावेगा,
लृट्-प्र०	ए०	पक्ष्यति	पक्ष्यते	वह पकावेगा,

---

१ अव निर् =इन दोनोंके योगमें अवधारण-निश्चय अर्थ होता है । उद्=उद्धार इत्यादि ।

२ प्र=प्रणयन- रचना और प्रणय=प्रीति । अप=अपनयन-दूर करना । उप=उपनयन-दीक्षा । उद्-उन्नति और ऊपरको फेंकना। परि=परिणय-विवाह । अभि=अभिनय-नाट्य, अनु=अनुनय-नमन । आ=आनयन-लाना । प्रत्या=प्रत्यानयन-वापिस ले जाना । निर्=निर्णय । दुर्=दुर्णय-दुष्ट नीति इत्यादि ।

७ भज (भज सेवायाम्) सेवा करना ।

परस्मैपद. आत्मनेपद०

लट्-प्र०	ए०	भजति	भजते	वह सेवा करता है.
लिट्-प्र०	ए०	बभाज	भेजे[५८९]	उसने सेवा की.
लुट्-प्र०	ए०	भक्ता	भक्ता	वह सेवा करेगा.
लृट्-प्र०	ए०	भक्ष्यति	भक्ष्यते	वह सेवा करेगा.
लोट्-प्र०	ए०	भजतु	भजताम्	वह सेवा करे.
लङ्-प्र०	ए०	अभजत्	अभजत	उसने सेवा की.
लिङ्-प्र०	ए०	भज्यात्	भक्षीष्ट	वह सेवा करे.
लुङ्-प्र०	ए०	अभाक्षीत्[२००]	अभक्त[५३४]	उसने सेवा की.
लुङ्-प्र०	द्वि०	अभाक्ताम्	अभक्षाताम्	उन दोनोंने सेवा की.

८ यज् (यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु) पूजा करना, संगति करना, दान करना.

लट्-प्र०	ए०	यजति	यजते	वह पूजा करता है.
लिट्-प्र०	ए०	यज्+अ	(णल्)	ययज्+अ-

(५८४) लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् । ६ । १ । १७ ॥

वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य संप्रसारणं स्याल्लिटि ॥

वच् आदि (५८५) तथा ग्रह आदि (६७६) धातुओंके अभ्यास (४२८) को संप्रसारण (२८१) हो लिट् परे हुए सन्ते ।

लिट्-प्र०	ए०	इयाज	ईजे	उसने पूजा की.
लिट्-प्र०	द्वि०	यज्+अतुस्=य्	अज्+अतुः-	

(५८५) वचिस्वपियजादीनां किति । ६ । १ । १५ ॥

वचिस्वप्योर्यजादीनां च संप्रसारणं स्यात् किति ॥

वच् (बोलना), स्वप् (सोना) और यज् आदि धातुओंको संप्रसारण हो (२८१) जो कित्संज्ञक (४९७, ५८५) प्रत्यय परे हो तो ।

इ+अज्+अतुस्+(२८३) इज्+अतुः-

---

१ यजिर्वपिर्वहिश्चैव वसिर्वेञव्येञ् इत्यपि । ह्वेञ्वदी श्वयतिश्चैव यजाद्याः स्युरिमे नव ॥

इज्+इज्+अतुः=**ईजतुः** (४२९, ९९) उन दोनोंने पूजा की.
प्र० पु० ब० ईजिरे उन्होंने पूजा की.

परस्मैपद. **आत्मनेपद.**

लिट्-म० पु० ए० इयजिथ[५१८] **इयष्ठ**[५१७३३४७८] **ईजिषे** तैंने पूजा की.
लुट्-प्र० पु० ए० यष्टा[३३४०७८] वह पूजा करेगा.

लृट्-प्र० पु० ए० यज्+स्य+ति-

(५८६) षढोः कः सि । ८ । २ । ४१ ॥

षस्य ढस्य च कः स्यात् सकारे परे।

ष् तथा ढ्से परे सकार आवे तो उन दोनोंके स्थानमें क् हो। (३३४) से ज्के स्थानमें ष् हुआ फिर इस (५८६) से ष्के स्थानमें क् हुआ, (१६९) से स्यके स्थानमें ष्य हुआ.

	यक्ष्यति	**यक्ष्यते**	वह पूजा करेगा.
२ लिङ् प्र० ए०	**इज्यात्**[५८५६४६७ ४५९ ३३७]	**यक्षीष्ट**[५५६ ५५०]	ईश्वर करे वह पूजा करे.
लुङ्-प्र० ए०	**अयाक्षीत्**	**अयष्ट**[३३४ ५१४]	उसने पूजा की.

९ वह् (वह प्रापणे) ले जाना।

लट्-प्र० ए० परस्मै० वहति आत्म० वहते । वह ले जाता है.
लिट्-प्र० पु० परस्मै० उवाह[५८४] वह ले गया. **ऊहतुः**[५८५] वे दो ले गये, **ऊहुः** वे ले गये.
लिट्-प्र० पु० आत्मने० ऊहे वह ले गया. **ऊहाते** वे दो ले गये, **ऊहिरे** वे ले गये
लिट्-म० ए० उवहिथ[५१८] तू ले गया (वा) वह्+वह्+थ-

(५८७) झषस्तथोर्धोऽधः । ८ । २ । ४० ॥

झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्न तु दधातेः ॥

धा धातु धारण करनेके अर्थमें है. इसके अवयवको छोडकर जो झष् उससे परे प्रत्ययका अवयव त् थ् हो तो त् थ् के स्थानमें ध् हो। वह्+थ इसमें (२७६) से ह्के स्थानमें ढ् हुआ=वढ्+थ=(५८७) से ढ् झष् है उससे परे थ् है उसके स्थानमें ध् हुआ=वढ् ध् (७८) से ध्के स्थानमें ढ् हुआ तब=वढ्+ढ-

---

१ उपसर्गयोगे-उद्=उद्वाह-विवाह। निर्=निर्वाह। प्र=प्रवाह । वि=विवाह । अति=अतिवाह-समय बिताना। इत्यादि।

(५८८) ढो ढे लोपः । ८ । ३ । १३ ॥

ढस्य लोपः स्यात् ढे परे ॥

ढ्से परे ढ आवे तो उसका लोप हो ।=वढ्-

(५८९) सहिवहोरोदवर्णस्य । ६ । ३ । ११२ ॥

अनयोरवर्णस्य ओत्स्याड्ढलोपे परे ॥

सह (सहना), वह (ले जाना) इन धातुओंके अवर्णके स्थानमें ओकार हो । व ओढ् वोढ् वहके अभ्यासको सम्प्रसारण (५८४) हुआ तो व्‌के स्थानमें उ हुआ हकारका लोप (४२९) हुआ शेष अका पूर्वरूप (३८३) हुआ तब **उवोढ** तू ले गया, **ऊहथुः**-तुम दो ले गये **ऊह** तुम ले गये **उवाह-उवह** मैं ले गया । **ऊहिव** हम दो ले गये । **ऊहिम** हम ले गये ।

		परस्मैपद.	आत्मनेपद ।	
लुट्-प्र०	ए०	वोढा	वोढा	वह ले जायगा.
लृट्-प्र०	ए०	वक्ष्यति	वक्ष्यते	वह ले जायगा
लोट्-प्र०	ए०	वहतु	वहताम्	वह ले जाय
लङ्-प्र०	ए०	अवहत्	अवहत	वह ले गया
लिङ्-प्र०	ए०	वहेत्	वहेत	वह ले जाय
२ लिङ्-प्र०	ए०	उह्यात्	वक्षीष्ट	भग० वह ले जाय
लुङ्-प्र०	ए०	अवाक्षीत्	अवोढ	वह ले गया.
लुङ्-प्र०	द्वि०	अवोढाम्	अवक्षाताम्	वे दोनों ले गये.
लुङ्-प्र०	ब०	अवाक्षुः	अवक्षत	वे ले गये.
लुङ्-म०	ए०	अवाक्षीः	अवोढाः	तू ले गया.
लुङ्-म०	द्वि०	अवोढम्	अवक्षाथाम्	तुम दोनों ले गये.
लुङ्-म०	ब०	अवोढ	अवोढ्वम्	तुम ले गये.
लुङ्-उ०	ए०	अवाक्षम्	अवक्षि	मैं ले गया.
लुङ्-उ०	द्वि०	अवाक्ष्व	अवक्ष्वहि	हम दोनों ले गये.
लुङ्-उ०	ब०	अवाक्ष्म	अवाक्ष्महि	हम सब ले गये.
लृङ्-प्र०	ए०	अवक्ष्यत्	अवक्ष्यत	जो वह ले जाय.

॥ इति भ्वादयः समाप्ताः ॥ १ ॥

अथाऽदादयः ।



अद् (भक्षणे) खाना ।

(५९०) अदिप्रभृतिभ्यः शपः । २ । ४ । ७२ ॥

लुक् स्यात् ।

अद् आदि धातुओंसे परे शप्का (४२०) लुक् हो ।

लट्-प्र० ए० अद्+ति=अत् (९९०)+ति=**अत्ति** यह खाता हैं.

लट्-प्र० द्वि० अद्+तः अत् + तः= **अत्तः** वे दो खाते हैं.

लट्-प्र० ब० अद्+अन्ति=**अदन्ति** वे खाते हैं.

लट्-म० पु० **अत्सि** तू खाता है. **अत्थः** तुम दोनो खाते हो, **अत्थ** तुम खाते हौ.

लट्-उ० पु० **अद्मि** मैं खाता हूँ **अद्वः** हम दोनों खाते हैं. **अद्मः** हम खाते हैं.

लिट् ।

(५९१) लिट्यन्यतरस्याम् । २ । ४ । ४० ॥

अदो घस्लृ वा स्याल्लिटि ॥

जब लिट् परे हो तब अद् धातुको विकल्प करके (घस्लृ) आदेश हो । घस्लृमेंसे लृकी इत्संज्ञा होकर घस् रहा, तब घ घस्+अ=जघस्+अ=**प्र० ए० जघास** उसने खाया । **द्वि० व०** जघस्+अतुः (५४१) से घके अन्तर्गत अ उपधाका लोप हुआ (९०) से घके स्थानमें क् हुआ–

(५९२) शासिवसिघसीनां च । ८ । ३ । ६० ॥

इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात् ॥

शास् (शिक्षा करनी), वस् (निवास करना) घस् (खाना). इन धातुओंके स् कौ ष् हो जब वे इण् प्रत्याहारमें प्राप्त हुए अक्षरोंसे वा कवर्गसे परे हों ।

जक्ष्+अतुः=**जक्षतुः** उन दोनोंने खाया; **जक्षुः** उन्होंने खाया.

म० पु० जघसिथ तूने खाया, **जक्षथुः** तुम दोनोंने खाया, **जक्ष** तुमने खाया.

घस्लृ आदेश (९९१) न किया तो–

प्र० पु० आद (४७८) उसने खाया, **आदतुः** उन दोनोंने खाया, **आदुः** उन्होंने खाया

(५९३) इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् । ७ । २ । ६६ ॥

अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात् ॥

अद् (खाना), ऋ (जाना) और व्येञ् (आच्छादन करना) इन धातुओंसे परे थल्को नित्य इट् हो ।

लि० म० पु० आदिथ तूने खाया, **आदथुः** तुम दोनोंने खाया, **आद** तुमने खाया.
लि० उ० पु० आद मैंने खाया, **आद्व** हम दोनोंने खाया. **आद्म** हमने खाया.
लुट्-प्र० पु० अत्ता वह खायगा, **अत्तारौ** वे दोनों खायँगे, **अत्तारः** वे खांयगे.
लट् प्र० पु० अत्स्यति वह खायगा, **अत्स्यतः** वे दोनों खायंगे, **अत्स्यन्ति** वे खांयगे
लोट् प्र० पु० अत्तु-अत्तात्[455] वह खाय, **अत्ताम्**[47] वे दोनों खांय, **अदन्तु** वे खांय,
लोट् म० पु० अद्+हि[448]

(५९४) हुझल्भ्यो हेर्धिः । ६ । ४ । १०१ ॥

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात् ॥

हु (हवन करना अथवा खाना) तथा झलन्त धातुओंसे परे हिके स्थानमें धि हो ।

म० पु० अद्धि-अत्तात् तू खा, **अत्तम्** तुम दोनों खाओ, **अत्त** तुम सब खाओ.
उ० पु० अदानि **अदाव** **अदाम**
(४५०, ४५१) मैं खाऊँ । ४४६, ४५६) हम दोनों खावें । हम सब खावें.
लङ्-अद्+त् (४५९, ४७९, आद्+त्--

(५९५) अदः सर्वेषाम् । ७ । ३ । १०० ॥

अदः परस्यापृक्तसार्वधातुकस्याट् स्यात्सर्वमतेन ॥

सब व्याकरणाचार्योंके मतसे अद् धातुसे परे अपृक्त सार्वधातुक प्रत्ययको अट् आगम हो (टकारका लोप होकर अ शेष रहा)

प्र० पु० आदत् उसने खाया, **आत्ताम्** उन दोनोंने खाया, **आदन्** उन्होंने खाया.
म० पु० आदः तूने खाया. **आत्तम्** तुम दोनोंने खाया, **आत्त** तुम सबोंने खाया.
उ० पु० आदम् मैंने खाया, **आद्व**[456] हम दोनोंने खाया, **आद्म** हम सबोंने खाया.
लिङ्-प्र० पु० अद्यात्[450, 462] वह खाय, **अद्याताम्** वे दोनों खायँ, **अद्युः** वे खांय.
२ लिङ्-प्र० पु० अद्यात् **अद्यास्ताम्** **अद्यासुः**
ईश्वर करे वह खाय, ईश्वर करे वे दोनों खायँ, ईश्वर करे वे खायँ,

लुङ्-प्र० ए० अद्+त्-

(५९६) लुङ्सनोर्घस्लृँ । २ । ४ । ३७ ॥

अदो घस्लृ स्याल्लुङि सनि च।

लुङ् अथवा सँन्[553] परे रहते अद् धातुके स्थानमें घस्लृ आदेश हो। लृकी इत्संज्ञा लोप। अ (४९८)+घस् (५९६)+च्लि (४७२) के स्थानमें (५४३) सें अ+त्= **अघसत्** उसने खाया. **अघसताम्** उन दोनोंने खाया **अघसन्** उन्होंने खाया.

लृङ्-आत्स्यत्[499] जो वह खाता, **आत्स्यताम्** जो वे दोनों खाते **आत्स्यन्** जो वे खाते.

हन्[1] (हिंसागत्योः) हिंसा और गति ।

लट् प्र० ए० हन्ति वह मारता है। **द्वि०** हन्+त-

(५९७) अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति । ६ । ४ । ३७ ॥

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्याज्झलादौ किति ङिति परे। यमि-रमि-नमि-गमि-हनि-मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः । तनु-क्षणु-क्षिणु-ऋणु-तृणु-घृणु-वनु-मनु-तनोत्यादयः।

यम् (निवृत्ति) तन् (फैलाना) इत्यादि, उपदेश विषे अनुदात्त धातु जो अनुनासिकान्त होवें उनसे परे झलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय आवे तो अनुनासिकका लोप हो। अनुनासिकान्त धातु जो उपदेशमें अनुदात्त (५११) हैं सो नीचे लिखे हैं.

यम् (उपरमे)	निवृत्ति होना	**गम्** (गतौ)	जाना.
रम् (क्रीडायाम्)	क्रीडा करना	**हन्** (हिंसायाम्)	हिंसा करना.
णम् (प्रह्वत्वे)	नमस्कार करना	**मन्** (**मन्य**) (ज्ञाने)	मानना (दिवादि)

तन् आदि अनुनासिकान्त धातु नीचे लिखे हैं.

तन् (**तनु**) (विस्तारे)	विस्तार करना	**तृण्** (**तृणु**) (अदने)	खाना.
क्षण् (**क्षणु**) (हिंसायाम्)	हिंसा करना	**घृण्** (**घृणु**) (दीप्तौ)	चमकना;
क्षिण् (**क्षिणु**) (हिंसायाम्)	मारना	**वन्** (**वनु**) (याचने)	मांगना.
ऋण् (**ऋणु**) (गतौ)	जाना	**मन्** (**मनु**) (अवबोधने)	जानना.

---

१ उपसर्गयोगे-प्रति=प्रतिघात । अभि=आ=अभिघात, आघात । वि=आ-व्याघात। आहतः सन् शूरो रणे शत्रुं प्रतिहन्ति । रणे शूराः शत्रूनभिघ्नन्ति आघ्नन्ति वा । मृषावादी स्वकथितमेव व्याहन्ति ।

२ अनुनासिकान्त जो अनुदात्तोपदेश धातु तथा अनुनासिकान्त जो तनोत्यादि धातु उनका लोप हो और वनधातुका लोप हो झलादि कित्ङित् परे रहते ।

इस सूत्रके अनुसार नकारका लोप होनेसे **हतः** वे दोनों मारते हैं। **घ्नन्ति** (५४१, ३१४, ९५, ९६,) वे मारते हैं.

लट्—म० पु० हंसि	**हथः**	**हथ**
(९९) तू मारता है,	तुम दोनों मारते हो,	तुम मारते हो.

लट्—उ० पु० हन्मि मैं मारता हूँ, **हन्वः** हम दोनों मारते हैं, **हन्मः** हम मारते हैं.
लिट्—प्र० पु० जघान[३३४ ४८९ ४२०] उसने मारा, **जघ्नतुः**[५४१] उन दोनोंने मारा **जघ्नुः** उन्होंने मारा.

(५९८) अभ्यासाच्च[1] । ७ । ३ । ५५ ॥

अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात् ।

अभ्याससे परे हन् धातुके हकारके स्थानमें कवर्ग हो ।

लिट्—म० पु० जघनिथ[५९८], **जघन्थ**[५९७]	**जघ्नथुः**	**जघ्न**
तूने मारा	तुम दोनोंने मारा	तुमने मारा.
लिट्—उ० पु० जघान[४२०], **जघन**[४२१]	**जघ्निव**	(५१९) **जघ्निम**
मैंने मारा	हम दोनोंने मारा	हमने मारा.
लुट्—प्र० पु० हन्ता[५११]	**हन्तारौ**	**हन्तारः**
वह मारेगा	वे दोनों मारेंगे	वे मारेंगे.
लृट्—प्र० पु० हनिष्यति	**हनिष्यतः**	**हनिष्यन्ति.**
वह मारेगा	वे दोनों मारेंगे	वे मारेंगे.
लोट्—प्र० पु० हन्तु[४४४], **हतात्**[४४५]	**हताम्**	**घ्नन्तु**[५४१ ३१४].
वह मारे	वे दोनों मारे	वे मारें

लोट्—म० पु० हन्+हि[४४८]

(५९९) हन्तेर्जः । ६ । ४ । ३६ ॥

हौ परे ॥

हन् धातुसे परे हि आवे तो उसके स्थानमें ज आदेश हो । ज+हि ऐसी स्थितिमें (४४९) से हिका लुक् प्राप्त हुआ—

(६००) असिद्धवदत्राभात् । ६ । ४ । २२ ॥

इत ऊर्ध्वमापादसमाप्तेराभीयं समानाश्रये[2] तस्मिन्कर्तव्ये तदसिद्धम् । इति जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक् ।

१ थलर्थम् , णित्वाभावपक्ष उत्तमणलर्थं चेदम् । अन्यत्र "हो हन्तेः-" इत्येव सिद्धम् ।

२ असिद्धत्वाश्रयशास्त्रसंबन्धिनिमित्तसमुदायान्यूनानतिरिक्ताश्रयकत्वं समानाश्रयत्वम् ।

इस सूत्रके आरम्भसे छठे अध्यायकी कार्यसमाप्तिपर्यन्त जितने सूत्र हैं वे सब आभीय कहे जाते हैं । जिस समय एक आभीयका कार्य किसी निमित्तको मानकर प्रयोगमें हो चुका हो और उसी निमित्तको मानकर उसी प्रयोगमें दूसरे आभीयका कार्य होने लगे तो पहले आभीयका कार्य जो हो चुका है सो असिद्ध माना जाय । (९९९) प्रकृति और हि मानकर ज आदेश हुआ (४४९) से हन्को स्थानिवद्भाव प्राप्त है, ज यह हन्का ही रूप है तो ज प्रकृति और हि प्रत्यय मानकर हिका लोप प्राप्त हुआ है; परन्तु (४९९ और ४४९) यह दोनों आभीय हैं और प्रकृति प्रत्यय दोनोंका आश्रय करते हैं तो समानाश्रय हुए सो ज आदेश जो पहले हो चुका है सो असिद्ध माना गया (४४९) से हिके लुक् होनेका अदन्त रूप निमित्त नहीं है तो हिका लोप भी नहीं होता ।

लोट्–म० पु० जहि तू मार, **हतम्** तुम दोनों मारो **हत** तुम मारो,

हतात्[४५४ ५९७]　ईश्वर करे तू मार.

लोट्–उ० पु० हनानि[४५१] मैं मारूं, **हनाव** हम दोनों मारें **हनाम** हम मारें,
लङ्–प्र पु० अहन्[४५९ १९९] उसने मारा, **अहताम्**[५९७] उन दोनोंने मारा, **अघ्नन्**[५४१ ३१४२६] उन्होंने मारा.
लङ्–म० पु० अहन्[४५९ १९९] तूने मारा, **अहतम्** तुम दोनोंने मारा, **अहत**[५९७] तुम सबोंने मारा.
लङ्–उ० पु० अहनम् मैंने मारा, **अहन्व** हम दोनोंने मारा. **अहन्म** हमने मारा.
लिङ्–प्र० पु० हन्यात्[४६१ ४६२] वह मारे. **हन्याताम्** वे दो मारें, **हन्युः**[४६५] वे मारें.

(६०१) आर्धधातुके । २ । ४ । ३५ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

जिस सूत्रका आर्धधातुक (४३७) प्रत्यय निमित्त हो उसमें प्रसङ्गसे इस सूत्रका अधिकार जाता है, जैसे कि नीचे लिखे (६०२) में–

(६०२) हनो वध लिङि । २ । ४ । ४२ ॥

जब आर्धधातुक संज्ञक लिङ् लाना हो तब हन् धातुके स्थानमें वध आदेश हो (६०१) वध+या+त् **वध्यात्** (३३७) ईश्वर करे वह मारे, **वध्यास्ताम्** ईश्वर करे वे दोनों मारें, **वध्यासुः** ईश्वर करे वे मारें ।

(६०३) लुङि च । २ । ४ । ४३ ॥

वधादेशोऽदन्तः ।

जब लुङ् प्रत्यय करना हो तो हन् धातुके स्थानमें वध आदेश हो । वध आदेश अदन्त है ।

लुङ्-प्र० पु० अवधीत्	**अवधिष्टाम्**	**अवधिषुः**
उसने मारा	उन दोनोंने मारा	उन्होंने मारा.
लृङ्-प्र० पु० अहनिष्यत्	**अहनिष्यताम्**	**अहनिष्यन्**
जो वह मारेगा	जो वे दोनों मारेंगे	जो वे मारेंगे.

यु (मिश्रणामिश्रणयोः) मिलाना और अलग करना,

लट्-प्र० पु० ए० व० यु+अ[५२०]+ति=यु+ति-

(६०४) उतो वृद्धिर्लुकि हलि । ७ । ३ । ८९ ॥

लुग्विषये उतो वृद्धिः पिति हलादौ सार्वधातुके न त्वभ्यस्तस्य ॥

जिसमें लुक्का विषय हो ऐसे धातुके उकारको वृद्धि हो जो हलादिपित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हो परन्तु अभ्यस्तसंज्ञक (जिसमें द्वित्व होता है) को न हो । **युयात् " इह वृद्धिर्न भाष्ये पिच्च ङिन्न ङिच्च पिन्नेति व्याख्यानात् "** [1]।

लट्-प्र० पु० यौति वह मिलाता है,**युतः**वे दोनों मिलाते हैं [२२०]**युवन्ति** वे सब मिलाते हैं.
लट्-म०पु०यौषि[१६९] तू मिलाता है,**युथः**तुम दोनों मिलाते हो, **युथ** तुम सब मिलाते हो.

लट्-उ०	**पु०**	**यौमि**	**युवः**	**युमः**
		मैं मिलाता हूं	हम दोनों मिलाते हैं	हम मिलाते हैं.
लिट्-प्र०	**पु०**	**युयाव**[२०२ २९]	**युयुवतुः**	**युयुवुः**
		उसने मिलाया	उन दोनोंने मिलाया	उन्होंने मिलाया.
लुट्-प्र०	**पु०**	**यविता**[४३४४३]	**यवितारौ**	**यवितारः**
		वह मिलावेगा	वे दोनों मिलावेंगे	वे मिलावेंगे.
लृट्-प्र०	**पु०**	**यविष्यति**	**यविष्यतः**	**यविष्यन्ति**
		वह मिलावेगा	वे दोनों मिलावेंगे	वे मिलावेंगे.

---

१ यहाँ वृद्धि नहीं होती क्योंकि भाष्यमें इस प्रकार व्याख्या की है कि जो पित् है वह स्थानिवद्भावसे अथवा यदागमपरिभाषासे ङित् नहीं होता और जो ङित् है वह स्थानिवद्भाव अथवा यदागमपरिभाषासे पित् नहीं होता ।

लोट्—प्र० पु०　यौतु-युतात[445]　युताम्　युवन्तु
　　वह मिलावेगा　वे दोनों मिलावेंगे　वे मिलावेंगे.

लङ्—प्र० पु०　अयौत्　अयुताम्　अयुवन्[459]
　　उसने मिलाया　उन दोनोंने मिलाया　उन्होंने मिलाया.

१ लिङ्—प्र० पु० युयात्[462] यहां (६०४) से वृद्धि नहीं हुई. इसका कारण यह कि भाष्यमें लेख है कि "जो पित् होताहै, सो ङित् नहीं होता, जो ङित् होता है सो पित् नहीं होता" (४६१) से यासुट् ङित् है तो उसको पित् मान वृद्धिकार्य न हुआ, युयाताम् वे दोनों मिलावें । युयुः (५२८) वे मिलावें ।

२लिङ्—प्र०　पु०　यूयात्[519, 337]　यूयास्ताम्　यूयासुः
　　ईश्वर करे वह मिलावे,ईश्वर करे वे दोनों मिलावें, ईश्वर करे वे मिलावें.

लुङ्—प्र० पु०　अयावीत्[510]　अयाविष्टाम्　अयाविषुः
　　उसने मिलाया　उन दोनोंने मिलाया　उन्होंने मिलाया,

लृङ्—प्र० पु०　अयविष्यत्[434, 344, 291]　अयविष्यताम्　अयविष्यन्
　　जो वह मिलावेगा　जो वे दोनों मिलावेंगे　जो वे मिलावेंगे,

या[1] (प्रापणे) पहुंचना जाना ।

लट्—प्र० पु०　याति　यातः　यान्ति
　　वह जाता है　वे दोनों जाते हैं　वे जाते हैं,

लिट्—प्र० पु०　ययौ[430, 524]　ययतुः　ययुः[525]
　　वह गया　वे दोनों गये　वे गये,

लुट्—प्र० पु० याता　वह जायगा यातारौ वे दोनों जांयगे　यातारः वे जांयगे.
लृट्—प्र० पु० यास्यति वह जायगा यास्यतः वे दोनों जांयगे यास्यन्ति वे जांयगे
लोट्—प्र० पु० यातु　वह जाय　याताम् वे दोनों जांय　यान्तु　वे जांय.
लङ्—प्र० पु० अयात्　वह गया　अयाताम् वे दोनों गये.　अया+झि—

---

१ प्रापणका अर्थ यहाँ गमन है ' ग्रामं याति ' इत्यादि प्रयोगोंमें गमन अर्थका ही भान होता है । उपसर्गयोगे—अनु=अनुयान—अनुगमन । अभि=अभियान जाना समीप जाना । निर्=निर्याण—बाहर जाना । प्रति=प्रतियान—किसीके सामने जाना । इत्यादि ।

(६०८) लङः शाकटायनस्यैव । ३ । ४ । १११ ॥

आदन्तात्परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात् ।

शाकटायनऋषिके मतमें आकारसे परे लङ्के स्थानमें जो झि तिसको जुस् हो ।

अयुः[५३८] (अथवा जुस् न किया तो) अयान्[४२२, २६] वे गये.

लिङ्-प्र० पु० यायात्[४६२] वह जाय, यायाताम् वे दोनों जायँ, यायुः[५३८] वे जांय.

२ लिङ्-प्र० पु० यायात्[३३७] यायास्ताम् यायासुः
ईश्वर करे वह जाय, ईश्वर करे वे दोनों जांय, ईश्वर करे वे जांय.

लुङ्-प्र० पु० अयासीत्[५३१] वह गया, अयासिष्टाम् वे दोनों गये, अयासिषुः वे गये.

लृङ्-प्र० पु० अयास्यत् अयास्यताम् अयास्यन्
जो वह जायगा जो वे दोनों जांयगे जो वे जांयगे.

इसी प्रकार नीचे लिखे धातुओंके रूप जानने ।

वा (गतिगन्धनयोः) जाना और हिंसा ।

भा (दीप्तौ) चमकना.
ष्णा (शौचे) नहाना (स्नान करना)
श्रा (पाके) रांधना (पकाना)
द्रा (कुत्सायां गतौ) कुराह जाना
प्सा (भक्षणे) खाना.
रा (दाने) देना.
ला (आदाने) लेना.
दा (दाप् लवने) काटना.
ख्या (प्रकथने) कहना.

ख्या धातुका प्रयोग केवल सार्वधातुक प्रत्ययमें ही जानना अर्थात् इससे इतने (लट् लोट् लङ् और विधिलिङ्) ही होते हैं.

विद् (ज्ञाने) जानना ।

लट्-प्र० पु० वेत्ति वह जानता है **वित्तः** वे दोनों जानते हैं, **विदन्ति** वे सब जानते हैं.

(६०६) विदो लटो वा । ३ । ४ । ८३ ॥

वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः ॥

विद् धातुसे आगे लट्के परस्मैपदके स्थानमें णल्[४२५] आदि प्रत्यय विकल्प करके हों ।

लट्-प्र० पु० वेद[४८६] वह जानता है, **विदतुः** वे दोनों जानते हैं, **विदुः** वे जानते हैं.
लट्-म० पु० वेत्थ तू जानता है, **विदथुः** तुम दोनों जानते हो, **विद** तुम जानते हो.
लट्-उ० पु० वेद मैं जानता हूं, **विद्व** हम दोनों जानते हैं, **विद्म** हम जानते हैं.

लिट्।

(६०७) उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् । ३ । १ । ३८ ॥

एभ्यो लिटि आम्वा स्यात् । विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न गुणः ॥

उष् दाहे (जलाना) विद ज्ञाने (जानना) और जागृ निद्राक्षये (जागना) इन धातुओंसे परे लिट् आवे तो आम् प्रत्यय विकल्प करके हो। सूत्रमें ' विद् ' धातुको अकारान्त उच्चारण किया है इस कारण जो (४८६) सूत्रसे गुण पाया है सो नहीं होता।

लिट्-प्र० ए० विदाञ्चकार, **विवेद** उसने जाना.

लुट्-प्र० ए० वेदिता वह जानेगा. **लृट्-प्र० ए० वेदिष्यति** वह जानेगा.

लोट्।

(६०८) विदांकुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्[१] । ३ । १ । ४१ ॥

वेत्तेर्लोटि आम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते। पुरुषवचने न विवक्षिते।

विदाङ्कुर्वन्तु, यह प्रयोग किसी सूत्रसे सिद्ध नहीं हो सकता, तो भी शास्त्रोंमें यह प्रयोग देखा जाता है, इस कारण सूत्रकारने यह सिद्धप्रयोग सूत्रमें धर दिया है और यह आशय प्रगट किया है कि, एक पक्षमें ऐसे रूप हों-आशय यह कि विद् धातुसे परे लोट् आवे तो विकल्प करके आम् प्रत्यय हो तथा लघूपधगुण न हो और लोट्का लुक् हो तथा उसके पीछे आम्से कृ धातुका प्रयोग हो और उससे परे लोट् आवे। सूत्रमें विदाङ्कुर्वंतु यह प्र० पु० बहुवचनका रूप लिखा है इससे यह न समझना कि प्रथमपुरुष और बहुवचनमें ही आम् प्रत्यय होता है, दूसरेमें नहीं होता, तात्पर्य यह कि दूसरेमें भी होता है।

(६०९) तनादिकृञ्भ्य उः । ३ । १ । ७९ ॥

तनादेः कृञश्च उः प्रत्ययः स्यात्। शपोऽपवादः ॥

तन् (७२०) आदि धातुसे तथा कृ धातुसे परे उ प्रत्यय हो। शप् (४२०) का अपवाद है।

---

१ क्यों कि ऐसा होता तो भगवान् पाणिनि अपने सूत्रमें इति शब्द न पढते किन्तु पढा है इससे ज्ञात होता है कि-' विदांकुर्वन्तु ' इस जातिके रूप निपातसे हों।

(६१०) अत उत्सार्वधातुके । ६ । ४ । ११० ॥

उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत उत्सार्वधातुके क्ङिति ॥

यदि कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो उ (६०९) प्रत्ययान्त धातुके अकारको उ हो।

लोट्-प्र०पु० विदाङ्करोतु विदाङ्कुरुतात्[445]**, विदाङ्कुरुताम्, विदाङ्कुर्वन्तु.**
वह जाने ईश्वर करे वह जाने, वे दोनों जाने वे जानें.

लोट्-म० पु० विदाङ्कुरु, विदाङ्कुरुतात्[445] **,विदांकुरुतम् , विदांकुरुत.**
तू जाने " तुम दोनों जानों. तुम जानों.

लोट्-उ० पु० विदाङ्करवाणि[421]**, विदाङ्करवाव. विदाङ्करवाम.**
मैं जानूं हम दोनों जानें हम जानें.

जब निपात नहीं किया तो नीचे लिखेके अनुसार रूप हुए.

लोट्-प्र० पु० वेत्तु वित्तात् वह जाने. **वित्ताम्** वे दोनों जानें. **विदन्तु** वे जानें.
लोट्-म० पु० विद्धि, वित्तात् तू जान, **वित्तम्** तुम दोनों जानो, **वित्त** तुम जानें.
लोट्-उ० पु० वेदानि मैं जानूं. **वेदाव** हम दोनों जानें, **वेदाम** हम जानें
लङ्-प्र० पु० अवेत्[459, 486, 122] उसने जाना. **अवित्ताम्** उन दोनोंने जाना, **अविदुः**[48]उन्होंने जाना
लङ्-म० पु० अवेद्+स्--

(६११) दश्च । ८ । २ । ७५ ॥

धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि परे रुर्वा ।

जब कि सिप् परे हो तो धातुके पदान्त दकारके स्थानमें विकल्प करके रु हो । रु में उ-की इत्संज्ञा होकर र् शेष रहा (१११) र्को विसर्ग हुआ---

अवेः[11]**, अवेत्**[162]**, अवेद्** तूने जाना, **अवित्तम्** तुम दोनोंने जाना, **अवित्त** तुमने जाना.
लङ्-उ० पु० अवेदम् मैंने जाना, **अविद्व** हम दोनोंने जाना, **अविद्म** हमने जाना.
लिङ्-प्र० पु० विद्यात् वह जाने, **विद्याताम्** वे दोनों जाने, **विद्युः** वे सब जाने.

२ लिङ्-प्र० पु० विद्यात्	**विद्यास्ताम्**	**विद्यासुः**
ईश्वर करे वह जाने,	ईश्वर करे वे दोनों जानें,	ई० वे सब जानें.
लुङ्-प्र० पु० अवेदीत्	**अवेदिष्टाम्**	**अवेदिषुः**
उसने जाना,	उन दोनोंने जाना,	उन्होंने जाना.
लृङ्-प्र० पु० अवेदिष्यत्	**अवेदिष्यताम्**	**अवेदिष्यन्**
जो वह जाने,	जो वे दोनों जानें,	जो वे जानें.

अस् (भुवि) होना ।

लट्-प्र पु० ए० अस्ति वह है, प्र० **द्वि०** अस्+तः-

(६१२) श्नसोरल्लोपः । ६ । ४ । १११ ॥

श्नस्यास्तेश्चातो लोपः सार्वधातुके क्ङिति ॥

जो सार्वधातुक कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे हो तो (श्नम्) प्रत्ययके तथा अस् धातुके अकारका लोप हो ।

स्तः वे दोनों हैं,　　**सन्ति** वे हैं.

लट्–म० पु० असि[४२] तू है,　**स्थः** तुम दोनों हो,　**स्थ** तुम हो.

लट्–उ० पु० अस्मि मैं हूँ.　**स्वः** हम दोनों हैं,　**स्मः** हम हैं.

लिङ् (विधि) अस्+या+त् (६१२) से अका लोप और नि उपसर्ग लगाया तो–निस्यात्—

(६१३) उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः । ८ । ३ । ८७ ॥

उपसर्गेणः प्रादुसश्चास्तेः सस्य षो यकारेऽचि च परे ॥

उपसर्गमें रहनेवाले इण् प्रत्याहारके वर्ण तथा प्रादुस् अव्ययके आगे जो अस् धातु उसके सकारको षकार हो जब उससे परे यकार वा अच् हो ।

प्र० ए० निष्यात् वह बाहर जाय.

लट्–प्र० ब० प्रनिषन्ति वे बाहर जाते हैं (प्र तथा नि उपसर्ग लगा)

यच्परः किम् ? य् और अच् परे क्यों कहा ? यदि ऐसा न कहते तो **अभिस्तः** (वे दोनों सब प्रकारसे हैं) यहां भी सकारको षकार हो जाता.

(६१४) अस्तेर्भूः ॥ २ । ४ । ५२ ॥

आर्धधातुके परे अस्तेर्भूः ॥

आर्धधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते अस् धातुको भू आदेश हो ।

लिट्–प्र० ए० बभूव वह हुआ. **लुट् प्र० ए० भविता** वह होगा.

लृट्–प्र० ए० भविष्यति वह होगा.

लोट्–प्र० पु० अस्तु, स्तात् वह हो, **स्ताम्** वे दोनों हों **सन्तु** वे हों.

लोट्–म० पु० अस्+हि (४४८)

(६१५) घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च । ६ । ४ । ११९ ॥

घोरस्तेश्च एत्वं स्यात् हौ परे अभ्यासलोपश्च । आभीयत्वेन एत्वस्यासिद्धत्वाद्धेर्धिः । तातङ्पक्षे एत्वं न, परेण तातङा बाधात् ॥

हि परे हुए सन्ते घुसंज्ञक धातु (९६३) तथा अस् धातुको एकार हो और अभ्यासका

लोप भी हो । आभीयत्वसे एत्वके असिद्ध होनेके कारण हिको धि (५९४) होता है और तातङ् पक्षमें एत्व नहीं होता, क्योंकि पर होनेके कारण तातङ् (६१९) से बाध है ।

एधि } तू हो **स्तम्** तुम दोनों हों **स्त** तुम हो.
स्तात् } ईश्वर करे तू हो.

लोट्-उ० पु० असानि मैं हूँ, **असाव**[४६०] हम दोनों हों, **असाम** हम हों,

लङ्-प्र० पु० आसीत्[४१२, ४८०] वह था, **आस्ताम्** वे दोनों थे, **आसन्** वे थे.

लिङ्-प्र० पु० स्यात्[४६२, ४६१] वह हो, **स्याताम्** वे दोनों हों **स्युः** वे हों

२ लिङ्-प्र० पु० भूयात्[६१४] ईश्वर करे वह हो **भूयास्ताम्** ईश्वर करे वे दोनों हों,

भूयासुः ईश्वर करे वे हों.

लुङ्-प्र० पु० अभूत वह था **अभूताम्** वे दोनों थे **अभूवन्** वे थे.

लृङ्-प्र० पु० अभविष्यत् **अभविष्यताम्** **अभविष्यन्**
जो वह होगा जो वे दोनों होंगे जो वे होंगे ।

इण्[१] (गतौ) जाना.

लट्-प्र० पु० एति[४२१] वह जाता है, **इतः**[४३८, ४६] वे दोनों जाते हैं, इ+अन्ति.

(६१६) इणो यण् । ६ । ४ । ८१ ॥

अजादौ प्रत्यये परे ॥

अच् आदिवाले प्रत्यय परे हुऐ सन्ते इण् धातुको यण् हो । **यन्ति** वे जाते हैं.
लिट्-प्र० ए० इ+इ+अ[४३७]-

(६१७) अभ्यासस्यासवर्णे । ६ । ४ । ७८ ॥

अभ्यासस्येवर्णोवर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि ॥

---

१ उपसर्गयोगे-अनु=अनुगमन । यूथपतिमन्वेति सेना । उप=समीप होना । गुरुमुपैति शिष्यः । अभ्युप= स्वीकार और प्राप्ति । धर्मादर्थमभ्युपैति । अधि=स्मरण-मित्रमध्येति संकटे । अति=अतिक्रमण-शठो मर्यादा-मत्येति । अभि-प्र=इच्छा-हितमभिप्रैति जनः । परि=व्याप्ति-विभुः सर्वान् पर्येति । अव=जानना-अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः । उद्=उदय-सूर्यः पूर्वस्यां दिश्युदेति । अभि=सामने जाना-दीपस्याभ्येति शलभः । अप=अलग होना-धर्मादपैति मूर्खः । निर्=निकलना-गृहान्निरेति विरक्तः । वि-परि=उलटा होना-विपत्तावनुकूलमपि सर्वं विपर्येति । इत्यादि ॥

असवर्ण अच् परे हो तो अभ्यासके इवर्ण तथा उवर्णके स्थानमें इयङ् तथा उवङ् आदेश क्रमसे हों । इय्+ऐ (२०२)+अ–ईयाय[४२० २०३] [२९] वह गया,

लिट्–प्र० द्वि० इ+य्+अतुः—

(६१८) दीर्घ इणः किति । ७ । ४ । ६९ ॥

इणोऽभ्यासस्य दीर्घः स्यात् किति लिटि ॥

जब लिट्के स्थानमें हुए कित्[४६७] संज्ञक प्रत्यय परे रहे तो इण् धातुके अभ्यासको दीर्घ हो। **ईयतुः** वे दोनों गये थे. **ईयुः** वे गये थे.

म०	**पु० ईययिथ, इयेथ**[६१८] [५१६ ४२१ १७]	**ईयथुः**	**ईय**
	तू गया	तुम दोनों गये	तुम गये.
लुट्–प्र०	**पु० एता**	**एतारौ**	**एतारः**
	वह जायगा	वे दोनों जांयगे	वे जांयगे.
लृट्–प्र० पु०	**एष्यति**	**एष्यतः**	**एष्यन्ति**
	वह जायगा	वे दोनों जांयगे	वे जांयगे.
लोट्–प्र० पु०	**एतुः, इतात्**	**इताम्**	**यन्तु**
	वह जाय	वे दोनों जांय	वे जांय.
लङ्–प्र० पु०	**ऐत्**[४७९ २१८]	**ऐताम्**	**आयन्**[२९]
	वह गया	वे दोनों गये	वे गये.
लिङ्–प्र० पु०	**इयात्**	**इयाताम्**	**इयुः**
	वह जाय	वे दोनों जांय	वे जांय.
२ लिङ्–प्र० पु०	**ईयात्**[५५१]	**ईयास्ताम्**	**ईयासुः**

ईश्वर करे वह जाय, ईश्वर करे वे दोनों जांय, ईश्वर करे वे जांय.

(६१९) एतेर्लिङि । ७ । ४ । २४ ॥

उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्व आर्धधातुके किति लिङि परे ॥

लिङ्के स्थानमें कित्(४६३।४६७)आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो उपसर्गसे परे इण् धातुके अण् प्रत्याहारको ह्रस्व हो । निर्+ईयात्=निर्+इयात् **निरियात्** ईश्वर करे वह निकले, **उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्** । अभि+ईयात्=**अभीयात्**[१] ईश्वर करे वह जाय ।

---

[१] शंका–' अभीयात् ' यहां पर भी ' एतेर्लिङि ' इस सूत्रसे ह्रस्व होना चाहिये, क्योंकि " अन्तादिवच्च " इस सूत्रसे पूर्वको अन्तवद्भाव माननेसे उपसर्गत्व और परको आदिवद्भाव माननेसे इण् धातुता मौजूद है। समाधान–दोनोंके आश्रयणमें " अन्तादिवच्च " यह सूत्र प्रवृत्त नहीं होता, क्योंकि पूर्व पर और अन्त आदि शब्दोंका परस्पर विरोध है, जैसे दो स्वामियोंका एकही नौकर एकही समयमें भिन्न भिन्न दिशाओंमें कामके लिये कहा हुआ अविरोधार्थी होकर किसीका भी काम नहीं करता।

इस प्रयोगमें भी (९९) से दीर्घ हुआ है (६१९) से ह्रस्व नहीं हो सकता कारण कि किसी कार्यके निमित्त किसी प्रयोगमें पहले और आगेके दोनों भागका आश्रय एक ही कालमें करना पडे तब वह सूत्र नहीं लगता कि एकादेश पूर्व शब्दका अन्त्य और पर शब्दका आदि माना जाय, इस कारणसे अभीयात्के ईकारको उपसर्ग और धातुका अवयव एक ही समय नहीं मान सकते, इस कारण पूर्वपरके स्थानमें जहां एक आदेश हो वहां यह (६१९) विधि नहीं लगता। **अणः किम्** ? अण् प्रत्याहारको ह्रस्व क्यों कहा? सम्+एयात्=**समेयात**, सम्+आ+ईयात् (९१९) इसमें एकार रूप धातु अण् नहीं है इससे ह्रस्व न हुआ.

(६२०) इणो गा लुङि । २ । ४ । ४५ ॥

इणो गा स्यात् लुङि ॥

लुङ् परे हो तो इण् धातुके स्थानमें गा आदेश हो। (४४४) के अनुसार सिच् (४७३) का लुक् हुआ.

प्र० पु० **अगात** वह गया. **अगाताम्** वे दोनों गये. **अगुः** वे गये.
लृङ्-प्र० ए० **ऐष्यत** जो वह जायगा ॥

आत्मनेपद ।

शीङ् (स्वप्ने) सोना

लट्-प्र० ए० शी+त (४११) से ङित् है इस कारण आत्मनेपद प्रत्यय लगा.

(६२१) शीङः सार्वधातुके गुणः । ७ । ४ । २१ ॥

क्ङिति चेत्यस्यापवादः ।

जब सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो शीङ्को गुण हो। यह सूत्र (४६) का अपवाद है. **प्र० पु० शेते**[५४४] वह सोता है, **शयाते**[६२१ २९ ५४४] वे दोनों सोते हैं, शी+झ-

---

१ अति=अतिशय । अतिशायितः । अधि=अधिशय-अधिष्ठान-शय्यामधिशेते । अनु=अनुशय-द्वेष । अनुशते सन्दधीः । सम=संशय-सन्दा ईश्वरं प्रति संशेरते ।

(६२२) शीङो रुट्। ७। १। ६॥

शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः स्यात्॥

शीङ् धातुके आगे झके स्थानमें अत् (५६०) को रुट्का आगम हो। शे+र्+अत्+अ (५६०)+शेरत्+ए=**शेरते** वे सोते हैं.

लट्—म० पु० शेषे तू सोता है, **शयाथे** तुम दोनों सोते हो, **शेध्वे** तुम सोते हो.

लट्—उ० पु० शये मैं सोता हूं, **शेवहे** हम दोनों सोते हैं. **शेमहे** हम सोते हैं.

लिट्—प्र० पु० शिश्ये[430][542] वह सोया **शिश्याते** वे दोनों सोये, **शिश्यिरे**[457] वे सोये.

लुट्—प्र० पु० शयिता[434] वह सोयेगा, **शयितारौ** वे दोनों सोवेंगे **शयितारः** वे सोवेंगे.

लृट्—प्र०पु०शयिष्यते वह सोवेगा,**शयिष्येते** वे दोनों सोवेंगे,**शयिष्यन्ते** वे सोवेंगे.

लोट्—प्र० पु० शेताम्[553] वह सोवे, **शयाताम्** वे दोनों सोवें, **शेरताम्**[622] वे सोवें.

लङ्—प्र० पु० अशेत वह सोया, **अशयाताम्** वे दोनों सोये, **अशेरत**[560][622] वे सोये.

लिङ्—प्र० पु० शयीत[56][464] वह सोये **शयीयाताम्** वे दोनो सोवें **शयीरन्**[557] वे सोवें.

२ लिङ्—प्र० पु० शयिषीष्ट[562] **शयिषीयास्ताम्** **शयिषीरन्**
ईश्वर करे वह सोये, ईश्वर करे वे दोनों सोवें, ईश्वर करे वे सोवें.

लुङ्—प्र० पु० अशयिष्ट[435][474][434] **अशयिषाताम्** **अशयिषत**
वह सोया वे दोनों सोये वे सोये.

लृङ्—प्र० पु० अशयिष्यत[333] **अशयिष्येताम्** **अशयिष्यन्त**
जो वह सोवेगा जो वे दोनों सोवेंगे. जो वे सोवेंगे॥

इ (इङ् अध्ययने) पढना।

इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः।

इङ् तथा स्मरणार्थवाचक इक् धातुके प्रयोगमें सदा अधि उपसर्ग पहले रहता है.

लट्—प्र० अधीते[45] वह पढता है, **अधीयाते**[201][55] वे दोनों पढते हैं, **अधीयते**[260] वे पढते हैं.

लट्—म० अधीषे तू पढता है, **अधीयाथे** तुम दोनों पढते हो, **अधीध्वे** तुम पढते हो.

लट्—उ० अधीये मैं पढता हूं **अधीवहे** हम दोनों पढते हैं, **अधीमहे** हम पढते हैं.

लिट्।

(६२३) गाङ् लिटि। २। ४। ४९॥

इङो गाङ् स्याल्लिटि॥

लिट् परे हुए सन्ते इङ् धातुको गाङ् आदेश हो । गाङ्में गा शेष रहा । अधिगा+

प्र० पु०	**अधिजगे**[४२७, ४३०, ४८९, ५४९] उसने पढा	**अधिजगाते**[४२७] उन दोनोंने पढा	**अधिजगिरे** उन्होंने पढा.
म० पु०	**अधिजगिषे** तूने पढा	**अधिजगाथे** तुम दोनोंने पढा	**अधिजगिध्वे** तुमने पढा.
उ० पु०	**अधिजगे** मैंने पढा	**अधिजगिवहे** हम दोनोंने पढा	**अधिजगिमहे** हमने पढा.

लुट् ।

प्र० पु० **अध्येता**[४४१, २१] वह पढेगा, **अध्येतारौ** वे दोनों पढेंगे, **अध्येतारः** वे पढेंगे.
म० पु० **अध्येतासे** तू पढेगा, **अध्येतासाथे** तुम दोनों पढोगे, **अध्येताध्वे** तुम पढोगे.
उ० पु० **अध्येताहे** मैं पढूंगा, **अध्येतास्वहे** हम दोनों पढेंगे, **अध्येतास्महे** हम पढेंगे.

लृट् ।

प्र० पु० **अध्येष्यते** वह पढेगा. **अध्येष्येते** वे दोनों पढेंगे, **अध्येष्यन्ते** वे पढेंगे.
म० पु० **अध्येष्यसे** तू पढेगा, **अध्येष्येथे** तुम दोनों पढोगे, **अध्येष्यध्वे** तुम पढोगे.
उ० पु० **अध्येष्ये** मैं पढूंगा, **अध्येष्यावहे** हम दोनों पढेंगे, **अध्येष्यामहे** हम पढेंगे.

लोट् ।

प्र० पु० **अधीताम्**[५५३] वह पढे, **अधीयाताम्** वे दोनों पढे, **अधीयताम्**[५६०, २२०, ५५] वे पढें.
म० पु० **अधीष्व**[४४४] तू पढ, **अधीयाथाम्** तुम दोनों पढो, **अधीध्वम्** तुम पढो.
उ० पु० **अध्ययै**[५५४, ५५५, ५५१, २१८, ४२१, ४२१, २९, २१] मैं पढूं, **अध्ययावहै** हम दोनों पढें, **अध्ययामहै** हम पढें.

लङ् ।

प्र०पु० **अध्यैत**[४७१, ११८, २१] उसने पढा **अध्यैयाताम्** उन दोनोंने पढा, **अध्यैयत**[२६०] उन्होंने पढा.
म० पु० **अध्यैथाः** तूने पढा, **अध्यैयाथाम्** तुम दोनोंने पढा, **अध्यैध्वम्** तुमने पढा.
उ० पु० **अध्यैयि** मैंने पढा, **अध्यैवहि** हम दोनोंने पढा, **अध्यैमहि** हमने पढा.

लिङ् ।

प्र० पु०	**अधीयीत**[५५६, ४६२, ४६४, २२०, ५५] वह पढे	**अधीयीयाताम्** वे दोनों पढें	**अधीयीरन्**[५५७] वे पढें.

म० पु० अधीयीथाः	**अधीयीयाथाम्**	**अधीयीध्वम्**
तू पढ	तुम दोनों पढो	तुम पढो.

उ० पु० अधीयीय मैं पढूं, **अधीयीवहि** हम दोनों पढें, **अधीयीमहि** हम पढें.

२ लिङ् ।

प्र० पु०	**अध्येषीष्ट**	**अध्येषीयास्ताम्**	**अध्येषीरन्**
	ईश्वर करे वह पढे	ई० वह दोनों पढें	ई० वे पढें.
म० पु०	**अध्येषीष्ठाः**	**अध्येषीयास्थाम्**	**अध्येषीध्वम्**
	ईश्वर करे तू पढे	ई० तुम दोनों पढो	ई० तुम पढो.
उ० पु०	**अध्येषीय**	**अध्येषीवहि**	**अध्येषीमहि**
	ईश्वर करे मैं पढूं	ई० हम दोनों पढें	ई० हम पढें.

लुङ् ।

(६२४) विभाषा लुङ्लृङोः । २ । ४ । ५० ॥

इङो गाङ् वा स्यात् ॥

लुङ् अथवा लृङ् परे हुए सन्ते इङ् धातुको गाङ् आदेश विकल्प करके हो (६२३)

(६२५) गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् । १ । २ । १ ॥

गाङादेशात्कुटादिभ्यश्च परेऽञ्णितः प्रत्यया ङितः स्युः ।

गा (६२३) तथा कुट् आदि धातुओंसे परे ञित् णित् भिन्न प्रत्यय आवे तो वह प्रत्यय ङित् संज्ञक (४६८) हो ।

(६२६) घुमास्थागापाजहातिसां हलि । ६ । ४ । ६६ ॥

एषामात ईत्स्याद्धलादौ क्ङित्यार्धधातुके ।

घुसंज्ञक (६२३), मा (मापना) ष्ठा (गति मन्द करना), गा (गाना) पा (पीना) हा (ओहाक्) (त्यागना), सो (नाश करना) इन धातुओंसे परे हलादि कित् तथा ङित्, आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो धातुके आकारके स्थानमें ईकार हो । **प्र० पु०**–अधि+अगा+स्+त=**अध्यगीष्ट** अथवा गाङ् आदेश न किया तो–

अध्यैष्ट अध्यगासाताम्, अध्यैषताम्, अध्यगासत, अध्यैषत,
उसने पढा उन दोनोंने पढा उन्होंने पढा.

म० पु० अध्यगीष्ठाः, अध्यैष्ठाः तूने पढा.

अध्यगासाथाम्, अध्यैषाथाम् तुम दोनोंने पढा.

अध्यगीढ्वम् अध्यैढ्वम् तुमने पढा.

उ० पु० अध्यगीषि, अध्यैषि मैं पढा, अध्यगीष्वहि,
अध्यैष्वहि हम दोनोंने पढा, अध्यगीष्महि अध्यैष्महि हमने पढा.

लृङ् ।

प्र० पु०	अध्यगीष्यत[४१४] / अध्यैष्यत	जो वह पढेगा.
	अध्यगीष्येताम् / अध्यैष्येताम्	जो वे दोनों पढेंगे.
	अध्यगीष्यन्त / अध्यैष्यन्त	जो वे पढेंगे.
म० पु०	अध्यगीष्यथाः / अध्यैष्यथाः	जो तू पढेगा.
	अध्यगीष्येथाम् / अध्यैष्येथाम्	जो तुम दोनों पढोगे.
	अध्यगीष्यध्वम् / अध्यैष्यध्वम्	जो तुम पढोगे.
उ० पु०	अध्यगीष्ये / अध्यैष्ये	जो मैं पढूंगा.
	अध्यगीष्यावहि / अध्यैष्यावहि	जो हम दोनों पढेंगे.
	अध्यगीष्यामहि / अध्यैष्यामहि	जो हम पढेंगे.

दुह् (दुहना)

लट् परस्मैपद ।

२७७ ५८७ २५ ४२२
प्र० पु० दोग्धि वह दुहता है, दुग्धः[४६८] वह दोनों दुहते हैं, दुहन्ति वे दुहते हैं ।

४८६।२७७।२७८।२५।९०।१६९
म० पु० धोक्षि तू दुहता है, दुग्धः तुम दोनों दुहते हो, दुग्ध तुम दुहते हो.
उ० पु० दोह्मि मैं दुहता हूं, दुह्वः हम दोनों दुहते हैं दुह्मः हम दुहते हैं.

आत्मनेपद ।

४८६।२७७।९०।५८७।५४४ ५६०
प्र० पु० दुग्धे वह दुहता है, दुहाते वे दोनों दुहते हैं, दुहते वे दुहते हैं.
२७७।२७८।२५।९०।१६९।५३६।४६८ २७७।२७८।२५
म० पु० धुक्षे तू दुहता है, दुहाथे तुम दोनों दुहते हो, धुग्ध्वे तुम दुहते हो.
उ० पु० दुहे मैं दुहता हूँ, दुह्वहे हम दोनों दुहते हैं, दुह्महे हम दुहते हैं.

लिट् परस्मैद ।

प्र० पु० दुदोह[४८६] उसने दुहा, दुदुहतुः उन दोनोंने दुहा, दुदुहुः उन्होंने दुहा.
म० पु० दुदोहिथ तूने दुहा, दुदुहथुः तुम दोनोंने दुहा, दुदुह तुमने दुहा.
उ० पु० दुदोह मैंने दुहा, दुदुहिव हम दोनोंने दुहा, दुदुहिम हमने दुहा.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० दुदुहे[५४२] उसने दुहा, दुदुहाते उन दोनोंने दुहा, दुदुहिरे उन्होंने दुहा.
म० पु० दुदुहिषे तूने दुहा, दुदुहाथे तुम दोनोंने दुहा. दुदुहिढ्वे ध्वे तुमने दुहा.
उ० पु० दुदुहे मैंने दुहा, दुदुहिवहे हम दोनोंने दुहा, दुदुहिमहे हमने दुहा.

लुट् परस्मैपद ।

प्र० पु० दोग्धा[४८६] वह दुहेगा, दोग्धारौ वे दोनों दुहेंगे, दोग्धारः वे दुहेंगे.
म० पु० दोग्धासि तू दुहेगा. दोग्धास्थः तुम दोनों दुहोगे, दोग्धास्थ तुम दुहोगे.
उ० पु० दोग्धास्मि मैं दुहूँगा, दोग्धास्वः हम दोनों दुहेंगे, दोग्धास्मः हम दुहेंगे.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० दोग्धा[४८६] वह दुहेगा दोग्धारौ वे दोनों दुहेंगे, दोग्धारः वे दुहेंगे.
म० पु० दोग्धासे तू दुहेगा दोग्धासाथे तुम दोनों दुहोगे, दोग्धाध्वे तुम दुहोगे.
उ० पु० दोग्धाहे मैं दुहूँगा दोग्धास्वहे हम दोनों दुहेंगे, दोग्धास्महे हम दुहेंगे.

लृट् परस्मैद ।

७।२७८।२५।२०
प्र० पु० धोक्ष्यति वह दुहेगा, धोक्ष्यतः वे दोनों दुहेंगे, धोक्ष्यन्ति वे दुहेंगे.
म० पु० धोक्ष्यसि तू दुहेगा, धोक्ष्यथः तुम दोनों दुहोगे, धोक्ष्यथ तुम दुहोगे.
उ० पु० धोक्ष्यामि मैं दुहूँगा, धोक्ष्यावः हम दोनों दुहेंगे, धोक्ष्यामः हम दुहेंगे.

आत्मनेपद।

प्र० पु० **धोक्ष्यते** वह दुहेगा, **धोक्ष्येते** वे दोनों दुहेंगे, **धोक्ष्यन्ते** वे दुहेंगे.
म० पु० **धोक्ष्यसे** तू दुहेगा, **धोक्ष्येथे** तुम दोनों दुहोगे. **धोक्ष्यध्वे** तुम दुहोगे.
उ० पु० **धोक्ष्ये** मैं दुहूँगा, **धोक्ष्यावहे** हम दोनों दुहेंगे, **धोक्ष्यामहे** हम दुहेंगे.

लोट्।

प्र० पु० **दोग्धु, दुग्धात्**[445][468] वह दुहे, **दुग्धाम्** वे दोनों दुहें, **दुहन्तु** वे दुहें.
म० पु० **दुग्धि, दुग्धात्**[594][445] तू दुह, **दुग्धम्** तुम दोनों दुहो, **दुग्ध** तुम दुहो.
उ० पु० **दोहानि** मैं दुहूँ **दोहाव** हम दोनों दुहें, **दोहाम** हम दुहें.

आत्मनेपद।

प्र० पु० **दुग्धाम्**[53] वह दुहे, **दुहाताम्** वे दोनों दुहें **दुहताम्**[560] वे दुहें.
म० पु० **धुक्ष्व** तू दुह, **दुहाथाम्** तुम दोनों दुहो **धुग्ध्वम्**[277 278 225] तुम दुहो.
उ० पु० **दोहै** मैं दुहूँ; **दोहावहै** हम दोनों दुहें **दोहामहै** हम दुहें.

लङ् परस्मैपद।

प्र० पु० **अधोक्** [486] **ग्**[277] उसने दुहा, **अदुग्धाम्** उन दोनोंने दुहा, **अदुहन्** उन्होंने दुहा.
म० पु० **अधोक् ग्** तूने दुहा, **अदुग्धम्** तुम दोनोंने दुहा, **अदुग्ध** तुमने दुहा.
उ० पु० **अदोहम्** मैंने दुहा, **अदुह्व** हम दोनोंने दुहा, **अदुह्म** हमने दुहा.

आत्मनेपद।

प्र० पु० **अदुग्ध** उसने दुहा, **अदुहाताम्** उन दोनोंने दुहा, **अदुहत** उन्होंने दुहा.
म० पु० **अदुग्धाः** तूने दुहा, **अदुहाथाम्** तुम दोनोने दुहा, **अधुग्ध्वम्**[277 278 25] तुमने दुहा.
उ० पु० **अदुहि** मैंने दुहा, **अदुहावहि** हम दोनोंने दुहा, **अदुहामहि** हमने दुहा.

लिङ्।

प्र० पु० **दुह्यात्** वह दुहे, **दुह्याताम्** वे दोनों दुहें, **दुह्युः** वे दुहें.
म० पु० **दुह्याः** तू दुह, **दुह्यातम्** तुम दोनों दुहो, **दुह्यात** तुम दुहो.
उ० पु० **दुह्याम्** मैं दुहूं **दुह्याव** हम दोनों दुहें, **दुह्याम** हम दुहें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० दुहीत[५५६] वह दुहे, **दुहीयाताम्**[५५६।४६] वे दोनों दुहें, **दुहीरन्** वे दुहें.
म० पु० दुहीथाः तू दुह, **दुहीयाथाम्** तुम दोनों दुहो, **दुहीध्वम्** तुम दुहो.
उ० पु० दुहीय[५५८] मैं दुहूं, **दुहीवहि** हम दोनों दुहें, **दुहीमहि** हम दुहें.

२ लिङ् ।

प्र० पु० दुह्यात् — **दुह्यास्ताम्** — **दुह्यासुः**[४६५]
ईश्वर करे वह दुहे, ईश्वर करे वे दोनों दुहें, ईश्वर करे वे दुहें.
म० पु० दुह्याः — **दुह्यास्तम्** — **दुह्यास्त**
ईश्वर करे तू दुहे, ई० तुम दोनों दुहो, ई० तुम दुहो.
उ० पु० दुह्यासम्[४४७] — **दुह्यास्व** — **दुह्यास्म**
ई० मैं दुहूं, ई० हम दोनों दुहें, ई० हम दुहें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० दुह्+सी+स्[५५६।४६४।५५९]+त–

(६२७) लिङ्सिचावात्मनेपदेषु । १ । २ । ११ ॥

इक्समीपाद्धलः परौ झलादी लिङ् आत्मनेपदपरः सिच्चेत्येतौ कितौ स्तः ॥

इक्के निकट जो हल् उससे परे झलादि लिङ् और आत्मनेपद–परक झलादि सिच् (४७३) ये दोनों कित् होवें । इसमें दुह् अन्तर्गत उके निकट ह् हल् है उससे परे सीयुट् है सो लिङ्का प्रत्यय है तो सीयुट् कित् हुआ (४६८) से दु अन्तर्गत उको लघूपध (४८६) गुण न हुआ.

प्र० पु० धुक्षीष्ट[२७७।२७८।२५।९०।१६९।७८] — **धुक्षीयास्ताम्** — **धुक्षीरन्**
ई० करे वह दुह, ई० वे दोनों दुहें ई० वे दुहें,

म० पु०	धुक्षीष्ठाः ई० करे तू दुहे	धुक्षीयास्थाम् ई० तुम दोनों दुहो	धुक्षीध्वम् ई० तुम दुहो.
उ० पु०	धुक्षीय[558] ई० करे मैं दुहूं	धुक्षीवहि ई० हम दोनों दुहें	धुक्षीमहि ई० हम दुहें.

लुङ परस्मैपद ।

प्र० ए० दुह्+च्लि (४७२)+त्-

(६२८) शल इगुपधादनिटः क्सः । ३ । १ । ४५ ॥

इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः स्यात् ॥

जिस धातुकी उपधामें इक् हो उसके अन्तमें शल् हो और उससे परे अनिट् (५११) च्लि आवे तो च्लिके स्थानमें क्स आदेश हो । अदुह् क्स+त-

प्र० पु०	अधुक्षत् उसने दुहा	अधुक्षताम् उन दोनोंने दुहा	अधुक्षन् उन्होंने दुहा.
म० पु०	अधुक्षः तूने दुहा	अधुक्षतम् तुम दोनोंने दुहा	अधुक्षत तुमने दुहा.
उ० पु०	अधुक्षम् मैंने दुहा	अधुक्षाव[423] हम दोनोंने दुहा	अधुक्षाम हमने दुहा.

आत्मनेपद ।

प्र० ए० दुह्+क्स[628]+त-

(६२९) लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये[1] । ७।३।७३ ॥

एषां क्सस्य लुग्वा स्याद्दन्त्ये तङि ॥

दुह् (दुहना), दिह् (बढना), लिह् (चाटना) और गुह् (ढकना) इन धातुओंके आगे क्सका विकल्प करके लुक् हो-जो अन्तमें दन्तस्थानीय आदि अक्षरवाला आत्मनेपद प्रत्यय परे हो ।

---

१ क्सस्य लुक् सर्वस्य भवति, प्रत्ययादर्शनस्यैव, लुक्त्वात् तस्य च समुदायनिवेशित्वात्, 'क्सस्याचि' इति लोपस्तु अलोऽन्त्यपरिभाषयाऽन्त्यस्यैवेति विज्ञेयम् ।

प्र० पु० अदुग्ध[२७७।२५।५८७] उसने दुहा, वा अधुक्षत[६२८] उसने दुहा[२७७], अधुक्[३२८।३५।९] +क्स+आताम्—

(६३०) क्सस्याचि[६।७] । ७ । ३ । ७२ ॥

अजादौ तङि क्सस्य लोपः ॥

अजादि आत्मनेपद प्रत्यय परे हो तो क्सका लोप हो । (२७) से क्सके अन्त्य अकारका लोप हुआ (६३०, १९९) से क्का लोप स् शेष रहा उसको (१६९) से ष् हुआ—

अधुक्षाताम् उन दोनोंने दुहा, **अधुक्षन्त**[४२२] उन्होंने दुहा.

म० { **अदुग्धाः**[२२९।२७८।५५।५८७] / **अधुक्षथाः** } तूने दुहा { **अधुक्षाथाम्** / तुम दोनोंने दुहा } { **अधुग्ध्वम्**[५२९] / **अधुक्षध्वम्** } तुमने दुहा.

उ० **अधुक्षि** मैंने दुहा, **अदुह्वहि अधुक्षावहि**[४२३] हम दोनोंने दुहा, **अधुक्षामहि** हमने दुहा.

लृङ् परस्मैपद ।

प्र० पु० **अधोक्ष्यत्**[४३६।९।४८६।३७।७७८।२५।९०]	**अधोक्ष्यताम्**	**अधोक्ष्यन्**
जो वह दुहै	जो वे दोनों दुहें	जो वे दुहें,
म० पु० **अधोक्ष्यः**	**अधोक्ष्यतम्**	**अधोक्ष्यत**
जो तू दुहै	जो तुम दोनों दुहो	जो तुम दुहो.
उ०पु० **अधोक्ष्यम्**	**अधोक्ष्याव**	**अधोक्ष्याम**
जो मैं दुहूं	जो हम दोनों दुहें	जो हम दुहें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **अधोक्ष्यत**	**अधोक्ष्येताम्**	**अधोक्ष्यन्त**
जो वह दुहे	जो वे दोनों दुहें	जो वे दुहें.
म० पु० **अधोक्ष्यथाः**	**अधोक्ष्येथाम्**	**अधोक्ष्यध्वम्**
जो तू दुहे	जो तुम दोनों दुहो	जो तुम दुहो

उ० पु० अधोक्ष्ये	अधोक्ष्यावहि	अधोक्ष्यामहि
जो मैं दुहूं	जो हम दोनों दुहें	जो हम दुहें.

दिह् धातुके रूप दुहके समान जानने ।

लिह् (आस्वादने) चाटना ।

लट् परस्मैपद ।

प्र० पु० **लेढि** [४८६] वह [२७६] चाटता [३८७।७८०] है, [५८८] **लीढः** [१३१] वे दोनों चाटते हैं, **लिहन्ति** वे चाटते हैं.
म० पु० **लेक्षि** [२७३ ५८६ १६९] तू चाटता है, **लीढः** तुम दोनों चाटते हो, **लीढ** तुम चाटते हो.
उ० पु० **लेह्मि** मैं चाटता हूं, **लिह्वः** हम दोनों चाटते हैं, **लिह्मः** हम चाटते हैं.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **लीढे** [५४४] वह चाटता है, **लिहाते** वे दोनों चाटते हैं, **लिहते** [५६०] [४४] वे चाटते हैं.
म० पु० **लिक्षे** तू चाटता है, **लिहाथे** तुम दोनों चाटते हो, **लीढ्वे** तुम चाटते हो.
उ० पु० **लिहे** मैं चाटता हूं, **लिह्वहे** हम दोनों चाटते हैं, **लिह्महे** हम चाटते हैं.

लिट् परस्मैपद ।

प्र० पु० **लिलेह** उसने चाटा, **लिलिहतुः** उन दोनोंने चाटा, **लिलिहुः** उन्होंने चाटा,
म० पु० **लिलेहिथ** तूने चाटा, **लिलिहथुः** तुम दोनोंने चाटा, **लिलिह** तुमने चाटा.
उ० पु० **लिलेह** मैंने चाटा, **लिलिहिव** हम दोनोंने चाटा, **लिलिहिम** हमने चाटा.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **लिलिहे** उसने चाटा. **लिलिहाते** उन दोनोंने चाटा, **लिलिहिरे** उन्होंने चाटा.
म० पु० **लिलिहिषे** [१६९] तूने चाटा, **लिलिहाथे** तुम दोनोंने चाटा, **लिलिहिढ्वेध्वे** तुमने चाटा.
उ० पु० **लिलिहे** मैंने चाटा. **लिलिहिवहे** हम दोनोंने चाटा, **लिलिहिमहे** हमने चाटा,

लुट् परस्मैपद ।

प्र० पु० **लेढा** वह चाटेगा, **लेढारौ** वे दोनों चाटेंगे, **लेढारः** वे चाटेंगे
म० पु० **लेढासि** तू चाटेगा, **लेढास्थः** तुम दोनों चाटोगे, **लेढास्थ** तुम चाटोगे
उ० पु० **लेढास्मि** मैं चाटूंगा, **लेढास्वः** हम दोनों चाटेंगे **लेढास्मः** हम चाटेंगे.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० लेढा वह चाटेगा, **लेढारौ** वे दोनों चाटेंगे, **लेढारः** वे चाटेंगे.
म० पु० लेढासे तूं चाटेगा, **लेढासाथे** तुम दोनों चाटोगे, **लेढाध्वे** तुम चाटोगे.
उ० पु० लेढाहे मैं चाटूंगा, **लेढास्वहे** हम दोनों चाटेंगे, **लेढास्महे** हम चाटेंगे.

लृट् परस्मैपद ।

प्र० पु० लेक्ष्यति वह चाटेगा, **लेक्ष्यतः** वे दोनों चाटेंगे, **लेक्ष्यन्ति** वे चाटेंगे.
म० पु० लेक्ष्यसि तू चाटेगा, **लेक्ष्यथः** तुम दोनों चाटोगे, **लेक्ष्यथ** तुम चाटोगे.
उ० पु० लेक्ष्यामि मैं चाटूंगा, **लेक्ष्यावः** हम दोनों चाटेंगे, **लेक्ष्यामः** हम चाटेंगे.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० लेक्ष्यते वह चाटेगा, **लेक्ष्येते** वे दोनों चाटेंगे, **लेक्ष्यन्ते** वे चाटेंगे.
म० पु० लेक्ष्यसे तू चाटेगा, **लेक्ष्येथे** तुम दोनों चाटोगे, **लेक्ष्यध्वे** तुम चाटोगे.
उ० पु० लेक्ष्ये मैं चाटूंगा, **लेक्ष्यावहे** हम दोनों चाटेंगे, **लेक्ष्यामहे** हम चाटेंगे.

लोट् परस्मैपद ।

प्र० पु० लेढु[४४४]**, लीढात्**[४४५ ४६] वह चाटे, **लीढाम्**[४४७] वे दोनों चाटें, **लिहन्तु** वे चाटें.
म० पु लीढि[४४८ २७६ ७४]**, लीढात्**[९८ ४४५ १३२] तू चाट, **लीढम्**[४४७] तुम दोनों चाटो, **लीढ** तुम चाटो.
उ० पु० लेहानि मैं चाटूं, **लेहाव** हम दोनों चाटें, **लेहाम** हम चाटें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० लीढाम्[५५३] वह चाटे, **लिहाताम्** वे दोनों चाटें, **लिहताम्** वे चाटें.
म० पु० लिक्ष्व तू चाट, **लिहाथाम्** तुम दोनों चाटो, **लीढ्वम्** तुम चाटो.
उ० पु० लेहै मैं चाटूं **लेहावहै** हम दोनों चाटें, **लेहामहै** हम चाटें.

लङ् परस्मैपद ।

प्र०पु०अलेट्-अलेड्[३७८ ११९ १६५]उसने चाटा,**अलीढाम्** उन दोनोंने चाटा,**अलिहन्** उन्होंने चाटा.
म० पु० अलेट्-ड् तूने चाटा, **अलीढम्** तुम दोनोंने चाटा, **अलीढ** तुमने चाटा.
उ० पु० अलेहम् मैंने चाटा, **अलिह्व** हम दोनोंने चाटा, **अलिह्म** हमने चाटा.

आत्मनेपद ।

प्र० **अलीढ** उसने चाटा, **अलिहाताम्** उन दोनोंने चाटा, **अलिहत** उन्होंने चाटा.
म० **अलीढाः** तूने चाटा, **अलिहाथाम्** तुम दोनोंने चाटा, **अलीढ्वम्** तुमने चाटा.
उ० **अलिहि** मैंने चाटा, **अलिह्वहि** हम दोनोंने चाटा, **अलिह्महि** हमने चाटा.

लिङ् परस्मैपद ।

प्र० पु० **लिह्यात्** वह चाटे, **लिह्याताम्** वे दोनों चाटें, **लिह्युः** वे चाटें.
म० पु० **लिह्याः** तू चाट, **लिह्यातम्** तुम दोनों चाटो, **लिह्यात** तुम चाटो.
उ० पु० **लिह्याम्** मैं चाटूं, **लिह्याव** हम दोनों चाटें, **लिह्याम** हम चाटें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **लिहीत** वह चाटे, **लिहीयाताम्** वे दोनों चाटें, **लिहीरन्** वे चाटें.
म० पु० **लिहीथाः** तू चाट, **लिहीयाथाम्** तुम दोनों चाटो, **लिहीध्वम्** तुम चाटो.
उ० पु० **लिहीय** मैं चाटूं, **लिहीवहि** हम दोनों चाटें, **लिहीमहि** हम चाटें.

२ लिङ् ।

प्र० पु० **लिह्यात्** ईश्वर करे वह चाटे, **लिह्यास्ताम्** ई० दोनों चाटें, **लिह्यासुः** ई० वे चाटें.

म० पु० **लिह्याः** ईश्वर करे तू चाट, **लिह्यास्तम्** ई० तुम दोनों चाटो, **लिह्यास्त** ई० तुम चाटो.

उ० पु० **लिह्यासम्** ईश्वर करे मैं चाटूं, **लिह्यास्व** ई० हम दोनों चाटें, **लिह्यास्म** ई० हम चाटें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **लिक्षीष्ट** ई० वह चाटे, **लिक्षीयास्ताम्** ई० वे दोनों चाटें, **लिक्षीरन्** ई० वे चाटें.

म० पु० **लिक्षीष्ठाः**	**लिक्षीयास्थाम्**	**लिक्षीध्वम्**
ई० तू चाट,	ई० तुम दोनों चाटो,	ई० तुम चाटो.
उ० पु० **लिक्षीय**	**लिक्षीवहि**	**लिक्षीमहि**
ई० मैं चाटूं	ई० हम दोनों चाटें,	ई० हम चाटें.

लुङ् परस्मैपद ।

६२८।२७६।२८६

प्र० पु० **अलिक्षत्** उसने चाटा, **अलिक्षताम्** उन दोनोंने चाटा **अलिक्षन्** उन्होने चाटा.
म० पु० **अलिक्षः** तूने चाटा. **अलिक्षतम्** तुम दोनोंने चाटा **अलिक्षत** तुमने चाटा.
उ० पु० **अलिक्षम्** मैंने चाटा, **अलिक्षाव** हम दोनोंने चाटा, **अलिक्षाम** हमने चाटा.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **अलिक्षत[६३०], अलीढ**	**अलिक्षाताम्**	**अलिक्षत**
उसने चाटा	उन दोनोंने चाटा	उन्होंने चाटा.
म० पु० **अलिक्षथाः, अलीढाः ।**	**अलिक्षाथाम् ।**	**अलीढ्वम् , अलिक्षध्वम् ।**
तूने चाटा	तुम दोनोंने चाटा	तुमने चाटा.
उ० पु० **अलिक्षि अलिह्वहि**	**अलिक्षावहि**	**अलिक्षामहि ।**
मैंने चाटा	हम दोनोंने चाटा	हमने चाटा.

लृङ् परस्मैपद ।

प्र० पु० **अलेक्ष्यत्**	**अलेक्ष्यताम्**	**अलेक्ष्यन्**
जो वह चाटे	जो वे दोनों चाटें	जो वे चाटें.
म० पु० **अलेक्ष्यः**	**अलेक्ष्यतम्**	**अलेक्ष्यत**
जो तू चाटे	जो तुम दोनों चाटो	जो तुम चाटो.
उ० पु० **अलेक्ष्यम्**	**अलेक्ष्याव**	**अलेक्ष्याम**
जो मैं चाटूं	जो हम दोनों चाटें	जो हम चाटें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **अलेक्ष्यत**	**अलेक्ष्येताम्**	**अलेक्ष्यन्त**
जो वह चाटे	जो वे दोनों चाटें	जो वे चाटें.
म० पु० **अलेक्ष्यथाः**	**अलेक्ष्येथाम्**	**अलेक्ष्यध्वम्**
जो तू चाटे	जो तुम दोनों चाटो	जो तुम चाटो.

उ० पु० **अलेक्ष्ये** जो मैं चाटूं **अलेक्ष्यावहि** जो हम दोनों चाटें **अलेक्ष्यामहि** जो हम चाटें.

ब्रू (ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि) बोलना ।

(६३१) ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः । ३ । ४ । ८४ ॥

ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाहादेशः ॥

ब्रूसे परे लट्के स्थानमें जो पांच तिप् आदि प्रत्यय हैं उनके स्थानमें विकल्प करके णल् आदि (४२९) पांच आदेश हों और ब्रूको आह आदेश हो ।

लट् परस्मैपद ।

प्र० पु० आह वह बोलता है **आहतुः** वे दोनों बोलते हैं, **आहुः** वे बोलते हैं.
म० पु० आह्+थ-

(६३२) आहस्थः । ८ । २ । ३५ ॥

झलि परे ॥

झल् प्रत्याहार परे हुए सन्ते आह् (६३१) के स्थानमें थकार हो । (२७) से आह्के हकारके स्थानमें थकार हुआ । आथ्+(९०) थ्को तकार हुआ **आत्थ** तू बोलता है, **आहथुः** तुम दोनो बोलते हो ॥

(६३१) विधि नहीं की तो **प्र० ए०** ब्रू+ति-

(६३३) ब्रुव ईट् । ७ । ३ । ९३ ॥

ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात् ॥

ब्रूधातुसे परे हलादि पित्संज्ञक प्रत्यय आवे तो पित्को ईट्का आगम हो । ब्रू+ई+ति-

प्र० पु० ब्रवीति [४२१ २२ ६३] वह बोलता है, **ब्रूतः** वे दोनों बोलते हैं, **ब्रुवन्ति** [२२०] वे बोलते हैं.
म० पु० ब्रवीषि तू बोलता है, **ब्रूथः** तुम दोनों बोलते हो, **ब्रूथ** तुम बोलते हो.
उ० पु० ब्रवीमि मैं बोलता हूं, **ब्रूवः** हम दोनों बोलते हैं **ब्रूमः** हम सब बोलते हैं.

---

१ अत्र " ब्रुव ईट् " इति सूत्रेणेडागमस्तु नैव भवति झलि परे थत्वविधानादिति बोध्यम् ।

२ अत्र सार्वधातुकस्य इत्यपि बोध्यम्, तेन उवक्थ इत्यत्र नेट् ।

आत्मनेपद।

प्र० **ब्रूते**[५४४] वह बोलता है, **ब्रुवाते**[२२०] वे दोनों बोलते हैं, **ब्रुवते**[५] वे बोलते हैं.
म० **ब्रूषे** तू बोलताहै, **ब्रुवाथे** तुम दोनों बोलते हो, **ब्रूध्वे** तुम बोलते हो.
उ० **ब्रुवे**[४२०] मैं बोलता हूं **ब्रूवहे** हम दोनों बोलते हैं **ब्रूमहे** हम बोलते हैं.

लिट् परस्मैपद।

(६३४) ब्रुवो वचिः। २। ४। ५३॥

आर्धधातुके परे ब्रुवो वच् आदेशः स्यात्॥

आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तो ब्रू धातुके स्थानमें वच् आदेश हो। वच्+अ–

४३३ ४२० ४२२ ५८४ २८३ ४९०
प्र० पु० **उवाच** वह बोला, **ऊचतुः** वे दोनों बोले, **ऊचुः** वे बोले.
म० पु० **उवचिथ**[५१८], **उवक्थ**[३३३ ५०७] तू बोला, **ऊचथुः** तुम दोनों बोले **ऊच** तुम बोले.
उ० पु० **उवाच**[४२०], **उवच**[४२१] मैं बोला, **ऊचिव** हम दोनों बोले, **ऊचिम** हम बोले.

आत्मनेपद।

प्र० पु० **ऊचे**[५८५ ५४९] वह बोला **ऊचाते** वे दोनों बोले, **ऊचिरे** वे बोले.
म० पु० **ऊचिषे** तू बोला, **ऊचाथे** तुम दोनों बोले, **ऊचिध्वे** तुम बोले.
उ० पु० **ऊचे** मैं बोला, **ऊचिवहे** हम दोनों बोले **ऊचिमहे** हम बोले.

लुट् परस्मैपद।

प्र० पु० **वक्ता**[३३३] वह बोलेगा, **वक्तारौ** वे दोनों बोलेंगे **वक्तारः** वे बोलेंगे.
म० पु० **वक्तासि** तू बोलेगा, **वक्तास्थः** तुम दोनों बोलोगे, **वक्तास्थ** तुम बोलोगे.
उ० पु० **वक्तास्मि** मैं बोलूंगा, **वक्तास्वः** हम दोनों बोलेंगे. **वक्तास्मः** हम बोलेंगे.

आत्मनेपद।

प्र० पु० **वक्ता** वह बोलेगा, **वक्तारौ** वे दोनों बोलेंगे, **वक्तारः** वे बोलेंगे.
म० पु० **वक्तासे** तू बोलेगा, **वक्तासाथे** तुम दोनों बोलोगे, **वक्ताध्वे** तुम बोलोगे.
उ० पु० **वक्ताहे** मैं बोलूंगा, **वक्तास्वहे** हम दोनों बोलेंगे, **वक्तास्महे** हम बोलेंगे,

लृट् परस्मैपद।

प्र० पु० **वक्ष्यति** वह बोलेगा **वक्ष्यतः** वे दोनों बोलेंगे, **वक्ष्यन्ति** वे बोलेंगे.
म० पु० **वक्ष्यसि** तू बोलेगा, **वक्ष्यथः** तुम दोनों बोलोगे, **वक्ष्यथ** तुम बोलोगे.
उ० पु० **वक्ष्यामि** मैं बोलूंगा, **वक्ष्यावः** हम दोनों बोलेंगे, **वक्ष्यामः** हम बोलेंगे.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **वक्ष्यते** वह बोलेगा, **वक्ष्येते** वे दोनों बोलेंगे, **वक्ष्यन्ते** वे बोलेंगे.
म० पु० **वक्ष्यसे** तू बोलेगा, **वक्ष्येथे** तुम दोनों बोलोगे, **वक्ष्यध्वे** तुम बोलोगे.
उ० पु० **वक्ष्ये** मैं बोलूंगा, **वक्ष्यावहे** हम दोनों बोलेंगे, **वक्ष्यामहे** हम बोलेंगे.

लोट् परस्मैपद ।

प्र० पु० **ब्रवीतु**[६३२], **ब्रूतात्**[४४४] वह बोले, **ब्रूताम्** वे दोनों बोलें, **ब्रुवन्तु**[३२०] वे बोलें.
म० पु० **ब्रूहि ब्रूतात्** तू बोल, **ब्रूतम्** तुम दोनों बोलो **ब्रूत** तुम बोलो.
उ० पु० **ब्रवाणि** मैं बोलूं, **ब्रवाव** हम दोनों बोलें, **ब्रवाम** हम बोलें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **ब्रूताम्** वह बोले, **ब्रुवाताम्** वे दोनों बोलें, **ब्रुवताम्** वे बोलें.
म० पु० **ब्रूष्व** तू बोल, **ब्रुवाथाम्** तुम दोनों बोलो, **ब्रूध्वम्** तुम बोलो.
उ० पु० **ब्रवै**[५५५] मैं बोलूं, **ब्रवावहै** हम दोनों बोलें, **ब्रवामहै** हम बोलें.

लङ् परस्मैपद ।

प्र० पु० **अब्रवीत्** वह बोला. **अब्रूताम्** वे दोनों बोले, **अब्रुवन्** वे बोले.
म० पु० **अब्रवीः** तू बोला, **अब्रूतम्** तुम दोनों बोले, **अब्रूत** तुम बोले.
उ० पु० **अब्रवम्** मैं बोला, **अब्रूव** हम दोनों बोलें, **अब्रूम** हम बोले.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **अब्रूत** वह बोला, **अब्रुवाताम्** वे दोनों बोले, **अब्रुवत** वे बोले.
म० पु० **अब्रूथाः** तू बोला, **अब्रुवाथाम्** तुम दोनों बोले, **अब्रूध्वम्** तुम बोले.
उ० पु० **अब्रुवि** मैं बोला, **अब्रूवहि** हम दोनों बोले, **अब्रूमहि** हम बोले.

(विधि) लिङ् परस्मैपद ।

प्र० पु० **ब्रूयात्** वह बोले, **ब्रूयाताम्** वे दोनों बोलें, **ब्रूयुः** वे सब बोलें.
म० पु० **ब्रूयाः** तू बोल, **ब्रूयातम्** तुम दोनों बोलो, **ब्रूयात** तुम बोलो.
उ० पु० **ब्रूयाम्** मैं बोलूं, **ब्रूयाव** हम दोनों बोलें, **ब्रूयाम** हम बोलें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० ब्रुवीत[५६] वह[४६४२२] बोले, **ब्रुवीयाताम्** वे दोनों बोलें, **ब्रुवीरन्** वे बोलें.
म० पु० ब्रुवीथाः तू बोल. **ब्रुवीयाथाम्** तुम दोनों बोलो, **ब्रुवीध्वम्** तुम बोलो.
उ० पु० ब्रुवीय मैं बोलूं, **ब्रुवीवहि** हम दो बोलें, **ब्रुवीमहि** हम बोलें.

आशीर्लिङ् परस्मैपद ।

प्र०पु०उच्यात्[६३४६८५] ई० करे वह बोले, **उच्यास्ताम्** ई०वे दो बोलें, **उच्यासुः** ई०वे सब बोलें.
म० पु० उच्याः ई० तू बोल, **उच्यास्तम्** ई० तुम दोनों बोलो, **उच्यास्त** ई०तुम बोलो.
उ० पु० उच्यासम् ई० मैं बोलूं, **उच्यास्व** ई० हम दोनों बोलें **उच्यास्म** ई०हम बोलें.

आत्मनेपद ।

प्र०पु० वक्षीष्ट[५५६।५५] ई० वह बोले, **वक्षीयास्ताम्** ई०वे दो बोलें, **वक्षीरन्** ई०वे बोलें.
म०पु० वक्षीष्ठाः ई०तू बोल, **वक्षीयास्थाम्** ई०तुम दो बोलो, **वक्षीध्वम्** ई०तुम बोलो.
उ०पु० वक्षीय ई० मैं बोलूं **वक्षीवहि** ई० हम दो बोलें, **वक्षीमहि** ई० हम बोलें.

लुङ् परस्मैपद ।

प्र० ए० अवच्+च्लि=त्

(६३५) अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् । ३ । १ । ५२ ॥

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् ॥

अस् (उ) फेंकना), वच् (बोलना), ख्या (कहना) इन धातुओंसे परे च्लि (४७२) को अङ् आदेश हो ।

अ+वच्+अ (अङ्)+त्–

(६३६) वच उम् । ७ । ४ । २० ॥

अङि परे ।

अङ् (६३५) परे हुए सन्ते वच् धातुको उम्का आगम हो (२६९) से उम् मित् है सो वच्के व अन्तर्गत अकारके आगे हुआ, अ+व+उच्+अ+त्–गुण–

प्र० पु० अवोचत् वह बोला **अवोचताम्** वे दोनों बोले, **अवोचन्** वे बोले.
म० पु० अवोचः तू बोला **अवोचतम्** तुम दोनों बोले, **अवोचत** तुम बोले.
उ० पु० अवोचम् मैं बोला **अवोचाव** हम दोनों बोले, **अवोचाम** हम बोले.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० अवोचत वह बोला, **अवोचेताम्** वे दोनों बोले, **अवोचन्त** वे बोले.
म० पु० अवोचथाः तू बोला, **अवोचेथाम्** तुम दोनों बोले, **अवोचध्वम्** तुम बोले.
उ० पु० अवोचे मैं बोला, **अवोचावहि** हम दोनों बोले, **अवोचामहि** हम बोले.

लृङ् परस्मैपद ।

प्र० पु०	अवक्ष्यत जो वह बोले,	अवक्ष्यताम् जो वे दोनों बोलें,	अवक्ष्यन् जो वे बोलें,
म० पु०	अवक्ष्यः जो तू बोले,	अवक्ष्यतम् जो तुम दोनों बोलो,	अवक्ष्यत जो तुम बोलो.
उ० पु०	अवक्ष्यम् जो मैं बोलूं	अवक्ष्याव जो हम दोनों बोलें,	अवक्ष्याम जो हम बोलें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	अवक्ष्यत जो वह बोले,	अवक्ष्येताम् जो वे दोनों बोलें,	अवक्ष्यन्त जो वे बोलें.
म० पु०	अवक्ष्यथाः जो तू बोले	अवक्ष्येथाम् जो तुम दोनों बोलो,	अवक्ष्यध्वम् जो तुम सब बोलो.
उ० पु०	अवक्ष्ये जो मैं बोलूं,	अवक्ष्यावहि जो हम दोनों बोलें,	अवक्ष्यामहि जो हम बोलें.

ऊर्णुञ् (आच्छादने) ढकना ।

(६३७) चर्करीतं च ॥

चर्करीतमिति यङ्लुगन्तं तददादौ बोध्यम् ॥

' चर्करीतम् ' यह रूप यङ्लुगन्त क्र धातुका है, इसकी गणना अदादिगणमें है । धातुमात्र का उपलक्षण है जिस किसी धातुसे परे यङ् (७९९, ७६६) प्रत्यय होकर उसका लोप किया गया हो तथा आदिवर्णको द्वित्व हुए हों. उसकी भी गणना अदादिगणमें करनी ।

(६३८) ऊर्णोतेर्विभाषा । ७ । ३ । ९० ॥

वा वृद्धिः स्याद्धलादौ पिति सार्वधातुके ।

हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो ऊर्णु धातुको विकल्प करके वृद्धि हो ।

प्र० पु०	ऊर्णौति, [६३८ २७] ऊर्णोति[४००] वह ढकता है,	ऊर्णुतः वे दो ढकते हैं,	ऊर्णुवन्ति[३३] वे ढकते हैं.
म० पु०	ऊर्णौषि, ऊर्णोषि तू ढकता है,	ऊर्णुथः तुम दोनों ढकते हो.	ऊर्णुथ तुम ढकते हो

उ० पु० ऊर्णौमि, ऊर्णोमि ऊर्णुवः ऊर्णुमः
मैं ढकता हूँ, हम दोनों ढकते हैं, हम ढकते हैं.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **ऊर्णुते** वह ढकता है, **ऊर्णुवाते**[२२०] वे दोनों ढकते हैं **ऊर्णुवते** वे ढकते हैं.
म० पु० **ऊर्णुषे** तू ढकता है, **ऊर्णुवाथे** तुम दोनों ढकते हो **ऊर्णुध्वे** तुम ढकते हो.
उ० पु० **ऊर्णुवे** मैं ढकता हूं, **ऊर्णुवहे** हम दोनों ढकते हैं **ऊर्णुमहे** हम ढकते हैं.

लिट् ।

प्र० पु० ए० ऊर्णु+अ-

(६३९) ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम् ॥

ऊर्णु धातुको (५४७) से जो आम् प्राप्त होता है सो न हो । (४२७) ऊर्णुके रेफको द्वित्व प्राप्त हुआ परन्तु--

(६४०) न न्द्राः संयोगादयः । ६ । १ । ३ ॥

अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति ॥

अच्से परे संयोगके आदिमें न् द् अथवा र् आवें तो उन्हें द्वित्व न हो । इस कारण णुको ही द्वित्व हुआ (४९३) से णु नु हुआ-

प्र० पु० **ऊर्णुनाव**[२२९] उसने ढका, **ऊर्णुनुवतुः**[२३०] उन दोनोंने ढका, **ऊर्णुनुवुः** उन्होंने ढका

(६४१) विभाषोर्णोः । १ । २ । ३ ॥

इडादिप्रत्ययो वा ङित्स्यात् ॥

जिस प्रत्ययके पहले इट् हो वह प्रत्यय जब ऊर्णु धातुसे परे आवे तब उसे ङित्त्व (४६८) विकल्प करके हो ।

म० पु० **ऊर्णुनुविथ**[२२९], **ऊर्णुनविथ**[४३५] तूने ढका, **ऊर्णुनुवथुः** तुम दो० **ऊर्णुनुव** तुमने०
उ० पु० **ऊर्णुनाव**, **ऊर्णुनव**, **ऊर्णुनुविव** **ऊर्णुनुविम**
मैंने ढका, हम दोनोंने ढका, हमने ढका.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **ऊर्णुनुवे** **ऊर्णुनुवाते** **ऊर्णुनुविरे**
उसने ढका. उन दोनोंने ढका, उन्होंने ढका.
म० पु० **ऊर्णुनुविषे** **ऊर्णुनुवाथे** **ऊर्णुनुविढ्वे** **ऊर्णुनुविध्वे**
तूने ढका, तुम दोनोंने ढका, तुमने ढका.
उ० पु० **ऊर्णुनुवे** मैंने ढका, **ऊर्णुनुविवहे** हम दोनोंने ढका, **ऊर्णुनुविमहे**, हमने ढका.

---

१ उपदेशे नकार एवासीत् णत्वं तु पश्चात् ' रषाभ्याम् ' इति सूत्रेण जातं तच्च द्वित्वविधायकसूत्रदृष्ट्या असिद्धमिति नुशब्दस्यैव द्वित्वं भवतीति बोध्यम् ।

लुट् परस्मैपद ।

(वह ढकेगा इत्यादि *)

प्र० पु० ऊर्णुविता,	ऊर्णविता ।
ऊर्णुवितारौ,	ऊर्णवितारौ ।
ऊर्णुवितारः,	ऊर्णवितारः ।
म० पु० ऊर्णुवितासि,	ऊर्णवितासि ।
ऊर्णुवितास्थः,	ऊर्णवितास्थः ।
ऊर्णुवितास्थ,	ऊर्णवितास्थ ।
उ० पु० ऊर्णुवितास्मि,	ऊर्णवितास्मि ।
ऊर्णुवितास्वः,	ऊर्णवितास्वः ।
ऊर्णुवितास्मः,	ऊर्णवितास्मः ।

आत्मनेपद ।

(वह ढकेगा इत्यादि)

प्र० पु० ऊर्णुविता,	ऊर्णविता ।
ऊर्णुवितारौ,	ऊर्णवितारौ ।
ऊर्णुवितारः,	ऊर्णवितारः ।
म० पु० ऊर्णुवितासे,	ऊर्णवितासे ।
ऊर्णुवितासाथे,	ऊर्णवितासाथे ।
ऊर्णुविताध्वे,	ऊर्णविताध्वे ।
उ० पु० ऊर्णुविताहे,	ऊर्णविताहे ।
ऊर्णुवितास्वहे,	ऊर्णवितास्वहे ।
ऊर्णुवितास्महे,	ऊर्णवितास्महे ।

लृट् परस्मैपद ।

(वह ढकेगा इत्यादि)

प्र० पु० ऊर्णुविष्यति,	ऊर्णविष्यति ।
ऊर्णुविष्यतः,	ऊर्णविष्यतः ।
ऊर्णुविष्यन्ति,	ऊर्णविष्यन्ति ।
म० पु० ऊर्णुविष्यसि,	ऊर्णविष्यसि ।
ऊर्णुविष्यथः,	ऊर्णविष्यथः ।

---

* प्रथमपुरुषके १ वचनका अर्थ लिख दिया, शेष इसी प्रकार जानना.

	ऊर्णुविष्यथ	ऊर्णविष्यथ ।
उ० पु०	ऊर्णुविष्यामि	ऊर्णविष्यामि ।
	ऊर्णुविष्यावः	ऊर्णविष्यावः ।
	ऊर्णुविष्यामः	ऊर्णविष्यामः ।

आत्मनेपद ।

(वह ढकेगा इत्यादि)

प्र० पु०	ऊर्णुविष्यते	ऊर्णविष्यते ।
	ऊर्णुविष्येते	ऊर्णविष्येते ।
	ऊर्णुविष्यन्ते	ऊर्णविष्यन्ते ।
म० पु०	ऊर्णुविष्यसे	ऊर्णविष्यसे ।
	ऊर्णुविष्येथे	ऊर्णविष्येथे ।
	ऊर्णुविष्यध्वे	ऊर्णविष्यध्वे ।
उ० पु०	ऊर्णुविष्ये	ऊर्णविष्ये ।
	ऊर्णुविष्यावहे	ऊर्णविष्यावहे ।
	ऊर्णुविष्यामहे	ऊर्णविष्यामहे ।

लोट् ।

प्र० पु० ऊर्णोतु[५३८] ऊर्णोतु[४२७] ऊर्णुतात् । वह ढके, ऊर्णुताम् वे दोनों ढकें, ऊर्णुवन्तु वे ढकें.
म० पु० ऊर्णुहि, ऊर्णुतात् तू ढक, ऊर्णुतम् तुम दोनों ढको, ऊर्णुत तुम ढको.
उ० पु० ऊर्णवानि मैं ढकूं, ऊर्णवाव हम दोनों ढकें, ऊर्णवाम हम ढकें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० ऊर्णुताम् वह ढके, ऊर्णुवाताम् वे दोनों ढकें, ऊर्णुवताम् वे ढकें.
म० पु० ऊर्णुष्व तू ढक, ऊर्णुवाथाम् तुम दोनों ढको, ऊर्णुध्वम् तुम ढको.
उ० पु० ऊर्णवै (९९) मैं ढकूं, ऊर्णवामहै हम दोनों ढकें, ऊर्णवमाहै हम ढकें.

लङ् ।

प्र० ए० आ+ऊर्णु+त्—

(६४२) गुणोऽपृक्ते । ७ । ३ । ९१ ॥

ऊर्णोतेर्गुणोऽपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके । वृद्धेरपवादः ।

हलादि अपृक्त पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते ऊर्णुधातुको गुण हो । यह सूत्र (६३८) का अपवाद है ।

प्र० पु० **और्णोत्**[४५०, ४७९] उसने ढका **और्णुताम्**[२१८] उन दोनोंने ढका **और्णुवन्**[२२०] उन्होंने ढका
म० पु० **और्णोः** तूने ढका **और्णुतम्** तुम दोनोंने ढका, **और्णुत** तुमने ढका.
उ० पु० **और्णवम्** मैंने ढका **और्णुव** हम दोनोंने ढका, **और्णुम** हमने ढका.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **और्णुत** उसने ढका, **और्णुवाताम्** उन दोनोंने ढका, **और्णुवत** उन्होंने ढका.
म० पु० **और्णुथाः** तूने ढका, **और्णुवाथाम्** तुम दोनोंने ढका, **और्णुध्वम्** तुमने ढका.
उ० पु० **और्णुवि** मैंने ढका, **और्णुवहि** हम दोनोंने ढका, **और्णुमहि** हमने ढका.

लिङ् परस्मैपद ।

प्र० पु० **ऊर्णुयात्** वह ढके, **ऊर्णुयाताम्** वे दोनों ढकें, **ऊर्णुयुः** वे ढकें.
म० पु० **ऊर्णुयाः** तू ढक **ऊर्णुयातम्** तुम दोनों ढको, **ऊर्णुयात** तुम ढको.
उ० पु० **ऊर्णुयाम्** मैं ढकूं, **ऊर्णुयाव** हम दोनों ढकें, **ऊर्णुयाम** हम ढकें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० **ऊर्णुवीत**[५६] वह ढके, **ऊर्णुवीयाताम्** वे दोनों ढकें, **ऊर्णुवीरन्** वे ढकें.
म० पु० **ऊर्णुवीयाः** तू ढक, **ऊर्णुवीयाथाम्** तुम दोनों ढको, **ऊर्णुवीध्वम्** तुम ढको.
उ० पु० **ऊर्णुवीय** मैं ढकूं **ऊर्णुवीवहि** हम दोनों ढकें, **ऊर्णुवीमहि** हम ढकें.

आशीर्लिङ्–परस्मैपद ।

प्र० पु० **ऊर्णूयात्**[५३१] ईश्वर करे वह ढके. **ऊर्णूयास्ताम्** ई० वे दोनों ढकें, **ऊर्णूयासुः** ई० वे ढकें.
म० पु० **ऊर्णूयाः** ई० तू ढक **ऊर्णूयास्तम्** ई० तुम दोनों ढको **ऊर्णूयास्त** ई० तुम ढको.
उ० पु० **ऊर्णूयासम्** ई० मैं ढकूं. **ऊर्णूयास्व** ई० हम दोनों ढकें. **ऊर्णूयास्म** ई० हम ढकें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु० { **ऊर्णुविषीष्ट**[४७५] / **ऊर्णविषीष्ट** — ई० वह ढके; **ऊर्णुविषीयास्ताम्** / **ऊर्णविषीयास्ताम्** — ईश्वर करे वह दोनों ढकें, **ऊर्णुविषीरन्** / **ऊर्णविषीरन्** — ई० वे ढकें,

म० पु० { **ऊर्णुविषीष्ठाः** / **ऊर्णविषीष्ठाः** — ई० तू ढक, **ऊर्णुविषीयास्थाम्** / **ऊर्णविषीयास्थाम्** — ई० तुम दोनों ढको, **ऊर्णुविषीध्वम्** / **ऊर्णविषीध्वम्** — ई० तुम ढको,

उ० पु० { **ऊर्णुविषीय** / **ऊर्णविषीय** — ई० मैं ढकूं, **ऊर्णुविषीवहि** / **ऊर्णविषीवहि** — ई० हम दोनों ढकें, **ऊर्णुविषीमहि** / **ऊर्णविषीमहि** — ई० हम ढकें.

प्र० ए० आ+ऊर्णु+सिच्+त्—

लुङ् ।

(६४३) ऊर्णोतेर्विभाषा । ७ । २ । ६०

इडादौ परस्मैपदे परे सिचि वा वृद्धिः । पक्षे गुणः ॥

इट् जिसकी आदिमें हो ऐसे सिच् प्रत्यय परे हुए सन्ते परस्मैपदमें ऊर्णुधातुको विकल्प करके वृद्धि हो । पक्षमें गुण हो (६४१)

प्र० पु०	[६४३]और्णावीत् [४२१]और्णवीत् [६४१]और्णुवीत् — उसने ढका,	और्णाविष्टाम् और्णविष्टाम् और्णुविष्टाम् — उन दोने ढका,	और्णाविषुः और्णविषुः और्णुविषुः — उन्होंने ढका,
म० पु०	और्णावीः और्णवीः और्णुवीः — तूने ढका,	और्णाविष्टम् और्णविष्टम् और्णुविष्टम् — तुम दोने ढका,	और्णाविष्ट और्णविष्ट और्णुविष्ट — तुमने ढका,
उ० पु०	और्णाविषम् और्णविषम् और्णुविषम् — मैंने ढका,	और्णाविष्व और्णविष्व और्णुविष्व — हम दोने ढका	और्णाविष्म और्णविष्म और्णुविष्म — हमने ढका,

आत्मनेपद ।

प्र पु०	और्णुविष्ट[६४५।२२०] और्णविष्ट	उसने ढका.
	और्णुविषाताम् और्णविषाताम्	उन दोने ढका.
	और्णुविषत और्णविषत	उन्होंने ढका.
म० पु०	और्णुविष्ठाः और्णविष्ठाः	तूने ढका.
	और्णुविषाथाम् और्णविषाथाम्	तुम दोने ढका
	और्णुविढ्वम्-ध्वम् और्णविढ्वम्-ध्वम्	तुमने ढका.
उ० पु०	और्णुविषि और्णविषि	मैंने ढका.
	और्णुविष्वहि और्णविष्वहि	हम दोने ढका.
	और्णुविष्महि और्णविष्महि	हमने ढका.

लृङ् परस्मैपद ।

प्र० पु०	और्णुविष्यत् और्णविष्यत्	जो वह ढके.
	और्णुविष्यताम् और्णविष्यताम्	जो वे दो ढकें.
	और्णुविष्यन् और्णविष्यन्	जो वे ढकें.
म० पु०	और्णुविष्यः और्णविष्यः	जो तू ढके,
	और्णुविष्यतम् और्णविष्यतम्	जो तुम दो ढको.
	और्णुविष्यत और्णविष्यत	जो तुम ढको,

उ० पु०	और्णुविष्यम् और्णविष्यम्	जो मैं ढकूं.
	और्णुविष्याव और्णविष्याव	जो हम दो ढकें.
	और्णुविष्याम और्णविष्याम	जो हम ढकें.

आत्मनेपद ।

प्र० पु०	और्णुविष्यत और्णविष्यत	जो वह ढके.
	और्णुविष्येताम् और्णविष्येताम्	जो वे दो ढकें.
	और्णुविष्यन्त और्णविष्यन्त	जो वे ढकें.
म० पु०	और्णुविष्यथाः और्णविष्यथाः	जो तू ढके.
	और्णुविष्येथाम् और्णविष्येथाम्	जो तुम दो ढको.
	और्णुविष्यध्वम् और्णविष्यध्वम्	जो तुम ढको.
उ० पु०	और्णुविष्ये और्णविष्ये	जो मैं ढकूं.
	और्णुविष्यावहि और्णविष्यावहि	जो हम दो ढकें.
	और्णुविष्यामहि और्णविष्यामहि	जो हम ढकें

॥ इत्यदादयः समाप्ताः ॥ २ ॥

अथ जुहोत्यादयः ।

हु (दानादनयोः[1]) होम करना वा खाना ।

लट्-प्र० ए० +हु+अ+(२०) तिप्-

(६४४) जुहोत्यादिभ्यः श्लुः । २ । ४ । ७५ ॥

शपः श्लुः स्यात् ॥

जुहोत्यादि अर्थात् जिसके आदिमें हु है उस गणमें धातुसे परे शप्को श्लु[२०२] (प्रत्ययका लोप) हो । हु+ति--

(६४५) श्लौ । ६ । १ । १० ॥

धातोर्द्वे स्तः ।

श्लुविषयक धातुको द्वित्व हो ।

हु+हु=जु[४६९] +हु+ति=जु+हो[४२१]+ति=

---

१ दानमिह घृतादेरग्नौ प्रक्षेपः । प्रसिद्धदानस्य ग्रहणे तु 'विप्राय गां जुहोति' इत्यपि प्रयोगः स्यात्, स चानिष्ट इति नेह तस्य ग्रहणमिति बोध्यम् ।

प्र० पु० जुहोति वह हवन करना है. **जुहुतः**[५३६।४६८] वे दो हवन करते हैं. । **जुहु+झि-**

(६४६) अदभ्यस्तात् । ७ । १ । ४ ।

झस्य अत् स्यात् । अन्तापवादः ॥

अभ्यस्तसंज्ञक धातुसे परे झि वा झके अवयव झके स्थानमें अत् हो। (४१२) से जो अन्त आदेश होता है उसका अपवाद अभ्यस्तसंज्ञक धातुसे परे झ को अत् हो। जुहु+अति (२२०) उवङ् आदेश प्राप्त हुआ, परन्तु (९३७) से बाधकर हुके अन्तर्गत उके स्थानमें यण् आदेश व् हुआ **जुह्वति** वे हवन करते हैं।

म० पु० जुहोषि	**जुहुथः**[५३६]	**जुहुथ**
तू हवन करता है.	तुम दो हवन करते हो,	तुम हवन करते हो.
उ० पु० जुहोमि	**जुहुवः**	**जुहुमः**
मैं हवन करता हूँ,	हम दो हवन करते हैं,	हम हवन करते हैं.

लिट् ।

(६४७) भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च । ३ । १ । ३९ ॥

एभ्यो लिटि आम् वा स्यादामि श्लाविव कार्यं च ।

भी (डरना) ह्री, (लज्जित होना) भृ, (पालना) और हु, (हवन करना) इन धातुओंसे परे लिट् आवे तो विकल्प करके आम् हो और श्लु (६४५) के होनेसे जैसे कार्य होते हैं वे द्वित्व आदि आम् परे हुए भी हों।

प्र० पु० जुहवाञ्चकार, जुहवाम्बभूव, जुहवामास जुहाव[४२७ २०२] उसने हवन किया.

जुहवाञ्चक्रतुः जुहुवतुः जुहवाञ्चक्रुः जुहुवुः

उन दोनोंने हवन किया, उन्होंने हवन किया.

लुट् ।

प्र० पु० होता[४६६] वह हवन करेगा. **होतारौ** वे दो हवन करेंगे. **होतारः** वे हवन करेंगे.

लृट् ।

प्र० पु० होष्यति वह हवन करेगा. **होष्यतः** वे दोनों हवन करेंगे. **होष्यन्ति** वे हवन करेंगे.

लोट् ।

प्र० पु	**जुहोतु, जुहुतात्**[४४५]	**जुहुताम्**	**जुह्वतु**[६]
	वह हवन करे,	वे दो हवन करें.	वे हवन करें.
म० पु०	**जुहुधि, जुहुतात्**	**जुहुतम्**	**जुहुत**
	तू हवन कर,	तुम दोनों हवन करो,	तुम हवन करो.
उ० पु०	**जुहवानि**[४५१ ४५०]	**जुहवाव**	**जुहवाम**
	मैं हवन करूं,	हम दो हवन करें.	हम हवन करें.

लङ् ।

प्र० पु० **अजुहोत्**[४५९] **अजुहुताम्** अजुहु+जुस्[४८२]=
उसने हवन किया. उन दोनोंने हवन किया.

(६४८) जुसि च । ७ । ३ । ८३ ॥

इगन्ताङ्गस्य गुणोऽजादौ जुसि ।

अजादि जुस् परे आवे तो इगन्त अङ्गको गुण हो । **अजुहवुः** उन्होंने हवन किया.

विधिलिङ् ।

प्र० पु० **जुहुयात्** **जुहुयाताम्** **जुहुयुः**
वह हवन करे, वे दो हवन करें. वे हवन करें

आशीर्लिङ् ।

प्र० पु० **हूयात्**[४६६ ४६७ ५१९] **हूयास्ताम्** **हूयासुः**
भगवान् करे वह हवन करे, ई० वे दो हवन करें, ई० वे हवन करें.

लुङ् ।

प्र० पु० **अहौषीत्**[४७३ ४८० ५२० १६९] **अहौष्टाम्** **अहौषुः**
उसने हवन किया, उन दोनोंने हवन किया. उन्होंने हवन किया.

लृङ् ।

प्र० पु० **अहोष्यत्** **अहोष्यताम्** **अहोष्यन्**
जो वह हवन करे, जो वह दो हवन करें, जो वे हवन करें.

भी (ञिभी भये) डरना ।

लट् ।

प्र० पु० **बिभेति**[४३०] वह डरता[४२१ ६४५] है, बिभी+त–

(६४९) भियोऽन्यतरस्याम् । ६ । ४ । ११५ ॥

इकारो वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके ॥

हलादि कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते भी धातुको विकल्प करके इकार हो । (९३६) से तस् सार्वधातुक प्रत्यय अपित् होनेसे ङित् है इस कारण भी अन्तर्गत ईके स्थानमें इ आदेश हुआ–

बिभि :, बिभीतः वे दो डरते हैं, **बिभ्यति**[६४६ २] वे डरते हैं.
लिट्–प्र० ए० **बिभयाञ्चकार**[६४७], **बिभाय**[२०२२९] वह डरा.
लुट्–प्र० ए० **भेता** वह डरेगा.
लृट् प्र० ए० **भेष्यति** वह डरेगा.

लोट्–प्र० ए० **बिभेतु** वह डरे, **बिभितात्** [४४५४६४], **बिभीतात्** ईश्वर करे वह डरे. **बिभिहि बिभीहि** तू डर **बिभयानि** मैं डरूं.

लङ्–प्र० ए० **अबिभेत्** वह डरा. **अबिभेः** तू डरा. **अबिभयम्** मैं डरा.

१ **लिङ्**–प्र० ए० **बिभियात्** [६४९], **बिभीयात्**, वह डरे, **बिभियाः**, **बिभीयाः** तू डर, या डरे, **बिभियाम्**, **बिभीयाम्** मैं डरूं.

२ **लिङ्ः**–प्र० ए० **भीयात्** [४६६] [४६७] ईश्वर करे वह डरे.

लुङ्–प्र० पु० **अभैषीत्** [४७१] [४८०] [२२०] वह डरा, **अभैष्टाम्** वे दो डरे, **अभैषीः** तू डरा, **अभैषम्** मैं डरा.

लृङ्–प्र० ए० **अभेष्यत्** जो वह डरे.

ह्री (लज्जायाम्) लजाना.

लट्–प्र० पु० **जिह्रेति** [६४६।४२९] [४८१] वह लजाता है, **जिह्रीतः** [४४६] [२२०] वे दो लजाते हैं, **जिह्रियति** वे लजाते हैं.

लिट्–प्र० ए० **जिह्रयाञ्चकार** [६४७], **जिह्रयाम्बभूव**, **जिह्रयामास**, **जिह्राय** वह लजाया.

लुट्–प्र० ए० **ह्रेता** वह लजायगा.

लृट्–प्र० ए० **ह्रेष्यति** वह लजायगा.

लोट्–प्र० ए० **जिह्रेतु**, **जिह्रीतात्** वह लजावे.

लङ्–प्र० ए० **अजिह्रेत्** वह लजाया.

लिङ्–प्र० ए० **जिह्रीयात्** वह लजावे.

२ **लिङ्**–प्र० ए० **ह्रीयात्** [४६६] [४६७] ईश्वर करे वह लजावे.

लुङ्–प्र० ए० **अह्रैषीत्** [४७३] [४७०] [२२०] वह लजाया.

लृङ्–प्र० ए० **अह्रेष्यत्** जो वह लजावे.

पॄ (पालनपूरणयोः) पालना, पूरा करना ।

पॄ+पॄ (६४९) +ति–

(६५०) अर्तिपिपर्त्योश्च । ७ । ४ । ७७ ॥

अभ्यासस्य इकारोऽन्तादेशः स्यात् श्लौ ॥

श्लु (६४४) विषयक ऋ तथा पॄ धातुके अभ्यासके अच्के स्थानमें इ हो । अभ्यास (४२८) की पॄ अन्तर्गत ऋके स्थानमें इ हुई पिपॄ=पिपर् (४२१)+ति= **पिपर्ति** वह पूरा करता है । पिपॄ+तः (द्विवचन)–

(६५१) उदोष्ठ्यपूर्वस्य । ७ । १ । १०२ ॥

अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ऋत् तदन्तस्यांगस्य उः स्यात् ॥

जिस अङ्गके अन्तमें ॠ होय उस ॠके पूर्व अंगका अवयव ओष्ठस्थानीय वर्ण हो तो उस अंगको उ हो। विपुर्+तः-

(६५२) हलि च । ८ । २ । ७७ ॥

रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि ॥

हल्परे हुए सन्ते रेफान्त अथवा वकारान्त धातुकी उपधाके इक्को दीर्घ हो।

पिपूर्तः (६६२) वे दो पूरा करते हैं, **पिपुरति** वे पूरा करते हैं.

लिट्-प्र० ए० पपार उसने पूरा किया,

लिट्-प्र० द्वि० पपॄ+अतुः-

(६५३) शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा । ७ । ४ । १२ ॥

एषां किति लिटि ह्रस्वो वा स्यात् ॥

शॄ (हिंसा करना), दॄ (फाडना,) पॄ (पूर्ण करना) इन धातुओंसे परे कित् लिट् प्रत्यय आवे तो इनको ह्रस्व हो। पपॄ+अतुः=(२१) से ऋके स्थानमें (यण्) र् हुआ= पप्र्+अतुः=**पप्रतुः** उन दोनोंने पूरा किया।

(६५४) ऋच्छत्यॄताम् । ७ । ४ । ११ ॥

तौदादिकऋच्छेर्ऋधातोॠदन्तानां च गुणो लिटि ॥

लिट् परे हुए सन्ते तुदादिगणी (६९४) ऋच्छ धातु, ऋ धातु और ॠदन्त धातुको गुण हो। पॄ ॠदन्त धातु है उससे परे लिट्को अतुः प्रत्यय होकर ॠको अर् गुण हुआ पप्+ अर्+अतुः=**पपरतुः** उन दोनोंने पूरा किया। पपॄ+ उः+पप्+अर्+उः **पपरुः** अथवा **पप्रुः** (६९२) उन्होंने पूरा किया।

(६५५) वॄतो वा । ७ । २ । ३८ ॥

वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्न तु लिटि ॥

वृङ् (रचना करनी), वृञ् (स्वीकार करना) तथा ॠदन्तधातुओंसे परे इट् आवे तो इट्को विकल्प करके दीर्घ हो परन्तु लिट्में न हो। **लुट्**-पॄ+इ (४३४)+त+आ (डा)=**परिता** अथवा **परीता** वह पूरा करेगा,

लट्-प्र० ए० परिष्यति, परीष्यति वह पूरा करेगा.

लोट्-पिपर्तु (६५०) **पिपूर्तात्** वह पूरा करे, **पिपूर्हि पिपराणि**,

लङ्-प्र० ए० अपिपः उसने पूरा किया,

लङ्-प्र० द्वि० अपिपूर्ताम् उन दोने पूरा किया,

---

[1] वृ ॠत इति च्छेदः। 'त्यक्तानुबन्धग्रहणे सामान्यस्य ग्रहणम्' इति परिभाषया वृशब्देन वृङ्वृञोरुभयोर्ग्रहणम्। अतो व्याचष्टे-वृङिति।

लङ्-प्र० ब० अपिपरुः [४८२] [६४८] उन्होंने पूरा किया.
लिङ्-प्र-ए० पिपूर्यात् [६४६६] वह पूरा करे.
२ लिङ्-प्र० ए० पूर्यात् [४६८] ईश्वर करे वह पूरा करे
[४३४ ४८० ४८० २२०]
लुङ्-प्र० ए० अपारीत् उसने पूरा किया, **लुङ्-प्र० द्वि०** अपार्+इ+स्+ताम्= **अपारिष्टाम्** उन दोने पूरा किया,

(६९९) से रिको विकल्प करके दीर्घता प्राप्त हुई परन्तु-

(६९६) सिचिँ चँ परस्मैपदेषुँ । ७ । २ । ४० ॥

अत्र वृत इटो न दीर्घः ।

वृङ् वृञ् और ऋकारान्त धातुसे परे परस्मैपद सिच् (४७२) आवे तो इट्को दीर्घ न हो। तब दीर्घ न होकर " अपारिष्टाम् " रूप हुआ।

ऌङ्-प्र० ए० अपरिष्यत्, अपरीष्यत् जो वह पूरा करे.

हा (ओहाक् त्यागे) छोडना।

लट्-प्र० ए० जहाति [६४५] वह छोडता है **प्र० द्वि०** जहा+तः-

(६९७) जहातेश्च । ६ । ४ । ११६ ॥

इद्वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके ॥

हलादि कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो हा धातुको इ हो । **जहितः** (९३६) वे दो त्याग करते हैं । अथवा-

(६९८) ई हल्यघोः । ६ । ४ । ११३ ॥

श्नाभ्यस्तयोरात ईत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति हलि न तु घोः ॥

हलादि कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते अभ्यस्तसंज्ञक घु (६६२) से भिन्न धातुके आकारको तथा श्ना प्रत्ययके आकारके स्थानमें ईत् आदेश हो। **जहीतः** वे दो त्याग करते हैं.

लट्-प्र० ब० जहा+अति [६४६] ---

(६९९) श्नाभ्यस्तयोरातः । ६ । ४ । ११२ ॥

अनयोरातो लोपः क्ङिति सार्वधातुके ॥

कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे हो तो श्ना प्रत्यय (७३१) के तथा अभ्यस्तसंज्ञक धातुके आकारका लोप हो।

जह्+अति=**जहति** वे त्याग करते हैं,

लिट्-प्र० ए० जहौ [५२४] उसने त्याग दिया.
लुट्-प्र० ए० हाता वह त्याग करेगा.
लृट्-प्र० ए० हास्यति वह त्याग करेगा.

लोट्-प्र० ए० जहातु[४४४] वह त्याग करे.

" **प्र० ए० जहितात्**[४४, ६५७] **-जहीतात्**[६५८] ईश्वर करे वह त्याग करे.

" **म० ए०** जहा+हि[४४८] --=

(६६०) आ च हौ । ६ । ४ । ११७ ॥

जहातेर्हौ परे आ स्याच्चादिदीतौ ॥

हि परे हुए सन्ते हा धातुके आकारको आकार अथवा इकार (६५७) वा ईकार (६५८) हो । **जहाहि, जहिहि, जहीहि,** तू त्याग कर.

लङ्-प्र० ए० अजहात् उसने त्याग किया.

लङ्-प्र० ब० अजहुः[४८२, ६५९] उन्होंने त्याग किया.

१ **लिङ्-प्र ए०** जहा+या+त्--

(६६१) लोपो यि । ६ । ४ । ११८ ॥

जहातेरालोपो यादौ सार्वधातुके ॥

यकारादि सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो हा धातुके आकारका लोप हो ।

ज+ह्+या+त्=**जह्यात्** वह त्याग करे

२ **लिङ् प्र० ए० हेयात्**[४४६, ५२६] ईश्वर करे वह त्याग करे.

लुङ्-प्र ए० अहासीत् (५३१ । ४८० । ४८१) उसने त्याग किया.

लृङ्-प्र ए० अहास्यत् जो वह त्याग करे.

आत्मनेपद ।

माङ्-(माने शब्दे च) नापना वा शब्द करना ।

लट्-प्र० ए० मा+मा+ते--

(६६२) भृञामित् । ७ । ४ । ७६ ॥

भृञ् माङ् ओहाङ् एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत्स्यात् श्लौ ।

भृ (पालना), मा (नापना), हा (ओहाङ्-जाना) इन तीन धातुओंके श्लु (६४४) विषय होनेसे अभ्यासके अच्के स्थानमें इकार हो ।

मि+मी+ते[१५८] =**मिमीते** वह नापता है. **मिमाते**[६५५] वे दो नापते हैं, **मिमते**[६४३।६६९] वे नापते हैं (मिमीषे । मिमे)

लिट्-प्र० ए० ममे[६४९।४२३।४३०।५२] उसने नापा,

लुट्-प्र० ए० माता वह नापेगा.

लृट्-प्र० ए० मास्यते वह नापेगा.

---

१ प्र=प्रमा । अनु=अनुमान । निर्=निर्माण-रचना । परि=परिमाण । जैसे-प्रमा, प्रमितिः । परिमितिः अनुमितिः । उपमितिः । निर्मितिः ।

लोट्–प्र० ए० मिमीताम्[५५३ ६८८] — वह नापे.
लङ्–प्र० ए० अमिमीत — उसने नापा.
लिङ्–प्र० ए० मिमीत[६४५।६६९] — वह नापे.
२ लिङ्–प्र० ए० मासीष्ट[५६] — ईश्वर करे वह नापे.
लुङ्–प्र० ए० अमास्त[४७३] — उसने नापा.
लृङ्–प्र० ए० अमास्यत — जो वह नापे.

हा (ओहाङ् गतौ) जाना ।

लिट्–प्र० ए० जिहीते[६५८]	जिहाते[७५९]	जिहते[६४५।६५९]
वह जाता है	वे दो जाते हैं	वे जाते हैं.

लिट्–प्र० ए० जहे (५४९ । ४२७ । ६२५) — वह गया.
लुट्–प्र० ए० हाता — वह जायगा.
लृट्–प्र० ए० हास्यते — वह जायगा.
लोट्–प्र० ए० जिहीताम् — वह जाय.
लङ्–प्र० ए० अजिहीत — वह गया.
लिङ्–प्र० ए० जिहीत[५५६।५५९] — वह जाय.
२ लिङ्–प्र० ए० हासीष्ट[५५९] — ईश्वर करे वह जाय.
लुङ्–प्र० ए० अहास्त[४७३] — वह गया.
लृङ्–प्र० ए० अहास्यत — जो वह जाय.

उभयपदी ।

भृ (डुभृञ् धारणपोषणयोः,) धारण करना वा पोसना.

		परस्मैपद.	आत्मनेपद.	
लट्–प्र०	ए०	बिभर्ति	बिभृते	वह पोसता है.
लट्–प्र०	द्वि०	बिभृतः	बिभ्राते	वे दो पोसते हैं.
लट्–प्र०	ब०	बिभ्रति[६४६।२१]	बिभ्रते	वे पोसते हैं.

पर० — आ०

लिट् {
प्र० ए० बिभराञ्चकार[६४७] बभार[५०९।२०२], बिभराञ्चक्रे बभ्रे[५४२] उसने पोसा.
म० ए० बभर्थ (क्रादिमें पाठसे इट् न हुआ) तूने पोसा.
उ० द्वि बभृव[५९५] हम दोनोंने पोसा.

	परस्मैपद.	आत्मनेपद.	
लुट्–प्र० ए०	भर्ता[६५११]	भर्ता	वह पोसेगा.
लृट्–प्र० ए०	भरिष्यति[५३०]	भरिष्यते	वह पोसेगा.

लोट्-प्र० ए० बिभर्तु बिभृताम् वह पोसे.
लोट्-उ० ए० बिभराणि बिभरै मैं पोसूं.
लङ्-प्र० ए० अबिभः ४२१।१९९।१११ अबिभृत उसने पोसा.
लङ्-प्र० द्वि० अबिभृताम् अबिभ्राताम् उन दोनोंने पोसा.
लङ्-प्र० ब० अबिभरुः[४८३, ४४८] अबिभ्रत उन्होंने पोसा.
लिङ्-प्र० ए० बिभृयात् बिभ्रीत[५५६] वह पोसे.
२ लिङ्-प्र० ए० भ्रियात्[४६६, ५८१] भृषीष्ट[५६९, ५८२, ४५८] ईश्वर करे वह पोसे.
लुङ्-प्र० ए० अभार्षीत्[५४०] अभृत[५८३, ४६८, ५८३] उसने पोसा.
लृङ्-प्र० ए० अभरिष्यत् अभरिष्यत जो वह पोसे.

दा (डुदाञ् दाने) देना, (दान करना)

लट्-प०प्र०पु०ददाति } वह देता है, दत्तः[६५९९३] } वे दो ददति(६४६।६९९ } वे देते
लट्-आत्मने० दत्ते } ददाते } देते हैं ददते (६४६) } हैं.

परस्मैपद ।		आत्मनेपद ।	
लिट्-प्र० ए०	ददौ[५२४]	ददे[५४९, ५२५]	उसने दिया.
लुट्-प्र० ए०	दाता	दाता	वह देगा.
लृट्-प्र० ए०	दास्यति	दास्यते	वह देगा.
लोट्-प्र० ए०	ददातु, दत्तात्	दत्ताम्[५५३, ६५०]	वह दे. वे दोनों दें
"म० ए०	ददा+हि-		

(६६२) दाधा घ्वदाप् । १ । १ । २० ॥

दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दाब्दैपौ विना ॥

दा (दाप्) काटना, दै (दैप्) (निर्मल करना) इन दो धातुओंको छोडकर शेष दारूप दा (देना) दो (खण्डन करना), दे (प्रत्यर्पण करना, रक्षा करना) तथा धारूप धा (धारण करना रक्षा करना) तथा धा धारण करना, धे (पीना) ये धातु घुसंज्ञक हों । घुसंज्ञक धातुओंसे परे जब हि हो तो अभ्यासका लोप और (६१९) से एकार आदेश होता है तब अभ्यासका लोप होकर दा अन्तर्गत आके स्थानमें ए हुआ.

परस्मैपद ।		आत्मनेपद ।	
लोट्-म० ए०	देहि	दत्स्व	तू दे.
"म० द्वि०	दत्तम्[६५]	ददाथाम्	तुम दोनों दो.
लङ्-प्र० ए०	अददात्	अदत्त[५५९]	उसने दिया.

१ लिङ्-प्र ए० दद्यात्[४६१ ६४१]	ददीत[५५६ ६५१]	वह दे.
२ लिङ्-प्र० ए० देयात्[५२६]	दासीष्ट[५५६]	ईश्वर करे वह दे.
लुङ्-प्र० ए० अदात्[४७४] उसने दिया	आत्मनेपद-अदा+स्+त-	

(६६४) स्थाघ्वोरिच्च । १ । २ । १७ ॥

अनयोरिदन्तादेशः सिच्च कित्स्यादात्मनेपदे ॥

आत्मनेपदमें स्था धातु तथा घुसंज्ञक[६६३] धातुओंके अन्त्यवर्णके स्थानमें इकार हो और सिच्की कित् संज्ञा हो । अ दि+स्+त (९८३) से स्का लोप हुआ, **अदित** उसने दिया.

लुङ्-प्र० द्वि० अदाताम्	अदिषाताम्	उन दोनोंने दिया.
लुङ्-प्र० ब० अदुः[५३५]	अदिषत	उन्होंने दिया.
लृङ्-प्र० ए० अदास्यत्	अदास्यत	जो वह दे.

धा[१] (डुधाञ् धारणपोषणयोः) धारण करना वा पोषण करना.

लट्-प्र० पु० दधाति वह धारण करता है । दधा+तस् (६५९) से आका लोप हुआ । दध्+तस्-

(६६५) दधस्तथोश्च । ८ । २ । ३८ ॥

द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञो बशो भष् स्यात्तथोः परयोः स्ध्वोश्च परतः ॥

जिसे द्वित्व किया गया हो ऐसे झषन्त धा धातुके बश् प्रत्याहारको भष् हो जो त् थ्, स्, अथवा ध्व परे हो तो । दधमें द् बश् है उसके स्थानमें भष्का ध् हुआ[२]=धध्+तः

---

१ विपूर्वो धाञ् करोत्यर्थे अभिपूर्वस्तु भाषणे । सहसा विदधीत न क्रियाम् । सत्यमभिधेहि । सम्=सन्धि, शत्रुणा न हि सन्दध्यात् । परि=पहरना । वस्त्रं परिधत्स्व । अपि=ढांकना, कर्णौ तत्र पिधातव्यौ निंदा यत्र प्रवर्तते । अव=ध्यान, क्षणमवधत्स्व । आ=आधान-स्थापन=और ग्रहण । सरिन्मुखाभ्यु यमादधानम् । व्यव=व्यवधान । समा=समाधान । नि=निधान-स्थापन । प्रणि=प्रणिधान । प्रतिनि=प्रतिनिधि । सन्नि=सन्निधान । प्रतिवि=प्रतिविधान प्रतीकार । अनुसम्=अनुसंधान-अन्वेषण । इत्यादि ॥

२ ' पूर्वत्रासिद्धीये न स्थानिवत् ' इस वचनसे) ६५९) से हुए आकारके लोपको स्थानिवद्भाव न हुआ तो झषन्त मानके भष् हुआ ।

(९०) से ध्के स्थानमें त् हुआ. **धत्तः** वे दो धारण करते हैं । **दधति** (६४६) वे धारण करते हैं ।

म० पु० दधासि **धत्थः**[665] **धत्थ**

तू धारण करता है, तुम दो धारण करते हो, तुम धारण करते हो.

आत्मनेपद ।

" **प्र० पु० धत्ते**[544, 665] **दधाते** **दधते**[646]

वह धारण करता है, वे दो धारण करते हैं, वे धारण करते हैं.

" **म० पु० धत्से** **दधाते** **धद्ध्वे**

तू धारण करता है, तुम दो धारण करते हो, तुम धारण करते हो.

लोट्–म० पु० ए० दधा+हि रूप है इसमें (६६२) से धा धातु घुसंज्ञक है, उसमें धा अन्तर्गत आ अच्के स्थानमें एकार[635] हुआ अभ्यासका लोप होकर **धेहि** (तू धारण कर) रूप हुआ ।

परस्मैपद ।	**आत्मनेपद ।**	
लङ्–प्र० ए० अदधात्	**अधत्त**[659, 665]	उसने धारण किया.
१ लिङ्० प्र० ए० दध्यात्[469, 659]	**दधीत**[558, 659]	वह धारण करे.
२ लिङ्–प्र० ए० धेयात्[526]	**धासीष्ट**[556, 659]	ईश्वर करे वह धारण करे.
लुङ्–प्र० ए० अधात्[474]	**अधित**[664, 583]	उसने धारण किया.
लृङ्–प्र० ए० अधास्यत्	**अधास्यत**	जो वह धारण करे.

निज् (णिजिर् शौचपोषणयोः) शुद्ध करना वा पोषण करना ।

(६६६) ईर इत्संज्ञा वाच्या ॥

इर्की इत् (५) संज्ञा हो । णिजिर्में इर्की इत् संज्ञा होकर उसका लोप हुआ णिज् शेष रहा (९९३) से णिके स्थानमें नि होकर निज् हुआ–

लट्–प्र० ए० निनिज्+ति–

---

१ इकारस्य उपदेशेऽजनु-इति रेफस्य हलन्त्यम् इति चेत्संज्ञयैव सिद्धे व्यर्थमिदं वार्तिकमिति तु न भ्रमितव्यम्, तथासति इरितः-इति मुमापत्तेः । वार्तिकसत्त्वे तु इरिदयं धातुर्नोदिति मुमभावः ।

(६६७) निजां त्रयाणां गुणः श्लौ । ७ । ४ । ७५ ॥

निज्विज्विषामभ्यासस्य गुणः स्यात् श्लौ ॥

णिज् (शुद्ध करना) विज् (अलग करना), विष् (व्याप्त होना) इन तीनों धातुओंके श्लुविषयमें अभ्यासको गुण हो ।

प्र० नेनेक्ति नेनिक्तः नेनिजति । नेनेक्षि । नेनेज्मि ।
वह शुद्ध करता है, वे दो शु० वे शुद्ध करते हैं, तू शु० मैं शु०
"आत्म० नेनिक्ते वह शुद्ध करता है, **नेनिजाते । नेनिक्षे ।**
लिट्-प्र० ए० निनेज { उसने शुद्ध किया.
लिट् आत्म० निनिजे
लुट्-प्र० ए० नेक्ता वह शुद्ध करेगा.
लट्-प्र० ए० नेक्ष्यति { वह शुद्ध करेगा.
लट्-आत्म०नेक्ष्यते
लोट्-प्र० ए० नेनेक्तु, नेनिक्तात् वह शुद्ध करे **नेनिक्ताम्.** ये दोनों शुद्ध करें
लोट्-म० ए० नेनिग्धि नेनिक्ष्व तू शुद्ध कर ।
लोट्-उ० ए० नेनिज्+आनि-

(६६८) नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके । ७ । ३ । ८७ ॥

लघूपधगुणो न स्यात् ॥

अजादि पित् सार्वधातुक परे हुए सन्ते अभ्यस्तसंज्ञक धातुकी जो लघु उपधा (१९६) तिसको गुण न हो । यह सूत्र (४८६) का बाधक है इस कारण **नेनिजानि** मैं शुद्ध करूं.

लोट्-आत्मनेपद प्र० ए० नेनिक्ताम् वह शुद्ध करे.
लङ्-प्र० ए० अनेनेक्-ग् आ० अनेनिक्त उसने शुद्ध किया,
लङ्-प्र० द्वि० अनेनिक्ताम्" अनेनिजाताम् उन दोने शुद्ध किया.
लङ्-प्र० ब० अनेनिजुः " अनेनिजत उन्होंने शुद्ध किया.
लङ्-उ० ए० अनेनिजम् " अनेनिजि मैंने शुद्ध किया.
१ लिङ्-प्र० ए० नेनिज्यात्" नेनिजीत वह शुद्ध करे.
२ लिङ्-प्र० ए० निज्यात् " निक्षीष्ट ईश्वर करे वह शुद्ध करे.
लुङ्-प्र० अनिज्+च्लि+त्-

(६६९) इरितो वा। ३ । १ । ५७ ॥

इरितो धातोश्च्लेरङ् वा परस्मैपदेषु ।

जिस धातुका इर् (६६६) इत्संज्ञक हो तो परस्मैपदके विषे च्लिके स्थानमें विकल्प करके अङ् हो । अङ्में ङ् इत्संज्ञक है उसका लोप होकर अ शेष रहा।

" प्र० ए० **अनिजत, अनैक्षीत्**[४७३ ५०० ५११] आ० **अनिक्त**[५१४] उसने शुद्ध किया.

लङ्-प्र० ए० अनेक्ष्यत आ० **अनेक्ष्यत** जो वह शुद्ध करे.

॥ इति जुहोत्यादयः समाप्ताः ॥ ३ ॥

अथ दिवादयः ।

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ।

दिव् (दिवु) क्रीडाकरना, जीतनेकी इच्छा करना, व्यवहार करना, चमकना, स्तुति करना, आनन्द करना, उन्मत्त होना, सोना, इच्छा करना और जाना इन अर्थोंमें है । पर० स० सेट् अकर्मक भी है ।

(६७०) दिवादिभ्यः श्यन् । ३ । १ । ६९ ॥

शपोऽपवादः ॥

दिवादि धातुओंसे परे श्यन् हो । यह सूत्र शप् (४२०) का अपवाद है। (११९) से श्यन्के शकारका लोप (९, ७) से न्का लोप होकर य शेष रहा-

लिट् प्र० ए० दिव्+य+ति (६९२) के अनुसार उपधाको दीर्घ होकर-

दीव्यति[६५२] वह क्रीडा करता है। **लङ्-प्र० ए० अदीव्यत** उसने क्रीडाकी.

लिट्-प्र० ए० दिदेव[४८६] उसने क्रीडा की

लुट् प्र० ए० देविता वह क्रीडा करेगा

लृट्-प्र० ए० देविष्यति वह क्रीडा करेगा

लोट्-प्र०ए०[४४] **दीव्यतु**[६५२] वह क्रीडा करे

१**लिङ्-प्र०ए०**[४६६] **दीव्येत्**[४६४] वह क्रीडा करे.

२**लिङ्-प्र०ए०दीव्यात्**[४३४] ई०वह क्रीडा करे.

लुङ्-प्र० ए० अदेवीत्[४८१] उसने क्रीडा की.

लृङ्-प्र०ए० अदेविष्यत् जो वह क्रीडा करे.

---

१ कान्तिशब्देनात्रेच्छा गृह्यते, द्युतेः पृथग् ग्रहणात्, अन्यथाऽन्यतरपाठो व्यर्थः स्यात् ।

इसी प्रकार **सिव्** (षिवु+तन्तुसन्ताने) (बुनना) इस धातुके रूप जानो ।
नृत् (नृती गात्रविक्षेपे) नाचना । परस्मैपदी । अकर्मक । सेट्.

लट्–प्र० ए० नृत्यति वह नाचता है | **लुट्–प्र० ए० नर्तिता** वह नाचेगा.
लिट्–प्र० ए० ननर्त[५०९, ५४८] वह नाचा | **लृट्–प्र० ए०** नृत्+स्य+ति–

(६७१) से ऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः । ७ । २ । ५७ ॥

एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड्वा ॥

कृत् (काटना), चृत् (मारना, गठियाना), छृद् (उच्छृदिर्), (चमकना, क्रीडा करना), तृद् (उतृदिर्) (मारना वा अनादर करना), नृत् (नाचना) इन धातुओंसे परे सिच् भिन्न सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो विकल्प करके इट्का आगम (४३४) हो ।

लृट्–प्र० ए० नर्तिष्यति नर्त्स्यति वह नाचेगा	२**लिङ्–प्र०ए०नृत्यात्** ईश्वर करे वह नाचे
लोट्–प्र० ए० नृत्यतु वह नाचे	**लुङ्–प्र० ए० अनर्तीत्**[४८, ४८१] वह नाचा.
लङ्–प्र० ए० अनृत्यत् वह नाचा	**लृङ्–प्र० ए० अनर्तिष्यत्**[६७१] **अनर्त्स्यत्** जो वह नाचे.
लिङ्–प्र० ए० नृत्येत् वह नाचे	

त्रस् (त्रसी उद्वेगे) घबराना । पर० अक० सेट्.

(९२१) से श्यन् (६७०) प्रत्यय विकल्प करके हो । इससे––

लट्–प्र० ए० त्रस्यति[२२२] (पक्षे) **त्रसति**[४२०]　　वह घबराता है.
लिट्–प्र० ए० तत्रास (४२९, ४९०)　　वह घबराया.
लिट्–प्र० द्वि० तत्रस्+अतुस्=**तत्रसतुः**　　वे दो घबराये.

अथवा––

(६७२) वा जॄभ्रमुत्रसाम् । ६ । ४ । १२४ ॥

एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपौ वा ॥

जॄ (जीर्ण, पुराना होना), भ्रम् (घूमना), त्रस् (उद्वेग पाना) इन धातुओंसे परे कित् (४८६) लिट् अथवा इट् (४३४) युक्त थल् आवे तो धातुके अकारके स्थानमें विकल्प करके एकार हो और अभ्यासका लोप हो । त्रेसतुः वे दो घबराये । लिट्–प्र०

ए० त्रेसिथ तत्रसिथ तू घबराया। लुट्-प्र० ए० त्रसिता वह घबरावेगा । लृट्-त्रसिष्यति । लोट्-त्रस्यतु, त्रसतु । लङ्-अत्रस्यत, अत्रसत। वि० लि० त्रस्येत, त्रसेत । आ० लि० त्रस्यात ।

लुङ्-अत्रासीत, अत्रसीत । लृङ्-अत्रसिष्यत ।

शो (तनूकरणे) पतला करना । पर० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० शो+यति—

(६७३) ओतः श्यनि । ७ । ३ । ७१ ॥

लोपः स्यात् श्यनि ॥

श्यन् (६७०) परे हो तो ओकारका लोप हो ।

श्यति वह पतला करता है। श्यतः वे दो पतला करते हैं। श्यन्ति वे पतला करते हैं.
लिट्-प्र० शशौ[५२९।४२७।४३०।५२४।४१] शशतुः[५२१।५२५] शशुः[५२५।५२९]

उसने पतला किया, उन दोनोंने पतला किया, उनोंने पतला किया.

लुट्-प्र० ए० शाता वह पतला करेगा
लृट्-प्र० ए० शास्यति वह पतला करेगा
लुङ्-प्र० ए० अ+शा[४२९]+स्[४७३]+त्—

(६७४) विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः । २ । ४ । ७८ ॥

एभ्यस्सिचो लुग्वा स्यात् परस्मैपदेषु ॥

घ्रा (सूंघना), धेट् (पीना), शो (पतला करना), छो (काटना) और षो (नाश करना) इन परस्मैदी धातुओंसे परे सिच्का विकल्प करके लोप हो । अर्थात् जब परस्मैपद परे हो तो ।

प्र० पु० अशात् उसने पतला किया । अशाताम् उन दोनोंने पतला किया ।
अशुः[६२९।५२७।५२८] उन्होंने पतला किया, जब सिच्का लोप न किया तब—

(६७५) यमरमनमातां सक् च । ७ । २ । ७३ ॥

एषां सक् एभ्यः सिच इट् परस्मैपदेषु ॥

यम् (निवृत्त होना), रम् (क्रीडा करना), नम् (नमस्कार करना), इन धातुओंको तथा आकारान्त धातुओंको सक्का आगम हो और उनसे परे सिच्को इट्का आगम हो

परस्मैपद परे रहते । यह सूत्र (५३१) अङ्कमें आ चुका था परन्तु यहां कार्यवश लिखा है.

अशासीत् उसने पतला किया, **अशासिष्टाम्** उन दोने पतला किया, **अशासिषुः** उन्होंने पतला किया.

लृङ्-प्र० ए० अशास्यत् जो वह पतला करे ।

छो (छेदने) काटना, छेदना । पर० स० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० छ्यति (६७३) वह छेदन करता है । **लुङ्-प्र० ए० अच्छात् अच्छासीत्**, उसने छेदन किया ।

षो (अन्तकर्मणि) नाश करना । पर० अक० अनिट् ।

५२९ ४२७ ४३ ५२४ ४१

लट्-प्र० ए० स्यति वह नाश करता है । **लिट्-प्र० ए० ससौ** उसने नाश किया. । **लुङ्-प्र० ए० असात् असासीत्**, उसने नाश किया.

दो (अवखण्डने) काटना । पर० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० द्यति वह काटता है.
लिट्-प्र० ए० ददौ उसने काटा.
२ लिङ्-प्र० ए० देयात् ईश्वर करे वह काटे.
लुङ्-प्र० ए० अदात् उसने काटा ॥

व्यध् (ताडने) मारना । पर० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० व्यध्+य+ति—

(६७६) ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च । ६ । १ । १६ ॥

एषां संप्रसारणं स्यात्किति ङिति च ॥

ग्रह् (लेना), ज्या (वृद्ध होना), वय् (बुनना), व्यध् (ताडन करना), वश् (इच्छा करना), व्यच् (ठगना), व्रश्च् (काटना), प्रच्छ् (पूछना) और भ्रस्ज् (भूनना) इन धातुओंसे परे कित् अथवा ङित् प्रत्यय आवे तो धातुओंको संप्रसारण (२८१) हो । (९३६) से श्यन् ङित् और व्यध्में यकार यण् है उसके स्थानमें इक्की इ हुई व्+इ+अध्+य+ति=' सम्प्रसारणाच्च ' से पूर्वरूप हुआ **विध्यति** वह मारता है ।

लिट्-प्र० ए० विव्याध उसने मारा **विविधतुः** उन दोने मारा, **विविधुः** उन्होंने मारा

लिट्-म० ए० विव्यधिथ विव्यद्ध तैंने मारा

लुट्-प्र० ए० व्यद्धा वह मारेगा

लृट्-प्र० ए० व्यत्स्यति वह मारेगा.

१ लिङ्-प्र० ए० विध्येत् वह मारे.

२ लिङ्-प्र० ए० विध्यात् ईश्वर करे वह मारे.

लुङ्-प्र० ए० अव्यात्सीत् उसने मारा.

पुष् (पुष्टौ) पोसना । पर० सक० अनिट् ।

लट्—प्र० ए० **पुष्यति** वह पोसता है
लिट्—प्र० ए० **पुपोष** उसने पोसा
लिट्—म०ए०**पुपोषिथ** (५१५)तूने पोसा
लुट्—प्र० ए० **पोष्टा** वह पोसेगा
लृट्—प्र०ए०**पोक्ष्यति** ५८६।५३९ वह पोसेगा.
लुङ्—प्र० ए० **अपुषत्** उसने पोसा.
लृङ्—प्र० ए० **अपोक्ष्यत्** जो वह पोसे.

शुष् (शोषणे) सूखना । पर० अक० अनिट् ।

लट्—प्र० ए० **शुष्यति** वह सूखता है
लिट्—प्र० ए० **शुशोष** वह सूख गया.
लुङ्—प्र० ए० **अशुषत्** वह सूख गया.

णश् (अदर्शने) नष्ट होना । पर० अक० वेट् ।

लट्—प्र० ए० **नश्यति** वह नष्ट होता है—
लिट्—प्र० ए० **ननाश** वह नष्ट हुआ । **द्वि० नेशतुः** वे दो नष्ट हुए.

(६७७) रधादिभ्यश्च । ७ । २ । ४५ ॥

रध्–नश्–तृप्–दृप्–द्रुह्–मुह् ष्णुह्–ष्णिह् एभ्यो वलाद्यार्धधातुकस्य वेट् स्यात् ॥

रधादि धातु (रध् नश् तृप् दृप् द्रुह् मुह् ष्णुह् ष्णिह्) ओंसे परे वलादि आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो उसे इट्का आगम (४३४) विकल्प करके हो । नश् धातु रधादिमें है इस कारण इससे परको इट्का आगम हुआ और ' थलि च सेटि ' से एत्त्वाभ्यासलोप हुआ तब **नेशिथ** तू नष्ट हुआ, और जब इट् न हुआ तब=ननश्+थ—

(६७८) मस्जिनशोर्झलि । ७ । १ । ६० ॥

नुम् स्यात् झलादौ ॥

झल् आदि प्रत्यय परे रहते मस्ज् (डूबना) नश् (नष्ट होना) इन धातुओंको नुमका आगम हो । **ननंष्ठ** (३३४, ७८) तू नष्ट हुआ.

उ० द्वि० नेशिव, नेश्व हम दो नष्ट हुए,
उ० ब० नेशिम, नेश्म हम नष्ट हुए.
लुट्-प्र०ए० नशिता नंष्टा वह नष्ट होगा
लृट्-प्र०ए० नशिष्यति नंक्ष्यति वह नष्ट.
लोट्-प्र० ए० नश्यतु वह नष्ट हो.

लङ्-प्र० ए० अनश्यत वह नष्ट हुआ.
लिङ्-प्र० ए० नश्येत् वह नष्ट हो.
२ लिङ्-प्र० ए० नश्यात् ईश्वर करे वह नष्ट हो.
लुङ्-प्र० ए० अनशत् वह नष्ट हुआ,

आत्मनेपद ।

षू (षूङ् प्राणिप्रसवे) उत्पन्न करना । आत्म० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० सूयते वह उत्पन्न करता है.
लिट्-प्र०ए० सुषुवे उसने उत्पन्न किया.
लिट्-म०ए० सुषुविषे तूने उत्पन्न किया.
लिट्-उ० द्वि० सुषुविवहे हम दोनोंने उत्पन्न किया.
लिट्-उ० ब० सुषुविमहे हमने उत्पन्न किया.

लुट्-प्र० ए० सविता सोता वह उत्पन्न करेगा.

लृट्-प्र० ए० सविष्यते सोष्यते वह उत्पन्न करेगा.
लोट्-प्र० ए० सूयताम् वह उत्पन्न करे.
लङ्-प्र० ए० असूयत उसने उत्पन्न किया । वि० लि० प्र० ए० सूयेत वह उत्पन्न करे । आ० लि० प्र० ए० सविषीष्ट सोषीष्ट ईश्वर करे वह उत्पन्न करे.
लुङ्-प्र० ए० असविष्ट, असोष्ट उसने उत्पन्न किया ।
लृङ्-प्र० ए० असविष्यत, असोष्यत जो वह उत्पन्न करे.

दू (दूङ् परितापे) दुःखी होना । आत्म० अक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० दूयते-वह दुःखी होता है । लुङ्-प्र० ए० अदविष्ट वह दुःखी हुआ ॥

दी (दीङ् क्षये) क्षय होना । आत्म० अक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० दीयते-वह क्षीण होता है । लिट्-प्र० ए० दिदी+ए-(४३०,१४९,४८७)

(६७९) दीङो युडचि क्ङिति । ६ । ४ । ६३ ॥
दीङः परस्याजादेः क्ङित आर्धधातुकस्य युट् ॥

दीङ् धातुसे परे अजादि कित् अथवा ङित् आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो उसको युट्का आगम हो ।

युट्में उट् इत्संज्ञक है उसका लोप हो गया । दिदीय्+ए-

---

१ कादिनियमान्नित्यमिट् ।

(६८०) वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ ॥ ❀ ॥

जब उवङ् (२२०) अथवा यण् (२२१) करना हो तो (६००) से वुक् तथा (४२६) युट् (६७९) असिद्ध न हों सिद्ध ही रहें। (६००) से युट् असिद्ध माना तो (२२१) से 'दिदी' अङ्गको यण् आदेश प्राप्त होता है क्योंकि यह सूत्र (६ । ४ । ८२) वां है (६८०) वां वार्तिक इसका अपवाद करता है। **दिदीये** वह क्षीण हुआ. **लुट्-प्र० ए०** दी+ता (४२१) से गुण और ऐकार वृद्धि होनेका कारण हो तो-

(६८१) मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च । ६ । १ । ५० ॥

एषामात्वं स्यात् ल्यपि चादशित्येज्निमित्ते ।

मी (मीञ् मारना) मि (डुमिञ्-फेंकना) और दीङ् (क्षय होना) इन धातुओंसे परे ल्यप् प्रत्यय (९४२) तथा अशित् [एकार] गुण और वृद्धि करनेका निमित्त परे हो तो इन धातुओंको आकार हो। **दाता** वह क्षीण होगा.

लृट्-प्र० ए० दास्यते वह क्षीण होगा। **लोट्-प्र० ए० दीयताम्** । **लङ् प्र० ए० अदीयत** । **लिङ् प्र० ए० दीयेत** । **२ लिङ्-प्र० ए० दासीष्ट** । लुङ्-अदा+स्+त (४७३) यहां (६६४) से 'इ' की प्राप्ति होने पर-

'स्थाघ्वोरिच्चे' दीङः प्रतिषेधः[1] ॥ ❀ ॥

"स्थाघ्वोरिच्च । १ । २ । १७" इससे स्था और घुसंज्ञक धातुओंसे इत्त्व विधान करनेमें दीङ् धातुका प्रतिषेध है अर्थात् दीङ् धातुको इत्त्व न हो। **लुङ्-प्र० ए० अदास्त** वह क्षीण हुआ.

डीङ्-(विहायसा गतौ) उडना । आत्म० अक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० डीयते वह उडता है। **लिट् प्र० ए० डिड्ये** वह[222] उडा। **लुट् प्र० ए० डयिता** वह उडेगा। **लृट् डयिष्यते** । **लोट्-डीयताम्** । **लङ्-अडीयत** । **लिङ्-डयीत** । **आ० डयिषीष्ट** । **लुङ्-अडयिष्ट** । **लृङ्-अडयिष्यत** ।

पी (पीङ् पाने) पीना । आत्म० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० पीयते वह पीता है, । **लुट्-प्र० ए० पेता**[511] वह पियेगा, । **लुङ्-प्र० ए० अपेष्ट** उसने पिया.

मा (माङ् माने) मापना । आत्म० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० मायते वह मापता है। **लिट् प्र० ए० ममे** उसने मापा.

जन् (जनी प्रादुर्भावे) प्रगट होना । आत्म० अक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० जन+य+ते-

---

१ इदं वार्तिकं "दाधाघ्वदाप्" इति इति सूत्रे भाष्ये पठ्यते, ततश्च 'स्थाघ्वोरिच्च' इतीत्वे कर्तव्ये घुसंज्ञायाः प्रतिषेधो वाच्य इति वार्तिकार्थः इत्वे कर्तव्ये दीङो घुसंज्ञैव न भवतीति कथमित्वं भवेत्। तेन प्रणिदातेत्यादौ 'नेर्गद'-इति णत्वं भवत्येव, तत्र कर्तव्ये घुसंज्ञायाः सत्त्वादिति बोध्यम्।

(६८२) ज्ञाजनोर्जा । ७ । ३ । ७९ ॥

अनयोर्जादेशः स्यात् शिति ।

ज्ञा (जानना), जन् (प्रगट होना) इन धातुओंसे परे शित् आवे तो इन धातुओंको ' जा ' आदेश हो । श्यन् श् इत्संज्ञक प्रत्यय परे है तो जनको स्थानमें जा आदेश हुआ— **जायते** वह प्रकट होता है.

४२९।५४१।५४९

लिट्–प्र० ए० जज्ञे वह प्रगट हुआ.
लुट्–प्र० ए० जनिता वह प्रगट होगा.
लृट्–प्र० ए० जनिष्यते वह प्रगट होगा.
लुङ्–प्र० ए० अजन्+च्लि+त—

(६८३) दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् । ३।१।६१॥

एभ्यश्च्लेश्चिण् वा स्यादेकवचने तशब्दे परे ॥

दीप (चमकना), जन् (प्रगट होना) , बुध् (बोध करना), पूर् (भरना), ताय् (फैलाना वा पालना) और प्याय् (फूलना) इन धातुओंसे परे च्लिके स्थानमें विकल्प करके चिण् हो जो एकवचनका त प्रत्यय परे हो तो । चिण्में इ शेष रही और सबका लोप हुआ । अजन्+इ+त–

(६८४) चिणो लुक् । ६ । ४ । १०४ ॥

चिणः परस्य तशब्दस्य लुक् स्यात् ॥

चिण्से परे (६८३) त प्रत्ययका लुक् हो । अजन्+इ (४९०) से अजन् में ज अन्तर्गत अकारको वृद्धि प्राप्त हुई, परन्तु–

(६८५) जनिवध्योश्च । ७ । ३ । ३५ ॥

अनयोरुपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च ।

जन् (प्रगट होना), वध् (मारना) इन धातुओंसे परे चिण् अथवा ञित् णित् (३२९) प्रत्यय आवें तो उनकी उपधाको वृद्धि न हो । **अजनि** (६८३) से चिण् न हुआ तब **अजनिष्ट** वह प्रकट हुआ ॥

दीप् (दीपी दीप्तौ) चमकना । आत्म० अक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० दीप्यते यह चमकता है.
लिट्–प्र० ए० दिदीपे वह चमका.
लुङ्–प्र० ए० अदीपि, अदीपिष्ट[६८३] वह चमका ॥

पद्[१] (पद गतौ) जाना । आत्म० सक० अनिट्

लट्–प्र० ए० पद्यते वह जाता है.
लिट्–प्र० ए० पेदे[५५] वह गया.
लुट्–प्र० ए० पत्ता वह जायगा.
२लिङ्–प्र०ए० पत्सीष्ट ई०करे वह जाय.
लुङ्–प्र० ए० अपद्+च्लि+त–

---

१ प्र=प्रपत्ति–प्राप्ति, भजन । ये यथा मां प्रपद्यन्ते । उद्=उत्पत्ति । दुग्धात् नवनीतमुत्पद्यते । वि= विपत्ति–विपद्यते । उप=योग्यता । नैतत् त्वय्युपपद्यते ।

(६८६) चिण् ते पदः । ३ । १ । ६० ॥

पदश्च्लेः चिण् स्यात्तशब्दे परे ॥

पद् धातुसे परे एकवचनका त प्रत्यय हो तो च्लिको चिण् हो । अपद्+इ+त=**अपादि** (४९०, ६८४) वह गया.

लुङ्–प्र० द्वि० अपत्साताम् वे दो गये । **लुङ्–प्र० ब० अपत्सत** वे गये ॥

विद् (विद सत्तायाम्) होना ।

लट्–प्र० ए० विद्यते वह है । **लुट्–प्र० ए० वेत्ता** वह होगा । **लुङ्–प्र० ए० अवित्त** (६२७, ४६८, ५१४) वह था ॥

बुध् (बुध अवगमने) जानना । आत्म० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० बुध्यते वह जानता है
लिट्–प्र० ए० बुबुधे उसने जाना
लुट्–प्र० ए० बोद्धा[५८७] वह जानेगा
लृट्–प्र० ए० भोत्स्यते[२७८] वह जानेगा
लिङ् प्र० ए० भुत्सीष्ट[६२७ ४६८ २७८।९०] ईश्वर करे वह जाने
लुङ्–प्र० पु० अबोधि[६८३।६८४] **अबुद्ध**[६२७।५८।५८७], उसने जाना व समझा.
लुङ्–प्र० द्वि० अभुत्साताम्[६८७] उन दोने समझा

युध् (संप्रहारे) लडना । आत्म० अ० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० युध्यते वह लडता है
लिट्–प्र० ए० युयुधे वह लडा
लुट्–प्र० ए० योद्धा[५८७] वह लडेगा,
लुङ्–प्र० ए० अयुद्ध[६२७] वह लडा.

सृज् (विसर्गे) त्यागना । आ० अ० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० सृज्यते वह त्यागता है
लिट्–प्र० ए० ससृजे उसने[५०१] त्याग[५४०] किया
लिट्–म० ए० ससृजिषे तैंने त्याग किया
लुट्–प्र० ए० सृज्+त्+आ=

(६८७) सृजिदृशोर्झल्यमकिति । ६ । १ । ५८ ॥

अनयोः अम् स्यात् झलादावकिति ।

सृज् (त्यागना) दृश् (देखना) इन धातुओंको अम्का आगम हो, परे झलादि अकित् प्रत्यय आवे तो । सृ+ज्+ता=स्र्अ+ज्+ता=**स्रष्टा** (३४४, ७८) वह त्याग करेगा.

लृट्–प्र० ए० स्रक्ष्यते[४३६।६२८] वह त्याग करेगा
२लिङ्–प्र० ए० सृक्षीष्ट[६२८] ईश्वर करे वह त्या करे.
लुङ्–प्र० ए० असृष्ट[५१४।६२७।३३४।७८८।७१६९] उसने त्याग किया.
लुङ्–प्र० द्वि० असृक्षाताम्[६२७।३३४।५८।] उन दोने त्याग किया.

मृष (मृष तितिक्षायाम्) सहना । उभयपदी, सक० सेट् ।

पर० ।	आत्म० ।
लट्–प्र० ए० मृष्यति	मृष्यते वह सहता है.
लिट्–प्र० ए० ममर्ष	ममृषे उसने सहा.
लिट्–म० ए० ममर्षिथ	ममृषिषे तूने सहा.
लुट्–म० ए० मर्षितासि	मर्षितासे तू सहेगा.
लृट्–प्र० ए० मर्षिष्यति	मर्षिष्यते वह सहेगा.

नहँ (णह बन्धने) बांधना । उभ० प० स० अनिट् ।

		पर०	आ०
लट्–प्र०	ए०	नह्यति	नह्यते वह बांधता है.
लिट्–प्र०	ए०	ननाह	नेहे उसने बांधा.
लिट्–म०	ए०	नेहिथ[५१८] ननद्ध[५१७ ३८९ ५८७ २७]	नेहिषे तूने बांधा.
लुट्–प्र०	ए०	नद्धासि	नद्धासे तू बांधेगा.
लृट्–प्र०	ए०	नत्स्यति[५१२।१०]	नत्स्यते वह बांधेगा.
लुङ्–प्र०	ए०	अनात्सीत्	अनद्ध उसने बांधा.
लृङ्–प्र०	ए०	अनत्स्यत्	अनत्स्यत जो वह बांधे.

इति दिवादयः समाप्ताः ॥ ४ ॥

अथ स्वादयः ।

१ सु (षुञ् अभिषवे) स्नान करना, सोमवल्ली आदि कूटना, न्हवाना तथा मद्य निर्माण करना । उभयपदी सक० अनिट् । (स्नाने अकर्मकः) ।

(६८८) स्वादिभ्यः श्नुः । ३ । १ । ७३ ॥

शपोऽपवादः ॥

स्वादि गणके धातुओंसे परे श्नु हो। यह सूत्र शप् (४२०) का अपवाद है। श्नुमें शूका लोप हुआ (१९९)

---

१ सन्नह-तैयार होना । युद्धाय सन्नह्यते ।

प०	आ०	
लट्-प्र० ए० सु+नु+ति=सुनोति[४२१]	[४६८।५४] सुनुते	वह न्हवाता है.
लट्-प्र० द्वि० सुनुतः[४१०, ५३६, ४६८]	सुन्वाते	वे दो न्हवाते हैं.
लट्-प्र० ब० सुन्वति[५६८] (हुश्नुवोरिति यण्)	सुन्वते	वे न्हवाते हैं.
लट्-उ० द्वि० सुन्वः[५३८] सुनुवः ।	सुन्वहे, सुनुवहे[५३८]	हम दो न्हवाते हैं.
लिट्-प्र० ए० सुषाव	सुषुवे	उसने न्हवाया.
लुट्०-म० ए० सोतासि	सोतासे	तू न्हवावेगा.
लोट्-प्र० ए० सुनोतु	सुनुताम्	वह न्हवावे.
लोट्-म० ए० सुनु[५२९]	सुनुष्व	तू न्हवा.
लोट्-उ० ए० सुनवानि	सुनवै	मैं न्हवाऊं.
१ लिङ्-प्र० ए० सुनुयात्	सुन्वीत	वह न्हवावे.
२ लिङ्-प्र० ए० सूयात् (५१९)	सोषीष्ट	ईश्वर करे वह न्हवावे.

लुङ्-प्र० ए० असु+स्+त्=

(६८९) स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु । ७ । २ । ७२ ॥

एभ्यस्सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु ॥

स्तु (स्तुति करना), सु (स्नान करना,), धू (कांपना) इन धातुओंसे परे सिच्को इट्का आगम हो परस्मैपदमें । असौ+इ+स्+त्=असाव्+इ+स्+ई+त्=

असावीत्[५१०।५१४।२९] आत्म० असोष्ट[४२१।५१९।७८] उसने न्हवाया.

२ चि[1] (चिञ् चयने) संग्रह करना । उभ० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० चिनोति । आत्म० चिनुते वह संग्रह करता है.

लिट्-प्र० ए० चि+चि+अ-

(६९०) विभाषा चेः । ७ । ३ । ५८ ॥

अभ्यासात्परस्य चिञः कुत्वं वा स्यात्सनि लिटि च ॥

सन् (७९३) अथवा लिट् परे हुए सन्ते अभ्याससे परे चिञ् धातुके चकारके स्थानमें (८८) विकल्प करके कवर्ग हो ।

---

१ उप=उपचय-वृद्धि, अप=अपचय-ह्रास । यो धर्ममुपचिनोति स एव दुःखमपचिनोति । सम्=संचय । कृपणोऽर्थं सञ्चिनोति ।

चिकाय[202][29], चिचाय आत्म० चिक्ये, चिच्ये उसने संग्रह किया.

लुङ्-प्र० ए० अचैषीत । आत्म० अचेष्ट उसने संग्रह किया.

३ स्तृ (स्तृञ् आच्छादने) ढाकना । उभय० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० स्तृणोति (२३६) आत्म० स्तृणुते वह ढकता है.

लिट्-प्र० ए० स्तृ+स्तृ+अ=(४२९) अभ्यासके 'त्' का लोप प्राप्त हुआ-

(६९१) शर्पूर्वाः खयः । ७ । ४ । ६१ ॥

अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्ते अन्ये हलो लुप्यन्ते ॥

अभ्यासके खय्से पूर्व शर् आवे तो खय् शेष रहे अन्य हलोंका लोप हो ।

तस्तार[302] । आत्म० तस्तरे[93]　　उसने ढका.

लिट्-प्र० द्वि० तस्तरतुः[532] । आत्म० तस्तराते उन दोने ढका.

२ लिङ्-प्र० ए० स्तर्यात्[53] । आत्म० स्तृ+सी+स्+त्-

(६९२) ऋतश्च संयोगादेः । ७ । २ । ४३ ॥

ऋदन्तात्संयोगादेः परयोर्लिङ्सिचोरिड्वा स्यात्तङि ॥

जिस धातुके अन्तमें ऋकार हो और आदिमें संयोग हो तो उससे परे लिङ् तथा सिच्को विकल्प करके इट्का आगम हो ।

स्तारिषीष्ट, स्तृषीष्ट[98] ईश्वर करे वह ढके.

लुङ्-प्र० ए० अस्तारीत् । आत्म० अस्तरिष्ट, अस्तृत[582।438।583] उसने ढका.

४ धू (धूञ् कम्पने) कँपना । उभय० सक० वेट् ।

	प०	आ०	
लट्-प्र० ए०	धूनोति	धूनुते	वह कँपता है.
लिट्-प्र० ए०	दुधाव	दुधुवे	उसने कँपाया.
लिट्-म० ए०	दुधविथ[512], दुधोथ,	दुधुविषे	तूने कँपाया.

लिट्-उ० द्वि० दुधू+व-

---

१ वि=विस्तार, विस्तृणोति यशः । सम् आ=फैलाना । कुशान् संस्तृणोति, आस्तृणोति वा ।

(६९३) श्र्युकः किति । ७ । २ । ११ ॥

श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिण्न स्यात् । परमपि स्वरत्यादिविकल्पं बाधित्वा पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यादनेन निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट् ॥

[illegible] धातु अथवा उक् प्रत्याहारान्त एकाच् धातुसे परे गित् अथवा कित् प्रत्यय आवे [illegible] उसे इट्का आगम न हो। तो भी पर भी स्वरत्यादि (९१२) विकल्पको बाधकर [illegible] निषेधकाण्डके आरम्भ सामर्थ्यसे इस सूत्रसे निषेधकी प्राप्ति हुई, पर क्रादिनियमसे [illegible] ही इट् होता है, अर्थात् इस सूत्रसे इट्के आगमका निषेध हुआ, परन्तु (९१९) [illegible] धातुको नित्य इट्का आगम होता है।

दुधुविव[२२०] **दुधुविवहे** हम दोनों कँपाया.

लुङ्-प्र० ए० अधावीत्[६८९, ५२०] **अधविष्ट, अधोष्ट**[५१२] उसने कँपाया.

लृङ्-प्र० ए० अधविष्यत् अधोष्यत[५१२]**, अधविष्यत अधोष्यत** जो वह कँपावेगा

लृङ्-प्र० द्वि० अधविष्यताम् अधोष्यताम्, अधविष्येताम् अधोष्येताम्. जो वे दो कँपावेंगे.

इति स्वादयः समाप्ताः ॥ ९ ॥

अथ तुदादयः ।

१ तुद् (तुद व्यथने) पीडा देना । उभयपदी सक० अनिट् ।

(६९४) तुदादिभ्यः शः । ३ । १ । ७७ ॥

शपोऽपवादः ।

तुद् आदिगणी धातुओंसे परे शप् (४२०) का अपवाद श प्रत्यय हो । तुद् धातुसे [illegible] प्रत्यय हुआ शमें अ शेष रहा.

---

१ पर भी स्वरति आदि विकल्पको पूर्व पठित निषेध प्रकरणके आरम्भ सामर्थ्यसे बाधकर इस सूत्रसे निषेध [illegible] । भगवान् पाणिनिने 'नेड्वशि कृति' 'एकाचः'–'श्र्युकः' इत्यादि निषेध प्रकरण पहले पढा है और 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' 'स्वरति-' इत्यादि विधि प्रकरण उसके आगे, अब दोनोंके विरोधमें विप्रतिषेध[illegible]से विधिशास्त्रही परे होनेसे सर्वत्र होंगे, ऐसी दशामें सभी निषेध शास्त्र व्यर्थ हो जायंगे, इस लिये साम[illegible] पर भी विधिसूत्रोंको बाधकार निषेध सूत्र प्रवृत्त होते हैं यह भाव है ।

लट्–प्र० ए० तुद्+अ+ति **तुदति, आत्म० तुदते** [४१९।५३६।४६८] वह पीडा देता है.

लिट्–प्र० ए० तुतोद[४८] **तुतुदे**[४७७।४६८।४९] उसने पीडा दी.

लिट्–म० ए० तुतोदिथ[५५५] **तुतुदिषे** तूने पीडा दी.

लुट्–म० ए० तोत्तासि **तोत्तासे** तू पीडा देगा.

लुङ्–प्र० ए० अतौत्सीत [५१४ ४२८] **अतुत्त** उसने पीडा दी.

२ **नुद्** (णुद प्रेरणे) प्रेरणा करना । उभय० स० अनिट्।

लट्–प्र० ए० नुदति **नुदते** वह प्रेरणा करता है.

लिट्–प्र० ए० नुनोद **नुनुदे** उसने प्रेरणा की.

लुट्–प्र० ए० नोत्ता **नोत्ता** वह प्रेरणा करेगा.

३ **भ्रस्ज्** (भ्रस्ज् पाके) भूनना । उभय० स० अनिट् ।

ग्रहिज्येति संप्रसारणम् । सस्य श्चुत्वेन शः । जश्त्वेन जः ॥

लट्–प्र० ए० भ्रस्ज्+अति+भ्‌ऋस्ज् अति+भ्‌ऋस्ज्+अति भ्‌ऋज्ज्+अति=

भृज्जति, भृज्जते वह पकाता है या भूनता है ।

लिट्–प्र० ए० भ्रस्ज्+अ=भर् अस्ज्+अ–

(६९५) भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम् । ६ । ४ । ४७ ॥

भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा स्यादार्धधातुके । मित्त्वादन्त्यादचः परः । स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः ।

आर्धधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते भ्रस्ज् धातुके रेफ तथा उपधाके स्थानमें रम्‌का आगम विकल्प करके हो । रम्‌मेंसे अम्‌का लोप होकर र् शेष रहा । वह मित् है और अ अच् अन्तमें है, उससे ही परे यह आगम होता है (२६९)–ब भ्+अर् ज्+अ । पाणिनीयसूत्रमें 'रोपधयोः' इस षष्ठीयुक्त रेफ और उपधाके उच्चारणसे यह स्पष्ट विदित होता है कि, रम् आगम ही नहीं किन्तु आदेश भी है । जो आगम मात्र करनेका प्रयोजन होता तो सूत्रमें केवल धातुही लिखा रहता और उस धातुके विशेष वर्ण सूत्रमें उच्चारित न होते, इस कारणसे भ्र अन्तर्गत रेफ तथा उपधाभूत स्‌का लोप हुआ, क्योंकि स्थानषष्ठीका अर्थ यही है कि किसीको टालकर उसके स्थानमें कोई दूसरा हो ।

बभर्ज बभ्रज्ज, बभर्जे बभ्रज्जे उसने भूजा.

लिट्-प्र० द्वि० बभर्जतुः बभ्रज्जतुः, बभर्जाते बभ्रज्जाते उन दोने भूजा.

लिट्-म० ए० बभर्जिथ बभर्ष्ठ बभ्रज्जिथ बभ्रष्ठ, बभर्जिषे बभ्रज्जिषे तूने भूना,

लुट्-प्र० ए० भर्ष्टा, भ्रष्टा **भर्ष्टा, भ्रष्टा** वह भूनेगा.

लृट्- प्र० ए० भर्क्ष्यति, भ्रक्ष्यति **भर्क्ष्यते, भ्रक्ष्यते** वह भूनेगा.

२ लिङ्-प्र० ए० भ्रस्ज्+यासुट्=त् । **क्ङिति रमागमं बाधित्वा संप्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन ।** (६९९) से रम्का आगम और (६७६) से सम्प्रसारण ये दोनों यहां प्राप्त हैं (१३२) से रमागमका सूत्र (६ । ४ ।४७) है और (६७६) वां सूत्र (६ । १ । १६ है तो पर (६९९) ही प्राप्त हुआ परन्तु इस वार्तिकसे पूर्व ही कार्यका होना उचित है तो पूर्व कार्य जो (६७६) से यण्के स्थानमें इक् सोई होता है अर्थात् कित् वा ङित् प्रत्ययके परे रहते (६७६) से संप्रसारण होता है और रम् (६९९) आगमका बाध होता हैं क्योंकि इस वार्तिकसे पूर्वसूत्र बलिष्ठ है अष्टाध्यायीके क्रमसे (६७६) वां पूर्व है इससे भ्र अन्तर्गत रेफके स्थानमें ऋ हुआ ।

भृज्ज्यात् (७६, २९, ३३७) **भर्क्षीष्ट भ्रक्षीष्ट** ईश्वर करे वे दो भूनें.

२ लिङ्-प्र० द्वि० भृज्ज्यास्ताम् { **भर्क्षीयास्ताम् भ्रक्षीयास्ताम्** } ईश्वर करे वे दो भूनें.

२ लिङ्-प्र-ए० भृज्ज्यासुः, भर्क्षीरन् भ्रक्षीरन् ईश्वर करे वे भूनें.

लुङ्-प्र ए० अभार्क्षीत् अभ्राक्षीत्. अभर्ष्ट अभ्रष्ट उसने भूना ॥

४ कृष् (कृष् विलेखने) जोतना । उभ० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० कृषति **कृषते** वह जोतता है.

लिट् प्र० ए० चकर्ष-- **चकृषे** उसने जोता.

लुट्-प्र० ए० कृष्+ता-

(६९६) अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् । ६ । १ । ५९ ॥

उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याम्वा स्याज्झलादावकिति ॥

कित्भिन्न झलादि आर्धधातुक परे हो तो उपदेशकालमें अनुदात्त ऋकारोपध धातुको अम्का आगम विकल्प करके हो ।

स्कोरिति सलोपः जब झल् परे रहे तो (३३७) से सकारका लोप (३३४) से अन्त्य अक्षरको ष् होजाता है इससे जब इट् नहीं होता तब 'बभ्रष्ठ' तूने भूना ।

क्रष्टा[८६६।५७८] कर्ष्टा[४८।५७८], क्रष्टा कर्ष्टा वह जोतेगा.
२ लिङ्–प्र० ए० कृष्यात् । आत्म० कृक्षीष्ट[६२७।४६८।५६८।१६९] ईश्वर व (वह जो ते.
लुङ्–प्र० ए० कृष्+च्लि+त्–

(६९७) स्पृशमृषकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः ॥ ❋

स्पृश् (स्पर्श करना), मृष् (छूना), कृष् (जोतना), तृप् (तृप्त होना), दृप् (अभिमान करना) इन धातुओंसे परे च्लि आवे तो उसके स्थानमें विकल्प करके सिच् हो ऐसा कहना चाहिये।

अक्राक्षीत्[६९३] अकार्क्षीत्[५००।६३८] अकृक्षत् । आ० अकृष्ट अकृक्षत उसने जोता.
लुङ्–प्र० द्वि० अक्राष्टाम् अकार्ष्टाम् अकृक्षताम् { आ० अकृक्षाताम् उन दोने जोता.

लुङ्–प्र० ब० (क्से) अकृक्षन् । आ० अकृक्षंत[५६०] उन्होंने जोता ॥

मिल् (मिल संगमे) मिलना । उभ० सेट् ।

लट्–प्र० ए० मिलति. मिलते वह मिलता है.	लुट्–प्र० ए० मेलिता, मेलिता वह मिलेगा.
लिट्–प्र० ए० मिमेल, मिमिले वह मिला.	लुङ्–प्र० ए० अमेलीत्[२८६], अमेलिष्ट वह मिला.

मुच् (मुच्लृ मोक्षणे) छोडना । उभ० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० मुच्+अ×ति–

(६९८) शे[३] मुचादीनाम् । ७ । १ । ५९ ॥

मुचलिप्विद्लुप्सिच्कृत्खिद्पिशां नुम् स्यात् शे परे ।

मुच् (छोडना), लिप् (लीपना), विद् (जानना), लुप् (लोप करना, काटना) सिच् (सींचना), कृत् (काटना), खिद् (खेद पाना), पिश् (पीसना) इन धातुओंसे परे श आवे तो नुम्का आगम हो ।

मुन्च्+ति+मुञ्चति[९५=९०] मुञ्चते वह छोडता है.
लिट्–प्र० ए० मुमोच मुमुचे उसने छोडा.

लुट्-प्र० ए० मोक्ता[336] मोक्ता वह छोडेगा.
२ लिङ्-प्र० ए० मुच्यात मुक्षीष्ट[276।468] ईश्वर करे वह छोडे.
लुङ्-प्र० ए० अमुचत्[543] अमुक्त उसने छोडा.
लुङ्-प्र० द्वि० अमुचताम् अमुक्षाताम् उन दोने छोडा

लुप् (लुप्लृ छेदने) काटना वा लोप करना । सकर्मक, अनिट् मुचादि ।
लट्-प्र० ए० लुम्पति लुम्पते वह काटता है वा लोप करता है.
लिट्-प्र० ए० लुलोप लुलुपे उसने काटा.
लुट्-प्र० ए० लोप्ता लोप्ता वह काटेगा.
लुङ्-प्र० ए० अलुपत्[543] अलुप्त[627।468।594] उसने काटा.

विद् (विद्लृ लाभे) पाना । सक० उभ० अनिट् ।
लट्-प्र० ए० विन्दति विन्दते वह पाता है.
लिट्-प्र० ए० विवेद विविदे उसने पाया.

व्याघ्रभूतिमते सेट् । व्याघ्रभूति आचार्यके मतसे इस धातुको इट्का आगम होता है.
लुट्-प्र० ए० वेदिता, वेत्ता वेदिता, वेत्ता वह पावेगा.

भाष्यमते अनिट् । महाभाष्यके मतसे इट्का आगम नहीं होता । उदाहरण **परिवेत्ता** (बडे भाईके विवाह हुए विना छोटा भाई विवाह करले वह) ।

सिच् (षिच क्षरणे) सींचना उभ० सक० अनिट् ।
लट्-प्र० ए० सिञ्चति सिञ्चते वह सींचता है.
लिट्-प्र० ए० सिषेच सिषिचे उसने सींचा.
लुङ्-प्र० ए० असिच्+च्लि+त्-

(६९९) लिपिसिचिह्वश्च । ३ । १ । ५३ ॥

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात् ॥

लिप् (लीपना), सिच् (सींचना), ह्वेञ् (बुलाना) इन धातुओंसे परे च्लिके स्थानमें अङ् (अ) आदेश हो.

असिचत् उसने सींचा । असिच्+च्लि+त-

(७००) आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् । ३ । १ । ५४ ॥

लिपिसिचिह्वः परस्य च्लेरङ् वा तङि ।

आत्मनेपदविषे लिप् सिच् और ह्वेञ् इन धातुओंके परे च्लिके स्थानमें विकल्प करके अङ् (अ) आदेश हो ।

असिचत (वा) असिक्त (६२७, ४६८, ५१४, ३३३) उसने लीपा.
१० लिप् (लिप् उपदेहे) उपदेहो वृद्धिः वृद्धिका अर्थ लेपरूप ही है उभ० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० लिम्पति लिम्पते वह लीपता है.
लुट्०प्र० ए० लेप्ता वह लीपेगा.
लङ्–प्र० ए० अलिपत् अलिपत, अलिप्त उसने लीपा.

॥ इति उभयपदी धातु समाप्त ॥

❀ (७०१) परस्मैपदी धातु ।

११ कृत् (कृती छेदने) काटना । पर० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० कृन्तति वह काटता है.
लिट्–प्र० ए० चकर्त उसने काटा.
लुट्–प्र० ए० कर्तिता वह काटेगा.
लृट्–प्र० ए० कर्तिष्यति कर्त्स्यति–वह काटेगा.
लुङ्–प्र० ए० अकर्तीत् उसने काटा.
लृङ्–प्र०ए०अकर्तिष्यत् अकर्त्स्यत् जो वह काटेगा.

१२ खिद् (खिद परिघाते) पीडा देना । पर० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० खिन्दति वह पीडा देता है.
लिट्–प्र० ए० चिखेद उसने पीडा दी.
लुट्–प्र० ए० खेत्ता वह पीडा देगा.
लुङ्–प्र०ए०अखैत्सीत् उसने पीडा दी.

१३ पिश् (पिश् अवयवे) पीसना पर० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० पिंशति वह पीसता है । **लुट् प्र० ए० पेशिता** वह पीसेगा.

१४ व्रश्च् (ओव्रश्चू छेदने) काटना । पर० सक० वेट् ।

लट्–प्र० ए० [६७६।२८३] **वृश्चति** वह काटता है.
लिट्–प्र० ए० वव्रश्च [४२७, ५८४ ५०१, ४२९] उसने काटा.
लिट्–म०ए०वव्रश्चिथ, वव्रष्ठ [५१२] तूने काटा
लुट्०प्र०ए० व्रश्चिता व्रष्टा वह काटेगा.
[३३७।३३४।५८६।१६२]
लृट्–प्र० ए० व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति–वह काटेगा.
२ लिङ् प्र० ए० वृश्च्यात् [५७३।२८२] ईश्वर करे वह काटे.
लुङ्–प्र० ए० अव्रश्चीत् उसने काटा.

१५ व्यच् (व्यच व्याजीकरणे) ठगना. पर० सेट् ।

---

* यह अङ्क भेद मात्रका है मूलाङ्क नहीं है ।

लट्-प्र० ए० विचति वह ठगता है, [६७६=२८३]
लिट्-प्र० ए० विव्याच [४८४।२८३ ४२९] उसने ठगा
लिट्-प्र० द्वि० विविचतुः [६७६] उन दोने ठगा
लुट्-प्र० ए० व्यचिता वह ठगेगा

लृट्-प्र० ए० व्यचिष्यति वह ठगेगा.
आशीर्लिङ्-प्र० ए० विच्यात् ईश्वर करे वहठगे
लुङ् प्र० ए० अव्याचीत्,[१] अव्यचीत् [४२२] उसने ठगा.

१६ उञ्छ् (उछि उञ्छे) बीनना, दाना इकट्ठा करना। पर० सक० सेट्।

लट्-प्र० ए० उञ्छति यह बीनता है, लुङ्-औञ्छीत् उसने बीना।

१७ ऋच्छ् (ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु) जाना, इंद्रियोंसे शिथिल होना कठिन होना। पर० सेट्।

लट्-प्र० ए० ऋच्छति वह जाता है
लिट्-प्र० ए० आनर्च्छ [४३४।६५४ ६४९] * वह गया
लिट्-प्र० द्वि० आनर्च्छतुः वे दो गये.
लुट्-प्र० ए० ऋच्छिता वह जायगा.

१८ उज्झ (उज्झ उत्सर्गे) त्यागना। पर० सक० सेट्।

लट्-प्र० ए० उज्झति वह त्याग करता है लिट्-उज्झाञ्चकार उसने त्यागा.

१९ लुभ (लुभ विमोहने) लुभाना। पर० सेट्।

लट्-प्र० ए० लुभति वह लुभाता है। लिट् प्र० ए० लुलोभ वह लुभाया.
लुट्-प्र० ए० लुभ्+तास्+आ=लुभ्+ता-

---

१ व्यचेः कुटादित्वमनसीति तु नेह प्रवर्तते, अनसीतिपर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात्। यह वार्तिक वृद्धि निषेधक है कि असरूप कृत्से भिन्न प्रत्यय परे हुए सन्ते व्यच् धातुकी गणना कुटादि गणमें हो (६२५) सो यहां नहीं लगता, क्योंकि असरूप कृत् प्रत्ययको छोडकर, यह जो निषेध किया है इसका आशय यही है कि असरूप कृत् प्रत्ययके समान और जो कृत् प्रत्यय हैं वे ही इस वार्तिकमें ग्रहण किये हुए हैं। तिङ् नहीं कारण कि यहां जो नञ् है सो पर्युदासरूप ÷ है प्रसज्यरूप नहीं जहां इस प्रकार पर्युदास रूप नञ् होता है, वहां निषिध्यमानसे पृथक् उसके समान विवक्षित रहते हैं अव्यच्+स्+त् इस उदाहरणमें तिङ् प्रत्यय परे है इस कारण व्यच् धातु कुटादि नहीं माना गया तो (६२५) के न लगनेसे (४९२) से व्य अन्तर्गत अकारके स्थानमें वृद्धि हुई और जो कृत् प्रत्यय परे हो तो व्यच्को कुटादि मानना पडता है तो (६७६) यकारके स्थानमें इ सम्प्रसारण हो जाता सो न हुआ।

२ उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलमिति यादवः। उञ्छ शब्दका अर्थ दानाका बीनना और शिलशब्दका अर्थ नाजकी वालै विननेका है यह यादवकोशकारका मत है।

= ऋच्छत्यृतामिति गुणः द्विहल्ग्रहणस्यानेकहलुपलक्षणत्वान्नुट्। जब लिट् परे है तो (६५४) से गुण होता है (५९९) से नुट्का आगम होता है, कारण कि (४९९) सूत्रमें दो हल्से अनेक हल्का भी

÷ द्वौ नञौ तु समाख्यातौ पर्युदासप्रसज्यकौ। पर्युदासः सदृग्ग्राही प्रसज्यस्तु निषेधकृत्॥

(७०२) तीषसहलुभरुषरिषः। ७। २। ४८॥

इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्य इड् वा स्यात् ॥

इष् (इच्छा करना), सह् (सहना) लुभ् (लुभाना) रुष् (मारना) रिष् (मारना) इन धातुओंसे परे तकारादि आर्धधातुक प्रत्यय आवे तो उसको विकल्प करके इट्का आगम हो।

लोभिता लोब्धा वह लुभावेगा। **लट्–प्र० ए० लोभिष्यति** वह लुभावेगा।

२० **तृप्** (तृप् तृप्तौ) तृप्त होना। पर० सेट्। मुचादिः

लट्–प्र० ए० तृपति वह तृप्त होता है | **लुट्–प्र० ए० तर्पिता** वह तृप्त होगा.
लिट्–प्र० ए० ततर्प वह तृप्त हुआ | **लुङ्–प्र० ए० अतर्पीत्** वह तृप्त हुआ॥

२१ **तुम्फ्** (तुम्फ् तृप्तौ) तृप्त होना।

लट्–प्र० ए० तृम्फ्+अ (श)+ति (३६३) से न् (म्) उपधाका लोप हुआ तृफ्+अ+ति–

(७०३) शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः॥ ❀ ॥

आदिशब्दः प्रकारे, तेन ये अत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः।

श (६९४) परे हुए सन्ते तृम्फ् तथा उसके समान नकार उपधावाले जो धातु हैं उनको नुम्का आगम हो। वार्तिकमें जो आदि शब्द पढा है उसका अर्थ 'उसी प्रकारका' है इस कारण यहां तृम्फके समान वे धातु हैं जिनकी उपधामें नकार रहता है।

तृम्फति वह तृप्त होता है।

लिट्–प्र० ए० ततृम्फ वह तृप्त हुआ। | २ **लिङ्–प्र० ए० तृफ्यात्**[३६३] ईश्वर करे वह तृप्त हो,

२२ **मृड्** (मृड् सुखने) सुखी करना। पर० सक० सेट्।

लट्–प्र० ए० मृडति वह सुखी करता है.

२३ **पृड्** (पृड् सुखने) सुखी करना.

लट्–प्र०ए० पृडति वह सुखी करता है. **लुङ्–प्र० ए० अपर्डीत्** उसने सुखी किया.

२४ **शुन्** (शुन गतौ) जाना, पर० सक० सेट्।

लट्–प्र० ए० शुनति वह जाता है। **लङ्–प्र० ए० अशोनीत्** वह गया था.

२५ **इष्** (इषु इच्छायाम्) इच्छा करनी। पर० सक० से०।

---

१ आदिशब्दं तु मेधावी चतुष्वर्थेषु भाषते। सामीप्ये च व्यवस्थायां प्रकारेऽवयवे तथा॥ प्रकारः सादृश्यम्। तच्च नकारघटितत्वेन। "प्रकारो भेदसादृश्ये" इत्यमरः।

लट्-प्र० ए० इच्छति[५४] वह इच्छा करता है.

लुट्-प्र० ए० एषिता[७०२], एष्टा[७०८] वह इच्छा करेगा.

लृट्-प्र० ए० एषिष्यति वह इच्छा करेगा.

२ लिङ्- प्र० ए० इच्छात् भगवान करे वह इच्छा करे.

लुङ्-प्र० ए० ऐषीत्[४७२।४८०।२९८] उसने इच्छा की.

२६ कुट्-(कुट कौटिल्ये) कुटिलता करना । पर० अक० सेट्० । कुटादिः ।

लट्-प्र० ए० कुटति वह कुटिलता करता है लिट्-प्र० पु० ए० चुकोट उसने कुटिलता की.

लिट्- म० ए० चुकुटिथ तूने कुटिलता की. गाङ्कुटादीति ङित्त्वम् (६२९) से ङित् हुआ (४६८) गुण न हुआ ।

लिट् उ० ए० चुकोट चुकुट[४६१।३२५।४६८] मैने कुटिलता की.

लुट्-प्र० ए० कुटिता वह कुटिलता करेगा.

२७ पुट (पुट संश्लेषणे) गले लगाना । पर० अक० सेट् कुटा० ।

लट्-प्र० ए० पुटति वह गले लगाता है । लुट्-प्र०ए० पुटिता[६२५] वह लगावेगा.

२८ स्फुटति (स्फुट विकसने) खिलना । पर० अक० सेट् । कुटा० ।

लट्-प्र० ए० स्फुटति वह खिलता है । लुट्-प्र० ए० स्फुटिता[६२५] वह खिलेगा.

२९ स्फुर् (स्फुर संचलने) फडकना । पर० अक० सेट्० । कुटा० ।

लट्-प्र० ए० स्फुरति वह फडकता है ।

३० स्फुल् (स्फुल संचलने) फडकना । पर० अ० सेट । कुटा०

लट्-प्र० ए० स्फुलति वह फडकता है ।

निर् नि अथवा वि उपसर्ग स्फुर् तथा स्फुल्से पहले लगे निर्+स्फुर्+ति—

(७०४) स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः । ८ ३ । ७६ ॥

षत्वं वा स्यात् ॥

निर् नि और वि उपसर्ग (४८) से परे स्फुर् तथा स्फुल् धातु आवें तो उनके सकारके स्थानमें षकार विकल्प करके हो । नि+स्फुरति । नि+स्फुलति=

लट्-प्र० ए० निस्फुरति वह सदा फडकता है.

लट्-प्र० ए० निष्फुरति. निष्फुलति वह सदा फडकता है.

३१ नू (णूं स्तवने) स्तुति करनी । पर० सक० सेट् कुटादि०

लट्–प्र० ए० **नुवति** वह स्तुति करता है	**लुट्**–प्र० ए० **नुविता** वह स्तुति करेगा.
लिट्–प्र० ए० **नुनाव** उसने स्तुति की	

३२ मस्ज् (टुमस्जो[४२७] शुद्धौ) शुद्ध करना वा डूबना ।

लट्–प्र० ए० **मज्जति**[७६।२०] वह शुद्ध करता है ।	**लिट्**–म० ए० ममस्ज्+थ–
लिट्–प्र० ए० **ममज्ज** उसने शुद्ध किया	

(६७८) से नुम्‌का आगम हुआ यह मित् है (२७१) से अन्त अच्से परे प्राप्त हुआ पर—

(७०९) मस्जेरन्त्यात् पूर्वो नुम् वाच्यः ॥ ❀ ॥

संयोगादिलोपः ॥

वार्त्तिककार कहते हैं कि मस्ज् धातुके अन्त्य अक्षरसे पूर्व नुम् हो । यहां (२६९) वा न लगा । ममस् न् ज्+थ (३३७) से सका लोप हुआ ममन् जथ (९६) तब **ममङ्क्थ**[२५।३३३] अथवा **ममज्जिथ** (५१८) तूने शुद्ध किया.

लुट्–प्र० ए० **मङ्क्ता**[६७८।७७३।३३७।३३३।२५।९६] वह शुद्ध करेगा	**लुङ्**–प्र० द्वि० **अमाङ्क्ताम्**[५१४] उन दोने शुद्ध किया.
लृट्–प्र० ए० **मङ्क्ष्यति** वह शुद्ध करेगा	**लुङ्**-प्र०ब०**अमाङ्क्षुः** उन्होंने शुद्ध किया.
	लृङ्-प्र०ए० **अमङ्क्ष्यत्** जो वह शुद्ध करे.
लुङ्–प्र०ए०**अमाङ्क्षीत्** उसनेशुद्धकिया	

३३ रुज् (रुजो भंगे) तोडना ।

लट्–प्र० ए० **रुजति** वह तोडता है	**लृट्**–प्र० ए० **रोक्ष्यति** वह तोडेगा.
लुट्–प्र० ए० **रोक्ता** वह तोडेगा	**लुङ्**–प्र० ए० **अरौक्षीत्** उसने तोडा.

३४ भुज् (भुजो कौटिल्ये) कुटिलता करना ।

लट्–**भुजति** वह कुटिलता करता है । रुज्वत् ।

३५ विश् (विश प्रवेशने) प्रवेश करना ।

लट्–प्र० ए० **विशति** वह प्रवेश करता है ।

---

१ णू इस धातुमें उकार दीर्घ है ऐसा प्रयोग मिलनेसे यथा–' परिणूतगुणोदयः ' जिसके गुणोंका उदय प्रशंसा किया गया है यदि णूका उकार ह्रस्व होता तो छंदोभंग होता,

२ अन्त्यादचः परत्वे तु सकारस्य संयोगादिलोपो न स्यादिति वार्तिकारम्भ इति बोध्यम्

३६ **मृश्**[१] (मृश आमर्शने) स्पर्श करना।

लुङ्-प्र० ए० अम्राक्षीत्[३९७।३३४।८।४८३।५००], **अमार्क्षीत् अमृक्षत्**[२८] उसने छुआ।

'**अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्**' जो धातु उपदेशमें अनुदात्त हो उसकी उपधामें ऋ हो तो (६९६) से विकल्प करके अम् होता है।

३७ सद्[२] षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु) अवयवोंका पृथक् करना, जाना, दुखी होना। पर० सक० अनिट्।

लट्-प्र० ए० सीदति[५३] वह दुखी होता है। **लुङ्-प्र० ए० असदत्।**

३८ शद् (शद्लृ शातने) छीलना. (विशीर्ण होना)

(७०६) शदेः शितः। १। ३। ६०॥

शिद्भाविनोऽस्मात्तङानौ स्तः॥

शद् धातुसे परे शित् जब प्रत्यय आनेको हो तब उससे आत्मनेपद प्रत्यय (तङ् और आन) हों।

लट्-प्र० ए० शीयते[५२३] वह विशीर्ण होता है.
लोट्-प्र०ए०शीयताम् वह विशीर्ण हो.
लङ्-प्र० ए० अशीयत वह विशीर्ण हुआ.
लिङ्-प्र० ए० शीयेत वह विशीर्ण हो.

जब शित् प्रत्यय न हुआ तब परस्मैपद हुआ--

लिट्-प्र०ए० शशाद वह विशीर्णहुआ.
लुट्--प्र० ए० शत्ता[५२१] वह विशीर्ण होगा.
लृट्-प्र०ए०शत्स्यति वहविशीर्ण होगा.
लोट्-प्र०ए०शीयताम् वह विशीर्ण हो.
लुङ्-प्र० ए० अशदत्[५४३] वह विशीर्ण हुआ.
लृङ्-प्र० ए० अशत्स्यत् जो वह विशीर्ण हो.

३९ **कॄ** (विक्षेपे) छितराना।

---

१ परा=विचार। परामृशति। वि=विमर्श-चिन्ता। विमृशति।

२प्र=प्रसन्नता-मनो धर्माचरणेन प्रसीदति। वि=दुःख-तदेव मनः पापाचरणेन विषीदति। अव=ह्रास-अकर्मण्योऽवसीदति। उद्=नाश-पापकृत् उत्सीदति। आ=समीप जाना-पान्थः कूपमेकमाससाद। नि=स्थिति, इतो निषीद।

(७०७) ऋत इद्धातोः । ७ । १ । १०० ॥

ऋदन्तस्य धातोरङ्गस्य इत् स्यात् ॥

ऋकारान्त धातु अङ्गको इकार हो ।

लट्–प्र० ए० किरति वह छितराता है.
लिट्–प्र०ए० चकार[६५४।४९०] उसने छितराया
लिट्–प्र० द्वि०चकरतुः[६५४] उन दोने छितराया
लिट्–प्र० ब० चकरुः उन्होंने छितराया
लुट्–प्र० ए० करिता[६५५], करीता वह छितरावेगा.
लिङ्–प्र० ए० कीर्यात्[६६५] ईश्वर करे वह छितरावे.

(७०८) किरतौ लवने । ६ । १ । १४० ॥

उपात्किरतेः सुट् छेदने ॥

छेदन अर्थवाचक कॄ धातु जो उप उपसर्गसे परे आवे तो उसको सुट्का आगम हो ।

लट्–प्र०ए० उपस्किरति वह काटता है । **लिट्–प्र० ए०** उप+कॄ+कॄ–

(७०९) अडभ्यासव्यवायेऽपि । ६ । १ । १३६ ॥

अट् (४६८) अथवा अभ्यासका व्यवधान हो तो भी (७०८) से सुट् होता है ।

(७१०) सुट् कात् पूर्व इति वक्तव्यम् ॥ ❀ ॥

सुट्का आगम कॄ धातुके कसे पूर्व हो ऐसा कहना चाहिये ।

उपचस्कार उसने काटा .

लङ्–प्र० ए० उपास्किरत उसने काटा.

(७११) हिंसायां प्रतेश्च । ६ । १ । १४१ ॥

उपात्प्रतेश्च किरतेः सुट् स्यात् हिंसायाम् ॥

हिंसार्थक कॄ धातु प्रति तथा उप उपसर्गसे परे आवे तो उससे सुट्का आगम हो ।

लट्–प्र० ए० उपस्किरति, प्रतिस्किरति । वह हिंसा करता है.

४० गॄ (निगरणे) निगलना ।

लट्-प्र० ए० । गॄ+अति=गिर् (७०७)+अ+ति—

(७१२) अचि विभाषा । ८ । २ । २१ ॥

गिरते रेफस्य वा लोऽजादौ प्रत्यये परे ।

अजादि प्रत्यय परे हुऐ सन्ते गॄ धातुके रेफके स्थानमें लकार विकल्प करके हो । **गिलति, गिरति** वह निगलता है, **लिट् प्र० ए० जगाल जगार** वह निगल गया, **लि०-म० ए० जगलिथ, जगरिथ** तूने निगला । **लुट्-प्र०** { **गलिता, गलीता**[६५३] **गरिता, गरीता** } वह निगलेगा.

४१ प्रच्छ—(प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्) पूछना ।

लट्-प्र० ए० पृच्छति[६७६] वह पूछता है.
लिट्-प्र० ए० पप्रच्छ उसने पूछा.
लिट्-प्र० द्वि० पप्रच्छतुः उन दोने पूछा
लिट्-प्र० ब० पप्रच्छुः उन्होंने पूछा.
लुट्-प्र० ए० प्रष्टा[३३।१७] वह पूछेगा.
लृट्-प्र० ए० प्रक्ष्यति[१६९] वह पूछेगा.
लुङ्-प्र० ए० अप्राक्षीत् उसने पूछा.
लृङ्-प्र० ए० अप्रक्ष्यत् जो वह पूछे.

४२ मृ(मृङ् प्राणत्यागे) **मरना** ।

लट्-प्र० ए० मृ+अ+ल्—

(७१३) म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च । १ । ३ । ६१ ॥

लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङ् नान्यत्र ॥

लुङ् लिङ् और शित् प्रत्यय परे हुए सन्ते मृधातुसे परे तङ् (आत्मनेपद) प्रत्यय हो (४१०) अन्यत्र नहीं ।

म्रियते[५८१।२२] आत्मने० वह मरता है.

लिट्०प्र० ए० ममार	(परस्मै०)	वह मरा.
लुट्०प्र० ए० मर्ता	(परस्मै०)	वह मरेगा.
लृट्०प्र० ए० मरिष्यति	(परस्मै०)	वह मरेगा.
२ लिङ्-प्र० ए० मृषीष्ट[५७२।४०८]	(आत्म०)	ईश्वर करे वह मरे.
लुङ्०प्र० ए० अमृत[५८३।५७२।४५६]	(आत्म०)	वह मरा.

४३ पृ (पृङ् व्यायामे) उद्योग करना । आत्मनेपदी ।

(प्रायेणायं व्याङ्पूर्वः) बहुधा इस धातुसे पूर्व वि आङ् उपसर्ग रहते हैं.

लट्–प्र० ए० वि+आ+प्रियते व्याप्रियते वह उद्योग करता है।

लिट्–प्र० ए० व्यापप्रे[५४९] उसने उद्योग किया.

लिट्–प्र० द्वि० व्यापप्राते उन दोने उद्योग किया.

लृट्–प्र० ए० व्यापरिष्यते[५२३] वह उद्योग करेगा

लङ्–प्र० ए० व्यापृत[६८२ ५८२ ४६८] उसने उद्योग किया.

लुङ्–प्र० द्वि० व्यापृषाताम्[५८२ ४६८ ११६] उन दोने उद्योग किया.

४४ जुष् (जुषी प्रीतिसेवनयोः) प्रीति तथा सेवा करना ।

लट्–प्र० ए० जुषते वह प्रीति करता है । लिट्–प्र०ए० जुजुषे उसने प्रीति की

४५ विज् ओविजी भयचलनयोः) भय तथा कंपन ।

प्रायेण उत्पूर्वः । इस धातुके पूर्व प्रायः उद् उपसर्ग रहता है ।

लट्–प्र० ए० उद्विजते वह भय करता है.

लुट्–प्र० ए० उत्+विज्+इता–

(७१४) विज इट् । १ । २ । २ ॥

विजेः पर इडादिप्रत्ययो ङिद्वत् ॥

विज्धातुसे परे इडादि (जिसके आदिमें इट् है) प्रत्यय आवे तो ङिद्वत् (६२९) हो ।
उद्विजिता[४६८] वह भय करेगा ।

॥ इति तुदादयः समाप्ताः ॥ ६ ॥

अथ रुधादयः ।

१ रुधृ (रुधिर् आवरणे) आवरण करना, घेरना । उभयपदी, सक० अनिट् ।

(७१५) रुधादिभ्यः श्नम् । ३ । १ । ७८ ॥

शपोऽपवादः ।

---

१ अनु=अनुरोध–सिफारिश । आग्रही स्वपक्षमनुरुन्धे । वि=विरोध हितं विरुणद्धि मूर्खः । नि=निरोध–शत्रुं निरुणद्धि इत्यादि ॥

रुधादि धातुसे परे श्नम् हो। यह शप्‌का अपवाद है। श्नम्‌मेंसे न शेष रहा। रुन्+ध्+ति--

परस्मैपद।	आत्मनेपद।	
लट्-प्र० ए० रुणद्धि [265] [157।587।25]	रुन्द्धे [692]	(५८२) वह घेरता है.
लट्-प्र० द्वि० रुन्द्धः [691।587।25।95।96]	रुन्धाते	वे दो घेरते हैं,
लट्-प्र० ब० रुन्धन्ति	रुन्धथे [560]	वे घेरते हैं.
लट्-म० ए० रुणत्सि	रुन्त्से	तू घेरता है.
लट्-म० द्वि० रुन्द्धः [5।25।9।94]	रुन्धाथे	तुम दो घेरते हो.
लट्-म० ब० रुन्ध	रुन्ध्वे	तुम घेरते हो.
लट्-उ० ए० रुणध्मि	रुन्धे	मैं घेरता हूँ.
लट्-उ० द्वि० रुन्ध्वः	रुन्ध्वहे	हम दो घेरते हैं.
लट्-उ० ब० रुन्ध्मः	रुन्ध्महे	हम घेरते हैं.
लिट्-प्र० ए० रुरोध	रुरुधे	उसने घेरा.
लुट्-प्र० ए० रोद्धा [468] [587 25]	रोद्धा	वह घेरेगा.
लृट्-प्र० ए० रोत्स्यति	रोत्स्यते [90]	वह घेरेगा.
लोट्-प्र० ए० रुणद्धु, रुन्धात् [435]	रुन्धाम्	वह घेरे.
लोट्-प्र० द्वि० रुन्द्धाम्	रुन्धाताम्	वे दो घेरें.
लोट्-प्र० ब० रुन्धन्तु	रुन्धताम्	वे घेरें.
लोट्-म० ए० रुन्धि (८९)	रुन्त्स्व	तू घेर.
लोट्--उ० ए० रुणधानि	रुणधै	मैं घेरूँ.
लोट्-उ० द्वि० रुणधाव	रुणधावहै	हम दो घेरें.
लोट्--उ० ब० रुणधाम	रुणधामहै	हम घेरें.
लङ्--प्र० ए० अरुणत् [556], अरुणः	अरुन्ध	उसने घेरा.
लङ्-प्र० द्वि० अरुन्धाम्	अरुन्धाताम्	उन दोने घेरा.
लङ्-प्र० ब० अरुन्धन्	अरुन्धत	उन्होंने घेरा.
लङ्--म० ए० अरुणः, अरुणत्	अरुन्धाः	तूने घेरा.
लिङ्--प्र० ए० रुन्ध्यात्	रुन्धीत	वह घेरे.
२ लिङ्--प्र० ए० रुध्यात्	रुत्सीष्ट [627]	ईश्वर करे वह घेरे.
लुङ्--प्र० ए० अरुधत् [669], अरौत्सीत्	अरुद्ध	उसने घेरा.
लृङ्--प्र० ए० अरोत्स्यत्	अरोत्स्यत	जो वह घेरे.

२ भिद् (भिदिर् विदारणे) तोडना।

३ छिद् (छिदिर् द्वैधीकरण) दो टुकडे करना। उभ० सक० अनिट्

४ युज् (युजिर् योगे (मिलाना। उभय० सक० अनिट्

इन तीनों धातुओंके रूप रुध्धातुके समान जानने परन्तु युज्में (९५, ९६) से परसवर्ण होता है।

५ रिच् (रिचिर् विरेचने) पेट चलाना। उभय० अक० अनिट्।

परस्मैपद।	आत्मनेपद।	
लट्--प्र० ए० रिणक्ति	रिङ्क्ते[६१२।६१५।९६]	वह पेट चलाता है.
लिट्--प्र० ए० रिरेच	रिरिचे	उसने पेट चलाया.
लुट्--प्र० ए० रेक्ता	रेक्ता	वह पेट चलावेगा.
लृट्--प्र० ए० रेक्ष्यति	रेक्ष्यते	वह पेट चलावेगा.
लङ्--प्र० ए० अरिणक्-ग्[१११] [९६]	अरिङ्क्त	उसने पेट चलाया.
लुङ्--प्र० ए० अरिचत्[६३९] [५००]	अरैक्षीत अरिक्त[६२१]	उसने पेट चलाया.

६ विच् (विचिर् पृथग्भावे) पृथक् होना, उभय० अनिट्।

लट्--प्र० ए० विनक्ति आ० विङ्क्ते वह पृथक् होता है।

७ क्षुद् (क्षुदिर् संपेषणे) पीसना। उभय० सक० अनिट्।

परस्मैपद।	आत्मनेपद।	
लट्--प्र० ए० क्षुणत्ति	क्षुन्ते	वह पीसता है.
लुट्--प्र० ए० क्षोत्ता	क्षोत्ता	वह पीसेगा.
लुङ्--प्र० ए० अक्षुदत्, अक्षौत्सीत्	अक्षुत्त[६२७।६८६।५१४]	उसने पीसा.

८ छृद् (उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः) चमकना वा खेलना उभ० सेट्।

---

१ उद्=उद्योग। साधवः परहितायोद्युञ्जते। प्र=प्रयोग करना। अपदं न प्रयुञ्जीत। नि=नियोग-किसी काममें लगाना। सेवायां भृत्यं नियुङ्क्ते। अनु=अनुयोग-प्रश्न-शिष्यो गुरुमनुयुङ्क्ते। उप=उपयोग-धनं परहितायोपयुङ्क्ते।

परस्मैपद ।	आत्मनेपद ।	
लट्-प्र० ए० छृणत्ति	छृन्ते	वह चमकता है.
लिट्-प्र० ए० चच्छर्द	चच्छृदे	वह चमका.
लिट्-म० ए० चच्छर्दिथ ।	चच्छृदिषे चच्छृत्से[६७१]	तू चमका.
लुट्-प्र० ए० छर्दिता	छर्दिता	वह चमकेगा.
लृट्-प्र० ए० छर्दिष्यति छर्त्स्यति[६७१].	छर्दिष्यते छर्त्स्यते,	वह चमकेगा.
लुङ्-प्र० ए० अच्छृदत अच्छर्दीत,	अच्छर्दिष्ट	वह चमका.

९ तृद् (उतृदिर् हिंसानादरयोः) हिंसा करना, अनादर करना । उभ० सक० सेट् ।
लट्-प्र० ए० तृणत्ति आ० तृन्ते-वह हिंसा वा अनादर करता है ॥

१० कृत (कृती वेष्टने) घेरना । परस्मै० सक० सेट् ।
लट्-प्र०ए०कृणत्ति वह घेरता है । लुट्-कर्तिता । लृट्-कर्तिष्यति, कर्त्स्यति।

११ तृह् (तृह हिंसायाम्) हिंसा करना । स० सेट् पर० ।
लट्-प्र० ए० तृणह्+ति-

(७१६) तृणह इम् । ७ । ३ । ९२ ॥

तृहः श्नमि कृते इमागमो हलादौ पिति ।

हलादि पित् प्रत्यय परे हुए सन्ते तृह्को इम्का आगम हो जब श्नम् (७१९) स्थापन किया गया हो ।

तृणेढि[३५।२७६।५८७।७८।५५८]
लट्-प्र० द्वि० तृण्ढः[५५७६] [६१३।२७६।५८७।८७।५८८।९५।९६] — वह हिंसा करता है.
लट्-प्र० ब० तृंहंति — वे दो हिंसा करते हैं.
लिट्-प्र० ए० ततर्ह — वे हिंसा करते हैं.
लुट्-प्र० ए० तर्हिता — उसने हिंसा की.
लङ्-प्र० ए० अतृणेट्-ड्[४५०] [३५।१९९।२८६।८२।१६५] — वह हिंसा करेगा.
उसने हिंसा की.

१२ हिन्स् (हिसि हिंसायाम्) हिंसा करना । पर० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० हिनस्ति (४९८, ७२८)] — वह हिंसा करता है.
लिट्-प्र० ए० जिहिंस — उसने हिंसा की.
लुट्-प्र० ए० हिंसिता — वह हिंसा करेगा.
लङ्-प्र० ए० अहिन+न्स्=ति (७१८, ४९९)

(७१७) तिप्यनस्तेः । ८ । २ । ७३ ॥

पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि न त्वस्तेः । ससजुषोरुरित्यस्यापवादः ।

तिप् परे रहते पदान्त सकारको दकार हो अस् धातुको छोडकर । यह सूत्र (१३४) का बाधक है ।

अहिनत्, अहिनद् (१२९, १९९)

अहिंस्ताम् अहिंसन् । अहिनत्+स्+सि (४९९, ७१८, १९९)

(७१८) सिपि धातो रुर्वा[१] । ८ । २ । ७४ ॥

पदान्तस्य धातोः सस्य रुर्वा स्यात् पक्षे दः ।

धातुके पदान्त सकारको विकल्प करके रु हो ।

अहिनः । अहिनत् (८२)-द् (१६९) लुङ्-अहिंसीत् ।

१३ उन्द् (उन्दी क्लेदने) भिजोना.

लट्-प्र० ए०	**उनत्ति**[७१८]	वह भिजोता है.
लट्-प्र० द्वि०	**उन्त्तः**[७१८ ६१२।८२।९५।९६]	वे दो भिजोते हैं.
लट्-प्र० ब०	**उन्दन्ति**[७१८।११२]	वे भिजोते हैं.
लिट्-प्र० ए०	**उन्दाञ्चकार**[५४]	उसने भिजोया.
लङ्-प्र० ए०	**औनत्**[७१८।४७९।२१८]	उसने भिजोया.
लङ्-प्र० द्वि०	**औन्ताम्**[७१८।९५।६१२।८२।९६]	उन दोने भिजोया.
लङ्-प्र० ब०	**औन्दन्**[७१८।६१]	उन्होंने भिजोया.
लङ्-म० ए०	**औनः औनत्-द्**[७१८]	तूने भिजोया.
लङ्-उ० ए०	**औनदम्**[७१८]	मैंने भिजोया.

१४ अञ्ज् (अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु) प्रकाश करना, तेल लगाना, सुन्दर होना, जाना । पर० वेट् ।

---

१ इस सूत्रमें ' वा ' शब्दका अर्थ समुच्चय है, इससे ' वसुस्रंसु '-इस सूत्रसे अनुवृत्त ' द ' का समुच्चय होता है मतलब यह कि, यही सूत्र सत्व और दत्व दोनों कार्य करता है । ' झलां जशोऽन्ते " से सको ' द ' नहीं हो सकता, क्योंकि उसका ' ससजुषो रुः ' सूत्र अपवाद है, विस्तार सिद्धान्तकौमुदीकी टिप्पणीमें देखो ।

लट्–प्र० ए० अनक्ति — वह प्रकाश करताहै.

लट्–प्र० द्वि० अङ्क्तः — वे दो प्रकाश करते हैं.

लट्–प्र० ब० अञ्जन्ति — वे प्रकाश करते हैं.

लिट्–प्र० ए० आनञ्ज — उसने प्रकाश किया.

लिट्–म० ए० आनञ्जिथ, आनङ्क्थ — तूने प्रकाश किया.

लुट्–प्र० ए० अञ्जिता, अङ्क्ता — वह प्रकाश करेगा.

लोट्–म० ए० अङ्ग्धि — तू प्रकाश कर.

लोट्–उ० ए० अनजानि (७२८) — मैं प्रकाश करूं.

लङ्–प्र० ए० आनक् (१९९) — उसने प्रकाश किया.

लुङ्–प्र० ए० आञ्ज्+स्+ईत् (४७२, ४७९)

(७१९) अञ्जेः सिचि । ७ । २ । ७१ ॥

अञ्जेः सिचो नित्यमिट् स्यात् ॥

अञ्ज् धातुसे परे सिच् आवे तो उसे नित्य इट्का आगम हो ।

आञ्जीत् (४८१) उसने प्रकाश किया ।

१५ तञ्च् (तञ्चू संकोचने) संकोचित होना । पर० वेट् ।

लट्–प्र० ए० तनक्ति — वह संकुचित होता है ।

लुट्–प्र० ए० तङ्क्ता तञ्चिता — वह संकोचित होगा.

१६ विज् (ओविजी भयचलनयोः) भय करना, कम्पित होना । पर० अक० सेट्.

लट्–प्र० ए० विनक्ति (३३३) वह कांपता है

लट्–प्र० द्वि० विङ्क्तः वे दो कांपते हैं

लिट्–प्र० ए० विविजिथ तू कांपा

लुट्–प्र० ए० विजिता वह कांपेगा.

लङ्–प्र० ए० अविनक् वह कांपा.

लुङ्–प्र० ए० अविजीत्[1] वह कांपा.

१७ शिष् (शिष्लृ विशेषणे) विशेष करना । पर० सक० अनिट् ।

---

१ 'विज इडिति ङित्त्वम्' (७१४) से इट् आगम ङित् (४६८) माना जाता है ।

लट्–प्र० ए० शिनष्टि वह विशेष करता है
लट्–प्र०द्वि०शिंष्टः वे दो विशेष करते हैं
लट्–प्र०ब० शिंषन्ति वे विशेष करते हैं
लट्–म०ए० शिनक्षि तू विशेष करता है
लिट्–प्र०ए० शिशेष उसने विशेष किया
लिट्–म०ए०शिशेषिथ तूने विशेष किया
लुट्–प्र०ए०शेष्टा वह विशेष करेगा
लृट्–प्र०ए० शेक्ष्यति वह विशेष करेगा
लोट्–म० ए० शिण्ड्ढि, शिण्ढि तू विशेष कर.
लोट्–उ० ए० शिनषाणि मैं विशेष करूं
लङ्–प्र०ए० अशिनट्–ड् उसने विशेष किया.
लिङ्–प्र०ए० शिंष्यात् वह विशेष करे.
२ लिङ्–प्र० ए० शिष्यात् ईश्वर करे. वह विशेष करे.
लुङ्–प्र०ए०अशिंषत् उसने विशेष किया.

१८ पिष् (पिष्लृ संचूर्णने) पीसना, दलना । पर० सक० अनिट् ।

इस धातुके रूप शिष् धातुके समान जानने ।

१९ भञ्ज् (भञ्जो आमर्दने) तोडना । पर० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० भन+न्ज्+ति–

(७२०) श्नान्नलोपः । ६ । ४ । २३ ॥

श्नमः परस्य नस्य लोपः स्यात् ॥

श्नम्से परे नकार हो तो उसका लोप हो ।

भनक्ति (३३३) (७१८) वह तोडता है.

लिट्–प्र० ए०	बभञ्ज	उसने तोडा.
लिट्–म० ए०	बभञ्जिथ (५१८) बभङ्क्थ (५१७)	तूने तोडा.
लुट्–प्र० ए०	भङ्क्ता	वह तोडेगा.
लृट्–प्र० ए०	भङ्क्ष्यति	वह तोडेगा.
लोट्–प्र० ए०	भनक्तु	वह तोडे.
लोट्–म० ए०	भङ्ग्धि	तू तोड.
लुङ्–प्र० ए०	अभाङ्क्षीत्	उसने तोडा.

१ " नकारजावनुस्वारपञ्चमौ झलि धातुषु । सकारजश्शकारश्चे षाट्टवर्गस्तवर्गजः " इति ञकारोऽत्र नकारो बोध्यः । धातुओंमें झल् परे रहते अनुस्वार और वर्गोंके पञ्चमवर्ण नकारज (नकारसे जायमान) जानना चपरे रहते शकारको सकारज, तथा रेफ षकारसे परे टवर्गको तवर्गज जानना इसीसे यहां ञको 'न' मानकर कार्य होता है ।

२० भुज् (भुज पालनाभ्यवहारयोः) पालन, खाना । पर० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० भुनक्ति वह पालता है.
लुट्-प्र० ए० भोक्ता वह पालेगा.
लृट्-प्र० ए० भोक्ष्यति वह पालेगा.
लङ्-प्र० ए० अभुनक् उसने पाला.

(७२१) भुजोऽनवने । १ । ३ । ६६ ॥

तङानौ स्तः ॥

भुज् धातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो जो उसका अर्थ पालनसे भिन्न हो तो ।
लट्-प्र० पु० ए० व० भुङ्क्ते वह खाता है, यथा " ओदनं भुङ्क्ते " (वह भात खाता है) यहां पालन अर्थ नहीं है इससे आत्मनेपद हुआ.

अनवने किम् ? पालन अर्थमें निषेध क्यों किया ? **महीं भुनक्ति** वह पृथ्वीको पालता है । यदि पालनका निषेध न करते तो यहां भी आत्मनेपद हो जाता, यहां पालन है ।

२१ इन्ध् (ञिइन्धी दीप्तौ) चमकना । आत्मने० अक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० इन्द्धे [७१८।६१२।५४४] वह चमकता है.
लट्-प्र० द्वि० इन्धाते [७१८ ६१२] वे दो चमकते हैं.
लट्-प्र० ब० इन्धते [७१६।१२ ६४४] वे चमकते हैं.
लट्-म० ए० इन्त्से तू चमकता है.
लट्-म० ब० इन्ध्वे [७१८।५६२ ८१० ६५५८] तुम चमकते हो.
लिट्-प्र० ए० इन्धाञ्चक्रे [५४०] वह चमका.
लुट्-प्र० ए० इन्धिता वह चमकेगा.
लोट्-प्र० ए० इन्धाम् [७१८।६१२।५५] वह चमके.
लोट्-प्र० द्वि० इन्धाताम् [७१७ ६१२] वे दो चमकें.
लोट्-उ० ए० इनधै [७१८ ५५५ २१८ २५१] मै चमकूं.
लङ्-प्र० ए० ऐन्ध वह चमका.
लङ्-प्र० द्वि० ऐन्धाताम् वे दो चमके.
लङ्-म० ए० ऐन्धाः तू चमका.
लुङ्-प्र० ए० ऐन्धिष्ट वह चमका.

२२ विद् (विद विचारणे) विचार करना । आ० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० विन्ते वह विचार करता है । **लुट्-प्र० ए० वेत्ता** वह विचार करेगा.

इति रुधादयः समाप्ताः ॥

अथ तनादयः ।

१ **तन्** (तनु विस्तारे) विस्तार करना । उभ० सक० सेट् ।

(७२२) तनादिकृञ्भ्य उः । ३ । १ । ७९ ॥

शपोऽपवादः ॥

तनादि तथा कृ धातुसे परे उ प्रत्यय हो । यह शप्[420]का अपवाद है ।

लट्-प्र० ए० तनोति[432] **आ० तनुते**[536।468।544] वह विस्तार करता है.
लिट्-प्र० ए० ततान तेने[495] उसने विस्तार किया.
लुट्-प्र० ए० तनितासि तनितासे तू विस्तार करेगा.
लृट्-प्र० ए० तनिष्यति तनिष्यते वह विस्तार करेगा.
लोट्-प्र० ए० तनोतु तनुताम्[553] वह विस्तार करे.
लङ्-प्र० ए० अतनोत् अतनुत उसने विस्तार किया.
१ लिङ्-प्र० ए० तनुयात्[461] **तन्वीत**[23।556] वह विस्तार करे.
२ लिङ्-प्र० ए० तन्यात् तनिषीष्ट[552] भगवान् करे वह विस्तार करे.
लुङ्-प्र० ए० अतनीत् अतानीत्[492] **आ०** अतन्+स्+त्-

(७२३) तनादिभ्यस्तथासोः । २ । ४ । ७९ ॥

तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् तथासोः ॥

त तथा थास् प्रत्यय परे हुए सन्ते तन् आदि धातुओंसे परे सिच् (४७३) का लोप विकल्प करके हो ।

अतत[597] **अतनिष्ट**[1690।78] उसने विस्तार किया.
लुङ्-म० ए०अतानीः, अतनीः, अतथाः[597] **अतनिष्ठाः**[196] तूने विस्तार किया.
लृङ्-प्र० ए० अतनिष्यत् अतनिष्यत जो वह विस्तार करे.

२ **षण्** (षणु दाने) देना । उभय० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० सनोति[280]**, सनुते** वह देता है । **२ लिङ् प्र० ए०** सन्+या+त्

---

१ ' थासा साहचर्यादेकवचनान्तशब्दो गृह्यते तेनेह न यूयमतनिष्ट ' इति ।
थास्के साहचर्य्यसे एकवचन 'त' शब्दका ग्रहण होता है अन्यका नहीं, तिससे परस्मैपद म० ब० अतनिष्ट ' यहां सिचलुक् न हुआ ।

(७२४) ये विभाषा । ६ । ४ । ४३ ॥

जन्सन्खनामात्त्वं वा यादौ क्ङिति ॥

जन् (उत्पन्न करना), सन् (देना). खन् (खोदना) इन धातुओंसे परे यकारादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय आवे तो धातुओंको आत्त्व हो ।

सायात्, सन्यात्. आ० सनिषीष्ट ईश्वर करे वह दे.

लुङ्-प्र० ए० असानीत्[४९२], असनीत् उसने दिया । असन्+स्[७२१]+त-

(७२५) जनसनखनां सञ्झलोः । ६ । ४ । ४२ ॥

एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सनि झलादौ क्ङिति ॥

जन्, सन् और खन् धातुओं परे सन् प्रत्यय (७६२) अथवा झलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय आवे तो धातुओंको आकार हो ।

लुङ्-आ० प्र० ए० असात, असनिष्ट उसने दिया.

लुङ्-म० ए० असानीः असनीः असाथाः असनिष्ठाः[७२१] तूने दिया.

क्षण् (क्षणु हिंसायाम्) हिंसा करनी । उभय० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० क्षणोति	**क्षणुते**	वह हिंसा करता है.
लुङ्-प्र० ए० अक्षणीत्[५०१]	**अक्षत[५९७।६२५] अक्षणिष्ट**	उसने हिंसा की.
लुङ्-म० ए० अक्षणीः	**अक्षथाः[५९७।७२१] अक्षणिष्ठाः**	तूने हिंसा की.

४ क्षिणु (क्षिणु च[१] हिंसायाम्) मारना । उभ० सक० सेट् ।

' उप्रत्यये[२] लघूपधस्य गुणो वा ' ॥ * ॥

उप्रत्यय परे हुए सन्ते लघूपध धातुको गुण विकल्प करके हो ।

लट्०प्र० ए० क्षिणोति **क्षेणोति[४८६] क्षिणुते** वह हिंसा करता है.

---

१ ' क्षिणु च ' चकारसे हिंसा अर्थ गृहीत होता है ।

२ विवरण यह है कि, **'उप्रत्य०'** यह वाक्य सूत्र वार्तिक वा भाष्यमें नहीं है किन्तु कल्पित है इसका मूल यह है कि " **सञ्ज्ञापूर्वको विधिरनित्यः** " इस वचनसे किसीके मतमें संज्ञासूत्रकी अपेक्षा रखनेवाले सूत्र अनित्य हैं इस कारण ' क्षिणोति ' में गुण (४८६) न होगा कारण कि (४८६) वां जो विधिसूत्र सो (३३) वह संज्ञा सूत्रकी अपेक्षा रखता है । किसीका मत है कि इसमें प्रमाण नहीं है इससे गुण नित्य ही है इससे (क्षिणोति) में गुण होगा, इन अभिप्रायोंको लेकर विद्वानोंने एकवाक्यकी कल्पना की है कि, ' **उप्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा ।** '

लुट्-प्र० ए० क्षेणिता क्षेणिता वह हिंसा करेगा.
लुङ्-प्र० ए० अक्षेणीत् अक्षित ७२१।५९७।५३६।४८६ अक्षेणिष्ट उसने हिंसा की.

५ तृणु (तृणु अदने) खाना। उभय० सक० सेट्।

लट्-प्र० ए० तृणोति, तर्णोति। तृणुते, तर्णुते, वह खाता है.

६ कृ (डुकृञ् करणे) करना। उभय० सक० अनिट्।

लट्-प्र० ए० करोति वह करता है। कर्+उ+ते (९४४, ४२१, ९३६)

(७२६) अत उत् सार्वधातुके। ६। ४। ११०॥

उप्रत्ययान्तकृञोऽकारस्य उत्स्यात्सार्वधातुके क्ङिति॥

उ प्रत्ययान्त कृ धातुके अर्थात् करु (७२०) के अकारके स्थानमें उकार हो जो कित् अथवा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो। कुरुते वह करता है।

लट्-प्र० द्वि० कृ+उ+तः=कुरुतः=
कुरुतः कुर्वाते ६५२।७२५।४२१।४२० वे दो करते हैं।
लट्-प्र० ब० कृ + उ + अन्ति=कुर् उ + अन्ति यण् होनेपर (६९२) से दीर्घता प्राप्त हुई परन्तु—

(७२७) न भकुर्छुराम्। ८। २। ७९॥

भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया न दीर्घः॥

भ (१८९) संज्ञक तथा कृ धातु और छुर् (काटना) इनकी उपधाको दीर्घ (६९२) न हो।

कुर्वन्ति कुर्वते वे करते हैं.

लट्-उ० द्वि० कृ+उ+वः–

(७२८) नित्यं करोतेः। ६। ४। १०८॥

करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपो म्वोः परयोः॥

मकार, वकार परे रहते कृधातुके प्रत्ययरूप उकारका नित्य लोप हो।

---

१ सम्=संस्कार। अग्निना जलं संस्करोति। अधि=अधिकार। शत्रुमधिकरोति। अनु=अनुकरण। पितरमनुकरोति। परा-निरा=वारण। शत्रून् पराकरोति, निराकरोति वा। वि=विकार। क्रोष्टा विकुरुते स्वरान्। अप=अपकार। शत्रुमपकुरुते। उप=उपकार। मित्रमुपकुरुते। प्रति=प्रतीकार। रोगं प्रतिकरोति। इत्यादि॥

२ पहले वकारका उच्चारण करना उचित था, क्योंकि वस् प्रत्यय मस् प्रत्ययसे पूर्व है परन्तु पहले वका उच्चारण करते तो 'लोपो व्योर्वलि' करके वका लोप हो जाता केवल रहनेसे सन्देह होता, इसीलिये मकारका उच्चारण पहले किया।

कुर्वः कुर्वहे हम दो करते हैं
लट्-उ० ब० कुर्मः कुर्महे हम करते हैं
लिट्-प्र० ए० चकार चक्रे उसने किया
लुट्-प्र० ए० कर्ता कर्ता वह करेगा
लृट्-प्र० ए० करिष्यति करिष्यते वह करेगा.

लोट्-प्र० ए० करोतु कुरुताम् यह करे.
लङ्-प्र० ए० अकरोत् (४२१) अकुरुत (७२४) उसने किया.
१ लिङ्-प्र० ए० कृ+उ+या+त्-

(७२९) ये च । ६ । ४ । १०९ ॥

कृञ उलोपो यादौ प्रत्यये परे ॥

कृञ् धातुसे परे उकारका लोप हो, यकारादि प्रत्यय परे रहते ॥

	कुर्यात्	कुर्वीत	वह करे.
२ लिङ्-प्र० ए०	क्रियात्[५८१]	कृषीष्ट[५८२।४६८]	ईश्वर करे वह करे.
लुङ्-प्र० ए०	अकार्षीत्	अकृत	उसने किया.
लृङ्-प्र० ए०	अकरिष्यत्	अकरिष्यत	जो वह करे.

(७२८) सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे । ६ । १ । १६७ ॥

सम् अथवा परि उपसर्गपूर्वक भूषणार्थ कृधातुको सुट्का आगम हो ।

(७३०) समवाये च । ६ । १ । १३८ ॥

सम्परिपूर्वस्य करोतेः सुट् स्याद् भूषणे संघाते चार्थे ॥

सम अथवा परि उपसर्ग सहित समूहवाचक कृधातुको भी सुट्का आगम हो ।

लट्-प्र० ए० संस्करोति संस्कुरुते वह अलंकृत करता है.
लट्-प्र० ब० संस्कुर्वन्ति संस्कुर्वते वे इकट्ठे होते हैं.

संपूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट्, 'संस्कृतम्भक्षा' इति ज्ञापकात् ।

कृधातुसे पूर्व सम् उपसर्ग रहे तो कहीं भूषण अर्थ न हो तो भी सुट् होता है, जैसे पाणिनिके सूत्र (संस्कृतं भक्षाः ११२०) में भूषण अर्थ नहीं है, किन्तु संस्कार किया हुआ ऐसा अर्थ है और सुट् भी हुआ है इसीसे उपरोक्त वार्ता जानी गई कि अभूषण अर्थमें भी सुट् होता है ।

(७३१) उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च । ६ । १ । १३९॥

उपात्कृञः सुट् स्यादेष्वर्थेषु । चात्प्रागुक्तयोरर्थयोः ॥
प्रतियत्नो गुणाधानम्, विकृतमेव वैकृतं विकारः,
वाक्याध्याहार आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम् ॥

उप उपसर्ग (४८) से परे प्रतियत्न, वैकृत और वाक्याध्याहार अर्थमें कृधातुको सुट्का आगम हो । इस सूत्रमें चकार करनेका प्रयोजन यह है कि (७२८, ७२९,) में

कहे हुए भूषण और समुदाय अर्थमें भी कृधातुसे पूर्व उप उपसर्ग आवे तो सुट्का आगम हो। गुण ग्रहण करनेका नाम प्रतियत्न हैं। विकृतको ही वैकृत कहते हैं, अर्थात् विकार. और कहनेमें छूटी हुई बातोंके पूरा करनेको वाक्यका अध्याहार कहते है।

(७२८, ७२९, ७३०,) इन सूत्रोंमें जो पांच अर्थ कहे हैं उनके वाचक कृधातुसे पूर्व उप-उपसर्ग आया है और सुट् हुआ सो उदाहरणमें देखो—

१ उपस्कृता कन्या	कन्या अलंकृत हुई (भूषणार्थ)
२ उपस्कृता ब्राह्मणाः	ब्राह्मण इकट्ठे हुए (संघात)
३ एधो दकस्योपस्कुरुते	लकडी जलके गुणको ग्रहण करती है (प्रतियत्न)
४ उपस्कृतं भुङ्क्ते	वह विकृत खाता है (विकृत)
५ उपस्कृतं ब्रूते	वह वाक्योंका अध्याहार करके बोलता है (वाक्याध्याहार)

केवल आत्मनेपदी क्रिया.

७ वन् (वनु याचने) मांगना । आत्मने० सेट्० ।

लट्–प्र० ए० वनुते वह मांगता है । **लिट्–प्र० ए० ववने**[५७८] उसने मांगा.

८ मन् (मनु अवबोधने) जानना, मानना, बोध करना । आत्मने० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० मनुते वह मानता है
लिट्–प्र० ए० मेने उसने माना
लुट्–प्र० ए० मनिता वह मानेगा
लृट्–प्र० ए० मनिष्यते वह मानेगा
लोट्–प्र० ए० मनुताम् वह माने
लङ्–प्र० ए० अमनुत उसने माना.
१ लिङ्–प्र० ए० मन्वीत[२१] वह माने
२ लिङ्–प्र० ए० मनिषीष्ट ईश्वर करे वह माने.
लुङ्–प्र० ए० अमत अमनिष्ट उसनेमाना.
लृङ्–प्र० ए० अमनिष्यत जो वह माने.

॥ इति तनादयः समाप्ताः ॥ ८ ॥

अथ क्र्यादयः ।

१ क्री[1] (डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये) उभयपदी । द्रव्य बदलना अर्थात् अपना द्रव्य देकर दूसरेका लेना.

(७३२) क्र्यादिभ्यः श्ना । ३ । १ । ८१ ॥

शपोऽपवादः ।

क्री आदि धातुओंसे परे श्ना प्रत्यय हो । यह सूत्र शप् (४३०) का अपवाद है.

लट्–प्र० ए०	**क्रीणाति**[१५७]	**क्रीणीते**[६५]	वह मोल लेता है.
लट्–प्र० द्वि०	**क्रीणीतः**[४५८]	**क्रीणाते**[६५९]	वे दो मोल लेते हैं.

१–विक्रय=बेचना । अन्नं विक्रीणाति । प्रति=प्रतिदान । तिलेभ्यो माषान् प्रतिक्रीणीते ।

लट्-प्र० ब०	क्रीणन्ति[६५९]	क्रीणते[६५]	वे मोल लेते हैं.
लट्-म० ए०	क्रीणासि	क्रीणीषे	तू मोल लेता है.
लट्-म० द्वि०	क्रीणीथः	क्रीणाथे[४५९]	तुम दोनों मोल लेते हो.
लट्-म० ब०	क्रीणीथ	क्रीणीध्वे	तुम मोल लेते हो.
लट्-उ० ए०	क्रीणामि	क्रीणे[६५९]	मैं मोल लेता हूँ.
लट्-उ० द्वि०	क्रीणीवः	क्रीणीवहे	हम दो मोल लेते हैं.
लट्-उ० ब०	क्रीणीमः	क्रीणीमहे	हम मोल लेते हैं.
लिट्-प्र० ए०	चिक्राय[२०२।२९]	चिक्रिये	उसने मोल लिया.
लिट्-प्र० द्वि०	चिक्रियतुः[२२]	चिक्रियाते	उन दोने मोल लिया.
लिट्-प्र०ब०	चिक्रियुः[२२०]	चिक्रियिरे	उन्होंने मोल लिया.
लिट्-म० ए०	चिक्रेथ[५९६], चिक्रयिथ[५९८]	चिक्रियिषे	तूने मोल लिया.
लुट्-प्र० ए०	क्रेता	क्रेता	वह मोल लेगा.
लृट्-प्र० ए०	क्रेष्यति	क्रेष्यते	वह मोल लेगा.
लोट्-प्र० ए०	क्रीणातु, क्रीणीतात्	क्रीणीताम्	वह मोल ले.
लङ्-प्र० ए०	अक्रीणात्	अक्रीणीत[६५]	उसने मोल लिया.
लिङ्-प्र० ए०	क्रीणीयात्[६५८]	क्रीणीत[६५९]	वह मोल ले.
२ लिङ्-प्र०ए०	क्रीयात्	क्रेषीष्ट	ईश्वर करे वह मोल ले.
लुङ्-प्र०ए०	अक्रैषीत्[५२०]	अक्रेष्ट	उसने मोल लिया.
लृङ्-प्र० ए०	अक्रेष्यत्	अक्रेष्यत	जो वह मोल ले.

२ **प्री** (प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च) तृप्त करना वा शोभा पाना । उभ० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० प्रीणाति[१५७] प्रीणीते वह तृप्त करता है ॥

३ **श्री** (श्रीञ् पाके) पाक करना । उभय० सक० अनिट् ।

लट्-प्र० ए० श्रीणाति श्रीणीते[१५७] वह पाक करता है.

४ **मी** (मीञ् हिंसायाम्) मारना । उभय० सक० अनिट् ।

लट्०प्र० ए० मीनाति मीनीते । प्रमीनाति-

(७३३) हिनुमीना[६] । ८ । ४ । १५ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यैतयोर्नस्य णः स्यात् ॥

उपसर्गस्थ निमित्त (रेफ षकार) से परे हिनु तथा मीना शब्दोंके नकारको णकार हो।

लट्-प्र० ए०	प्रमीणाति	प्रमीणीते	वह हिंसा करता है.
लिट्-प्र० ए०	ममौ[६८१।५२४।४१]	मिम्ये	उसने हिंसा की.

लिट्–प्र० द्वि० मिम्यतुः[२२१] उन दोनोंने हिंसा की.
लिट्–म० ए० ममिथ[६८११५९८।४१] ममाथ मिमीषे तूने हिंसा की.
लुट्–प्र० ए० माता[६८] माता वह हिंसा करेगा.
लृट्–प्र० ए० मास्यति मास्यते वह हिंसा करेगा.
२ लिङ्–प्र० ए० मीयात् मासीष्ट[६८१] ई० वह हिंसा करे.
लुङ्–प्र० ए० अमासीत्[६८११५३१] अमास्त[६८] उसने हिंसा की.
लुङ्–प्र० द्वि० अमासिष्टाम् अमासाताम् उन दोने हिंसा की.

५ षि (षिञ् बन्धने) बांधना । उभय० सक० अनिट् ।

लट्–प्र० ए० सिनाति सिनीते वह बांधता है.
लिट्–प्र० ए० सिषाय सिष्ये[२२११९६९] वह बांधेगा.
लुट्–प्र० ए० सेता सेता वह बांधेगा.

६ स्कु (स्कुञ् आप्लवने) उछलना और उद्धार करना । उभ० सक० अनिट् ।

(७३४) स्तन्भुस्तुन्भुस्कुन्भुस्कन्भुस्कुभ्भ्यः श्नुश्च । ३ । १ । ८२ ॥

एभ्यः धातुभ्यः श्नुः स्यात् चात् श्ना ॥

स्तन्भ् स्तुन्भ् स्कन्भ् स्कुन्भ् और स्कुञ् इन धातुओंसे परे श्नु (६८८) प्रत्यय हो पक्षमें श्ना भी हो ।

लट्–प्र० ए० स्कुनोति, स्कुनाति, स्कुनुते, स्कुनीते (६६८) वह कूद कर जाता है
लिट्–प्र० ए० चुस्काव चुस्कुवे वह कूद कर गया.
लुट्–प्र० ए० स्कोता स्कोता वह कूदकर जायगा.
लुङ्–प्र० ए० अस्कौषीत् अस्कोष्ट वह कूदकर गया.

स्तन्भ्वादश्चत्वारः सौत्राः सर्वे रोधनार्थाः परस्मैपदिनः ॥

स्तन्भु आदि चार धातु सूत्रमें ही पढे हैं धातुपाठमें नहीं इनका अर्थ रोकना हैं इनसे परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय होते हैं । लोट्–म० ए० स्तभ्ना+हि (४४८)

(७३५) हलः श्नः शानज्झौ । ३ । १ । ८३ ॥

हलः परस्त श्नः शानच् आदेशः स्यात् हौ परे ॥

हि परे रहते हल्से परे श्ना प्रत्ययके स्थानमें शानच् आदेश हो.

स्तभान[४४२ ३६३] तू रोक.

लुङ्–प्र० ए० अ+स्तन्भू+च्लि+त्–

(७३६) जृस्तन्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ।३।१।५८॥

च्लेरङ् वा स्यात् ॥

जॄ (वृद्ध होना), स्तन्भ् (रोकना), म्रुच् (जाना), म्लुच् (जाना) ग्रुच् (चुराना) ग्लुच् (चुराना), ग्लुञ्च् (जाना), श्वि (जाना) इन धातुओंसे परे च्लिके स्थानमें अङ् विकल्प करके हो ।

अस्तन्भ्+अ+त्=**अस्तभत , अस्तम्भीत्** उसने रोका । वि+अस्तभ्+अ+त-

(७३७) स्तन्भेः । ८ । ३ । ६७ ॥

स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात् ॥

सूत्रमें पठित स्तन्भ् (७३३) धातुके सकारको षकार हो उपसर्गमें स्थित रेफ वा षकार रूप निमित्तसे परे हो तो। **व्यष्टभत्** (३६३) उसने रोका ।

७ **यु** (युञ् बन्धने) बांधना । उभ० स० अनि० ।

लट्-प्र० ए० युनाति, युनीते वह बांधता है। **लुट्-प्र० ए० योता योता.** वह बान्धेगा.

८ **क्नू** (क्नूञ् शब्दे) शब्द करना । उभ० सेट् ।

लट्-प्र०- ए० क्नूनाति, क्नूनीते वह शब्द करता है । **लुट्-प्र० ए० क्नविता, क्नविता** वह शब्द करेगा ।

९ **दृ** (दृञ् हिंसायाम्) हिंसा करनी । उभ० स० सेट् ।

लट्-प्र० ए० दृणाति,	**दृणीते**	वह हिंसा करता हैं.

१० **द्रू** (द्रूञ्) हिंसा करना । उभ० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० द्रूणाति	**द्रूणीते**	वह हिंसा करता है.
लुङ्-प्र० ए० अद्रावीत्	**अद्रविष्ट**	उसने हिंसा की.

११ **पू** (पूञ् पवने) शुद्ध करना । उभय० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० पू+ना+ति-

(७३८) प्वादीनां ह्रस्वः । ७ । ३ । ८० ॥

पूञ् लूञ् स्तॄञ् कॄञ् वॄञ् धूञ् शॄ पॄ वॄ भॄ मॄ दॄ जॄ झॄ धॄ नॄ श्रॄ ॠ गॄ ज्या री ली व्ली प्ली एषां चतुर्विंशतेः शिति ह्रस्वः ।

शित् प्रत्यय परे रहते पू आदि चौबीस धातुओंको ह्रस्व हो ।

१ **पू** शुद्ध करना	९ **वॄ** स्वीकार करना	१७ **कॄ** हिंसा करना
२ **लू** काटना	१० **भॄ** डारदेना	१८ **ॠ** जाना
३ **स्तॄ** ढकना	११ **मॄ** हिंसा करना	१९ **गॄ** शब्द करन
४ **कॄञ्** हिंसा करना	१२ **दॄ** विदारण करना	२० **ज्या** वृद्ध होना
५ **वॄञ्** स्वीकार करना	१३ **जॄ** वृद्ध होना	२२ **री** हिंसा करना
६ **धू** कँपाना	१४ **झॄ** वृद्ध होना	२१ **ली** मिलना
७ **शॄ** हिंसा करना	१५ **धॄ** वृद्ध होना	२३ **व्ली** स्वीकार करना
८ **पॄ** पालना वा पूरा करना	१६ **नॄ** प्राप्त करना	२४ **प्ली** जाना

लट्–प्र० ए० पुनाति, पुनीते वह पवित्र करता है । **लुट् प्र० ए० पविता पविता** वह पवित्र करेगा.

लू (लूञ् छेदने) काटना । **लट्–प्र० ए० लुनाति, लुनीते** वह काटता हैं,

१३ स्तॄ (स्तॄञ् आच्छादने) ढकना । उभ० सक० सेट् ।

लट्–प्र० ए० स्तृणाति (२३९) स्तृणीते वह आच्छादन करता है.

लिट्–प्र० ए० तस्तार[४२०।६९१] उसने आच्छादन किया.

लिट्–प्र० द्वि० तस्तरतुः[६५] **तस्तराते** उन दोने आच्छादन किया.

लुट्–प्र० ए० स्तरीता, स्तरिता, स्तरीता स्तरिता वह आच्छादन करेगा.

१ **लिङ्–प्र० ए० स्तृणीयात् स्तृणीत** (६६९) वह आच्छादन करे.

लिङ्–प्र० ए० स्तीर्यात्[९७०।७।६५२] स्तॄ+सी+स्+त–

(७३९) लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु । ७ । २ । ४२ ॥

वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिड्वा स्यात्तङि ।

वृ (वृङ्) (सेवा करनी), वृ (वृञ्) (स्वीकार करना) और ॠदन्त धातुओंसे परे आत्मनेपद विषयक लिङ् तथा सिच् आवे तो उसे विकल्प करके इट्का आगम हो । स्तॄ+इ+सी+स्+त=स्तरिषीष्ट–(६९९) से तरि अन्तर्गत इको दीर्घता प्राप्त हुई तब–

(७४०) न लिङि । ७ । २ । ३९ ॥

वॄत इटो लिङि न दीर्घः ॥

लिङ् परे हुए सन्ते वृङ् अथवा वृञ् अथवा ॠदन्त धातुओंसे परे इट्को दीर्घ (६९९) न हो ।

स्तरिषीष्ट[७३८] स्तीर्षीष्ट[५८२।७०७।६५२] ईश्वर करे वह ढके.

लुङ्-प्र० ए० अस्तारीत् । आ० अस्तरीष्ट[६५५] अस्तरिष्ट, अस्तीर्ष्ट[६३८।५८२।२७०।६२५].
(उसने अच्छादन किया.)

लुङ्-प्र० द्वि० अस्तारिष्टाम्[६५६।५२०] आ० अस्तरीषाताम् अस्तरिषाताम्,
अस्तीर्षाताम् उन दोने आच्छादन किया.

लुङ्-प्र० ब० अस्तारिषुः, अस्तरीषत, अस्तरिषत, अस्तीर्षत
उन्होंने आच्छादन किया.

१४ कॄ (कॄञ् हिंसायाम्) हिंसा करनी । उभय० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० कृणाति[७३७] कृणीते वह हिंसा करता है.
लिट्-प्र० ए चकार चकरे[६५४] उसने हिंसा की.

१५ वॄ (वॄञ् वरणे) स्वीकार करना । उभय० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० वृणाति वृणीते[७३७] वह स्वीकार करता है.
लिट्-प्र० ए० ववार ववरे[५४] उसने स्वीकार किया.
लुट्-प्र० ए० वरीता[६५४] वरिता, वरीता वरिता, वह स्वीकार करेगा.
२ लिङ्-प्र० ए० वूर्यात्[६५१।५८२।६५२] वरिषीष्ट वूर्षीष्ट[५८२।३५१।६५७] ईश्वर करे वह स्वीकार करे.
लुङ्-प्र० ए० अवारीत्, अवरीष्ट[७३८।६५५] अवरिष्ट[७३८] अवूर्ष्ट[५८२।६५१।६५२] } उसने स्वीकार किया.
लुङ्-प्र० द्वि० अवारिष्टाम् अवरीषाताम्, अवरिषाताम्, अवूर्षाताम् } उन दोने स्वीकार किया.

१६ धू (धूञ् कम्पने) कँपाना । उभय० सक० वेट् ।

लट्-प्र० ए० धुनाति[७३७] धुनीते वह कँपाता है.
लुट्-प्र० ए० धविता[५१२], धोता धविता, धोता वह कँपावेगा.
लुङ्-प्र० ए० अधावीत् अधविष्ट, अधोष्ट उसने कँपाया.

१७ ग्रह (ग्रह उपादने) लेना । उभय० सक० सेट् ।

प० आ०

लट्-प्र० ए० गृह्णाति (६७६) गृह्णीते वह लेता है.
लिट्-प्र० ए०, जग्राह जगृहे उसने ग्रहण किया.
लुट्-प्र० ए० ग्रह+इ+ता

(७४०) ग्रहोऽलिटि दीर्घः । ७ । २ । ३७ ॥

एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घो न तु लिटि ॥

एकाच् ग्रह धातुसे किये हुएको इट्का आगम हो तो उसे दीर्घ हो परन्तु लिट्परे दीर्घ न हो।
ग्रहीता ग्रहीता वह लेगा। **लोट्–प्र० ए० गृह्णातु, गृह्णीताम्** वह ग्रहण करे.
लोट्–म० ए० ग्रह्+ना+हि–

(७४१) हलः श्नः शानज्झौ । ३ । १ । ८३ ॥

हलः परस्य श्नः शानजादेशो हौ।

हि परे हुए सन्ते हल्से परे श्न (७३१) को शानच् आदेश हो। शानच्मेंसे (१५९, ९, ७) से आन शेष रहा–

प०	आ०
गृह्+आन+हि=गृहाण[४४९]	**गृह्णीष्व** तू ग्रहण कर.
लिङ्–प्र० ए० गृह्यात्	**ग्रहीषीष्ट**[४५०] ईश्वर करे वह ग्रहण करे.
लुङ्–प्र० ए० अग्रहीत्[५५१]	**अग्रहीष्ट** उसने ग्रहण किया.
लुङ्–प्र० द्वि० अग्रहीष्टाम्	**अग्रहीषाताम्** उन दोनोंने ग्रहण किया.

१८ कुष् (कुष निष्कर्षे) बाहर खैंचना, निखोलना। पर० सक० सेट्।

लट्–प्र० ए० कुष्णाति[१३२] वह निखोलता है
लुट्–प्र० ए० कोषिता वह निखोलेगा.
लुङ्–प्र० ए० अकोषीत् उसने निखोला,

१९ अश् (अश भोजने) भोजन करना। पर० सक० सेट्।

लट्–प्र० ए० अश्नाति वह जीमता है.
लिट्–प्र० ए० आश उसने जीमा.
लुट्–प्र० ए० अशिता वह जीमेगा.
लृट्–प्र० ए० अशिष्यति वह जीमेगा
लोट्–प्र० ए० अश्नातु वह जीमे.
लोट्–म० ए० अशान[७४१।४४९] तू भोजन कर.

२० मुष् (मुष स्तेये) चुराना। पर० सक० सेट्।

लट्–प्र० ए० मुष्णाति वह चुराता है। **लिट्–प्र० ए० मुमोष** उसने चुराया.
लुट्–प्र० ए० मोषिता वह चुरावेगा। **लोट्–म० ए० मुषाण**[१५७] तू चुरा.

२१ ज्ञा[१] (अवबोधने) जानना, पर० सक० अनिट्।

लट्–प्र० ए० जानाति (६८२) वह जानता है। **लुङ्–प्र० ए० अज्ञासीत्** उसने जाना.
लिट्–प्र० ए० जज्ञौ[५२४] उसने जाना.

---

१ अनु=आज्ञा। अनुजानीहि मां गमनाय। प्रति=प्रतिज्ञा। कथं वृथा प्रतिजानीते। अप=छुठाना शत० मपजानीते।

२२ वृ (वृङ् संभक्तौ) सेवा करनी । आत्म० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० वृणीते वह सेवा करता है.
लिट्-म० ए० ववृषे तूने सेवा की.
लिट्-म० ब० ववृढ्वे तुमने सेवा की.
लुट्-प्र० ए० वरीता वरिता वह सेवा करेगा.
लुङ्-प्र० ए० अवरीष्ट अवरिष्ट अवृत उसने सेवा की

इति क्र्यादयः समाप्ताः ॥ ९ ॥

अथ चुरादयः ।

१ चुर् (चुर स्तेये) चुराना । उभय० सक० सेट् ।

(७४२) सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् । ३ । १ । २५ ॥

एभ्यो णिच् स्यात् स्वार्थे ।

चूर्णान्तेभ्यः प्रातिपदिकाद्धात्वर्थ इत्येव सिद्धे तेषां ग्रहणं प्रपञ्चार्थम् ।

पुगन्तेति गुणः । सनाद्यन्ता इति धातुत्वम् । तिप्शबादि ॥

सत्याप (आपुक्सहित सत्यशब्द) पाश (फांसी) रूप (आकार रंग), वीणा (बीन), तूल (रुई), श्लोक (पद्य, यश), सेना (फौज), लोमन् (बाल) त्वज् (चर्म), वर्मन् (कवच), वर्ण (रंग), चूर्ण (चूरन) इन प्रातिपदिकोंसे तथा चुरादि (धातुओंसे परे स्वार्थमें णिच् प्रत्यय हो ।

चूर्णान्त अर्थात् सत्यापादि चूर्णान्त शब्दोंसे तो " **प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे** " (प्रातिपदिकसे धात्वर्थमें हो) इसीसे सिद्ध था फिर यहां ७४२ में उनका ग्रहण (प्रपञ्चार्थम्) स्पष्टताके लिये है ।

चुरादि धातुओंसे जिनकी उपधा लघु है उनको (४९६) से णिच् निमित्त मानकर गुण हो और (९०) से जिन धातुओंके अन्तमें णिच् प्रत्यय होता है, वे प्रत्ययसहित धातुसंज्ञक होते हैं इस कारण उनके आगे तिप् आदि प्रत्यय आते हैं ।

चुर्+णिच्=चोर्[४९६] + इ[४८]=चोरि इसकी धातु संज्ञा हुई.

लट्-प्र० ए० चोरि+अ[४३०]+ति=**चोरयति**[४२९ २९] वह चुराता है.

(७४३) णिचश्च । १ । ३ । ७४ ॥

णिजन्तात् आत्मनेपदं कर्तृगामिनि क्रियाफले ॥

जब कि क्रियाका फल कर्ताको पहुँचता हो तब णिच् प्रत्ययान्तसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो ।

लट्–प्र० ए० चोरयते वह चुराता है (अपने निमित्त)
लिट्–चोरयाञ्चकार-चक्रे चोरयाम्बभूव चोरयामास उसने चुराया.
लुट्–प्र० ए० चोरयिता चोरयिता वह चुरावेगा.
२ लिङ्–प्र० ए० चोर्यात् चोरयिषीष्ट ईश्वर करे वह चुरावे,
लुङ्० प्र० ए० अचुर्+इ+च्लि+त् (४८६) से गुण हुआ.

(९६३) से च्लिके स्थानमें चङ् हुआ (९६५) से ओ उपधाको ह्रस्व हुआ तब अचुर् रूप हुआ (९६६) से द्वित्व (४२९) से रका लोप तब अचुचुर्+इ+अ+त् (९६९) से अभ्यासके चुको दीर्घ हुआ तब अचूचुर् (९६४) अ+त्–**अचूचुरत, अचूचुरत** उसने चुराया.

२ कथ (वाक्यप्रबन्धे) कहना। **अदन्त**। उभ० सक० सेट्०

कथ+इ–(४३७) से णिच् आर्धधातुक प्रत्यय परे है इस कारण (९०६) से थ अन्तर्गत अका लोप हुआ. कथ्+इ—

लट्–प्र० ए० कथ्+इ+अ+ति (४९०) से वृद्धि प्राप्त हुई–

(७४४) अचः परस्मिन्पूर्वविधौ। १। १। ५७॥

परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत्स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये। इति स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धिः।

किसी पर वर्णको निमित्त मानकर जो कोई आदेश अच्के स्थानमें हुआ हो तो आदेश जिस अच्के स्थानमें हुआ हो उसीके तुल्य माना जाय, जिस समय कोई विधि (सूत्र) उस अच्के पूर्ववर्णमें लगनेवाला हो।

कथके थ अन्तर्गत अकारसे पर वर्ण णिच् प्रत्ययका इ है (९०६) से अकारका लोपरूप आदेश हुआ है उससे पूर्वके अन्तर्गत अको (४९०) से वृद्धिकी प्राप्ति है इसकारण थ अन्तर्गत लोपरूप अकारको स्थानिवद्भाव हुआ तो ऐसा जानो कि वह अकार फिर हो गया (१९६) से क अन्तर्गत अकारकी उपधा संज्ञा न रहनेसे वृद्धि न हुई अर्थात् काथ् न हुआ तब **कथयति** (४२१,२९) वह कहता है। **कथयाञ्चकार** उसने कहा।

लुङ्–प्र० ए० कथ+इ+अ+चङ्। (९६३) +त् (३०६) से थ अन्तर्गत अकारका लोप होता है। **अग्लोपित्वाद्दीर्घसन्वद्भावौ न**। इससे (९६९) से जो दीर्घता पाई थी सो न हुई, क्योंकि अकार अक् प्रत्याहारके अन्तर्गत है इससे कथ धातु अग्लोपी है, तब (९६७) से सन्वद्भाव करनेसे जो कार्य होता है सो न हुआ **अचकथत, अचकथत** उसने कहा (९६८, ९६९) सूत्रका कार्य न हुआ।

---

१ स्थानिनि सति यत्कार्यं भवति तदादेशेऽपि भवति स्थानिनि सति यन्न भवति तदादेशेऽपि न भवति इत्येवं भावाभावयोरुभयोरप्यतिदेशोऽयमिति बोध्यम्।

३ गण (संख्याने) गिनना । उभय० सक० सेट् ।

लट्-प्र० ए० गणयति गणयते वह गिनता है.

लुङ्-प्र० ए० अजगण्+इ+अ (चङ्)+त्-

(७४५) ई च गणः । ७ । ४ । ९७ ॥

गणयतेरभ्यासस्य ईत्स्याच्चङ्परे णौ, चादत् ॥

चङ्परक णि परे हो तो गण धातुके अभ्यासको दीर्घ ईकार हो, सूत्रमें जो चकार उससे विदित होता है कि पक्षमें अकार भी हो।

अजीगणत्, अजगणत् । अजीगणत, अजगणत उसने गिना.

॥ इति चुरादयः समाप्ताः ॥ १० ॥

अथ णिजन्तप्रक्रिया ।

(७४६) स्वतन्त्रः कर्ता[1] । १ । ४ । ५४ ॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ॥

किसी क्रियामें जिसकी स्वतन्त्रतासे विवक्षा हो कि यह क्रियाका करनेवाला है सो कर्तृसंज्ञक हो । रसोई करनेके कार्यमें यह कह सकते हैं कि आग रान्धता है. या भोजन बनानेवाला रान्धता है वा ईंधन पकाता है, आग, पाक करनेवाला और ईंधन ये तीनों वक्ताकी इच्छासे कर्ता हो सकते हैं, परन्तु जो स्वतन्त्रतासे करनेवाला है वही कर्ता कहा जा सकता है।

(७४७) तत्प्रयोजको हेतुश्च । १ । ४ । ५५ ॥

कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च ॥

कर्ता (७४६) की प्रेरणा करनेवाला हेतु तथा कर्तृसंज्ञावाला हो ।

(७४८) हेतुमति च । ३ । १ । २६ ॥

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् स्यात् ॥

प्रयोजकव्यापारमें प्रेषणा (प्रेरणा) अध्येषणा (प्रार्थना) और विज्ञापना इनमेंसे किसी प्रकारकी प्रेरणा प्रकाशित करनी हो तो उस धातुसे परे णिच् (७४२) प्रत्यय हो ।

---

१ जब कोई किसी कार्यके लिये किसीको कहता है तो कहनेवाला प्रयोजक और जिसको कार्य करनेके लिये कहा गया वह प्रयोज्य कहलाता है । ऐसी दशामें प्रयोजककी क्रिया णिजन्त नामसे कही जाती है । ण्यन्तमें अकर्मक धातु भी सकर्मक हो जाता है । जैसे:-शिशुः शेते, माता शिशुं शाययति । सकर्मक धातुओंका कर्ता ण्यन्तमें प्रायः तृतीयान्त हो जाता है । जैसे:-शिष्यो दोषं त्यजति, गुरुः शिष्येण दोषं त्याजयति।

इस विषयमें यह संक्षिप्त नियम समझना चाहिये:-

" गतिबुद्ध्यशनार्थेषु शब्दकर्मस्वकर्मसु । अहेतौ यो मतःकर्ता स हेतौ कर्म जायते ॥ "

नौकर सेवक आदिका प्रेरण **प्रेरणा** कहलाती है, अपने बराबर तथा गुरु आदिको प्रेरणा करना **अध्येषणा** कहाती है, और राजा स्वामी आदिको प्रार्थना पूर्वक प्रेरणा करना **अनुमति** वा **विज्ञापना** कहाती है, वह तीनों प्रेरणाशब्दसे भी ग्रहण किये जाते हैं।

लट्-प्र० ए० भू+इ (णिच्) (५०३, २०१) से भौ+इ+अ+ति=भाव+ए +ति= **भावयति** वह होनेवालेको प्रेरणा करता है (कर्तृगामी क्रियाफलमें ' णिचश्च ' करके आत्मनेपद भी होता है तब **भावयते** इत्यादि रूप जानने)

लिट्-प्र० ए० भावयाञ्चकार भावयाम्बभूव भावयामास उसने होवाया

लुट्-	**प्र०**	**ए०**	**भावयिता**	वह होवावेगा.
लृट्-	**प्र०**	**ए०**	**भावयिष्यति**	वह होवावेगा.
लोट्-	**प्र०**	**ए०**	**भावयतु**	वह होवावे.

लङ्-प्र० ए० अभावयत् उसने होवाया । **लिङ्-प्र० ए० भावयेत्** वह होवावे.

२ लिङ्-प्र० ए० भाव्यात् ई० होवावे.

लुङ्-प्र० ए० अ+भू+इ +अ (चङ्) त्=*अबुभू +इ+अ+त् (५३७ से सन्वत् हुआ—

(७४९) ओः पुयण्ज्यपरे । ७ । ४ । ८० ॥

सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्य इत्स्यात् पवर्गयण्जकारेष्ववर्णपरेषु परतः ॥

सन् परे रहते जो अङ्ग उसका अवयव जो अभ्यासका उकार उसको इकार हो, अवर्ण जिनसे परे हो ऐसे पवर्ग, यण् (य व र ल) और जकार परे रहते ।

अबीभवत् उसने होनेवालेको प्रेरणा की । **लृङ्-अभावयिष्यत्** जो वह होवावेगा.

स्था (ष्ठा गतिनिवृत्तौ) स्थिति करना, रहना ।

लट्-प्र० ए० ष्ठा+इ+ति=स्था* (२८०) +इ+अ+ति—

(७५०) अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ । ७ । ३ । ३६ ॥

ऋ (जाना), ह्री (लजाना), व्ली (स्वीकार करना) री (मारना), क्नूयी (शब्द करना) क्ष्मायी (कँपाना) इन धातुओंसे परे तथा आकारान्त धातुओंसे परे णि आवे

---

* ' णिचयच आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्तव्ये ' इति वचनाद्वृद्धेरभावे भू इत्यस्य द्वित्वम् । द्वित्वकर्तव्य रहते णिच्की परता अच्का आदेश नहीं होता, इस वचनसे द्वित्वसे पहले वृद्धि न हुई तो भूको द्वित्व हुआ ।

* ' निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः ' जब निमित्तका नाश होजाता है तब नैमित्तिकका भी नाश होजाता है, षकारका नाश होनेसे तन्निमित्त ठकारका भी नाश होगया.

तो इन धातुओंको उक्का आगम हो । उक्का लोप होकर प् शेष रहा-
स्था+प्+इ+अ+ति स्थापयति वह स्थित कराता है.
लुङ्-प्र० ए० अ+स्था+प्+इ+अ (चङ्)+त्-

(७५१) तिष्ठतेरित् । ७ । ४ । ५ ॥

उपधाया इदादेशः स्याच्चङ्परे णौ ॥

चङ् है परे जिससे ऐसी णि परे हुए सन्ते स्था धातुकी उपधाके स्थानमें इकार हो। अ+स्थि प्+इ+अ+त् (५६६) से स्थि स्थि हुआ (४२९) से थकारका लोप प्राप्त हुआ परन्तु (६९१) शर् प्रत्याहारगत सकारसे परे खय्का थकार है उसका लोप न होकर सकारका हुआ, तब अभ्यासकी थि शेष रही (४३२) से थिके स्थानमें ति हुई (५६४) से इस (णि) का लोप हुआ (५६९) से स्थिके सकारके स्थानमें ष् हुआ (७८) से थ्के स्थानमें ठ् हुआ तब **अतिष्ठिपत्** उसने स्थित कराया.

घट् (घट चेष्टायाम्) चेष्टा करनी ।

लट्-प्र० ए० घट्+इ+अति (४९०) से घ अन्तर्गत अ उपधाको वृद्धि हुई तब घाट्+ +अ+ति-**घटादयो मितः** इस वचनसे यह धातु मित् है तब-

(७५२) मितां ह्रस्वः । ६ । ४ । ९२ ॥

घटादीनां ज्ञपादीनां च ह्रस्वः ॥

घट् आदि तथा ज्ञप् आदि धातु जो मित् हैं उनको णिच् मानकर जो वृद्धि हुई हो उसके स्थानमें ह्रस्व हो।

घट्+ऍ+अ+ति=घट्+अय+ति **घटयति** वह चेष्टा कराता है.

ज्ञप (ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च) जानना वा जनाना.

लट्-प्र० ए० ज्ञपयति वह जनाता है.

लुङ्-प्र० ए० अजिज्ञपत् उसने जनाया.

॥ इति णिजन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥ १ ॥

अथ सन्नन्तप्रक्रिया ।

(७५३) धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा । ३ । १ । ७ ॥

इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन् प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम् ।

---

१ " **घटादयो मितः** " इति सूत्रेण " **ज्ञप मिच्च** " इत्यादि सूत्रैश्च येषां मित्संज्ञा विहितास्तेऽत्र मितो विवक्षिता इत्यतो व्याचष्टे-घटादीनामिति । २ इष् धातुके कर्मका वाचक और इष धातुके साथ एककर्तावाला जो धातु है उससे इच्छा अर्थमें विकल्पसे सन् प्रत्यय हो ।

जिस समय क्रियाका कर्ता और इच्छाका करनेवाला दोनों एक ही हों पृथक् न हों तब इच्छा अर्थमें धातुसे परे विकल्प करके सन् प्रत्यय हो यदि इच्छारूप क्रियाका वह धातु कर्म हो तो।

पठ् (पठ व्यक्तायां वाचि) पढना ।

लट्–प्र० ए० पठ्+स –

(७५४) सन्यङोः । ६ । १ । ९ ॥

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य ॥

सन् (७५३) प्रत्ययान्त तथा यङ् (७५९) प्रत्ययान्त धातुके एकाच् प्रथम भागको द्वित्व हो परन्तु प्रथम भाग अजादि हो तो द्वितीय एकाच् भागको द्वित्व हो । (४२७) =पपठ्=पिपठ् (५६८)+इ+स+अ+ति=**पिपठिषति** (४७४, १६९) वह पढनेकी इच्छा करता है.

कर्मणः किम् ? (७५३) में धातु इच्छारूप क्रियाका कर्म हो ऐसा लिखा है । इसका कारण यह है कि **गमनेनेच्छति** (गमनसे कुछ करनेकी इच्छा करता है इसमें गमनरूप क्रिया इच्छारूप क्रियाका कर्म नहीं है किन्तु करण (क्रियाका साधन) है इस कारण सन् प्रत्यय न हुआ । **समानकर्तृकात् किम्** ? जब क्रियाका कर्ता और इच्छा करनेवाला दोनों एक हों ऐसा क्यों कहा ? उत्तर यह है कि, **शिष्याः पठन्त्वितीच्छति गुरुः** ' गुरु इच्छा करता है कि शिष्य पढें ' इस वाक्यमें पठनरूपक्रियाके कर्ता शिष्य और इच्छा करनेवाला गुरु दोनों एक नहीं हैं, इस कारण इससे सन् प्रत्यय न हुआ । **वाग्रहणाद्वाक्यमपि** ' वा ' ग्रहण करनेका यह प्रयोजन है कि, सन्प्रत्ययान्तका अर्थ वाक्यान्तरसे भी प्रकाश किया जायगा. आशय यह है कि, ' पिपठिषति ' आदि वाक्योंके अर्थमें **पठितुमिच्छति** आदि वाक्यान्तर भी होते हैं ।

अद् (अद् भक्षणे) खाना।

(**लुङ्सनोर्घस्लृ**) अद् धातुको घस्लृ आदेश (५९६) से हो सन् परे रहते।

७५४।४२९। ४८९।५६८

लट्–प्र०ए० घस्+स+अ+ति=जिघस् +स+अ+ति—

(७५५) सः स्यार्धधातुके । ७ । ४ । ९ ॥

सस्य तः स्यात्सादावार्धधातुके ॥

जिसके आदिमें स् हो ऐसे आर्धधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते स्के स्थानमें त् हो । **जिघत्सति** (३००) वह भोजन करनेकी इच्छा करता है (९११) से इट्का आगम न हुआ ।

कृ (डुकृञ् करणे) करना ।

लट्–प्र० ए० कृ+स+अ+ति–

(७५६) अज्झनगमां सनि । ६ । ४ । १६ ॥

अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घो झलादौ सनि ॥

अजन्त धातु हन् (मारना) धातु तथा अचरूप अर्थात् जाने अर्थमें इण् धातु और इक् इनके स्थानमें जो गम् आदेश हो उसको झलादि सन् प्रत्यय परे रहते दीर्घ हो।

कॄ+स+अ+ति —

(७५७) ईको झल् । १ । २ । ९ ॥

इगन्ताज्झलादिः सन् कित्स्यात् ॥

इक् है अन्तमें जिसके ऐसे धातुसे परे झलादि सन् कित् हो ।

(७०७) से ऋके स्थानमें इर् हुआ (६९२) से दीर्घ हुआ तब **चिकीर्षति** ७९४, ४२९, ४३०, ४८९), वह करनेकी इच्छा करता है।

भू-(सत्तायाम्) होना।

लट्-प्र० ए० बुभू+स+अ+ति (४३४) से इट्का आगम प्राप्त हुआ परन्तु-

(७५८) सनि ग्रहगुहोश्च । ७ । २ । १२ ॥

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण्न स्यात् ॥

ग्रह (लेना), गुह् (ढकना) तथा उक् प्रत्याहारान्त जो धातु इनसे परे सन् प्रत्यय आवे तो इट्का आगम न हो। **बुभूषति** वह होनेकी इच्छा करता है।

इति सन्नन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥ २ ॥

अथ यङन्तप्रक्रिया ।

(७५९) धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् । ३।१।२२॥

पौनःपुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात् ॥

क्रियाका बारंबार करना अथवा उसकी अधिकता प्रकाश करनी हो तो एकाच् हलादि धातुसे परे यङ् हो। (९, ७) से यङ् में य रहता है।

भू-होना.

लट्-प्र० ए० भू×य=(७५४. ४३२,) बुभूय+अ+ते *

---

१ एकाच इत्यपि बोध्यम् । तेन "जिजागरिषति" इत्यादौ नेण्निषेधः।

* 'बुभूय' यह रूप हुआ तब (५०३) से धातुसंज्ञा हुई ।

(७६०) गुणो यङ्लुकोः । ७ । ४ । ८२ ॥

अभ्यासस्य गुणो यङि यङ्लुकि च ॥

यङ्परे हुए सन्ते अथवा यङ्का लुक् (७६६) से हुआ हो तो अभ्यासको (४२८) से गुण हो। बुके स्थानमें बो हुआ तब **बोभूयते** (३००) वह बारंवार वा अतिशय करके होता है। **ङिदन्तत्वादात्मनेपदम्**। यङ् ङित है इस कारण यङन्त धातुओंसे (४११) आत्मनेपद होता है.

लिट्-प्र० ए० बोभूयाञ्चक्रे। वह वारंवार हुआ। **लुङ्-प्र० ए० अबोभूयिष्ट।** वह वारंवार हुआ।

(७६१) नित्यं कौटिल्ये गतौ। ३ । १ । २३ ॥

गत्यर्थात् कौटिल्य एव यङ् स्यात् न तु क्रियासमभिहारे ॥

गति अर्थवाले धातुसे परे जो यङ् प्रत्यय हो वह नित्य टेढे ही अर्थमें हो, क्रियाके वारंवार (७५९) करने और अतिशय अर्थमें न हो।

व्रज्-(व्रज गतौ) जाना।

लट्-प्र० ए० व्रज्+य=व्रज्य (७९४) वव्रज्य+अ+ते—

(७६२) दीर्घोऽकितः। ७ । ४ । ८३ ॥

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो यङ्यङ्लुकोः ॥

जब यङ् परे हो अथवा उसका लुक् हुआ हो तो जो अभ्यास कित् न हो उसे दीर्घ हो। **वाव्रज्यते** (३००) वह टेढा जाता है.

लिट्-प्र० ए० वाव्रज्य+आम्+कृ--

(७६३) यस्य हलः। ६ । ४ । ४९ ॥

हलः परस्य यस्य लोप आर्धधातुके ॥

आर्धधातुक प्रत्यये परे हुए सन्ते हल्से परे यकारका लोप हो। वाव्रज्यमें यकारका लोप हुआ (८८) से य् अ (य) में से यके प्रथमभाग य्का लोप हुआ अ शेष रहा और उसका (९०९) से लोप हुआ **वाव्रजाञ्चक्रे** (७६२) वह टेढा गया.

लट्-प्र० ए० वाव्रजिता वह टेढा जायगा.

वृत् (वृतु वर्तने) रहना।

लट्-प्र० ए० वृवृत्+य+ते—

(७६४) रीगृदुपधस्य च। ७ । ४ । ९० ॥

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमो यङ्यङ्लुकोः ॥

यङ परे हुए सन्ते अथवा उसका लोप हुआ हो तो जिस धातुके उपधामें ऋ हो उसके अभ्यासको रीक्‌का आगम हो। रीक्‌मेंसे (९, ७,) से री शेष रही-
वर् रीवृत्य×अ+ते (१३०) से रका लोप हुआ-
वरीवृत्यते वह वारंवार वर्तता है.

लि०-प्र० ए० वरीवृताञ्चक्रे। वह वारंवार वर्ता।
लुट्-प्र० ए० वरीवृतिता वह वारंवार वर्तेगा.

नृत् (नृती गात्र विक्षेपे) नाचना।

लट्-प्र० ए० नृनृत्य्+अ+ते=**नरीनृत्यते** (१५७) से नृ अन्तर्गत नके स्थानमें ण् प्राप्त हुआ परन्तु-

(७६५) क्षुभ्नादिषु च। ८। ४। ३९॥

णत्वं न॥

क्षुभ्नाति इत्यादि क्षुभ्नादिपठित धातुओंके नकारके स्थानमें णकार न हो। **नरीनृत्यते।** वह वारंवार नाचता है।

ग्रह्-लेना।

लट्-प्र० ए० गृगृह+य्+अ+ते+**जरीगृह्यते** (७६४) वह वारंवार लेता है.

इति यङन्तप्रक्रिया समाप्ता॥ ३॥

अथ यङ्लुगन्तप्रक्रिया।



(७६६) यङोऽचि च। २। ४। ७४॥

यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्यात्, चकारात् तं विनापि क्वचित्। अनैमित्तिकोऽयम्, अन्तरङ्गत्वादादौ भवति। ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वम्, अभ्यासकार्यम्। धातुत्वाल्लडादयः। शेषात् कर्तरीति परस्मैपदम्। चर्करीतं चेत्यदादौ पाठाच्छपो लुक्।

अच् (८३८) प्रत्यय परे हुए सन्ते यङ्का लुक् हो। सूत्रमें चकार है उससे विदित होता है कि कहीं अच् परे न होते भी यङ्का लोप हो।

यह लोप अनैमित्तिक है कारण कि इसके होनेके निमित्त किसी निमित्तकी आवश्यकता नहीं है. अत एव अन्तरङ्ग है, इस कारण पहले ही होता है। तब यङ्के लोप होनेपर भी (२१०) सूत्रके अनुसार यङन्त माननेसे (७५४) से धातुको द्वित्व होता है और फिर यथायोग्य अभ्यासके कार्य भी होते हैं, अर्थात् प्रथम लुक् फिर द्वित्व फिर अभ्यासके कार्य होते हैं। (९०३) से यङन्तकी धातुसंज्ञा होकर उससे लट् आदि प्रत्यय होते हैं, (४१३) से

परस्मैपद प्रत्यय होते हैं, (६३७) से यङ्लुगन्तकी गणना अदादिगणमें की है तो (९९०) से शप्का लुक् भी होता है.

(७६७) यङो वा। ७। २। ९४॥

यङ्लुगन्तात् परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड् वा स्यात्। भूसुवोरिति निषेधो यङ्लुकि भाषायां न, "बोभूतु तेतिक्ते" इति च्छन्दसि निपातनात्॥

जिस धातुसे परे यङ्का लुक् हुआ हो, उससे परे हलादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय आवे तो उसे ईट्का आगम विकल्प करके हो।

वेदके विना दूसरे शास्त्रोंमें जहां यङ्का लुक् होता है वहां (४७९) से गुणका निषेध नहीं होता यह इससे जाना जाता है कि 'बोभूतु' तथा 'तेतिक्ते' यह सूत्रकारने निपात किया है अर्थात् वेदमें यङ्लुक्में गुणाभाव करके रूप सिद्ध किया हैं जो (४७९) वां निषेधका सूत्र यहां भी लगता तो वह निपातन करनेकी आवश्यकता क्या थी? इससे जाना जाता है कि वेदमें यङ्लुगन्त प्रयोगमें गुण नहीं होता और लोकमें (४७९) के न लगनेसे गुण होता ही है।[1]

लट्-प्र० ए० बोभवीति, बोभोति — वह वारंवार होता है.

लट्-प्र० द्वि० बोभूतः — वे दो वारंवार होते हैं.

लट्-प्र० ब० बोभुवति — वे वारंवार होते हैं.

लट्-म० ए० बोभवीषि, बोभोषि — तू वारंवार होता है

लट्-उ० ए० बोभवीमि, बोभोमि — मैं वारंवार होता हूं

लिट्-प्र०ए० बोभवाञ्चकार, बोभवामास-म्बभूव — वह वारंवार हुआ.

लुट्-प्र० ए० बोभविता — वह वारंवार होगा.

लृट्-प्र० ए० बोभविष्यति — वह वारंवार होगा.

लोट्-प्र० ए० बोभवीतु, बोभोतु, बोभूतात्-द् — वह वारंवार हो.

लोट्-प्र० द्वि० बोभूताम् — वे दो वारंवार हों.

लोट्-प्र० ब० बोभुवतु — वे वारंवार हों.

लोट्-म० ए० बोभूहि[४३८] — तू वारंवार हो.

लोट्-उ० ए० बोभवानि[४५२] — मैं वारंवार होऊं.

---

१ यथोक्तं महाभाष्ये-"बोभूतु इति किं निपात्यते? भवतेर्यङ्लुगन्तस्यागुणत्वं निपात्यते। नैतदस्ति प्रयोजनम्। सिद्धमत्रागुणत्वं 'भूसुवोस्तिङि' इति। एवं तर्हि नियमार्थं भविष्यति-अत्रैव यङ्लुगन्तस्य गुणो न भवति, नान्यत्र। क्व माभूत्? बोभवीति इति॥

लङ्–प्र०	ए० अबोभवीत्, अबोभोत्	वह बारंबार हुआ.
लङ्–प्र०	द्वि० अबोभूताम्	वे दो बारंबार हुए.
लङ्–प्र०	ब० अबोभवुः	वे बारंबार हुए.
लिङ्–प्र०	ए० बोभूयात्	वह बारंबार हो.
लिङ्–प्र०	द्वि० बोभूयाताम्	वे दो बारंबार हों.
लिङ्–प्र०	ब० बोभूयुः	वे बारंबार हों,
२ लिङ्–प्र०	ए० बोभूयात्	ईश्वर करे वह बारंबार हो.
२ लिङ्–प्र०	द्वि० बोभूयास्ताम्	ई० दो बारंबार हों.
२ लिङ्–प्र०	ब० बोभूयासुः	ई० वे बारंबार हों.
लुङ्–प्र० ए०	अबोभूवीत्* / अबोभोत्	वह बारंबार हुआ.
लुङ्–प्र०	द्वि० अबोभूताम्	वे दो बारंबार हुए.
लुङ्–प्र०	ब० अबोभूवुः	वे बारंबार हुए.
लृङ्–प्र०	ए० अबोभविष्यत्	जो वह बारंबार हो.

॥ इति यङ्लुगन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥ ४ ॥

अथ नामधातुप्रक्रिया।

(७६८) सुपं आत्मनः क्यच्[1] । ३ । १ । ८ ॥

इषिकर्मणः एषितुः सम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यज् वा ॥[2]

जिस सुबन्तका इच्छा करनेवालेके साथ आत्मसम्बन्ध हो तथा वह इष् धातुका कर्म हो तो उस सुबन्तसे परे विकल्प करके क्यच् प्रत्यय हो। जैसे कोई अपने पुत्रके होनेकी इच्छा करता है तब पुत्रवाचक शब्द इष् धातुका कर्म है, कारण कि इष् धातुका अर्थ इच्छा करना है उसका विषय पुत्रवाचक शब्द है और जिसे इच्छा है उसका आत्मसम्बन्ध

* 'गातिस्थेति सिचो लुक्। यङो वेतीट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद्वुक्' (७८४) के अनुसार लुङमें सिच् का लुक् हुआ और (७६७) से जिस पक्षमें इट्का आगम होता है उस पक्षमें गुण (४२१) को बाधके ४२६) से वुक्का आगम होता है कारण कि वुक् नित्य है इस कारण गुणसे अधिक बलवान् है और नियम विधि वह कहाता है जो विरोधिके सूत्रकी प्रवृत्ति होनेपर भी उदाहरणमें लगसके।

१ क्यच्में (१५५, ५ क् च् का लोप होकर य शेष रहता है।

२ इष धातुके कर्मका वाचक और इच्छा करनेवालेका आत्म संबन्धी जो सुबन्त, उससे इच्छा अर्थमें क्यच् प्रत्यय विकल्पसे हो।

भी है कारण कि वह प्राणी अपने निमित्त पुत्रकी इच्छा करता है दूसरेके निमित्त नहीं. तो पुत्र+य (९०३) से धातुसंज्ञा हुई तब–

(७६९) सुपो धातुप्रातिपदिकयोः । २ । ४ । ७ ॥

एतयोरवयवस्य सुपो लुक् ॥

जो सुप् धातु अथवा प्रातिपदिक (१३९) का अवयव हो उसका लुक् हो । ' पुत्रम् य ' इसमें अम् धातुका अवयव है क्योंकि (९०३) से क्यजन्तको धातुसंज्ञा हुई हैं उसका लोप हुआ तब–

पुत्र+य+ति–

(७७०) क्यचि च । ७ । ४ । ३३ ॥

अवर्णस्य ईः ॥

क्यच् (६६८) प्रत्यय परे हुए सन्ते अवर्णके स्थानमें ई हो।

पुत्रीय+अति=**पुत्रीयति** वह अपने निमित्त पुत्रकी इच्छा करता है।

राजानम् आत्मनः इच्छति=राजन्+अम्+य=राजन्य–

(७७१) नः क्ये । १ । ४ । १५ ॥

क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं नान्यत् ॥

क्यच् और क्यङ् प्रत्यय परे हुए सन्ते नकारान्तकी ही पद संज्ञा हो दूसरेकी नहीं। द संज्ञा होकर (२००) से नकारका लोप हुआ तब **राजीयति** वह अपने राजा होनेकी इच्छा करता है । **नान्तमेवेति किम् ?** केवल नकारान्तको क्यों कहा ? तो **वाच्यति** वह वाणीकी इच्छा करता है । यहां वाच् शब्द नकारान्त नहीं है, चकारान्त है इस कारण वाच्की पद संज्ञा न हुई. जो हो जाती तो (३३३) से च्को क् होता ।

हलि च । गीर्यति । पूर्यति ।

गिरम् आत्मनः इच्छति=गिर्+अम्+य+अ+ति–

पुरम् आत्मनः इच्छति=पुर् अम्+य+अ+ति–

इसमें (७६९) से अम्का लोप होकर गिर्+यति, पुर्+यति रूप हुआ–

(६९२) से दीर्घ हुआ, गीर्+यति पूर्+यति–

गीर्यति वह वाणीकी इच्छा करता है ।

पूर्यति वह नगरकी इच्छा करता है ।

धातोरित्येव, नेह दिवमिच्छति दिव्यति वह स्वर्गकी इच्छा करता है. दिव् शब्द वर्गवाचक प्रातिपदिक है धातु नहीं इससे (६९२) से दीर्घ न हुआ तब 'दिव्यति' सिद्ध हुआ ।

१–अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमादाय " सुप्तिङन्तं पदम् " इति सूत्रेणैव पदत्वे सिद्धे नियमार्थमिदम् । अतो व्याचष्टे–नान्तमेवेति ।

समिधमिच्छति समिध्यति वह लकडीकी इच्छा करता है।
लुट्-प्र० ए० समिध्+य+ता-

(७७२) क्यस्य विभाषा । ६ । ४ । ५० ॥

हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वार्धधातुके । आदेः परस्य । अतो लोपः । तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न ॥

आर्धधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते हल्से परे क्यच् तथा क्यङ्का विकल्प करके लोप हो। (८८) से केवल यकारका लोप हुआ (५०६) से अकारका लोप हुआ और अकार-लोपके स्थानिवद्भाव करनेसे (४८६) से गुण जो प्राप्त हुआ था सो न हुआ तब **समिधिता** वा **समिधियता** वह इन्धनकी इच्छा करेगा.

(७७३) काम्यच्च । ३ । १ । ९ ॥

उक्तविषये काम्यच् स्यात् ॥

(७६८) में कहे अर्थमें काम्यच् प्रत्यय हो।
लट्-प्र० ए० पुत्रकाम्यति वह पुत्रकी इच्छा करता है.
लुट्-प्र० ए० पुत्रकाम्यिता वह पुत्रकी इच्छा करेगा.

(७७४) उपमानादाचारे । ३ । १ । १० ॥

उपमानात्कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच् ॥

उपमानवाचक[1] जो कर्मसंज्ञक सुबन्त उससे आचरण अर्थमें क्यच् प्रत्यय हो।
लट्-प्र० ए० पुत्रीयति छात्रम्=(पुत्रमिवाचरति) वह शिष्यको पुत्रके समान मानता है.
लट्-प्र० ए० विष्णूयति द्विजम्=(विष्णुमिवाचरति) वह ब्राह्मणको विष्णुके समान मानता है।

(७७५) सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः ॥

सब प्रातिपदिकोंसे विकल्प करके क्विप् प्रत्यय (७७४) के विषयमें हो यह कहना चाहिये। जहां पदसंज्ञा नहीं है वहां (३००) लगता है. क्विप् लोप (१९९, १३०)
कृष्ण इवाचरति=कृष्ण+अ+ति-
लट्-प्र० ए० कृष्णाति वह कृष्णके समान आचरण करता है।
लट्-प्र० ए० स्वाति (स्व इव आचरति) वह अपने समान आचरण करता है.
लिट्-प्र० ए० सस्वौ उसने अपने समान आचरण किया.
लट्-प्र० ए० इदम्+क्विप्+अ+ति-

---

१ उपमीयते=सदृशीक्रियते येन तदुपमानम् । सादृश्यस्य नियतसंबन्धी पदार्थः । आचारो व्यवहारः ।

(७७६) अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति । ६ । ४ । १५ ॥

अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात् क्वौ झलादौ च क्ङिति ।

क्विप् अथवा झलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे रहते अनुनासिकान्तकी उपधाको दीर्घ हो ।

इदामति (इदमिवाचरति) वह इसके समान आचरण करता है ।

लट्–प्र० ए० राजानति (राजेवाचरति) वह राजाके समान आचरण करता है ।

लट्–प्र० ए० पथीनति (पन्था इवाचरति) वह पथके समान आचरण करता है ।

(७७७) कष्टाय क्रमणे । ३ । १ । १४ ॥

चतुर्थ्यन्तात्कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् स्यात् ॥

चतुर्थ्यन्त कष्टशब्दसे परे उत्साह अर्थमें क्यङ् प्रत्यय हो ।

लट्–प्र० ए० कष्टाय+य (क्यङ्) अ+ते–

(७६९) से सुप्का लुक् हुआ उसके पीछे (९१९) से दीर्घ हुआ–

कष्टायते–(कष्टाय क्रमते पापं कर्तुमुत्सहत इत्यर्थः) वह पाप करनेको उत्साह करता है.

(७७८) शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे । ३ । १ । १७ ॥

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् स्यात् ॥

शब्द (वचन, आवाज, बोल), वैर (विरोध), कलह (झगडा), अभ्र (बादल), कण्व (पाप), मेघ (बादल) ये शब्द जब कर्म हों तब इनसे परे करने अर्थमें क्यङ् प्रत्यय हो ।

लट्–प्र० ए० शब्दम्+य–

(७६९) से विभक्तिका लोप (९१९) से दीर्घ हुआ । शब्दाय+अ+ते **शब्दायते (शब्दं करोति)** वह शब्द करता है । **(वैरं करोति) वैरायते** इत्यादि जानना ॥

(७७९) (तत्करोति तदाचष्टे) इति णिच् ॥

वह अमुक कार्यको करता है, अथवा अमुक बातको कहता है इन अर्थोंमें णिच् प्रत्यय हो । णिच् हुआ, प्रश्न-जब (७८०) से णिच् सिद्ध ही है तब फिर (७७९) का क्या प्रयोजन है ? उत्तर-(७७९) जो है सो (७८०) ही का प्रपञ्च है अर्थात् उसीके अर्थमेंसे स्पष्टार्थ इतना अलग कर लिखा है ।

(७८०) प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च ॥

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यात् । इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भावरभावटिलोपविन्मतुब्लोपयणादिलोपप्रस्थस्फाद्यादेशभसंज्ञास्तद्वणावपि स्युः । इत्यलोपः । घटं करोत्याचष्टे वा घटयति ।

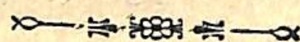
---

[१] द्वितीयान्तसे " करोति, आचष्टे " इस अर्थमें णिच् प्रत्यय हो ।

धातुके अर्थमें प्रातिपदिकसे परे णिच् प्रत्यय हो और जब वह णिच् परे हो तब इष्ठन् (१३०७) प्रत्ययके तुल्य कार्य हों, अर्थात् जैसे इष्ठ परे रहते स्त्रीलिङ्गको पुँल्लिङ्ग होता है ऋको र् आदेश, टि (९२) का लोप, विन् (१२८२) प्रत्ययका और मतुप् (१२६९) प्रत्ययका लोप होता है, यण् आदिका लोप और प्रियशब्दको ' प्र ' स्थिरशब्दको 'स्थ' स्फिर शब्दको ' स्फ ' इत्यादि आदेश होते हैं तथा भ (१८९) संज्ञा होती है तैसे ही णिच् परे रहते भी कार्य हो । **लट्-प्र० ए०** घटइ+अ+ति णिच् प्रत्यय परे रहते इष्ठन् (१३०७) के तुल्य कार्य हो यह मानकर घट शब्दके टि (९२) संज्ञक अकारका लोप हुआ तब घटि+अति=घटे+अति (४२१)=**घटयति** (२९) वह घडा बनाता है अथवा घडेको करता है ।

इति नामधातवः समाप्ताः ॥ ५ ॥

अथ कण्ड्वादयः ।



(७८१) कण्ड्वादिभ्यो यक् । ३ । १ । २७ ॥

एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात् स्वार्थे ॥

कण्डूञ् आदि गणके धातुओंसे परे स्वार्थमें यक् प्रत्यय नित्य हो ।

कण्डू (कण्डूञ् गात्रविघर्षणे) खुजलाना ।

लट्-प्र० ए० कण्डू+य (यक्)+अँ+ति (अथवा) ते=**कण्डूयति** वा **कण्डूयते** वह खुजलाता है ।

॥ इति कण्ड्वादयः समाप्ताः ॥ ६ ॥

अथाऽऽत्मनेपदप्रक्रिया ।



(७८२) कर्तरि कर्मव्यतिहारे । १ । ३ । १४ ॥

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदम् । व्यतिलुनीते । अन्यस्य योग्यं लवनं करोतीत्यर्थः ।

जब क्रियाका अदलबदल प्रकाश करना हो तब कर्ता अर्थमें आत्मनेपद प्रत्यय हो । **लूञ्** (छेदने) वह धातु उभयपदी है उसके अदलबदलका प्रकाश करना वि तथा अति उपसर्ग लगाकर होता है । वि+अति+लुञ्=व्यति+लु+ना (७३१)-व्यतिलुनी (६५८)+ते= **व्यतिलुनीते** वह दूसरेके उचित काटनेके कामको स्वयं करता है ।

(७८३) न गतिहिंसार्थेभ्यः । १ । ३ । १५ ॥

गति तथा हिंसार्थक धातुओंसे परे (७८२) से आत्मनेपद प्रत्यय न हो ।

लट्–प्र० ब० व्यतिगच्छन्ति वे परस्पर विरुद्ध जाते हैं,
लट्–प्र० ब० व्यतिघ्नन्ति वे परस्पर मारते हैं.

इन दोनों उदाहरणोंके वाक्योंमें भी कर्मका व्यतिहार है, क्योंकि जब वे उनके निकट गमन करते हैं तब बदलेमें वे उनके पास जाते हैं जब वे उन्हें मारते हैं तब पलट कर वे भी मारते हैं। भाष्यकारने इस उलट पलटको भी कर्मव्यतिहार माना है, इससे यह न समझना चाहिये कि दूसरेके योग्य कार्यको दूसरा करे, इसी क्रियाके अदलबदलको कर्मव्यतिहार कहते हैं किन्तु किसी प्रकारका भी क्रियासम्बन्धी उलट पलट हो सो कर्मव्यतिहार कहाता है।[1]

(७८४) नेर्विशः । १ । ३ । १७ ॥

निपूर्वक विश् धातुसे परे आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय हो ।

लट्–प्र० ए० निविशते वह प्रवेश करता है ॥

(७८५) परिव्यवेभ्यः क्रियः । १ । ३ । १८ ॥

परि, वि अथवा अव उपसर्गसे परे क्री धातु आवे तो आत्मनेपद प्रत्यय हो ।

लट्–प्र० ए० परिक्रीणीते वह मोल लेता है । **विक्रीणीते** वह बेचता है. **अवक्रीणीते** वह मोल लेता है ।

(७८६) विपराभ्यां जेः । १ । ३ । १९ ॥

वि अथवा परा उपसर्गसे परे जि (जये) धातु आवे तो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय हों

लट्–प्र० ए० विजयते वह विजय करता है ।
पराजयते वह पराजय करता है ।

(७८७) समवप्रविभ्यः स्थः । १ । ३ । १९ ॥

सम्, अव, प्र अथवा वि से परे स्था धातु आवे तो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय हों ।

लट्–प्र० ए० संतिष्ठते वह भले प्रकार स्थित होता है.
लट्–प्र०ए० अवतिष्ठते वह स्थित होता है
लट्–प्र०ए० प्रतिष्ठते वह यात्रा करता है।
लट्–प्र०ए० वितिष्ठते वह विशेष करके स्थित होता है.

(७८८) अपह्नवे ज्ञः । १ । ३ । ४४ ॥

ज्ञा धातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो झूठा करने अर्थमें ।

लट्–प्र०ए० शतमपजानीते(अपलपतीत्यर्थः) वह सौ रुपयेंको झूठा करता है.

(१) (७८९) अकर्मकाच्च । १ । ३ । ४५ ॥

ज्ञा धातु अकर्मक हो तो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो ।

---

१ " परस्परकरणमपि कर्मव्यतिहारः " इति महाभाष्यम् ।

सर्पिषो जानीते । सर्पिषोपायेन प्रवर्तत इत्यर्थः ।
घृत उपायसे वह प्रवृत्त होता है ।

(२) (७८९) उदश्चरः सकर्मकात् । १ । ३ । ५३ ॥

जिसके प्रथम उद् उपसर्ग हो ऐसे सकर्मक चर् धातुसे आत्मनेपद हो । **धर्ममुच्चरते । धर्ममुल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः** । वह धर्मको उल्लंघन कर जाता है ।

(७९०) समस्तृतीयायुक्तात् । १ । ३ । ५४ ॥

सम् उपसर्ग जिसके पूर्व हो ऐसे तृतीयान्त पदसे युक्त चर् धातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो । यथा **रथेन सञ्चरते** वह रथद्वारा सुखसे जाता है ।

(७९१) दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे । १ । ३ । ५५ ॥

सम्पूर्वाद्दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात्तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे ।[1]

सम् उपसर्ग जिसके पूर्व हो ऐसा दा (दाण्) धातु जो तृतीयान्तपदसे युक्त हो और वह तृतीया चतुर्थीके अर्थमें हुई हो तो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो । तथा **दास्या संयच्छते कामी** कामी भोगकी इच्छासे दासीको देता है ।

(७९२) पूर्ववत् सनः । १ । ३ । ६२ ॥

सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात् ॥

आत्मनेपदी धातुसे परे सन् प्रत्यय आवे तो सन्नन्तसे परे भी आत्मनेपद प्रत्यय हो । एध् धातु आत्मनेपदी है उससे परे सन् प्रत्यय किया, फिर उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय हुआ । **एदिधिषते** (४३४, ७५४) वह वृद्धिकी इच्छा करता है ।

(७९३) हलन्ताच्च । १ । २ । १० ॥

इक्समीपाद्धलःपरो झलादिः सन् कित् ।

इक् समीपवाले हल्से परे झलादि (इट् बिना) जो सन् प्रत्यय कित् हो । नि+विविश+स (सन्)+ते=**निविविक्षते** वह प्रवेश करनेकी इच्छा करता है इस प्रयोगमें प्रथम अवस्थामें अर्थात् सनके पूर्व (७८४) से आत्मनेपद होता है तो सन्नन्तसे भी (७९२) से हुआ ।

(७९४) गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः । १ । ३ । ३२ ॥

(गन्धनम् सूचनम्) चुगलीकरना । **(अवक्षेपणम्-भर्त्सनम्)** डराना। **(सेवनम्-सेवाकरणम्**) सेवाकरनी । **(साहसिक्यम्-सहसा प्रवृत्तिः**) बलात्कार । **(प्रतियत्नः-गुणाधानम्**) गुण ग्रहण करना **(प्रकथनम्-प्रकर्षेण कथनम्**) अच्छी तरहसे कहना । **(उपयोगः धर्मार्थं विनियोगः**) धर्मार्थदाना इन अर्थोंमें कृधातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो।

---

१ " अशिष्टव्यवहारे दाणःप्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया " इति तृतीया । दास्यै ददातीत्यर्थः ।

उत्कुरुते-सूचयतीत्यर्थः-वह चुगली करता है.
श्येनो वर्तिकामुत्कुरुते-भर्त्सयतीत्यर्थः=बाज बटेरको भय देता है.
हरिम् उपकुरुते-सेवत इत्यर्थः=वह नारायणको सेवता है.
परदारान् प्रकुरुते-तेषु सहसा प्रवर्तते=वह अन्यकी स्त्रीके साथ बलात्कार करता है
एधो दकस्योपस्कुरुते-गुणमाधत्त इत्यर्थः=लकडी जलका गुण लेती है.
कथाः प्रकुरुते-कथयतीत्यर्थः=वह कथा कहता है.
शतं प्रकुरुते-धर्मार्थं विनियुङ्क्ते=वह धर्मार्थ सौ मुद्रा बाँटता है.
एषु किम् ? इन्हीं अर्थोंमें कृधातुसे आत्मनेपद प्रत्यय हो ऐसा क्यों कहा ? **कटं करोति** वह चटाई बनाता है, यहां गन्धन आदि अर्थ नहीं है इससे आत्मनेपद प्रत्यय न हुआ। **भुजोऽनवने** (७२९) भुज भोजन अर्थवाचक हो तो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो। यथा-**ओदनं भुङ्क्ते**=वह भात खाता है। **अनवने किम्** ? और जहां पालन अर्थ है वहां परस्मपद होता है यथा-**महीं भुनक्ति**=वह पृथ्वीका पालन करता है ॥

इति आत्मनेपदप्रक्रिया समाप्ता ॥ ७ ॥

अथ परस्मैपदप्रक्रिया ।

(७९५) अनुपराभ्यां कृञः । १ । ३ । ७९ ॥

कर्तृगे च फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात् ॥

जिस क्रियाका फल कर्तामें पहुँचता हो तथा (७९४) से गन्धनादि अर्थोंमेंसे कोई अर्थ हो तो अनु तथा परा उपसर्गसे परे कृधातुसे परस्मैपद प्रत्यय हो।
अनुकरोति अनुकरण करता है.
पराकरोति पराजय करता है.

(७९६) अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः । १ । ३ । ८० ॥

अभि, प्रति तथा अति उपसर्गोंसे परे क्षिप् धातुसे परस्मैपद प्रत्यय हो। **क्षिप्** फेंकना यह धातु स्वरितेत् है (४१२) होनेसे उभयपदी है.
अभिक्षिपति वह सब प्रकार फेंकता है.

(७९७) प्राद्वहः । १ । ३ । ८१ ।

प्र उपसर्गसे परे वह् धातु आवे तो उससे परे परस्मैपद प्रत्यय हो। **प्रवहति** वह नदी वहती है।

(७९८) परेर्मृषः । १ । ३ । ८२ ॥

परि उपसर्गसे मृष् (सहना) धातु आवे तो उससे परे परस्मैपद प्रत्यय हो। **परिमृषति परिमृष्यति** वह सहता अथवा क्षमा करता है ।

(७९९) व्याङ्परिभ्यो रमः । १ । ३ । ८३ ॥

वि, आङ् तथा परि इन उपसर्गोंसे परे रम (रमु-क्रीडा करना) धातु आवे तो उससे परे परस्मैपद प्रत्यय हो । **विरमति** वह निवृत्त होता है । नागेशभट्टने इस धातुको उकार-रहित माना है.

(८००) उपाच्च । १ । ३ । ८४ ॥

उप उपसर्गसे परे जो रम् धातु आवे तो उससे परे परस्मैपद प्रत्यय हो । यथा-**यज्ञदत्तम् उपरमति-उपरमयतीत्यर्थः** वह यज्ञदत्तको निवृत्त करता है । **अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम्** । इस धातुमें णि (७४८) का अर्थ अन्तर्भूत है इस कारण यहां उपपूर्वक रम् धातुका अर्थ निवृत्त होना नहीं किन्तु निवृत्त करना है ।

इति परस्मैपदप्रक्रिया समाप्ता ॥

इति पदव्यवस्था ॥ ८ ॥

अथ भावकर्मप्रक्रिया ।

(८०१) भावकर्मणोः । १ । ३ । १३ ॥

लस्यात्मनेपदम् ।

जब भाव अथवा कर्म अर्थमें लकार हो तो धातुसे परे आत्मनेपद प्रत्यय हो ।

(८०२) सार्वधातुके यक् । ३ । १ । ६७ ॥

धातोर्यक् प्रत्ययः स्यात् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके ॥

भाव अथवा कर्मवाचक सार्वधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते धातुसे परे यक् प्रत्यय हो ।

भावः क्रिया, सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते । युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात् प्रथमः पुरुषः । तिङ्वाच्यक्रियया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः त्वया मया अन्यैश्च भूयते । बभूवे ।

भाव क्रियाको कहते हैं, वह क्रियाको भाव अर्थमें हुए लकारसे (४०८) अनुवाद की जाती है कारण कि, भाव धातुका वाच्य है । भावमें लकार करनेपर लकारके स्थानमें प्रथम पुरुष ही होता है मध्यम, उत्तम नहीं, कारण कि जब भावमें लकार हुआ तब लकारका अर्थ तो भाव ही है और युष्मद् अस्मद् शब्दोंसे कर्ताका बोध होता है इससे समानाधिकरण (४१६) नहीं है तब (४१६, ४१७) के मध्यमपुरुष तथा उत्तमपुरुषके सूत्र नहीं लगते और युष्मद् अस्मद्के साथ एकाधिकरणताके अभावसे ही मध्यम और उत्तम पुरुषका अविषय है, इसीसे प्रथमपुरुष ही होता है और द्रव्यवाचकसे द्विवचन वा

बहुवचन होसकता है यहां तिङ्वाच्य क्रिया द्रव्य नही है इसीसे द्विवचनादि न होकर एक-बचन ही होता है, जहां द्वित्वादि संख्याकी प्रतीति न हो वहां एक वचन स्वभावहीसे होता है. जिसमें लिङ्ग संख्या और कारक रहे उसे द्रव्य कहते हैं । लट् भू+य (८०२) + ते (८०१) भूयते=**त्वया मया अन्यैश्च भूयते**=तुमसे मुझसे और अन्योंसे हुआ जाता है अर्थात् तू होता है मैं होता हूं, दूसरे लोग होते हैं। **लिट्-प्र० ए० बभूवे** (४३३) वह हुआ । **लुट् प्र० ए०** भू+ तास्+ आ (डा) = भूता-

(८०३) स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च । ६ । ४ । ६२ ॥

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात्स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च ॥

स्य (४२६), सिच् (४७२), सीयुट् , (५५६) अथवा तासि (४३६) इनके परे हुए सन्ते जो धातु उपदेशकालमें अजन्त हों उनको और हन् ग्रह और दृश इन धातुओंको चिण् (८०४) प्रत्यय परे रहते जैसे अङ्गसंज्ञानिमित्तक कार्य होते हैं तैसे विकल्प करके हों और जब लकार भावमें वा कर्ममें हुआ हो तो । स्य आदि प्रत्ययको इट्का आगम भी हो । **चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट् । चिण्वद्भावाद्वृद्धिः** । जिस पक्षमें चिण्वद्भाव होता है उसी पक्षमें इट्का आगम भी होता है । चिण्वद्भाव होनेसे वृद्धि (२०२) होती है । भू+तास् में चिण्वद्भाव हुआ (२०२) से वृद्धि, इट्का आगम हुआ तब भौ+इ+ता' रूप हुआ+भाव+इता+=**भाविता** । चिण्वद्भाव न किया सो (४३४) से इट् हुआ **भविता** उससे हुआ जायगा.

लृट्-प्र०ए० भाविष्यते भविष्यते उससे हुआ जायगा

लोट्-प्र०ए० भूयताम् उससे हुआ जाय.

लङ्-प्र०ए० अभूयत उससे हुआ गया.

१ लिङ्-प्र०ए० भूयेत उससे हुआ जाय.

२ लिङ्-प्र०ए० भाविषीष्ट, भविषीष्ट ईश्वर करे उससे हुआ जाय.

लुङ्-प्र०ए० अ+भू+च्लि + त-

(८०४) चिण् भावकर्मणोः । ३ । १ । ६६ ॥

च्लेश्चिण् स्याद्भावकर्मवाचिनि तशब्दे परे ॥

भाव अथवा कर्मवाचक त प्रत्यय परे हुए सन्ते च्लिके स्थानमें चिण् हो । चिण्में इ शेष रहती है (१४८, ९, ७)

अभू+इ+त=अभौ[२०२]=इ+त=अभाव्+इ+त[२९]=**अभावि**[६८४] उससे हुआ गया.

---

१ अत्रायं नियमो बोध्यः-प्रयोगे कर्मवाच्यस्य तृतीया कर्तृकारके । प्रथमान्तं भवेत्कर्म कर्माधीनं क्रियापदम् ॥ भाववाच्यप्रयोगे तु तृतीया कर्तृकारके । प्रथमपुरुषस्यैकवचनान्तं क्रियापदम् ॥ इति ।

लृङ्-प्र०ए० **अभाविष्यत, अभविष्यत** जो उससे हुआ जायगा.

अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात्सकर्मकः । अकर्मक धातु भी उपसर्गके संयोगसे सकर्मक होजाता है । सकर्मक धातुओंसे यहां कर्ममें प्रत्यय होता है । कर्मको युष्मद् अस्मद्के साथ सामानाधिकरण्य रहता है और कर्ममें एकत्वादि संख्याकी प्रतीति भी होती है इससे सकर्मकसे सब पुरुष और सब वचन होते हैं.

लट्-प्र०ए० अनु+भूयते=**अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च** ।

चैत्र नामक पुरुषसे और तुझसे बहुत आनन्द अनुभव किया जाता है.

लट्-प्र०ब० **अनुभूयन्ते** चैत्र नामक पुरुषसे तुझसे और मुझसे बहुत आनन्द अनुभव किये जाते हैं.

लट्-म०ए०	**त्वम् अनुभूयसे**	किसीसे तू अनुभव किया जाता हैं.
लट्-उ०ए०	**अनुभूये**	किसीसे मैं अनुभव किया जाता हूँ.
लुङ्-प्र०ए०	**अन्वभावि**	किसीसे वह अनुभव किया गया.
लुङ्-प्र०द्वि०	**अन्वभाविषाताम्** / **अन्वभाविषाताम्**	किसीसे वे दो अनुभव-किये गये.

णिलोपः । भू धातुसे परे (७४८) से णिच् किया (५६४) से णिच्का लोप होकर नीचे लिखा रूप हुआ-

लट्-प्र०ए० **भाव्यते** उससे वह होआया जाता हैं.

लिट्-प्र०ए० **भावयाञ्चक्रे, भावयाम्बभूवे भावयामासे** किसीसे वह हो आया गया.

लुट्-प्र०ए० (**भाविता**) **चिण्वदिट्** (८०३) से चिण्वद्भाव और इट्का आगम होता है **भाविता** किसीसे वह हो आया जायगा.

आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः । इस उदाहरणमें (५६४) से णिका लोप हुआ कारण कि (६००) से (५६४) के सामने (८०३) का कार्य असिद्ध हैं (८०३) केके दूसरे पक्षमें **भावयिता** (३३४. २०२, ३९) किसीसे होआया जायगा.

२ लिङ्-प्र०ए० **भावयिषीष्ट** ईश्वर करे किसीसे वह हो आया जाय.

लुङ्-प्र०ए० **अभावि** [५६४] किसीसे वह हो आया गया.

लुङ्-प्र०द्वि०	**अभाविषाताम्** (५६४) / **अभावयिषाताम्**	किसीसे वे दो हो-आये गये.

(७५३) से सन्नन्तव तुसे परे यक् करनेसे नीचे लिखे अनुसार रूप होते हैं.

लट्-प्र०ए० **बभूष्यते** उससे होनेकी इच्छा कीजाती है.

लिट्-प्र०ए० **बुभूषाञ्चक्रे** उससे होनेकी इच्छा की गई,

लुट्–प्र० ए० बुभूषिता उससे होनेकी इच्छा की जावेगी.

लृट्–प्र० ए० बुभूषिष्यते उससे होनेकी इच्छा की जावेगी.

यङन्त (७९९) से परे यक् करनेसे नीचे लिखे रूप होते हैं–

लट्–प्र० ए० बोभूय्यते उससे वारंवार हुआ जाता है.

लृट्–प्र० ए० बोभूयिष्यते उससे वारंवार हुआ जायगा.

यङ्लुक्में–

बोभूयते उससे अतिशय करके वा वारंवार हुआ जाता है.

ष्टु (स्तुति करना)

अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः (९१९) से दीर्घ होकर–

लट्–प्र० ए० स्तूयते[८०३] **विष्णुः** किसीसे विष्णुकी स्तुति की जाती है.

लुट्–प्र० ए० स्ताविता[८०३], **स्तोता** किसीसे वह स्तुति किया जायगा.

लृट्–प्र० ए० स्ताविष्यते,[८०] **स्तोष्यते** किसीसे वह स्तुति किया जायगा.

लङ्–प्र० ए० अस्तावि किसीसे वह स्तुति किया जायगा.

लङ्–प्र० ए० अस्ताविषाताम्, अस्तोषाताम् किसीसे वे दो स्तुति किये गये.

ऋ (जाना)

गुणोर्तिसंयोगाद्योः (९३४) से गुण होता है।

लट्–प्र० ए० अर्यते किसीसे वह गमन किया जाता है।

स्मृ (स्मरण करना)

लट्–प्र० ए० स्मर्यते[५३४] किसीसे वह स्मरण किया जाता है.

लिट्–प्र० ए० सस्मरे किसीसे वह स्मरण किया जायगा.

* **उपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट्** ऋ तथा स्मृ धातु उपदेशमें अजन्त हैं इस कारण (८०३) से चिण्वद्भाव और इट्का आगम होता है–

लुट्–प्र० ए० आरिता[८०३], **अर्ता** किसीसे वह गमन किया जायगा.

लुट्–प्र० ए० स्मारिता, स्मर्ता किसीसे वह स्मरण किया जायगा.

स्रंस (गिरना)

अनिदितामिति नलोपः (३६३) से इसके नकारका लोप होता है **स्रस्यते** उससे गिरा जाता है.

---

* " परत्वान्नित्यत्वाच्च गुणे रपरत्वे च कृतेऽजन्तत्वाऽभावेऽपीत्यादिः " आरिता इत्यादि प्रयोगोंमें गुण और चिण्वदिट् इन दोनोंकी साथ ही प्रवृत्ति होती है परंतु परत्व और नित्यत्वसे पहले गुण ही होता है और ऋके स्थानमें होनेसे रपर भी होता है. तब तो अजन्त न होनेसे चिण्वदिट् कैसे ? इसका उत्तर यह है कि (५०३) में ' उपदेश ' पद पढा है उसका अर्थ यह है कि उपदेशमें जो धातु अजन्त हो तो यहां गुण होनेपर अजन्त नहीं है पर उपदेशमें तो हुई है इसीसे चिण्वदिट् होता है।

परन्तु (**इदितस्तु**) आनंदित होना या बढना इस अर्थवाले नन्द (नदि) धातुके तुल्य जो धातु इदित् हैं इनके नकारका लोप (३३३) से नहीं होता क्योंकि सूत्रमें (**अनिदिताम्**) जो इदित् न हों ऐसा कहा है-

लट्-प्र० ए० नन्द्यते उससे आनन्दित हुआ जाता है।

यज् (देवपूजा करना.)

सम्प्रसारणम्-यज् धातुके यण्को (५८५) के अनुसार सम्प्रसारण (२८१) से इकार होता है कारण कि यक् प्रत्यय कित् है-

लट्-प्र० ए० इज्यते किसीसे वह पूजा जाता है.

तन् (विस्तार करना)

लट्-प्र० ए० तन्+यते=

(८०५) तनोतेर्यकि । ६ । ४ । ४४ ॥

आदन्तादेशो वा ॥

तन् धातुसे परे यक् प्रत्यय (८०१, ८०२) आवे तो धातुके नकारके स्थानमें विकल्प करके आकार हो।

तआ+य+ते=**तायते** अथवा **तन्यते** किसीसे वह विस्तार किया जाता है.

तप् (संताप पाना, पश्चात्ताप करना)

लट्-प्र० ए० तप्यते उससे तापित हुआ जाता है.

लुङ्-तप+च्लि+त (८०४)से च्लिको चिण् प्राप्त हुआ परन्तु-

(८०६) तपोऽनुतापे च । ३ । १ । ६५ ॥

तपश्च्लेश्चिण् न स्यात्कर्मकर्तर्यनुतापे च ॥

सन्तापवाचक तप् धातुका जब कि कर्म ही कर्ता रहे (८१०) तो अथवा तप् धातुका अर्थ पश्चात्ताप हो तो उससे परे च्लिके स्थानमें चिण् न हो। **अन्वतप्त पापेन** पापीने पछताया. यहां भाव अर्थमें लकार हुआ और कर्म अर्थमें लकार करनेसे यह अर्थ होता है कि पापरूप कर्तासे वह सन्तापित हुआ यह उदाहरण अनुताप अर्थमें है, कर्मकर्ता अर्थमें नहीं।

दा (देना) **धा** (धारण करना)

घुमास्थेतीत्वम् (६२६) में कहे घुसंज्ञक आदि धातुओंको ईकार हो।

लट्-प्र० ए० दीयते किसीसे वह दिया जाता है.

लट्-प्र० ए० धीयते किसीसे वह धारण किया जाता है.

लिट्-प्र० ए० ददे किसीसे वह दिया गया.

लुट्-प्र० ए० दा+ता+तासि प्रत्यय परे होनेसे (८०३) चिण्वद्भाव हुआ। तब

(८०७) आतो युक् चिण्कृतोः । ७ । ३ । ३२ ॥

आदन्तानां युग गमः स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च ।

चिण् अथवा ञित् णित् (३९९) कृत् प्रत्यय परे हुए सन्ते आकारान्त धातुको युक्का आगम हो ।

दा+य् (युक्) ता=दाय्ता (८०१) इट् हुआ **दायिता अथवा दाता** किसीसे वह दिया जायगा.

२ लिट्–प्र० ए० दायिषीष्ट[803], दासीष्ट ईश्वर करें वह किसीसे दिया जाय.

लुङ्–प्र० ए० अ[584]दायि किसीसे[804] वह दिया गया.

लुङ्–प्र० द्वि० अदायिषाताम् (८०३) किसीसे वे दो दिये गये.

भञ्ज् (तोडना)

लट्–प्र० ए० भ[363]ज्यते किसीसे वह तोडा जाता है.

लुङ्–प्र० ए० अभन्ज्+इ (चिण्)+त

(८०८) भञ्जेश्च चिणि ६ । ४ । ३३ ॥

नलोपो वा स्यात् ।

चिण् परे सन्ते भञ्ज् धातुके नकारका लोप विकल्प करके हो ।

अभाजि, अभञ्जि किसीसे वह तोडा गया.

लभ् (पाना)

लट्–प्र० ए० लभ्यते किसीसे वह पाया जाता हैं.

लुङ्–प्र० ए० अ+लभ्+इ (चिण्) त–

(८०९) विभाषा चिण्णमुलोः । ७ । १ । ६९ ॥

लभेर्नुमागमो वा स्यात् ॥

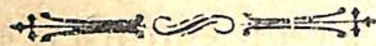
चिण् अथवा णमुल्[8363] प्रत्यय परेहुए सन्ते लभ् धातुको विकल्प करके नुम्का आगम हो ।

अलन्भि=**अलम्भि** , **अलाभि** किसीसे वह पाया गया.

इस प्रक्रियाके अर्थमें कर्ताके आगे जो (से) रक्खा गया है सो कर्तृप्रत्ययान्त और कर्म प्रत्ययान्त प्रयोगोंके भेद जाननेके निमित्त है वास्तवमें तो कर्तृप्रत्ययान्तके सदृश यह भी अर्थ करना उचित है ।

॥ इति भावकर्मप्रक्रिया समाप्ता ॥ ९ ॥

अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया ।



(८१०) यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्यकर्मकत्वात्कर्तरि भावे च लकारः ॥

जब कि कर्मही को कर्ता माननेकी इच्छा हो सो तब सकर्मक धातु भी अकर्मक हो जाते हैं. पीछे उन कर्महीन धातुओंसे परे (४०९) से कर्ता अथवा भाव अर्थमें लकार होते हैं ।

(८११) कर्मवत्कर्मणा[1] तुल्यक्रियः[2] । ३ । १ । ८७ ॥

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत्स्यात् । कार्यातिदेशोऽयम् । तेन यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः ॥

कर्ममें स्थित जो क्रिया उसके समान जिस कर्ताकी क्रिया हो सो कर्ता कर्मके तुल्य हो. आशय यह कि उसको कर्मके कार्य हों इस कारण यक् (८०२) आत्मनेपद प्रत्यय (८०१) चिलके स्थानमें चिण् (८०४) तथा चिण्वद्भाव और इट् (८०३) होते हैं । **कालः पचति फलम्** इसमें पकजाना व्यापाररूप क्रिया फलरूप कर्ममें है और जब कालरूप कर्ताकी अविवक्षा हुई फलरूप कर्महीके कर्ता माना, तब पकजानारूप क्रिया कर्मकर्ता (फल) में है तो कर्ममें रहनेवाली क्रियाके तुल्य (उसी) क्रियावाला कर्ता फल हो गया तो कर्मवद्भाव होता है । पच् धातु सकर्मक है उसको कर्ममें कर्ताकी विवक्षा हुई तो (८१०) से अकर्मक मान कर्ता अर्थमें लकार कर (८०२) से यक् हुआ, (८०१) से आत्मनेपद प्रत्यय होकर पच्+य+ते=**पच्यते** हुआ, ऐसे ही **भिद्यते** जानो.

लट्-प्र० ए० पच्यते फलम् फल स्वयं पकता है.
लट्-प्र० ए० भिद्यते काष्ठम् काष्ठ स्वयं फटता है.
लुङ्-प्र० ए० अपाचि[८०४।६८४।४२०] वह आपसे पका.
लुङ्-प्र० ए० अभेदि[४८६] वह आपसे फटा.
भावे तु-भिद्यते काष्ठेन काष्ठसे फटा जाता है । **पच्यते फलेन** फलसे पका जाता है.

जब लकार भावको प्रकाश करता है तब कर्ता अनुक्त हो जाता है इस कारण कर्तृवाचकसे तृतीया आती है ' फलेन ' ' काष्ठेन ' इत्यादि ॥ इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ॥ १० ॥

---

१ क्रियमाणं तु यत्कर्म स्वयमेव प्रसिध्यति । सुकरैः स्वैर्गुणैर्बुद्धाः कर्मकर्तेति तद्विदुः ॥

२ अत्रेदं बोध्यम्-कर्मस्थे सति धात्वर्थे कर्मकर्ता तु कर्मवत् । कर्तृस्थे सति धात्वर्थे कर्मकर्ता तु कर्तृवत् ॥

अथ लकारार्थप्रक्रिया।

(८१२) अभिज्ञावचने लृट्। ३। २। ११२॥

स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट्॥ लङोऽपवादः।

जब स्मरणवाचक कोई शब्द धातुके उपपद हो तो अनद्यतनभूत अर्थमें धातुसे परे लृट् (४२१) लकार हो। यह सूत्र लङ् (४५७) का अपवाद है।

वस् (निवास करना)

लृट्–प्र० ए० वस्+स्य+मस्—

स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः कृष्ण तुम्हें याद है ? कि हम गोकुलमें रहते थे. यहां स्मरणवाचक प्रयोग होनेसे लृट् हुआ। **एवं बुध्यसे, चेतयसे इत्यादि प्रयोगेऽपि।** इसी प्रकार **बुध्यसे** क्या तू स्मरण करता है ?

चेतयसे क्या तू चेत करता है ? इन प्रयोगोंके योगमें भी लृट् होता है कारण कि यहां बुध और चिती धातुका स्मरण अर्थ है।

(८१३) न यदि। ३। २। ११३॥

यद्योगे उक्तं न॥

यद् शब्दके साथमें जब स्मरणवाचक शब्द हो तो (८१२) से धातुसे परे लृट् न हो। यथा- **अभिजानासि यद्वने अभुञ्ज्महि** (लङ् उ० व०) तुम्हें याद है ? जो वनमें हमने भोजन किया था, यहां लङ् ही हुआ।

(८१४) लट् स्मे। ३। २। ११८॥

लिटोऽपवादः।

जो 'स्म' शब्दका योग धातुके साथ हो तो उससे परे लट् (४०७) हो। यह सूत्र लिट् (४२४) का अपवाद है इससे यह सिद्ध होता है, कि यह लकार भूत और अनद्यतन परोक्ष कालकी भी अपेक्षा रखता है यथा=**यजति स्म युधिष्ठिरः** युधिष्ठिरने वह यज्ञ किया, **यजति** यह वर्तमान काल है परन्तु स्मके योगसे भूत कालका अर्थ हुआ।

(८१५) वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा। ३। ३। १३१॥

वर्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः।

वर्तमान अर्थमें जो प्रत्यय कहे हैं, सो वर्तमानके समीप भूत और भविष्य अर्थमें भी विकल्पसे किये जांय.

यथा **कदाऽऽगतोऽसि** तू कब आया ? इसके उत्तरमें **अयमागच्छामि** मैं अभी आया हूं अथवा **आगमम्** मैं अभी आया हूं और **कदा गमिष्यसि** तू कब जायगा ? उत्तर॰ **एष गच्छामि** अभी जाता हूं वा **गमिष्यामि** अभी जाता हूं.

(८१६) हेतुहेतुमतोर्लिङ् । ३ । ३ । १५६ ॥

वा स्यात् ॥

जहां कार्यकारणभाव प्रकाश करना हो वहां धातुसे परे लिङ् (४६०) विकल्प करके हो । **कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्** (वा) **कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति** जो कृष्णको नमस्कार करे तो सुख पावे । **भविष्यत्येवेष्यते** । यह विधि केवल भविष्यकालमें ही लगता है इससे **नेह** आगे लिखे उदाहरणमें नहीं लगता—**हन्तीति पलायते** वह मारता है इससे दूसरा भागता है ।

विधिनिमन्त्रणेति लिङ्-(४६०) विधि तथा निमन्त्रण आदि अर्थोंमें धातुसे परे लिङ् लकार हो.

१ **विधिः—प्रेरणम् भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्** आज्ञा करना ' विधि ' जैसे किसी पराधीन भृत्यआदि क्षुद्र मनुष्यको किसी कार्यमें प्रवृत्त करना यथा—**यजेत्** वह पूजा करे.

२ **निमन्त्रणं—नियोगकरणम्—आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेःप्रवर्तनम्** । भोजनादि करानेका आदेश निमन्त्रण है, जैसे आवश्यक श्राद्धभोजनादिमें धेवते आदिको प्रेरणा करना यथा-**इह भुञ्जीत** वह यहां खाय ।

३ **आमन्त्रणं-कामचारानुज्ञा**—किसीको उसकी इच्छाके अनुसार अनुमिति देना ' आमन्त्रण ' यथा—**इहासीत** यदि इच्छा हो तो यहां बैठो.

४ **अधीष्टं—सत्कारपूर्वको व्यापारः**—आदरपूर्वक प्रेरणा ' अधीष्ट ' जैसे कोई गुरुसे शिष्टाचारपूर्वक प्रेरणा करे कि **पुत्रमध्यापयेत् भवान्** आप हमारे पुत्रको पढाइये.

५ **संप्रश्नः—संप्रधारणम्**=किसीसे उचित वा अनुचित वार्ताका पूंछना ' संप्रश्न 'यथा **किम् भो ! वेदमधीयीय उत तर्कम् ?** कहिये वेद पढूं या न्यायशास्त्र ।

६ **प्रार्थनम्—याच्ञा**=मांगना ' प्रार्थनम् ' यथा—**भो भोजनं लभेय** । हे अमुक ! मैं भोजन पाऊं अर्थात् मुझको भोजन दो । **एवं लोट्** । इसी प्रकार लोट् (४४२) का भी विधान होता है ।

॥ इति लकारार्थप्रक्रिया समाप्ता ॥ ११ ॥

इति तिङन्तप्रकरणं समाप्तम् ॥

---

१ ' अयम् ' इति इदानीमित्यर्थकम् । २ ' एष ' इति इदानीम् इत्यर्थकम् ।

अथ कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया ।

अब यह कृदन्तप्रक्रिया लिखते हैं जिसमें शब्दोंके अन्तमें कृत्संज्ञक प्रत्यय होते हैं ।

(८१७) धातोः । ३ । १ । ९१ ॥

आ तृतीयाध्यायसमाप्तेः ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः । 'कृदतिङ्' इति कृत्संज्ञा ॥

अष्टाध्यायीमें 'धातोः' इस सूत्रसे आरम्भकर तीसरे अध्यायके जो प्रत्यय कहे हैं वे सब धातुओंसे सब प्रत्ययोंकी कृत्संज्ञा होती है ।

(८१८) वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् । ३ । १ । ९४ ।

अस्मिन्धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना ॥

(८१७) सूत्रके अधिकारमें किसी प्रत्ययका दूसरा असमान (भिन्नरूप) कोई अपवाद प्रत्यय हो तो वह स्त्रीके अधिकारवालों (९१९) को छोडकर उत्सर्ग अर्थात् बाध्यको विकल्प करके बाधे ॥

(८१९) कृत्याः । ३ । १ । ९५ ॥

ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक्कृत्यसंज्ञाः स्युः ॥

इस सूत्रसे प्रारम्भ कर 'ण्वुल्तृचौ' (८३६) सूत्रके पूर्व जिन प्रत्ययोंका विधान है वे कृत्य प्रत्यय कहलावें ।

(८२०) कर्तरि कृत् । ३ । ४ । ६७ ॥

कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात् ॥

कृत्संज्ञक प्रत्यय कर्ता अर्थमें हो इससे सब कृत् प्रत्यय कर्ता अर्थमें प्राप्त हुए, पर—

(८२१) तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः । ३ । ४ । ७० ॥

एते भावकर्मणोरेव स्युः ॥

कृत्य (८१९) क्त (८६७) और खल् प्रत्ययके अर्थमें होनेवाले जो प्रत्यय (९३४) हैं वे भाव तथा कर्म अर्थमें हों ।

(८२२) तव्यत्तव्यानीयरः । ३ । १ । ९६ ॥

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः ॥

तव्यत्,[1] तव्य और अनीयर् ये प्रत्यय भाव तथा कर्म अर्थमें धातुसे हों । तव्यत् तथा

---

१ इसका तकार स्वर (अर्थात् 'तित्स्वरितम्' से स्वरित) होनेके लिये है ।

अनीयर्‌मेंसे र् तथा (९, ७) से लोप हुआ । जैसे एध् धातु वृद्धि अर्थमें है उससे परे भावार्थ प्रत्यय तव्यत् अथवा तव्य किया तब **एध्+तव्य** ऐसी स्थिति हुई (४२७) तव्यकी आर्धधातुक (४३४) से इट्‌का आगम हुआ **एध्+इ+तव्य=एधितव्य**-रूप हुआ इसके अन्तमें तव्य यह कृत् प्रत्यय है (१३६) से इसकी प्रातिपदिक संज्ञा हुई (१३७) से विभक्ति प्रत्यय लगा ' **भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वं च** ' भाव अर्थमें स्वाभाविक एकवचन तथा नपुंसकलिङ्गका व्यवहार होता है इससे प्रथम पुरुषके एकवचन सुप्रत्ययके स्थानमें (२९८) से अम् किया तो **एधितव्य+अम्+एधितव्यम्** (१९४) रूप हुआ । त्वयाका योग करके **त्वया एधितव्यम्**=तुझे बढना उचित है, और एध् धातुके भावअर्थमें अनीयर् प्रत्यय करके **एध्+अनीय** रूप हुआ उससे परे **न० प्र० ए० व०** प्रत्ययके स्थानमें अम् कर त्वयाके साथ **त्वया एधनीयम्**=तुझे बढना उचित है ।

चि (संचय करना) धातुसे कर्म अर्थमें प्रत्यय करनेसे नीचे लिखे अनुसार रूप हुए-
चि+तव्य=(४३६,४२१) **चेतव्य=चेतव्यः** (१३६, १३७)
चि+अनीय=(४३७, ४२१) **चयनीय=चयनीयः** ।
पु० प्र० ए० चेतव्यः (अथवा) **चयनीयः धर्मस्त्वया**=तुझे धर्म संचय करना चाहिये ।

(८२३) केलिमर उपसंख्यानम् ॥

वार्तिककार कहते हैं कि ऊपर लिखे (८२२) सूत्रमें भाव तथा कर्म अर्थमें जो प्रत्यय विधान किये हैं उनमें केलिमर् प्रत्ययका भी विधान करना । इससे भाव तथा कर्ममें केलिमर् प्रत्यय होता है ।

पच् (पकाना) धातुसे परे कर्ममें केलिमर् प्रत्यय करके (१९९) से क् तथा र् का (९) (७) लोप हुआ, **पच्+एलिम=पचेलिम** रूप हुआ इसका पुँल्लिङ्गप्रथमाके बहुवचन ' माषाः ' (उडद) के साथ संयोग किया तो पु० प्रथमाके बहुवचनका प्रत्यय (जस्=आः) लगाया तो **पचेलिमाः माषाः**=उडद रांधने योग्य है ।

इसी प्रकार भिद् धातुसे केलिमर् ' भिदेलिम ' रूप हुआ उसका योग पुँल्लिङ्ग प्रथमाके बहुवचन ' सरलाः ' (देवदारु) के साथ करके **भिदेलिमाः ४८६, ४६८ सरलाः**=देवदारु काटने योग्य हैं ।

---

१ जहां तीनों लिङ्गोंमेंसे किसी भी लिङ्गकी विवक्षा नहीं होती वहां " सामान्ये नपुंसकम् " इस वचनसे नपुंसक लिङ्ग ही होता है ओर जहाँ किसी भी संख्याकी विवक्षा नहीं होती वहाँ "उत्सर्गत एकवचनं करिष्यते" इस भाष्य सिद्धान्तसे एक वचन ही होता है और जहाँ भावमें प्रत्यय होता है वहाँ तो लिङ्ग और संख्या दोनों ही नहीं हैं, इसलिये वहाँ एकवचन और नपुंसक दोनोंका होना स्वाभाविक होजाता है ।

(८२४) कृत्यल्युटो बहुलम् । ३ । ३ । ११३ ॥

कृत्य (८१९) संज्ञक तथा ल्युट् प्रत्यय बहुत प्रकारसे होते हैं।

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥ १ ॥

जहां इनके लगनेका सूत्र विधान नहीं करता वहां लग जाते हैं और जहां उनके आनेके लिये सूत्रविधि करता है कभी वहां नहीं लगाये जाते, कभी उनका विधान विकल्पसे होता है, और कभी इन तीनों प्रकारसे भिन्न विधान होता है. कितने सूत्र भिन्न प्रकारके काम करते देखे जाते हैं इस कारण उनके चार भेद हैं । ल्युट्में (१९६, ९, ७) से यु शेष रहता है ।

स्ना (शुद्ध करना) धातुसे परे 'अनीयर्' प्रत्यय कृत्संज्ञक किया (८२२)

स्ना+अनीय=स्नानीय+अम्=स्नानीयम् न० प्र० ए० स्नात्यनेनेति स्नानीयं चूर्णम्=जिससे स्नान किया जाय उबटना आदि ।

दा (देना)

दा+अनीय=दानीय पु० प्र० ए० दानीयः ॥ दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः जिसके लिये दिया जाय आर्यात् ब्राह्मण. (८२१) से कृत्संज्ञक अनीयर् प्रत्यय भाव तथा कर्म अर्थमें होता है, परन्तु ऊपरके उदाहरणोंमें आचार्योंने उसके विपरीत व्यवहार माना है, पहले उदाहरणमें चूर्णरूप करणकारकमें और दूसरे प्रयोगमें विप्ररूप संप्रदान कारकमें प्रत्यय हुआ है.

(८२५) अचो यत् । ३ । १ । ९७ ॥

अजन्ताद्धातोर्यत्स्यात् ।

अजन्तधातुसे परे यत् प्रत्यय हो ।

चि संचय करना । **चि+य=चे**[४२१] **+य=चेय+अम्=चेयम्** (न० प्र० ए०) संचय करनेके योग्य अर्थमें हुआ है ।

दा (देना) **दा+य–**

(८२६) ईद्यति । ६ । ४ । ६५ ॥

यति परे आत ईत स्यात् ।

यत् प्रत्यय परे हुए सन्ते धातुके आकारके स्थानमें ईकार हो **दीय–देय**–(४२१)–**देय+अम्–देयम्** जब देनेके योग्य है । इसी रीतिसे **ग्ला** (ग्लानि करना) **ग्लीय+ग्लेय+अम्=ग्लेयम्**=जो ग्लानि करनेके योग्य है ।

(८२७) पोरदुपधात् । ३ । १ । ९८ ॥

पवर्गान्तादुदुपधाद्यत् । ण्यतोऽपवादः ।

जो धातु पवर्गान्त हो और उसकी उपधामें अकार हो तो उससे परे यत् प्रत्यय हो। (८३२) से ण्यत् होता है उसका अपवाद यह यत् होता है.

शप्+य=शप्य+अम्=शप्यम्=जो शपथ करनेके योग्य है.

लभ्+य+लभ्य+अम्=लभ्यम्=जो प्राप्त करनेके योग्य हैं।

(८२८) एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् । ३ । १ । १०९ ॥

एभ्यः क्यप् स्यात् ।

इण् (जाना), ष्टु (स्तुति करना) शासु (शिक्षा करनी), वृ (स्वीकार करना), दृ (आदर करना) और जुष् (सेवा अथवा प्रीति करना) इन धातुओंसे क्यप् प्रत्यय हो। क्यप्मेंसे (१९९, ९, ७) से य शेष रहा।

(८२९) ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् । ६ । १ । ७१ ॥

जिसका पकार इत्संज्ञक हो ऐसा कृत् प्रत्यय परे हों तब धातुके ह्रस्वको तुक्का आगम हो।

इ+त्+य=(४८६-४६८) इत्य=इत्यः जो जाने योग्य है।

शास् (शासु अनुशिष्टौ) शासन करना.

(८३०) शास इदङ्हलोः । ६ । ४ । ३४ ॥

शास उपधाया इत् स्यादङि हलादौ क्ङिति ।

अङ् प्रत्यय (६३९) अथवा हलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे हुए सन्ते शास् धातुकी उपधाको इकार हो।

शिस् (शिष्) (५९२)+य=**शिष्य-शिष्यः पु० प्र० ए०** (**शासितुं योग्यः**) जो सिखानेको योग्य है **वृ+त्** +य+**वृत्य=वृत्यः** जो स्वीकार करनेके योग्य है **आदृत्यः** जो आदरके योग्य है। **जुष्यः**+जो सेवा करनेके योग्य हैं.

(८३१) मृजेर्विभाषा । ३ । १ । १२४ ॥

मृजेः क्यप् वा ।

शुद्ध करने अर्थमें जो मृज् धातु है उससे परे विकल्प करके क्यप् प्रत्यय हो। **मृज्यः** शुद्ध करनेके योग्य.

ऋहलोर्ण्यत् । ३ । १ । १२४ ॥

ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत् ।

ऋकारान्त तथा हलन्तधातुसे परे ण्यत् प्रत्यय हो।

कृ+य (ण्यत)-कार्य (२०२) **अम्-कार्यम्** करनेके योग्य.

हृ+य=हार्य (२०२)+अम्=हार्यम्=हरनेके योग्य.
धृ+य=धार्य (२०२)+अम्=धार्यम्=धारण करनेके योग्य । मृज्+य[832]–

(८३३) चजोः कु घिण्ण्यतोः । ७ । ३ । ५२ ॥

चजोः कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च परे ।

धातुके अन्तमें च् तथा ज्से परे घित् अथवा ण्यत् (८३२) प्रत्यय आवें तो च् और ज्के स्थानमें कवर्ग हो ।

(८३४) मृजेर्वृद्धिः । ७ । ४ । ११४ ॥

मृजेरिको वृद्धिः सार्वधातुकार्धधातुकयोः ।

सार्वधातुक अथवा आर्धधातुक प्रत्यय परे हुए सन्ते मृज् धातुके इक्को वृद्धि हो ।
मृज्+य=मृग्[833]+य=मार्ग्य=म् (सु)=मार्ग्यः=शुद्ध करने योग्य ।

(८३५) भोज्यं भक्ष्ये । ७ । ३ । ६९ ॥

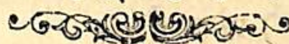
भोग्यमन्यत् ।

भक्षण करने योग्य अर्थमें भुज् धातुका रूप **भोज्य** होता है और अन्य अर्थोंमें **भोग्य** होता है अर्थात् भक्षण करने योग्य (भक्ष्य) अर्थमें (९३३) से कुत्व नहीं होता, अन्य अर्थमें होता है ।

कृत्यसंज्ञक प्रत्यय **शक्य, प्रेरणा, आमंत्रण, प्राप्तकाल** इतने अर्थोंमें होते हैं। इनका विस्तार सिद्धान्तकौमुदीमें देखो ॥

॥ इति कृत्यप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ पूर्वकृदन्तम् ।



(८३६) ण्वुल्तृचौ । ७ । १ । १३३ ॥

धातोरेतौ स्तः । कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे ।

(८२०) धातुसे ण्वुल् तथा तृच् प्रत्यय हों । सो 'कर्तरि कृत्' कर्ता अर्थमें हो.

(८३७) युवोरनाकौ । ७ । १ । १ ।

यु वु एतयोरनाकौ स्तः[1] ।

प्रत्ययके यु तथा वुके स्थानमें अन तथा अक क्रमसे हों । कृ+ण्वु=ण्वुल्में (१४८) (९, ७) से ण् तथा ल् का लोप होकर वु शेष रहा, उसके स्थानमें अक आदेश हुआ– कृ+अक=(१९३, २०२) कारक=म् (सु)=कारकः=करनेवाला । कृ+

१ यथासंख्यमत्र न भवति । 'तेन रक्तं रागात्' इति निर्देशात् ।

तृच्=च् जाता रहा तृ शेष रही। **कृ+तृ कर्तृ** (४२१)+**स्** (**सु**)-**कर्ता** (२२६ । २२७ । २२९ । २००)

(८३८) नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः । ३ । १ । ११४ ॥

नन्द्यादेर्ल्युः ग्रह्यादेः णिनिः पचादेरच् स्यात् ॥

नन्द (टुनदि) आदि धातुओंसे परे कर्ता अर्थमें ल्यु प्रत्यय हो और ग्रह आदि धातुओंसे परे णिनि प्रत्यय हो, पच् आदि धातुओंसे परे अच् प्रत्यय हो। (४९८) **नन्द्+ल्यु**= ल्युमेंसे (१९९) ल् जाता रहा यु शेष रहा उसके स्थानमें (८३७) से अन आदेश हुआ-

नन्द्+अन=नंदन+स् (**सु**) **नन्दनः**=जो आनन्द करता है.

जनम् अर्दयति=जन शब्द उपपद रहते पीडा अर्थमें अर्द् धातुसे ल्यु प्रत्यय हुआ और उसके स्थानमें अन आदेश हुआ। उपपद समास होकर विभक्तिका लुक् हुआ तब **जन अर्द्** (पीडावाचक)+**अन=जनार्दन+स्** (**सु**)=**जनार्दनः** दुष्ट जनके मारनेवाले विष्णु भगवान्।

लू (काटना)+**अन** =**लवण**[1] । **स्**=(**सु**)+**लवणः**=लोन। **ग्रह्+णिनि** णिनिमेंसे (१४८, ३६) इन शेष रहा-

ग्रह्+इन्=ग्राहिन्+स् ग्राही -ग्रहण करनेवाला.

इसी प्रकार **स्था+इन=स्थायी** (८०७) स्थिति होनेवाला. **मंत्र** (**मंत्रि**) **इन= मंत्री**=गुप्त कहनेवाला (सलाही)

पचादिराकृतिगणः=पचादि आकृतिगण है.

(८३९) इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः । ३ । १ । १३५ ॥

एभ्यः कः स्यात् ।

जिन धातुओंकी उपधामें इक् हो तथा **ज्ञा** (जानना) **प्री** (तृप्ति करना) तथा **कॄ** (फेंकना) इन धातुओंसे परे क (अ) प्रत्यय हो ।

बुध्+अ =**बुध+स्=** (**सु**)=**बुधः** जाननेवाला.

कृश्+अ =**कृश+स्=कृशः** दुबला.

ज्ञा+अ=ज्ञ् +**अ+ज्ञ=स्** (**सु**)=**ज्ञः** जाननेवाला.

प्री+अ=प्र् इय्+अ=प्रिय+स्=प्रियः प्रीति करनेवाला.

कॄ+अ=किर् +**अ=किर+सु=किरः** फेंकनेवाला.

(८४०) आतश्चोपसर्गे । ३ । १ । १३६ ॥

उपसर्ग उपपद (१०२२) वाले आकारान्त धातुओंसे परे कर्ता अर्थमें **क** (**८३९**) प्रत्यय हो.

---

[1] लवणमें णकार आदेशका निपातन है।

प्र+ज्ञा+अ+स्=प्रज्ञः=पंडित। **सुग्ला+अ+स्=सुग्लः**=ग्लानि करनेवाला, ग्लै धातुको (९२९) से ग्ला हुआ है।

(८४१) गेहे कः। ३। १। १४४॥

गेहे कर्तरि ग्रहेः क स्यात्।

गृह ही जब कर्ता हो तब ग्रह् धातुसे परे कर्ता अर्थमें क प्रत्यय हो।

गृह्+अ+अम्+गृहम् धान्य आदिका ग्रहण करनेवाला—घर,

(८४२) कर्मण्यण्। ३। २। १॥

कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात्।

जब किसी धातुका उपपद कर्म हो तो उस धातुसे परे कर्ता अर्थमें अण् प्रत्यय हो।

कुम्भं करोति=कुम्भ+कृ+अ (अण्)=कुम्भकारः (१०२२, १०२३। ७६०। २०२)=घडा बनानेवाला कुम्भार.

(८४३) आतोऽनुपसर्गे कः। ३। २। ३॥

अणोऽपवादः।

जब आकारान्त धातुका उपपद उपसर्ग न हो कर्म ही उपपद हो तो उससे परे क प्रत्यय हो। यह सूत्र अण् (८४२) का अपवाद है।

गाम् ददाति=गो+दा+अ=गोदः=गौ देनेवाला.

इसी प्रकार **धनदः**=धन देनेवाला। **कम्बलदः**=कम्बल देनेवाला। **अनुपसर्गे किम्?** उपसर्गके विना कहनेका यह कारण कि **गोसम्प्रदायः** (८०७) इस उदाहरणमें सम् उपसर्ग उपपद है इससे क न होकर अण् प्रत्यय हुआ।

(८४४) मूलविभुजादिभ्यः कः।

मूलविभुज आदि गणपठितोंसे परे क प्रत्यय हो। **मूलानि विभुजतीति मूलविभुजो रथः। आकृतिगणोऽयम्। मूलविभुज्+अ मूलविभुजः**=वृक्षोंकी जड टेढा करनेवाला—रथ। यह आकृतिगण है इसीसे=

महीं धरति=मही+धृ+अ+ (क):=महीध्रः (२१)=पृथ्वी धारण करनेवाला, (पर्वत)।

कुं धरति=कु+धृ+अः कुध्रः=पर्वतः।

(८४५) चरेष्टः। ३। २। १६॥

अधिकरणे उपपदे।

जब अधिकरण सप्तम्यन्त उपपद (१०२२) हो तब चर धातुसे परे ट (अ) प्रत्यय हो।

कुरुषु चरति=कुरु+चर्+अ+(ट)=कुरुचरः[१०२३।७६९]=कुरुदेशमें फिरनेवाला.

(८४६) भिक्षासेनादायेषु च । ३ । २ । १७ ॥

भिक्षा, सेना और आदाय यह चर् धातुके उपपद हों तो उससे परे ट प्रत्यय हो ।

भिक्षां चरति=भिक्षा+चर्+अ+ः=भिक्षाचरः (१०२३ । ७६९)=भिक्षाके निमित्त भ्रमनेहारा (भिखारी) । इसी प्रकार **सेनां चरति=सेनाचरः**=जो सेनाको जावे । आ+दासे अन्तमें (९४२) से ल्यप् प्रत्यय हुआ तब आदाय हुआ **आदाय चरतीति= आदायचरः**= लेकर जानेवाला.

(८४७) कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु । ३ । २ । २० ॥

एषु द्योत्येषु करोतेष्टः स्यात् ॥

जब **हेतु, ताच्छील्य** (स्वभाव) अथवा **अनुकूलता** प्रकाश करनी हो तब कृधातुसे परे ट प्रत्यय हो ।

(८४८) अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वन-व्ययस्य । ८ । ३ । ४६ ॥

अकारादुत्तरस्य अनव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः करोत्यादिषु परेषु ।

कृ (करना) **कमि** (इच्छा करना) **कंस** (कटोरा) **कुम्भ** (घडा) **पात्र** (बासन) **कुशा** (डाभ) **कर्णी** (कान) इनमेंसे कोई शब्द पर हो तो समासके विषे अकारसे परे जो विसर्ग हो और वह किसी अव्यय (३९९) का अवयव न हो तो विसर्गके स्थानमें सकार हो-

यशस्करी[१०२३।७६९][१३४४] **विद्या**=यशदेनेवाली विद्या (**हेतु**) । **श्राद्धकरः**[१०२३।७६९]=जिसका श्राद्ध करनेका स्वभाव है (**ताच्छील्य**) **वचनकरः** (१०२३।७६९) आज्ञाकारी (**अनुकूलता**)

(८४९) एजेः खश् । ३ । २ । २८ ॥

ण्यन्तादेजेः खश् स्यात् ।

एज् (कांपना) धातु ण्यन्त (७४८) हो तो उससे परे खश् प्रत्यय हो खश्मेंसे (१९९) (९ । ७) अ शेष रहा---

(८५०) अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् । ६ । ३ । ६७ ॥

अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः खिदन्ते परे न त्वव्ययस्य । शित्वाच्छबादिः ।

अरुष् (मर्मस्थान) द्विषद् (शत्रु) तथा अजन्त इन शब्दोंके जब अव्यय उपपद

न हो तो खित् प्रत्ययान्त धातु परे हुए सन्ते मुमुका आगम हो। मुम्‌मेंसे म् शेष रहा यथा—**जनम् एजयति** (१०२३ । ८६९) जन+एज्+इ (७४८) +अ (८४९) (४१९) से खश् शित् है फिर सार्वधातुकसंज्ञा होकर (४२०) से शप् प्रत्यय हुआ **जन+म्** (८५०) **एज्+इ+अ+अ+ स् (सु)=जनमेजयः** (४२१।२९।३००) मनुष्योंको कँपानेवाला (परीक्षित्‌के पुत्रका नाम है)

(८५१) प्रियवशे वदः खच् । ३ । २ । ३८ ॥

वद् (बोलना) धातुका उपपद प्रिय अथवा वश हो तो उससे खच् (अ) प्रत्यय हो। **प्रियम्[१०२३] वदति=प्रिय[७६९]+वद्+अ[५३]=प्रिय+म्[८५०]+वद्+अ+स् (सु)=प्रियंवदः=** प्रिय बोलनेवाला।

इसी रीतिसे **वशंवदः**=अधीनता स्वीकार करनेवाला।

(८५२) आत्ममाने खश्च । ३ । २ । ८३ ॥

स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात्।

मन् (मानना) धातुका उपपद सुबन्त हो और 'स्वकर्मक मानना' इस आत्मसम्बन्धका बोध हो तो कर्ता अर्थमें उससे परे खश् (अ) प्रत्यय हो।

चाण्णिनिः। सूत्रमें चकारका पाठ हैं इससे यह जाना जाता है कि कर्ता अर्थमें णिनि (८९७) प्रत्यय भी हो।

यथा—**पण्डितमात्मानं मन्यते=पंडितं मन+अ+सु** (७६९ । ८९०।६७०) **पण्डितम्मन्यः, पण्डितमानी**[८५१]=जो अपनेको पंडित मानता है।

क्रि०

(८५३) अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते । ३ । २ । ७५ ॥

मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया धातोः स्युः।

मनिन्, कनिप्, वनिप् तथा विच् ये प्रत्यय आकारान्त धातुके विना और धातुओंसे भी देखे जाते हैं। मनिन्‌मेंसे मन् क्वनिप्‌मेंसे वन् और विच्‌मेंसे व् शेष रहा—

(८५४) नेड्वशि कृति । ७ । २ । ८ ॥

वशादेः कृत इण्न।

जिस कृत् प्रत्ययके आदिमें वश् प्रत्याहारमेंका कोई अक्षर हो तो उसे इट्‌का आगम (४३४) हो।

सु+शॄ (हिंसा करना) **मन्** (८५३) **मनिन् +सुशर्मन्** (४२१) **सुशर्मा**[१९७।१९९।२००] अच्छी रीतिसे हिंसा करनेवाला[१]। **प्रातर्+इ** (इण्—जाना)+

१ अर्थात् पाप वा अज्ञानताका नाश करनेवाला।

वन् (क्वनिप्) प्रातरित्वन्=प्रातरि+इ+वन्+सु=प्रातरित्वा =प्रातःकाल जानेवाला ।

(८९५) विड्वनोरनुनासिकस्यात् । ६ । ४ । ४१ ॥

अनुनासिकस्यात् स्यात् । विजायत इति विजावा । ओणृ अपनयने अवावा ।

विट् अथवा वन् (८९३) प्रत्यय परे हुए सन्ते अनुनासिकके स्थानमें आकार हो **जन्** (प्रादुर्भाव होना) **वि+जन्+वन्=वि+जा=वन्+सु=विजावा** =जो । उत्पन्न हो । **ओण्** (दूर करना) **वन्=ओ+अ=वन+सु=अवावा** (२९ । १९९ १९७ । २००) पाप दूर करनेवाली ब्राह्मणी ।

रुष् हिंसा करना)+**वं=रोष्** **+सु=रोट्** =हिंसा करनेवाला.
रिष् (हिंसा करना)+**व्=रेष्** **+सु=रेट्** (१९९ । ८२ १६९)=हिंसा करनेवाला.
सु+गण्(गिनना)+**वं+सु=सुगण्** (३३० । १९९)=जो अच्छी रीतिसे गिनता है.

(विवरण) रुष् और रिष्में विच् जोड देनेसे (४८६) से गुण (३३०) से वृका लोप करनेसे रोष् और रेष् हुआ फिर सुबन्तकी रीतिसे रोट् और रेट् सिद्ध हुआ ।

(८९६) क्विप् च । ३ । २ । ७६ ॥

अयमपि दृश्यते ।

कर्ता अर्थमें धातुओंसे परे क्विप् प्रत्यय भी दीखता है. (१९९ । ३३०।३३१) उस क्विप्का सर्वापहारी लोप होता है ।

उखायाः स्रंसते=उखा+स्रंस्+०(क्विप्)+सु०उखास्रत् =जो हंडियासे गिरता है ।
पर्णात् ध्वसंते=पर्ण+ध्वंस्+०+सु=पर्णध्वत् जो पत्तोंसे गिरता है ।
वाहात् भ्रंसते=वाह+भ्रस्+०+सु=वाहभ्रट् +ड=जो घोडेसे गिरता है ।

(८९७) सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये । ३ । २ । ७८ ॥

अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये ।

जातिवाचक अर्थ न हो तथा सुबन्त उपपद (१०२२) हो तब स्वभावप्रकाश अर्थमें धातुसे परे णिनि प्रत्यय हो । णिनिमें से (१४८ ।,२६) इन् शेष रहा–

उष्णं भुङ्क्ते ऊष्णंभुज्+इन=उष्णभोजी जिसका स्वभाव गरम भोजन करनेका है ।

(८९८) मनः । ३ । २ । ८२ ॥

सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात् ।

सुबन्त उपपद हुए सन्ते **मन्** (मानना) धातुसे परे णिनि प्रत्यय हो । **दर्शनीय+मन्+इन+दर्शनीयमानी** =जो सुन्दर मानता है.

(८५९) खित्यनव्ययस्य । ६ । ३ । ६६ ॥

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः ।

खित् प्रत्ययान्त परे हुए सन्ते अव्ययभिन्न पूर्वपदको ह्रस्व हो ।

कालीम्मन्यते=काली+मन्+अ (खश्)+यँ=कालिंमन्या=जो स्त्री अपनेको कालीदेवी मानती है,

(८६०) करणे यजः । ३ । २ । ८५ ॥

करणे उपपदे भूतार्थे यजेर्णिनिः कर्तरि ।

जो उपपद करण (तृतीयान्त) हो तो भूतार्थमें **यज्** (पूजा करना) धातुसे परे कर्ता अर्थमें णिनि हो ।

सोमेन इष्टवान्=सोम+यज्+इन्=सोमयाजी= जिसने सोम-यज्ञ करके यह किया इसी प्रकार, **अग्निष्टोमयाजी**=अग्निष्टोम यज्ञ करके अपने इष्टकी भावना की.

दृशेः क्वनिप् । ३ । २ । ९४ ॥

कर्मणि भूते ।

कर्म उपपद हो तो दृश् धातुसे परे भूत अर्थमें क्वनिप् प्रत्यय हो ।

यथा **पारम्+दृष्टवान्=पार+दृश्+वन्=पारदृश्वा** =जिसने पार देखा ।

(८६२) राजनि युधि कृञः । ३ । २ । ९५ ॥

क्वनिप् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः ।

राजन् शब्द उपपद हो तो **युध्** तथा **कृ** धातु (८६२) से परे क्वनिप् प्रत्यय हो । युध् धातुमें ण्यर्थ अन्तर्भूत है ।

राजानं योधितवान् राजयुध्वा (२००)=जिसने राजाको लडवाया **राजकृत्वा** (८२९)=जिसने राजा किया ।

(८६३) सहे च । ३ । २ । ९६ ॥

सह योधितवान् । कर्मणीति निवृत्तम् ।

सह उपपद हुए सन्ते **युध्** तथा **कृ** धातु (८६२) से परे क्वनिप् प्रत्यय हो । यह कर्म उपपदकी निवृत्ति हुई ।

सह+युध्+वन्+सु=(१९७ । १९९ । २००) **सहयुध्वा**=जिसने साथ लडवाया. **सहकृत्वा**=जिसने दूसरेकी सहायता की ।

(८६४) सप्तम्यां जनेर्डः । ३ । २ । ९७ ॥

जिसका सप्तम्यन्त उपपद हो ऐसे जन् धातुसे परे ड प्रत्यय हो । (२९७) से जन्की टि अन्का लोप होकर ज् रहा—

(८६५) तत्पुरुषे कृति बहुलम् । ६ । ३ । १४ ॥

ङेरलुक् ।

तत्पुरुष समास (९८३) में कृत् प्रत्ययान्त उत्तरपद परे रहते सप्तमीके एकवचन ङिका लुक् (७१९) न हो । **सरसि+ज्+अ+अम्=सरसिजम्** (अथवा) **सरस्+ज्+अ=सरोज+अम्=सरोजम्** (१०२३ । ८३४)=सरोवरमें उत्पन्न होनेवाला कमल.

(८६६) उपसर्गे च संज्ञायाम् । ३ । २ । ९९ ॥

प्रजा स्यात्सन्ततौ जने ।

उपसर्ग उपपद हुए सन्ते जन् धातुसे परे ड प्रत्यय (८६४) हो, परन्तु डप्रत्ययान्त किसी संज्ञाका वाचक हो तो ।

प्रजन्+अ=प्र+ज्+अ=प्रज्+आ+प्रजा=सन्तान अथवा प्रजा लोग.

(८६७) क्तक्तवतू निष्ठा । १ । १ ॥ २६ ॥

एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः ।

क्त तथा क्तवतु इन प्रत्ययोंकी निष्ठा संज्ञा है ।

(८६८) निष्ठा । ३ । २ । १०२ ॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा । तत्र तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः । कर्तरि कृदिति कर्तरि क्तवतुः ।

भूत अर्थमें धातुसे परे निष्ठा (८६७) संज्ञक प्रत्यय हों । इनमें क्त प्रत्यय (८२१) से भाव तथा कर्ममें होता है और क्तवतु (८२०) से केवल कर्ता अर्थमें होता है । **स्ना** (स्नान करना)=**स्ना+क्त** (१९९) **स्नातं मया**=मैंने न्हाया । **स्तुतस्त्वया विष्णुः**=तुझसे विष्णु स्तुति किया गया । **कृ+क्तवत्** (१९९ । ३६ । ३१६ । १९७ । १९०) **विश्वं कृतवान् विष्णुः**=विष्णुने संसारको बनाया ।

(८६९) रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः । ८ । २ । ४२ ॥

रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः स्यात् निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च ।

र् तथा द्से परे निष्ठा (८६७) के तकारको और निष्ठासे पूर्व धातुके दकारको भी नकार हो । **शॄ** (हिंसा करना) **शॄ+क्त** (१९९ । ७०७ । ३७) **शिर्+त**= (६९२)

शीर्+त=(६७०) **शीर्+न**+(१५७) **शीर्णः**=जो मारा गया. इसी प्रकार **भिद्** (विदीर्ण करना) **भिन्नः**=जो विदीर्ण किया गया. । **छिद्** (छेदन करना) **छिन्नः**= जो काटा गया.

(८७०) संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः । ८ । २ । ४३ ॥

निष्ठातस्य नः स्यात् ।

जो आकारान्त धातुकी आदिमें संयोग हो और धातुमें यण् प्रत्याहारका वर्ण हो तो उससे परे निष्ठा (८६७) प्रत्ययके तके स्थानमें नकार हो ।

द्रा=त+द्रा+२+म्=द्राणः=जिसने कुत्सित गति की । **ग्लै** (ग्लानि पाना) **ग्लानः**= जिसने ग्लानि की,

(८७१) ल्वादिभ्यः । ८ । २ । ४४ ॥

एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत ।

लूञ् आदि जो इक्कीस धातु है तिनसे परे पूर्वोक्त कार्य्य (८६९) हो ।

लू+त=लू+न=लूनः जो काटा गया.

ज्या धातुमें (६७६) से संप्रसारण इ हुई (२८१ । २८३) **जि+त** (८६८)

(८७२) हलः । ६ । ४ । २ ॥

अङ्गावयवाद्धलः परं यत्संप्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः ।

अङ्गका अवयव जो हल् उससे परे जो सम्प्रसारण तदन्तको दीर्घ हो । **जी+न**[८७१] **=जीन+ =जीनः**=जीर्ण हो गया.

(८७३) ओदितश्च । ८ । २ । ४५ ॥

जिस धातुका ओकार इत् हो उससे परे निष्ठा (८६७) के तको न हो ।

यथा **भुजो** (कुटिलता करना) इसमें ओकार इत्[३६] है. **भुज्+त=भुग्**[३३३]**+न**[८७३] **+म्**= **भुग्नः**=टेढा किया गया.

टुओश्वि (बढना अथवा जाना) इसमें **श्वि** (४२७ । ३२) शेष रहा उसके पूर्व उद् उपसर्ग करनेसे । **उद्+श्वि+त** (८६९)=**उड्+श् उ** (५८५)+**त=उच्छू** (७६) छ ऊ (९०, ८७२) +न (८७३)=उच्छूनः ।

(८७४) शुषः कः । ८ । २ । ५१ ॥

निष्ठातस्य कः स्यात् ।

शुष् (सूखना) धातुसे परे निष्ठाके तको क हो ।

शुष्+त (८६८)=**शुष्=क** (८७४)+**:शुष्कः**=सुखा हुआ.

(८७५) पचो वः । ८ । २ । ५२ ॥

पच्+त=पक्=व (८७५)+सु=पक्वः पका हुआ।

(८७६) क्षायो मः। ८। २। ५३॥

क्षै (दुबला होना) धातुसे परे निष्ठाके तको म हो।

क्षै+ता=क्षा+मः=क्षामः दुबला.

(८७७) निष्ठायां सेटि। ६। ४। ५२॥

णेर्लोपः।

जब इट्सहित निष्ठासंज्ञक प्रत्यय परे रहे तो णि (७४८) का लोप हो।

भू+इ +त=भौ+इ त=भाव+इ+त=भाव+इ+इ+ त=भाव+इ+त=भाव्इ=तः+

भावितः=होनेको प्रेरणा किया गया (इसी प्रकार भू+इ तवत् भावितवान्

जिसने होवाया.

दृह्=(हिंसा करना)

(८७८) दृढः स्थूलबलयोः। ७। २। २०॥

स्थूले बलवति च निपात्यते।

दृह धातुके रूप स्थूल मोटा और बलवान् अर्थमें पाणिनि सूत्रसे दृढः यह निष्ठाप्रत्ययान्त निपातनसे सिद्ध होता है।

दृह्+त=दृढ्+त =दृढ्=ध=दृढ्+ढ=दृढ=दृढः स्थूल वा बलवान्।

(८७९) दधातेर्हिः। ७। ४। ४२॥

तादौ किति।

धा (धारणा करना) धातुसे परे तकारादि कित् प्रत्यय हो तो धाके स्थानमें हि हो।

धा+त=हि+अम् ('न० प्र० ए०)=हितम्=धारण किया गया.

(८८०) दो दद्घोः। ७। ४। ४६॥

घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दद् स्यात्तादौ किति। चर्त्वम्। दत्तः।

जिसके आदिमें त हो ऐसे कित् प्रत्यय हुए सन्ते घुसंज्ञक (६६२) दा धातुके स्थानमें दद् आदेश हो।

दा+त=दद्+त=दत्त+ः=दत्तः दिया गया.

(८८१) लिटः कानज्वा। ३। २। १०६॥

लिट् (८२४) के स्थानमें कानच् प्रत्यय विकल्प करके हो।

---

१ इस आदेशको दान्त मानें तो निष्ठानत्व धान्त मानें तो 'झषस्तथोः'-से धत्व, तान्त मानें तो 'दस्ति' से दीर्घ हो जाय इस लिये निर्दोष होनेसे इसे थान्त माना जाता है।

(८८२) क्वसुश्च । ३ । २ । १०७ ॥

लिटः कानच् क्वसुश्च वा स्तः । तङानावात्मनेपदम् । चक्राणः ।

लिट्के स्थानमें कानच् तथा क्वसु प्रत्यय विकल्प करके हो (४१०) से कानच् आत्मनेपद संज्ञक है इससे आत्मनेपदी धातुओंसे होता हैं । और क्वसु परस्मैपदिओंसे होता है ।

कृ (करना) **आन** (कानच्) **चकृ**[४३७।४२८।४८९] **+आन+:=चक्राणः**=जिसने किया.

(८८३) म्वोश्च । ८ । २ । ६५ ॥

मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः । जगन्वान् ।

मकारान्त धातुको नकार हो यदि म् अथवा व् परे हो । यथा –**गम्+वस्** (क्वसु)= **जगम्+वस्=जगन्वस्**=(सु) **जगन्वान्**=(३७२, २१६, २६)=जो जा चुका ।

(८८४) लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे । ३ । २ । १२४ ॥

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः ।

अप्रथमान्तके साथ लकारका समान अधिकरण हो तो लट्के स्थानमें शतृ तथा शानच् प्रत्यय विकल्प करके हों । शतृमेंसे अत् और शानच्मेंसे आन शेष रहता हैं । शतृ तथा शानच् ये दोनों प्रत्यय शित् हैं । इस हेतुसे ये जिन धातुओंसे परे होते हैं उनसे (४१९, ४२०) ये सार्वधातुक संज्ञा होनेसे शप् होता है । **पचन्तं चैत्रं पश्य** (पाक करते हुए चैत्रको देखो) यहां पच् धातुसे परे शतृ प्रत्यय करनेसे **पच्+अत्** ऐसी स्थिति हुई उसके आगे शप्का अ आा=**पच्+अ+अत्=पचत्** (३१६) से नुम्का आगम **पचन्त्** रूप हुआ. अप्रथमान्तके साथ लट्को समानाधिकरण है क्योंकि चैत्रशब्द द्वितीयान्त है यह लट् जिस कर्ता अर्थमें आया है उसका वाचक चैत्र है इससे द्वितीयाका प्रत्यय लाये । **पचन्त+ अम्=पचन्तम् चैत्रं पश्य ।**

(८८५) आने मुक् । ७ । २ । ८२ ॥

अदन्ताङ्गस्य मुगागमः स्यादाने परे ।

आन (शानच् कानच्) प्रत्यय परे हुए सन्ते अदन्त अङ्गको मुक्का आगम हो । मुक्मेंसे म् शेष रहा । **पच्+अ+आन=पच+आन=पच+म्+आन+पचमान+अम्= पचमानं चैत्रं पश्य**=पाक करनेवाले चैत्रको देखो ।

लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात् प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित् । सन् द्विजः । (४०७) सूत्र ३, २, १२३ वां है और उसमें लट् पदका ग्रहण है । (८८४) वां सूत्र ३, २, १२४ यह पूर्वसूत्रके पश्चात् है इसमें पूर्वसूत्रकी अनुवृत्ति

आसकती है फिर इसमें लट्के ग्रहण करनेका प्रयोजन क्या है ? तो इसके ग्रहण करनेका कारण यह है कि प्रथमान्तके साथ लट् लकारका सामानाधिकरण्य हो तो भी कभी धातुसे परे शतृ शानच् प्रत्यय हों । यथा । **अस्** (विद्यमान रहना) **अस्+अ** (३००)+ **अत=सन् त** (६१२, ३१६, २६) **स्+सन् द्विजः**=विद्यमान ब्राह्मण ।

(८८६) विदेः शतुर्वसुः । ७ । १ । ३६ ॥

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा ।

विद् (जानना) धातुसे परे शतृके स्थानमें वसु आदेश विकल्प करके हो । वसुमेंसे वस् रहा । यथा **विद्+वस्+विद्वस्+विद्वन्स्=विद्वान्** (अथवा) **विद्+अ+अत= विद्अत+विदन्त+स्** (सु)=**विदन्** जाननेवाला.

(८८७) तौ सत् । ३ । २ । १२७ ॥

तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः ।

शतृ तथा शानच् (८८४) की सत्संज्ञा हो ।

(८८८) लृटः सद्वा । ३ । ३ । १४ ॥

व्यवस्थितविभाषेयम्, तेनाप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः सम्बोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम् ।

लृट् (४४१) के स्थानमें सत् संज्ञक प्रत्यय (८८७) विकल्प करके हो । यह व्यवस्थित विभाषा है इस कारण अप्रथमाके सामानाधिकरण्यमें प्रत्यय और उत्तरपद परे रहते सम्बोधनमें, लक्षणहेतुमें नित्य ही (सत्) होते हैं । यथा—**करिष्यन्तम्** (अथवा) **करिष्यमाणम् पश्य**=उसको देखो जो करनेको है.[1]

कृ+स्य+अत=करिष्यनत+अम्+करिष्यन्तम् । कृ+स्य+आन=करिष्यमाण+अम्=करिष्यमाणम् ।

(८८९) आ क्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु । ३ । २ । १३४॥

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः ।

इस सूत्रसे प्रारम्भकर क्विप् (८९४) तक जितने प्रत्यय उच्चारण किये जाँय ये सब जिन कर्ताओंमें किसी प्रकारका स्वभाव प्रकाश करना हो वा कोई धर्मप्रकाश करना हो वा किसी क्रियाकी सुन्दरता करनी हो तिन अर्थोंमें हो ।

---

१ 'करिष्यन्तम् करिष्यमाणं पश्य, करिष्यतोऽपत्यं कारिष्यतः । करिष्यद्भक्तिः । हे करिष्यन् । अर्जयिष्यन् वसति इत्युदाहरणानि ।

(८९०) तृन् । ३ । २ । १३५ ॥

तच्छील आदि (८८९) अर्थमें धातुओंसे परे तृन् प्रत्यय हो । तृन्मेंसे तृ शेष रही । **कृ+तृ=कर्तृ=कर्तन्+सु=कर्ता** **कटान्**–चटाई बनानेका जिसका स्वभाव इत्यादि सब अर्थ जानना.

(८९१) जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् । ३ । २ । १५५ ॥

जल्प (बकवाद करना). **भिक्ष** (भिख मांगना), **कुट्ट** (कूटना), **लुण्ट** (लूटना), **वृङ्** (सेवा करना) इन धातुओंसे परे तच्छील आदि (८८९) अर्थोंमें षाकन् प्रत्यय हो षाकन्मेंसे आक (८९२ । ७) शेष रहा—

(८९२) षः प्रत्ययस्य । १ । ३ । ६ ॥

प्रत्ययस्यादिः षः इत्संज्ञः स्यात् ॥

प्रत्ययके आदिके षकारकी इत्संज्ञा हो ।

जल्प+आक+जल्पाक+सु=जल्पाकः=जिसका बकवाद करनेका स्वभावहै. **भिक्षाकः कुट्ट+आकः=कुट्टाकः । लुण्ट्+आकः=लुण्टाकः । वृ+आक=वर्+आक+सु= वराकः**=जिसका सेवा करनेका धर्म हैं, नीच कंगाल । **वराकी**–नीच नारी ।

(८९३) सनाशंसभिक्ष उः । ३ । २ । १६८ ॥

सन्नन्त (७९३) धातुओंसे परे तथा आङ्पूर्वक **शंसु** (स्तुति करना) तथा **भिक्ष** (भीक मांगना) धातुसे परे तच्छील आदि (८८९) अर्थोंमें उ प्रत्यय हो ।

चिकीर्ष+उ=चिकीर्षुः+उ=चिकीर्षुः=जिसका करनेकी इच्छाका स्वभाव हैं । इसी प्रकार **आशंसु**–जिसका स्तुति करनेका स्वभाव है । **भिक्षुः**=जिसका भीख मांगनेका स्वभाव है ।

(८९४) भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् ।३।२।१७५॥

भ्राज् (चमकना), **भास्** (चमकना), **धुर्व्** (हिंसा करना), **द्युत** (चमकना) **ऊर्ज्** (बलवान् होना) **पृ** (पूर्ण करना), **जु** (जाना) और पाषाणवाची **ग्रावन्** शब्द पूर्वक–**ष्टु** (स्तुति करना) इन धातुओंसे परे. तच्छील आदि (८८९) अर्थोंमें क्विप् प्रत्यय हो । क्विप्का (१९९ । ३३० । ३६ । ९ । ७) से सर्वलोप हुआ–

३३४।८२।१६५।१९९

वि+भ्राज्+०=विभ्राट् =चमकनेवाला.

भास्+०=भाः=जो चमके अर्थात् कान्तिवाला । **धुर्व्+क्विप्+सु–**

(८९५) राल्लोपः । ६ । ४ । २१ ॥

रेफाच्छ्वोर्लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति च । दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः ।

क्विप् (८९६ । ३२९) प्रत्यय अथवा झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे हुए सन्ते रेफसे छ् वा व्का लोप हो । क्विसे क्विन् जानना ।

धुर्व्+०=धुर्+सु=धूः =घबराट का भार,

विद्युत+०=विद्युत+सु=विद्युत् =बिजली.

ऊर्ज्+०=ऊर्क्+सु=ऊर्क् =र्ग् =बलवान्.

पॄ+०पुर्+सु=पूः =नगरी.

जु+०+सु=जूः=शीघ्रगामी । (८९३) में 'दृश्यते' जो पद हैं उसकी अनुवृत्तिसे महाभाष्यके अनुसार जुको दीर्घ होता हैं कारण 'जूः' हुआ.

ग्रावन्+ष्टु+क्विप्=ग्रावस्तुत्=पाषाणकी प्रशंसा करनेवाला ऋत्विक्.

(८९६) क्विब्वचिप्रच्छयायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसंप्रसारणं च ॥

वच् (बोलना) **प्रच्छ्** (पूछना) **आयत शब्दपूर्वक–स्तु** (बहुत स्तुति करना) **कटप्रु** (चटाईके बीचसे जाना), **जु** (गमन करना) और **श्रि** (सेवा करना) इन धातुओंसे परे क्विप् प्रत्यय हो और दीर्घ हो तथा संप्रसारण (६७६, ९८९) न हो ।

वच्+वाच्+स्=वाक् बोलनेवाला इन्द्रिय.

(८९७) च्छ्वोः शूडनुनासिके च । ६ । ४ । १९ ॥

सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श् ऊठ् इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति ।

तुक् (१२०) सहित छ् तथा व्को क्रमसे श् तथा ऊठ् आदेश हो जो 'क्वि प्रत्यय' अथवा अनुनासिक आदिमें हो जिसके ऐसा प्रत्यय अथवा झलादि कित् वा ङित् प्रत्यय परे हो तो ।

पृच्छतीति प्राट्=प्रच्छ्+०प्राट् =जो पूछता है, पूछनेवाला.

आयतं स्तौति=आयतस्तु+०+सु=आयतस्तूः=बहुत स्तुति करनेवाला.

कटं प्रवते=०+सु=कटप्रूः=क्रीडा जो चटाईके बीचमें हो जाता है.

जु+०जूः (८९५)

श्रयति+हरिम्=श्रि+०स्+श्रीः=जो हरिकी सेवा करती है (लक्ष्मी)

---

१ 'भ्राजभास' -सूत्रमें 'जु' धातु आ चुका है, इसलिये इस वार्तिकमें 'जु' ग्रहण व्यर्थ ही है ।

(८९८) दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे । ३ । २ । १८२ ॥

दाबादेः ष्ट्रन् स्यात्करणेऽर्थे ।

दाप् (काटना), **णी** (ले जाना), **शस्** (हिंसा करना), **यु** (जोडना), **युज्** (जोडना), **ष्टु** (स्तुति करना), **तुद्** (पीडा देना वा प्रेरणा करना), **षिञ्** (बांधना) **षिच्** (छिडकना), **मिह** (मूतना), **पत्** (गिरना). **दश्** (दंश, दांतसे काटना) **णह** (बांधना) इन धातुओंसे परे ष्ट्रन् प्रत्यय करण अर्थमें हो. ष्ट्रन्मेंसे ष् ट् जाकर त् र 'त्र' रहा ।

दात्यनेनेति दात्रम्=दा+त्र=दात्र+अम्=दात्रम्=जिससे कोई वस्तु काटी जाय हँसुआ आदि । **शस्+त्र+अम्** यहां (४३४) से इट्की प्राप्ति हुई ।

(८९९) तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च । ७ । २ । ९ ॥

एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण्न ।

ति (क्तिन् अथवा क्तिच्) तुन्, ष्ट्रन्, तन्, क्थन्, क्सि, सु, सरन्, कन्, तथा स इन कृत् प्रत्ययोंको इट्का आगम (४३४) न हो ।

शस्+त्र[८९९]=शस्त्र +अम्=शस्त्रम्=शस्त्र.
यु+त्र=योत्र[४३१]= +अम्=योत्रम्=जुएकी रस्सी :हलकाबंधन
युज्+त्र=योक्[४८६।३३३]+त्र +अम्=योक्त्रम्=जुआ.
ष्टु+त्र=स्तोत्र[२८०] +अम्=स्तोत्रम्=स्तोत्र.
तुद्+त्र[४८६]=तोत्[१९०]+त्र +अम्=तोत्रम्=कोडा.
षि+त्र=से[२००।४३१]+त्र +अम्+सेत्रम्=बन्धन.
षिच्+त्र=सेक्[४८६]+त्र +अम्+सेक्त्रम्=छिडकनेका पत्र.
मिह्+त्र=मेढ्[४१६।७८।२७६।५८७।५८८]+त्र +अम्=मेढ्रम्=लिंग.
पत्+त्र=पत्र +अम्=पत्रम्=वाहन.
दश (ड) +दंन्[४९८] ष्[३३४]+त्र=दंं[९५] ष्ट्र्+आ=दंष्ट्रा[२०]=दाढ.
णह्+त्र नध्[४९३।३८२] +ध्र[६८]+ई[१३४९]=नध्री=चमडेकी रस्सी.

(९००) अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः । ३ । २ । १८४ ॥

ऋ (जाना), **लू** (काटना), **धू** (कँपाना), **षू** (प्रसव करना), **खन्**(खोदना) **षह्** (सहना), **चर्** (जाना) इन् धातुओंसे परे करण अर्थमें इत्र प्रत्यय हो.

ऋ+इत्र=अर्[429] +इत्र+अम्=अरित्रम्=पतवार.
लू+इत्र=लो[429] +लव्+इत्र+अम्=लवित्रम्=हंसुआ.
धू+इत्र+धो[429] =धव्[23]+इत्र+अम्=धवित्रम्=पंखा.।
षू+इत्र=सू[280] =सो[429] =सव्[23]+इत्र+अम्=सवित्रम्=उत्पत्तिकारण.
खन्+इत्र=खनित्र =खन्[300] अम्=खनित्रम्=कुदारी.
षह्+इत्र=सह[280] +इत्र+अम्=सहित्रम्=धीरज.
चर्+इत्र=चरित्र +अम्=चरित्रम्=चरित्र.

इत्र यह इकारसहित प्रत्यय इस कारण किया है कि इकारका श्रवण हो नहीं तो (८९९) से इट्के आगमका निषेध हो जाता है इस कारण यहां इट्के इकारके सुन पडनेका संभव नहीं था ।

(९०१) पुवः संज्ञायाम् । ३ । २ । १८५ ॥

पू (पवित्र करना) धातुसे परे संज्ञा अर्थमें इत्र प्रत्यय हो ।

पू +इत्र=पो[429] =पव्+इत्र+अम्=पवित्रम्=पैंती. ।

इति पूर्वकृदन्तम् ।

अथोणादयः ।

(९०२) कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ॥

कृ (करना), **वा** (गमन करना), **पा** (पीना), **जि** (जीतना), **डुमिञ्** (छीटना), **ष्वद्** (स्वाद लेना), **साध्** (साधना), **अश्** (व्याप्त होना) इन धातुओंसे परे उण् प्रत्यय हो, उण् से उ शेष रहा-

कृ+उ=कार्[202] +उ+:(सु)=कारुः=शिल्पी कारीगर.
वा+उ=वा+य् +उ+:(सु)=वायुः=पवन.
पा+उ=पा+य् +उ+:" =पायुः=गुदा.
जि+उ=जै=जाय्[29] +उ+:" =जायुः=औषधी.
मि+उ=मे[202] +माय्[29] +उ+:" =मायुः=पित्त.
ष्वद्+उ=स्वद्[280]=स्वाद्[420] +उ+:" =स्वादुः=स्वादयुक्त.
साध्+उ+साधु +: " =साधुः=श्रेष्ठ पुरुष.
अश्+उ+आश्[43] +उ+०" =आशु=शीघ्र (अव्यय)

(९०३) उणादयो बहुलम् । ३ । ३ । १ ॥

एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं स्युः ॥

वर्तमानकालमें तथा संज्ञामें उण् आदि प्रत्ययोंका व्यवहार अनेक प्रकारसे हो ।

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥

अब जो उणादि सूत्रसे विधान नहीं किये उनका विधान दिखलाते हैं । जो शब्दशास्त्रमें किसीकी संज्ञाके बाचक हैं और किसी प्रकार सिद्ध नहीं होते तो उनमें ऐसे धातु और उनसे परे ऐसे प्रत्ययोंका तर्क करना, जो उनमें होसके और गुणादिकार्य जैसे दीखें वैसे अनुबंधकी कल्पना करनी उचित है । यथा कोई शब्द ऋफिड् नामवाला है यह किसीसे सिद्ध नहीं होता । तब उणादिमें लकर गमनार्थ ऋधातुका अनुमानकर उससे परे फिट् प्रत्ययकी कल्पना की फिर गुणको न देखकर (४६८) फिट्को कित् मान लिया ।

॥ इत्युणादयः समाप्ताः ॥

अथोत्तरकृदन्तम् ।

(९०४) तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् । ३ । ३ । १० ॥

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः ।

जब एक क्रियाके निमित्त दूसरी क्रिया उपपद रहे तो भविष्य अर्थमें धातुसे परे तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय हो । **मान्तत्वादव्ययत्वम् ।** जिसके अन्तमें तुमुन् हो सो मकारान्त होकर (४०१) से अव्यय (४००) संज्ञक होता है, तुमुन्मेंसे तुम् और ण्वुल्मेंसे वु शेष रहा । **कृष्णं द्रष्टुं याति**=इसमें याति क्रियार्थ क्रिया उपपद हैं तो **दृश् तुम्=द्रष्टुम्** (५११, ६८७, २९, ३३४, ७८) अथवा **कृष्णं दर्शको याति**–इसमें ण्वुल् प्रत्यय किया. **दृश्+वु=दर्शकः**(४८६, ८३७).

(९०५) कालसमयवेलासु तुमुन् । ३ । ३ । १६७ ॥

काल, समय और वेला इन शब्दोंसे जब कोई शब्द उपपद हो तब धातुसे परे तुमुन् प्रत्यय हो । **कालो भोक्तुम्** (भोजन करनेका समय) इस सिद्धरूपमें भुज् धातुका उपपद 'कालः' शब्द है तब **काल+भुज्+तुम्=कालो भोक्तुम्** (५११, ६३७, ४८६, ३३३) । **समयो भोक्तुम् वेला भोक्तुम्** ।

(९०६) भावे । ३ । ३ । १८ ॥

---

१ 'अव्ययकृतो भावे' इस भाष्य वार्तिक वचनसे तुमुन् प्रत्यय भावमें होता है और ण्वुल् तो 'कर्तरि कृत्' से कर्तामें होता है ।

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् ।

जब धातुका अर्थ सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हो तब उस धातुसे परे घञ् प्रत्यय हो । घञ्मेंसे अ शेष रहा **पच्+अ=पाकः** (८९०, ८३२) रसोई । जहां सिद्ध पदको दूसरी क्रियाकी आकांक्षा हो वहां सिद्धावस्थापन्न क्रिया रहती है ।[1]

(९०७) अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् । ३ । ३ । १९ ॥

कर्तृभिन्ने कारके घञ् ।

कर्तासे भिन्न कारकमें धातुसे परे संज्ञा अर्थमें घञ् हो ।

(९०८) घञि च भावकरणयोः । ६ । ४ । २७ ॥

रञ्जेर्नलोपः स्यात् ।

भाव अथवा करण अर्थमें घञ् (९०७) प्रत्यय हो और वह जब रञ्ज (रंगना वाचक) धातुसे परे हो तो रञ्ज धातुके नकारका लोप । **रञ्ज्+अ=रागः** (३६३।४९०।८३३) काम क्रोधादि अथवा जिससे वस्तु रंगी जाती है (रंगनेका यन्त्र) **अनयोः किम् ?** भाव और करण अर्थमें क्यों कहा ? (उत्तर)**रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः**(८३३)**नाट्यशाला।** जहां मनुष्योंका वेष धरा जाता है । यहां अधिकरण अर्थमें घञ् होकर नकारका लोप न हुआ । भाव और करण अर्थ नहीं हैं ।

(९०९) निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः । ३ । ३ । ४१ ॥

एषु चिनोतेर्घञ् आदेश्च ककारः ।

☞ **निवास** (रहना), **चिति** (जमा करना), **शरीर** तथा **उपसमाधान** (इकट्ठा करना) इन चार अर्थवाचक चि धातुसे परे घञ् प्रत्यय हो और चि धातुके आदि चके स्थानमें क हो । उपसमाधान (इकट्ठा करना) यह धात्वर्थ है । शेष तीन अर्थ प्रत्ययार्थ-दर्शक धातुके उपाधिभूत हैं ।

☞ निवास अर्थमें ' **निकायः** ' सिद्धरूप है इसमें नि उपसर्गसे परे चि धातु है तब **नि+चि+अ=निकायः** (२०२, २९, ९०९) निवासस्थान शरीरवाचक । **चि+अ=कायः** (२०२, २९, ९०९) शरीर । इसीप्रकार **गोमयनिकायः**=गोबरका समूह.

---

[1] क्रियान्तराकाङ्क्षानुत्थापकतावच्छेदकं यत् वैजात्यं तद्रूपं साध्यत्वम् । सिद्धत्वं तु क्रियान्तराकाङ्क्षोत्थापकतावच्छेदकं यत् वैजात्यं तद्रूपम् । यथा 'पाकः' इत्युक्ते अस्ति–भवतीत्यादिक्रियाकाङ्क्षोत्थानात् सिद्धत्वम् । पचतीत्युक्ते तु तदनुत्थानात् साध्यत्वम् ।

(९१०) एरच् । ३ । ३ । ५६ ॥

इवर्णान्तादच् ।

इवर्णान्तधातुसे परे अच् प्रत्यय हो ।

चि+अ=चे+अ[421]=चय्[29]+अ+ः=चयः=संग्रह करना, समूह.

जि+अ=जे+अ[421]=जय्+अ =जयः=जीत.

(९११) ऋदोरप् । ३ । ३ । ५७ ॥

ऋवर्णान्तादुवर्णान्तादप् ।

ऋवर्णान्त अथवा उकारान्त धातुसे अप् प्रत्यय हो ।

कॄ (छींटना अर्थ)+अ=कर्[423]+अः=करः=छींटना.

गॄ (निगलना)+अ=गर्+अ=ः=+गरः=विष,

यु (जोडना)+अ=यो[421]=यव्[29]+अ+यवः=जोडना,

ष्टु (स्तुति करना)+अ=स्तु[28]=स्तव्+अ+=ः=स्तवः=स्तुति.

लू (काटना)+अ=लो=ल[32]+अ+ः=लवः=नाज काटना.

पू (पवित्र करना)+अ=पो[450]=पव[29]+अ+ः=पवः=पवित्र करना वा पछाडना.

(९१२) घञर्थे कविधानम् ॥

घञ् (९०६) के अर्थमें क प्रत्यय भी हो । (कमेंसे अ रहा)

प्र+ष्ठा (रहना)+अ=प्र+स्था[280]+अ+=प्रस्थः[925]+मापविशेष (सेरभर)

वि+हन् (मारना)+अ=वि+हन्[341]+अ+ः=विघ्नः[314]=विघ्नः=अन्तराय.

(९१३) ड्वितः क्त्रिः ३ । ३ । ८८ ॥

जिस धातुका डु इत् हो उससे परे क्त्रिप्रत्यय हो

(९१४) क्त्रेर्मम् नित्यम् । ४ । ४ । २० ॥

क्त्रिप्रत्ययान्तात् मम् निर्वृत्तेऽर्थे ।

क्त्रिप्रत्ययान्त (९१३) से परे सिद्ध अर्थमें मप् प्रत्यय नित्य हो । (डुपचष्) पच् (पकाना)+त्रि=पक्त्रि (९३३)=पक्त्रि+मम्=पक्त्रिमम्=जो पाक करनेसे सिद्ध हुआ । डुवप् (वप्)+त्रि=वप्त्रि (५८५) उप्त्रि+मम्=उप्त्रिमम्=बोनेसे जो सिद्ध हुआ.

(९१५) ट्वितोऽथुच् । ३ । ३ । ८९ ॥

जिस धातुका टु इत् हो उससे परे अथुच् प्रत्यय हो । टु वेपृ (वेप्) कांपना । वेप्-अथु=वेपथु+ः=वेपथुः=कँपकपी.

(९१६) यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् । ३ । ३ । ९० ॥

यज् (पूजना) याच् (मांगना) यत् (यत्न करना) विच्छ (गमन करना वा चमकना) प्रच्छ (पूंछना) रक्ष् (रक्षा करना) इन धातुओंसे परे नङ् प्रत्यय हो । नङ् मेंसे न शेष रहता हैं ।

यज्+न=यज्=ञ[१७६]=यज्ञ+:=यज्ञः=अश्वमेधादि.

याच्+न=याच्+ञ=याच्ञ+आ[१३४२]=याच्ञा=मांगना.

यत्+न=यत्न+:=यत्नः=उद्योग.

विच्छ+न=विश्[८९७]+न=विश्न+:=विश्नः=प्रताप.

प्रच्छ+न=प्रश्[८९७]+न=प्रश्न+:=प्रश्नः=सवाल.

रक्ष्+न=रक्ष्+ण=रक्ष्ण+:=रक्ष्णः=रक्षा.

(९१७) स्वपो नन् । ३ । ३ । ९१ ॥

ञिष्वप् (सोना) धातुसे परे नन् प्रत्यय हो ।

ञिष्वप्[४९७]+न=स्वप्[२८०]+न=स्वप्न+:+स्वप्नः=स्वप्न)

(९१८) उपसर्गे घोः किः । ३ । ३ । ९२ ॥

उपसर्गपूर्वक घु (६६३) संज्ञक धातुओंसे परे कि प्रत्यय हो ।

प्र+धा (धारण करना)+इ=प्र+ध्[६३५]+इ+:=प्रधिः=चक्रधारी.

उप+धा (धारण करना) इ=उप+ध्+इ=उपधिः=छल.

(९१९) स्त्रियां क्तिन् । ३ । ३ । ९४ ॥

स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् ।

स्त्रीलिंगभाव प्रकाश करना हो तो धातुओंसे परे क्तिन् प्रत्यय हो । **घञोऽपवादः** । घञ् (९०६) का अपवाद है ।

कृ (करना)+ति=कृति+:कृतिः=काम करना.

ष्टु (स्तुति करना) +ति=स्तु[२८०]+तिः=स्तुतिः (४२१ । ४६८)=प्रशंसा.

(९२०) ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः ॥

ऋकारान्त तथा लू आदि (७३७) धातुओंसे परे क्तिन् प्रत्यय निष्ठा (८९७) वत् हो तेन नत्वम् । (९२०) का कार्य्य होनेसे नकार होता हैं ।

कॄ (छींटना)+ति=किर्[८९७]=कीर्[६५]+णि (८६९, २९२)+:=[illegible]र्णिः=छांटना.

लू (छेदना) +ति=लू+निः[८६९] लूनिः=काटना.

धू (कांपना) +ति=धू+नि[८७१।८६०] +:=धूनिः=कांपना.

पू (शुद्ध करना)+ति=पू+नि +ः=पूनिः=विनाश *

(९२१) सम्पदादिभ्यः क्विप् ॥

संपत् आदिसे परे क्विप् प्रत्यय हो, क्विप्में (१९९ । ३२०) कुछ भी शेष न रहा—
सम्+पद्+०+सम्+पत्+स्=सम्पत्=धन.
वि+पद्+०=विपत्+स्+विपत्=संकट.
आ+पद्+०=आपत्+स्=आपत्= दुःखावस्था.

क्तिन्नपीष्यते । इन धातुओंसे परे क्तिन् प्रत्ययकी भी विवक्षा की जाती है.
सम्+पद्+ति+सम्+पत्+ति+ः=सम्पत्तिः=धन.
वि+पद्+ति=वि+पत्+ति+ःविपत्तिः=संकट.
आ+पद्+ति=आ+पत्+ति+ःआपत्तिः=दुःखावस्था.

(९२२) ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च । ३ । ३ । ९७ ॥

एते निपात्यन्ते ।

ऊति (रक्षा करनी), **यूति** (जोडना), **जूति** (शीघ्रगति), **साति** (ध्वंस)
हेति (अस्त्र) और **कीर्ति** (यश) ये निपातन किये हैं ।

(९२३) ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च । ६ । ४ । २० ॥

एषामुपधावकारयोरूठ् अनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति च ।

ज्वर (ताप आना), त्वर् (शीघ्रता करनी), स्रिव् (जाना), अव् (रक्षा करना),
मव् (बांधना,) इनकी उपधाको तथा वकारको ऊठ् हो जब कि जिसकी आदिमें अनुनासि
हो ऐसा प्रत्यय अथवा क्वि (क्विप्) झलादि कित् अथवा ङित् प्रत्यय परे रहे तो।
ऊय (इ)+ति+ऊ+तिः=ऊतिः=रक्षा करना.

ज्वर्+०(क्विप्)=ज्ऊर्+स्=जूः=जिसे ज्वर हो ।

त्वर्+०त्ऊर्+स् तूः=जो उतावली करनेवाला.

---

* ' पूञो विनाशे ' इस वचनसे विनाश ही अर्थमें निष्ठातकारको नकार होता है। पवित्रता अर्थमें नहीं इसीसे विनाश अर्थमें ' पूनिः ' और पवित्रता अर्थमें ' पूतिः, ऐसे रूप होते हैं

स्रिव्+०=स्रऊ+ः=स्रूः=सुवा पात्र,
अव्+०=ऊ+ः=ऊः=रक्षक,
मव्+०=मऊ+ः=मूः=बांधनेवाला.

(९२४) इच्छा । ३ । ३ । १०१ ॥

* इषेर्निपातोऽयम् ।

इच्छा यह शब्द इष् धातुसे निपापित होता है। इष् धातुसे श प्रत्यय और यक्का अभाव निपातसे होता है। **इष्+अ (श)=(९४० । १२० । ७६ । १३४२) इच्छा।**

(९२५) अ प्रत्ययात् । ३ । ३ । १०२ ॥

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात् ।

प्रत्ययान्त धातुओंसे स्त्रीलिङ्गमें अकार प्रत्यय हो। **कृ** (करना) +स (७९३)= **चिकीर्ष** (७५७ । ७५६ । ७०७ । ६९२ । ७१४ । ४२९ । ४३० । ९८९ । १६९) +अ=**चिकीर्ष**+**आ**[१३४२] =**चिकीर्षा**=करनेकी इच्छा । इसी प्रकार **पुत्रकाम्या**[७७३।५०३।७६०]= पुत्रकी इच्छा.

(९२६) गुरोश्च हलः । ३ । ३ । १०३ ॥

गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियामप्रत्ययः स्यात् ।

गुरुमान् (४८४, ४८५) हलन्त धातुसे परे स्त्रीलिङ्गमें अप्रत्यय हो । ईह्+(इच्छा करना) अ=ईह्+अ= (९२५) ईहा=इच्छा.

(९२७) ण्यासश्रन्थो युच् । ३ । ३ । १०७ ॥

अकारस्यापवादः ।

जिस धातुके अन्तमें णि (७४८) हो उससे परे तथा **आस्** (बैठना), **श्रंथ्** (ढीला करना) इन धातुओंसे परे युच् प्रत्यय स्त्रीलिंगमें हो। युच्में यु शेष रहा । यह सूत्र अकार (४२९ । ९२६) का अपवाद है।

कृ (करना)+**इ**[७४८] =**कार्**[२०२]=**इ**+**अन** (यु) (८३७) +**कार्**+**अन**[५६४]=**कारण**+ **आ**[१३४२] =**कारणा**=करवाना इसी प्रकार **हृ**+**इ**+**यु**+=**हारणा**=स्वीकार करना.

---

* इषेर्भावे शो यगभावश्च निपात्यते।

(९२८) नपुंसके भावे क्तः । ३ । ३ । ११४ ॥

भाव प्रकाश करना हो तो जब बननेवाला शब्द नपुंसकलिङ्ग हो तो धातुसे परे क्त प्रत्यय हो।

(९२९) ल्युट् च । ३ । ३ । ११५ ॥

जब बननेवाला शब्द नपुंसकलिङ्ग हो तो भाव (९२८) अर्थमें धातुसे परे ल्युट् (यु) हो।

हस् (हँसना)+त=हसित+अम्=हसितम्=हँसी

हस्+यु=हस्=अन=हसन=अम्=हसनम्=हँसी.

(९३०) पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण । ३ । ३ । ११८ ॥

जब बननेवाला शब्द संज्ञा और पुँल्लिङ्ग हो तब बहुधा धातुसे परे घ प्रत्यय हो।

(९३१) छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य । ६ । ४ । ९६ ॥

द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वो घे परे ।

दो आदि उपसर्गसे हीन छाद् (ढाकना) धातुसे परे घ प्रत्यय रहते छाद्को ह्रस्व हो।

दन्ताश्छाद्यन्ते　　अनेन–छाद्+इ +छ।दि+इ+अ=छद्+इ +अः=छदः=दन्तच्छदः जिससे दन्त ढकेजाते हैं (ओष्ठ)

आकुर्वन्त्यस्मिन्निति आकरः–कृ (करना) आ+कृ+अ=आकर+अ+ः=आकरः=खान.

(९३२) अवे तॄस्त्रोर्घञ् । ३ । ३ । १२० ॥

अव उपसर्ग उपपद रहते तॄ (तरना) तथा स्तॄ (फैलाना) धातुओंसे परे घञ् प्रत्यय हो।

अव+तॄ+अ=अवतार्+अ+ः अवतारः=अवतार घाट.

अव+स्तॄ+अ=अवस्तार+अ=ः अवस्तारः=कनात.

---

1 अत्रेदं बोध्यम्— "प्रयुज्यते भाववाच्ये कृदन्त यत् क्रियापदम् । क्लीबलिङ्गं प्रथमैकवचनान्तं च तद् भवेत् ॥

(९३३) हलश्च । ३ । ३ । १२१ ॥

हलन्ताद् घञ् । घापवादः ।

हलन्त धातुसे परे घञ् प्रत्यय हो (९३०) घका अपवाद है.

रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति+रम् (रमण) +अ=राम+ः=रामः जिसमें योगी लोग रमण करते हैं.

अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरिति+अप्+आ+मृज्+अ=अपमार्ग+अ+ः=अपामार्गः=रोगादि नाशक औषधी (चिचैडा)

(९३४) ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् । ३ । ३ । १२६ ॥

एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् । करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम् । तयोरेवेति भावे कर्मणि च ।

जिस समय दुःख अर्थमें दुर् और सुख अर्थमें ईषद् वा सु उपपद रहे तब धातुसे परे खल् प्रत्यय हो । यहां करण और अधिकारकी निवृत्ति हुई । (८२१) से खल् प्रत्यय भाव तथा कर्म अर्थमें होता है ।

दुर्+कृ+अ+ (खल्)=दुष्कर+ः=दुष्करः (दुष्करः कटो भवता) (दुःख अर्थमें) आपसे चटाईका बनना कठिन है ।

ईषद्+कृ+अ=ईषत्कर्+अ+ः=ईषत्करः जो विना परिश्रम बन सकता है (सुख अर्थमें)

सु+कृ=अ=सुकर्+अ+ः=सुकरः=जो सुगमतासे बनसकता है.

(९३५) आतो युच् । ३ । ३ । १२८ ॥

खलोऽपवादः ।

आकारान्त धातुसे परे युच् प्रत्यय हो । खल्का अपवाद है.

दुर्+पा+यु=दुर् पा+अन=दुष्पानः कठिनतासे पिया जा सकता है.

ईषद्=पा+यु=ईषत्पा=अन+ः ईषत्पानः=अनायास पिया जा सकता है.

सु+पा+यु+सु=पा+अन+सुपानः=सुगमतासे पिया जा सकता है.

(९३६) अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा । ३ । ४ । १८ ॥

प्रतिषेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात् । प्राचां ग्रहणं पूजार्थम् । अमैवाव्ययेनेति नियमान्नोपपदसमासः । दोदद्घोः ।

निषेध अर्थवाचक अलम् तथा खलु जिसके उपपद हों उस धातुसे क्त्वा प्रत्यय हो । प्राचाम् (प्राचीनों) का ग्रहण आदरके निमित्त है । (४०१) उपपद समास नहीं

हुआ क्योंकि ' **अमैवाव्ययेन** ' यह सूत्र नियम करता है कि अम् प्रत्ययान्त ही अव्ययके साथ उपपद समान होता है और क्त्वा इत्यादिके साथ नहीं इससे यहां उपपद समास नहीं होता.

अलम्+दा+त्वा=अलम्+दद्[८८०]+त्वा=अलं दत्त्वा=मत दो.

खलु+पा+त्वा=खलु+पी[२६]+त्वा=खलु पीत्वा=मत पिओ.

अलंखल्वोः किम् ? अलं तथा खलु उपपद रहते क्त्वा हो ऐसा क्यों कहा! (उत्तर) इनके विना क्त्वा नहीं होता है क्योंकि होनेलगेगा तो जैसे **मा कार्षीत् (४७०)** वह मत करे यहां उपपद रहते भी क्त्वा होजायगा। **प्रतिषेधयोः किम् ?** निषेध अर्थ क्यों कहा ? **अलंकारः** यहां भूषण अर्थ रहनेसे कृ धातुसे क्त्वा न हुआ।

(९३७) समानकर्तृकयोः पूर्वकाले[१] । ३ । ४ । २१ ॥

समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात् ।

जब अनेक धातुओंका कर्ता एक हो तो उनमें जो धातुका अर्थ पूर्वकालमें हो तो उससे परे क्त्वा प्रत्यय हो ।

ष्णा (शुद्ध होना) **+त्वा=स्नात्वा व्रजति**=स्नान करके जाता है. अर्थात् पहले स्नान करता फिर जाता है ।

' **द्वित्वमतन्त्रम्** ' (९३७) सूत्रमें द्वित्व अविवक्षित है अर्थात् ' **समानकर्तृकयोः** ' इससे यह अर्थ होता है कि एक कर्तावाले जो दो धातु उनमें पूर्व जिसका व्यापार हो उससे क्त्वा हो पर अविवक्षा करनेहीसे ऊपर लिखा हुआ अर्थ होता है इसीसे=**भुज्+क्त्वा[३३३]=भुक्त्वा** (४६८) **पीत्वा** (४६८) **व्रजति**=खापीकर जाता है ये रूप सिद्ध होते हैं ।

(९३८) न क्त्वा सेट् । १ । २ । १८ ॥

सेट् क्त्वा किन्न स्यात् ।

इट्के सहित क्त्वा सो कित् न हो ।

शीङ् (सोना)**+इत्वा+शयित्वा**[४२ । ६]=सोकर.

सेट् किम् ? इट् सहित कहनेका कारण क्या ? (३०)**कृत्वा** (करके) इट् नहीं (९११) हुआ; इस कारण (४२१) से गुण (४६८) भी न हुआ ।

---

१ जब किसी क्रियाकी समाप्ति होनेपर दूसरी क्रियाका आरम्भ होता है, तब समाप्त हुई क्रियाको पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं, वहां पूर्वकालिक क्रियाका और उसके साथ रहनेवाली दूसरी क्रियाका जब एक ही कर्ता होता है, तब ही धातुसे क्त्वा प्रत्यय होता है । जैसे "रामो रावणं हत्वा विभीषणाय राज्यं ददौ" यहाँ 'हत्वा' और ' ददौ ' इन दोनों क्रियाओंका एक ही ' राम ' कर्ता है । भिन्न कर्ता होनेपर वाक्य अशुद्ध माना जाता है । जैसे " लक्ष्मणो मेघनादं हत्वा, रामो बिभीषणाय राज्यं ददौ " यह वाक्य अशुद्ध है ।

(९३९) रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च । १ । २ । २६ ॥

इवर्णोवर्णोपधाद्धलादे रलन्तात् परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः ।

जिस धातुकी उपधामें इवर्ण अथवा उवर्ण हो आदिमें हल् और अन्तमें रल् हो उससे परे इट् सहित जो क्त्वा और सन् प्रत्यय विकल्प करके कित् हो ।

द्युत+इ+त्वा द्युतित्वा (वा) द्योतित्वा=चमककर.

लिख+इ+त्वा=लिखित्वा (वा) लेखित्वा=लिखकर.

व्युपधात् किम् ? उपधामें इवर्ण उवर्ण क्यों कहा ? (उत्तर) **वृत+त्वा=वर्तित्वा** (रहकर) इसमें (९३८) के अनुसार (४८६) से जो नित्य गुण होता है सो विकल्प करके हो जायगा । **रलः किम् ?** अन्तमें रल्से परे क्यों कहा ? (उत्तर) **सेवित्वा** (सेवा करके) इस प्रयोगमें (९३९) से विकल्प कित् होनेसे (४८६) से गुण भी विकल्प हो जायगा. इससे ' रलः ' पद कहा है । **हलादेः किम् ?** आदिमें हल् हो यह क्यों कहा ? **एषित्वा**-(जाकर) इस प्रयोगमें पक्षान्तरमें ' इषित्वा ' ऐसा गुण-रहित प्रयोग हो जायगा. इससे आदिमें हल् कहा । **सेट् किम् ?** इट्युक्त कहनेका कारण क्या ? **भुक्त्वा** (खाकर) यहां भुज् धातु अनिट् होनेसे (९३९) वां न लगा. इससे कित् मानकर (४६८) से गुण (४८६) का निषेध हो जाता है । **शमु=क्त्वा-**

(९४०) उदितो वा । ७ । ४ । ५६ ॥

उदितः परस्य क्त्वा इड्वा ।

जिस धातुमें उ इत्संज्ञक हो तिससे परे क्त्वाको विकल्प करके इट्का आगम हो ।

शम (उ)+इ	**+त्वा=शमित्वा**	=शान्त होकर.
शम	**+त्वा=शान्त्वा (७७६)**	=शान्त होकर.
दिव् (खेलना)	**+त्वा=देवित्वा** [९३८।४८०]	=खेलकर.
दिव	**+त्वा=द्यूत्वा** [८०७।२१]	=खेलकर.
धा (धारण करना)	**+त्वा=हित्वा (८७९)**	=धारण करके.

दधातेर्हिः (८७९) धाको हि आदेश होता है ।

(९४१) जहातेश्च क्त्वि । ७ । ४ । ४३॥

ओहाक् (त्याग करना) धातुको हि (८७९) आदेश क्त्वा परे हो ।

हा+त्वा=हित्वा=त्याग करके । **हाङस्तु** गमन अर्थमें हासे क्त्वा होनेपर **ओहाङ्=हा+त्वा=हात्वा**=(जाकर) ऐसा रूप होता है ।

प्र+कृ+त्वा-

(९४२) समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् । ७ । १ । ३७ ॥

अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः स्यात् ।

समास होनेपर जब उसका पूर्वपद नञ्भिन्न अव्यय हो तब उससे परे क्त्वाके स्थानमें ल्यप् आदेश हो । प्र और कृका समास करके क्त्वाके स्थानमें ल्यप्मेंका य शेष रहा, तब **प्रकृ+य**=(१९३)से ल्यप्को कित् मानकर(८२९)से तुक्का आगम हुआ **प्रकृत+य=प्रकृत्य**=आरम्भ करके । **अनञ् किम् ?** नञ्भिन्न पूर्वपदका कारण क्या ? (उत्तर) **अकृत्वा**-(न करके) यहां नञ्पूर्वपद होनेसे ल्यप् नहीं होता है सो होजायगा । **अव्ययपूर्वपदे किम् ?** समासके पूर्वपद अव्यय होनेसे क्यों कहा ? **परमकृत्वा** (श्रेष्ठ करके) इसमें पूर्वपद परम है यह अव्यय नहीं है इससे ल्यप् न हुआ ।

(९४३) आभीक्ष्ण्ये णमुल् च । ३ । ४ । २२ ॥

आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् क्त्वा च ।

जब कोई क्रियाके वारंवार होनेका प्रकाश करना हो तो उससे व्यवधानरहित पूर्व सूत्र (९४२) के विषयमें क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो ।

(९४४) नित्यवीप्सयोः । ८ । १ । ४ ॥

आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात् ।

जब कोई क्रिया वारंवार प्रकाश करनी हो अथवा वीप्सा (बहु इच्छा) प्रकाश करनी हो तो उस पदको द्वित्व हो । तिङन्त तथा अव्ययसंज्ञक कृदन्त (४०२) के विषय वारंवार करना अर्थ रहता है उसे ही द्वित्व हो यथा-**स्मारंस्मारं नमति शिवम्** (९४३ २०२ । ९४) वारंवार स्मरण कर शिवको नमस्कार करता है । **स्मृ+अम्** (**णमुल्**) =**स्मार्+अम्=स्मारम्** । **स्मृ+त्वा=स्मृत्वा**=वारंवार स्मरण करके । **पायंपायम्** (७०७) वारंवार पीकर । **भोजंभोजम्** (४८६) वारंवार भोजन करके । **श्रावं-श्रावम्** (२०२) वारंवार सुनकर.

(९४५) अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ।३।४।२७॥

एषु कृञो णमुल् स्यात् सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवंभूतश्चेत् कृञ् । व्यर्थत्वात् प्रयोगानर्ह इत्यर्थः ।

अन्यथा (दूसरी रीतिसे) **एवम्** (ऐसा) **कथम्** (कैसे) और **इत्थम्** (इस प्रकारसे)। ये शब्द जब उपपद हों तब कृञ् धातुसे परे णमुल् हो, उस अवस्थामें जब कि कृञ् धातुसे कुछ अर्थ न निकलता हो अर्थात् निरर्थक हो इससे उसका प्रयोग करना अयोग्य हो । यथा

---

[1] जो ही अर्थ 'अन्यथा भुङ्क्ते' इस वाक्यसे प्रतीत होता है, वही 'अन्यथा भुङ्क्ते' इस वाक्यका अर्थ है इसलिये कृञ् अनर्थक ही है।

अन्यथाकारं भुङ्क्ते० वह अन्य रीतिसे खाता है। **एवंकारं भुङ्क्ते**-वह ऐसा खाता है। **कथंकारं भुङ्क्ते**-वह कैसे खाता है । **इत्थंकारं भुङ्क्ते**-वह ऐसे खाता है, इन उदाहरणोंमें कृञ् धातुसे परे णमुल् (अम्) प्रत्यय किया है । यथा-**कृ+अम्=आर् (२०२) +अम्=कारम्** रूप सिद्ध हुआ, इन प्रयोगोंमें कृधातु निरर्थक है इसीसे णमुल् हुआ है। **सिद्धेति किम् ?** जो कृञ् धातुका अप्रयोग सिद्ध हो ऐसा क्यों कहा ? तो-**शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते**-वह शिरको अन्यथा करके खाता है। **कृत्वा**=(कृ+त्वा) इसमें कृञ् धातु अर्थयुक्त है इससे णमुल् न होकर क्त्वा हुआ । क्योंकि यहां कृञ्को किसी प्रकारसे नहीं छोड सकते ॥ इत्युत्तरकृदन्तम् ॥

॥ इति कृदन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ कारकप्रकरणम् ।

(९४६) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा । २ । ३ । ४६ ॥

नियतोपस्थितिकः[1] प्रातिपदिकार्थः । मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्[2] । प्रातिपदिकार्थमात्रे=उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम् । लिङ्गमात्रे=तटः,तटी, तटम् । परिमाणमात्रे= द्रोणो व्रीहिः । वचनं= संख्या=एकः द्वौ, बहवः ।

प्रातिपदिकको कथनमात्रसे ही जो अर्थ नियमसे प्रादुर्भूत होता है उसे **प्रातिपदिकार्थ** कहते हैं । सूत्रमें जो मात्र शब्द है सो प्रातिपदिकार्थ, लिङ्गपरिमाण और वचन इन चारोंमें लगता है । जिस शब्दमें केवल प्रातिपदिकार्थ हो अथवा उसके उपरान्त केवल लिङ्ग अर्थ अधिक हो अथवा केवल परिमाग अर्थ अधिक हो अथवा जो शब्द केवल संख्यावाचक हो उससे परे प्रथमा विभक्ति हो । (केवल प्रातिपदिकार्थमें) **उच्चैः नीचैः कृष्णः श्रीः ज्ञानम्** यहां प्रातिपदिकार्थमात्रमें प्रथमा हुई, यहां इनसे जो जो अर्थ निकले सो नियमसे निकले हैं ॥ अब केवल लिङ्ग अर्थमें प्रातिपदिकार्थके उपरान्त लिखते हैं-**तटः पु० तटी स्त्री० तटम् न०** नदीका किनारा । इनमें नदीका किनारा यह अर्थ तो नियमसे सिद्ध है परन्तु तीनों लिङ्ग नहीं इससे तीनों लिङ्गकी अधिकता कहनेमें प्रथमा हुई । प्रातिपदिकार्थके उपरान्त केवल परिमाण अर्थकी अधिकताका उदाहरण=**द्रोणो व्रीहिः** द्रोण

---

१ 'यस्मिन्प्रातिपदिके उच्चारित सति यस्यार्थस्य नियमेनोपस्थितिः स नियतोपस्थितिकः ।

२ प्रातिपदिकार्थमात्रमें और प्रातिपादिकार्थकी अपेक्षा लिङ्गमात्र आदिकी अधिकतामें तथा संख्यामात्रमें प्रथमा विभक्ति हो ।

एक प्रकारका नाप है. द्रोण (१६ सेर भर चावल) यह प्रातिपदिकार्थ है इससे परे प्रथमाका एकवचन सु प्रत्यय (जिसका अर्थ परिमाण है) आया तो प्रातिपदिकका अर्थ जो पात्रविशेष है उसके साथ परिमाण अर्थवाले सु प्रत्ययका अर्थ अभेदबोधरूप हुआ तब **द्रोणः** इस पदका अर्थ (द्रोणरूप नाम) हुआ । अर्थात् परिमाण । परिमाण (नापनेके पात्र) से परिमेय (जिसका माप हो) की आकांक्षा होती है इस कारण परिच्छेद्य (व्रीहि) परिच्छेदक (द्रोण) सम्बन्धसे व्रीहि पदके साथ ऐसा बोध होगा कि द्रोणरूप परिमाणसे परिच्छिन्न चावल ॥ वचनका अर्थ संख्या है यथा—एक दो बहुत । वचन शब्द सूत्रमें ग्रहण किया है इसका यह कारण है कि एक शब्दसे परे सु द्विसे औ और बहुसे जस् धरा जाय, यदि ऐसे न कहते तो यह विभक्ति नहीं धर सकते, कारण कि जो अर्थ शब्दसे ही निकलता है उसके प्रगट करनेको फिर किसी प्रत्ययके लगानेकी क्या आवश्यकता है, यथा एक शब्दके आगे उसीके अर्थमें प्रथमाके एकवचनसे सु प्रत्ययका लगाना द्वि शब्दके आगे उसीके अर्थमें औ. और बहु शब्दसे परे उसीके अर्थमें जस् प्रत्ययका लगाना व्यर्थ हो जाता, इससे संख्यावाचक प्रातिपदिकके आगे संख्यामें भी प्रथमा हो । **एकः**—एक, **द्वौ**—दो, **बहवः**—बहुत ।

(९४७) सम्बोधने च । २ । ३ । ४७ ॥

इह प्रथमा स्यात् ।

सम्बोधन अर्थमें प्रथमा हो । **हे राम** (९३) ॥ (इति प्रथमा)

(९४८) कर्तुरीप्सिततमं * कर्म । १ । ४ । ४९ ॥

कर्तुः क्रिययाप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् ।

कर्ताकी क्रियासे सम्बन्ध करनेको जो अधिक इष्ट (इच्छाविषय) सो कारकसंज्ञक हो तो वह कर्मसंज्ञक हो । कर्ता और कर्मके नाम भेद करनेवालेको कारक कहते हैं ।

(९४९) कर्मणि द्वितीया । २ । ३ । २ ॥

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया । अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमा ।

जब कर्म किसी प्रत्ययसे उक्त न हो तब उस कर्मसे परे द्वितीया हो । यथा=**हरिं भजति**=हरिको भजता है । इस उदाहरणमें तिप् प्रत्यय कर्मदर्शक नहीं किन्तु कर्ताको प्रकाश करता है इससे हरि अनुक्तकर्म है इससे हरिके आगे अम् कर्ममें द्वितीया हुई । परन्तु जब किसी प्रत्यय (तिङ्, कृत, तद्धित, समास) से कर्म आदि

---

* 'प्रकृतधात्वर्थप्रधानीभूतव्यापारप्रयोज्यप्रकृतधात्वर्थफलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वयोग्यताविशेषशालित्वम्—ईप्सितमत्वम्—' । कर्तृनिष्ठव्यापारप्रयोज्यफलेन संबन्धुमिष्यमाणं यत् तत्कारकं सत् कर्मसंज्ञं स्यादिति सूत्रार्थः ।

उक्त हो तब उनसे परे प्रथमा ही हो। यथा **हरिः सेव्यते**=हरि सेवा किया जाता है इस उदाहरणमें तिङ् प्रत्ययसे कर्महीका बोध होता है (४०६) से उक्त कर्म होकर हरिशब्दके आगे प्रथमा हुई।

लक्ष्म्या सेवितः=लक्ष्मीसे सेवा किया गया। इस उदाहरणमें कृत् प्रत्यय (८६८। ८३१) से कर्म उक्त होनेसे उससे परे प्रथमा हुई।

शतेन क्रीतः शत्यः=सौ रुपयेसे खरीदा हुआ। इस उदाहरणमें तद्धित प्रत्ययसे कर्म उक्त होकर प्रथमा हुई है।

प्राप्त आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः=प्राप्त हुआ है आनन्द जिसको ऐसा। इस उदाहरणमें समाससे कर्म उक्त है इससे कर्ममें प्रथमा हुई।

(९५०) अकथितं च। १। ४। ५१।

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

अपादान (पञ्चमी), **संप्रदान** (चतुर्थी), **करण** (तृतीया), **अधिकरण** (सप्तमी) इनकी जब विवक्षा न हो (९५१) तब यह कारकसंज्ञक होकर कर्मसंज्ञक हों।

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमन्थमुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्।

दुह् (दुहना), **याच्**(मांगना), **पच्**(पाक करना), **दण्ड्**(दण्ड देना), **रुध्**(आवरण करना) **प्रच्छ** (पूछना), **चि** (इकट्ठा करना), **ब्रू** (व्यक्त बोलना), **शास्** (शिक्षा करना), **जि** (जीतना), **मन्थ्** (मथना), **मुष्** (चुराना), इन धातुओंसे तथा **णी** (पहुंचाना) **ह** (प्राप्त करना), **कृष्** (खैंचना), **वह्** (पहुंचना) इन धातुओंके कर्मके साथ जिसका योग हो और अपादानादि विभक्ति जो कही हैं जब इनकी विशेष कर विवक्षा न हो तब यह कारक कर्मसंज्ञक हो।

गां दोग्धि पयः=वह गायसे दूध दुहता है इसमें दुह् धातुसे 'दोग्धि' क्रियापदके पय कर्मके साथ गौशब्दकी पञ्चमी विभक्तिका योग है परन्तु यहां उसकी विवक्षा न होनेसे गोशब्दकी कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई।

इसी प्रकार **बलिं याचते वसुधाम्**=बलिसे पृथ्वीको मांगता है। इस उदाहरणमें याच् धातुका कर्म वसुधा है उसका योग बलि शब्दकी चतुर्थी विभक्तिके साथ है परन्तु चतुर्थी करनेकी इच्छा नहीं है इस कारण बलिशब्दकी कर्मसंज्ञा होकर (९४९) से द्वितीया हुई।

---

१ अत्रेदं ध्येयम्--"यस्मिन्नर्थे विधीयन्ते लकारास्तद्धिताः कृतः। समासे वा भवेद्यत्र स उक्तः प्रथमा मतः॥" इति।

२ किन्तु संबन्धसामान्यात्मना विवक्षितम् इति प्राञ्चः। कर्मत्वेनैव विवक्षितम् इति नव्याः।

तण्डुलान् ओदनं पचति=वह चावलोंको पकाकर भात करता है इसमें पच् धातुका कर्म ओदन है उसका तण्डुल शब्दकी तृतीया विभक्तिके साथ सम्बन्ध है उसके करनेकी इच्छा न की तो कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया हुई ।

गर्गान् शतं दण्डयति-वह गर्गोंसे सौ मुद्रा दण्ड लेता है, इसमें चतुर्थी विभक्ति न होकर द्वितीया कर्ममें हुई ।

व्रजमवरुणद्धि गाम्=वह गोशालामें गौको घेरता है जिसमें व्रजशब्दकी सप्तमीके स्थानमें कर्ममें द्वितीया हुई ।

माणवकं पन्थानं पृच्छति=वह बालकके लिये मार्ग पूछता है, यहां चतुर्थीके स्थानमें द्वितीया हुई ।

वृक्षमवचिनोति फलानि=वृक्षसे फल इकट्ठा करता है.

माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा=वह बालकको धर्म बताता वा सिखाता है ।

शतं जयति देवदत्तम्=वह देवत्तसे सौ मुद्रा जीतता है.

सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति=क्षीरसागरसे अमृत मथता है ।

देवदत्तं शतं मुष्णाति=देवदत्तसे सौ रुपया चुराता है ।

ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा=वह बकरीको गांवपर ले जाता, प्राप्त करता, खैंचता वा पहुंचाता है ।

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा=वह ऊपर लिखे जो दुह् आदि सोलह धातु हैं उनके रूपक कर्मसंज्ञामें प्रयोजन नहीं किन्तु इनके अर्थ इस कर्मसंज्ञामें कारण हैं इस कारण इन धातुओंके तुल्य अर्थ दूसरे धातुओंके रहते (९९१) वा सूत्र लगता है । यथा-

बलिं भिक्षते वसुधाम्=बलिसे धरती मांगता है, इस उदाहरणमें भिक्षधातु याचना अर्थमें है सो पंचमीके अर्थमें द्वितीया हुई ।

माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्ति इत्यादि=बालकको वह धर्म कहता है इत्यादि । यहां भाष् धातु ब्रूके अर्थमें हैं । (इति द्वितीया) ॥

(९९१) स्वतंन्त्रः कर्त्ता । १ । ४ । ५४ ॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ।

क्रियामें जो स्वतंत्रतासे विवक्षित अर्थ सो (क्रियाका करनेवाला) कर्ता हो ।

---

१ यहां "विवक्षितः" कहनेसे स्थाली पचति काष्ठानि पचन्ति इत्यादि रूप सिद्ध हो जाते हैं ।जैसा कि हरिने कहा है-"स्थाल्या पच्यत इत्येषा विवक्षा दृश्यते यतः" ।

(९५२) साधकतमं करणम् । १ । ४ । ४२ ॥

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात् ।

क्रियाकी सिद्धिमें कर्ता (७४६) का जो अत्यन्त उपकारक कारक है उसकी **करण** संज्ञा हो ।

(९५३) कर्तृकरणयोस्तृतीया । २ । ३ । १८ ।

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात् ।

जब कि कर्ता और करण तिङ् आदि प्रत्ययोंसे उक्त न हो तब उनमें तृतीया हो ।

रामेण बाणेन हतो वाली=रामने बाणसे वालिको मारा । यहां तृतीया रामसे अनुक्त कर्त्तामें और बाणसे अनुक्त करणमें हुई ॥ (इति तृतीया) ॥

क्रि०

(९५४) कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम् । १ । ४ । ३२ ॥

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानसंज्ञः स्यात् ।

दानरूप क्रियाके कर्मके संग जिसको संयुक्त करनेकी इच्छा करे सो कारक संज्ञाको प्राप्त होकर संप्रदानसंज्ञावाला हो ।

(९५५) चतुर्थी संप्रदाने । २ । ३ । १३ ॥

संप्रदानमें चतुर्थी विभक्ति हो । **विप्राय गां ददाति**=ब्राह्मणके निमित्त गौ देता है ।

(९५६) नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्-योगाच्च । २ । ३ । १६ ॥

एभिर्योगे चतुर्थी स्यात् ।

नमस्, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, वषट् इनके योगमें चतुर्थी हो । **हरये नमः**=हरिके निमित्त नमस्कार है । **प्रजाभ्यः स्वस्ति**=प्रजाके निमित्त मङ्गल हो । **अग्नये स्वाहा**=अग्निके निमित्त हवन हो । **पितृभ्यः स्वधा**=पितरोंके निमित्त स्वधा हो, **अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्** । अलंशब्दका अर्थ यहां परिपूर्ण शक्तिदर्शक लेना. न कि केवल अलम् शब्द; इस कारण उसके पर्यायवाचक शब्दोंके योगमें भी यह सूत्र लगता है । यथा **दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्तः**=दैत्योंके लिये हरि परिपूर्ण हैं, प्रभु हैं, समर्थ हैं, शक्तिमान् हैं, ये अलम्के पर्याय हैं इससे इनके योगमें चतुर्थी हुई. जहां अलं समर्थवाची न हो वहां चतुर्थी न हो, यथा-' **अलं महीपाल तव श्रमेण** ' इति **रघुवंशे** ॥ (इति चतुर्थी) ॥

(९९७) ध्रुवमपायेऽपादानम् । १ । ४ । २४ ॥

अपायो विश्लेषस्तस्मिन्साध्ये यद् ध्रुवमवधिभूतं कारकं तद-पादानसंज्ञं स्यात् ।

अपाय (विभाग) साधनेमें जो ध्रुव (अवधिभूत) हो सो कारकसंज्ञक होकर **अपादान** संज्ञक हो ।

(९९८) अपादाने पञ्चमी । २ । ३ । २८ ॥

अपादानमें पञ्चमी विभक्ति हो । **ग्रामादायाति**=वह ग्रामसे आता है । **धावतोऽश्वात्पतति**=वह दौडते हुए घोडेसे गिरता है । यहां ग्रामसे आनेवालेका वियोग और दौडते हुए घोडेसे गिरनेवालेका वियोग है इस वियोग (अपाय) में ध्रुव (अवधिभूत) ग्राम और अश्व हैं, इनको (९९७) से अपादान संज्ञा होकर (९९८) से पञ्चमी हुई ॥ (इति पञ्चमी) ॥

(९९९) षष्ठी शेषे । २ । ३ । ५० ॥

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिः सम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी ।

कारक तथा प्रातिपदिकके अर्थसे भिन्न जो स्वस्वामिभाव (स्वत्वस्वामित्वरूप) आदि सम्बन्ध सो यहां शेष कहा हैं उस शेषमें षष्ठी हो । यथा-**राज्ञः पुरुषः**–राजाका पुरुष, इस उदाहरणमें राजा स्वामी और पुरुष उसका स्व (स्वकीय) है. राजामें स्वामित्व और पुरुषमें स्वत्व हुआ, यही सम्बन्ध स्वत्व स्वामित्वरूप (स्वस्वामिभाव सम्बन्ध) कहाता है ।

कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव–कर्म आदिकी भी जब केवल सामान्य संबन्धरूपसे विवक्षा की जाय तब षष्ठी हो । यथा—

सतां गतम्=श्रेष्ठ पुरुषोंका गमन ।

सर्पिषो जानीते=वह घृत संबन्धसे प्रवृत्त होता है ।

मातुः स्मरति=माताका स्मरण करता है ।

एधोदकस्योपस्कुरुते=लकडी जलका नवीन गुण लेती है ।

भजे शम्भोश्चरणयोः=मैं शिवके चरणोंको सेवता हूँ ॥ (इति षष्ठी) ॥

---

१ अचलका उदाहरण । २ चलका उदाहरण ।

(९६०) आधारोऽधिकरणम् । १ । ४ । ४५ ॥

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात् ।

कर्ता तथा कर्मके द्वारा कर्ता और कर्मकी क्रियाका आधार कारकसंज्ञक होकर अधिकरण संज्ञक हो । वह कमरेमें है इस प्रयोगमें रहनारूप क्रियाका आधार कमरा है । यह कसेरीमें चावल पकाता है, इसमें चावल कर्म है और पकानारूप क्रियाका आधार कसेरी है ।

(९६१) सप्तम्यधिकरणे च । २ । ३ । ४६ ॥

अधिकरणे सप्तमी स्यात् । चकाराद्दूरान्तिकार्थेभ्यः ।

अधिकारमें सप्तमी हो । सूत्रमें चकारका यह आशय है कि दूर और निकट वाचक शब्दोंसे भी परे सप्तमी हो ।

औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । आधार तीन प्रकारका है—औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक । जिसका किसी अवयवसे संयोग हो उसे 'औपश्लेषिक' कहते हैं । यथा—**कटे आस्ते**='वह चटाई पर बैठता है' अर्थात् किसी अवयवमें होता है सबमें नहीं । **स्थाल्यां पचति**=कसेरीमें रांधता है । यहां १ उदाहरणमें कर्ताकी क्रिया (बैठना) के आधार (कट) को अधिकरण सञ्ज्ञा हुई और २ उदा० में कर्म (तंडुल आदि) की क्रिया (पकना) के आधार (स्थाली) को अधिकरण सञ्ज्ञा हुई है इसी लिये दो उदाहरण दिये गये हैं । जिससे विषयका बोध हो वह 'वैषयिक' आधार है । यथा—**मोक्षे इच्छाऽस्ति**=उसकी मोक्षमें अभिलाषा है. आशय यह है कि उसकी इच्छाका विषय मोक्ष है. जिसके आधेय संपूर्ण रूपसे व्याप्त हो वह 'अभिव्यापक' आधार कहाता है । यथा—**सर्वस्मिन्नात्माऽस्ति**=आत्मा सबमें व्याप्त है, यह आधेय पूर्णरूपसे व्याप्त है । **वनस्य दूरे अन्तिके वा**=वनके दूर वा वनके निकट ॥ (इति सप्तमी) ॥

इति कारकप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ समासप्रकरणम् ।

(९६२) समासः पञ्चधा । तत्र समसनं समासः, स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः १ । प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः २ । प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः ३। तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः । कर्मधारयभेदो द्विगुः । प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः४। प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः ५ ॥

१—समसनम्=अनेकपदानाम् एकपदाभवनम् ।

समास पांच प्रकारका है । बहुत पदोंका एक होना समासका अर्थ है । जिसका कोई विशेष नाम नहीं उसे **केवलसमास** कहते हैं वह पहला १ है । जिसके पूर्वपदका अर्थ प्रायः प्रधान रहता है वह **अव्ययीभाव** (९६७) समास कहाता है यह दूसरा २ है । जिसके उत्तरपदका अर्थ प्रायः प्रधान रहता है वह तीसरा ३ **तत्पुरुष** (९८३) समास कहाता है, तत्पुरुषका एक भेद **कर्मधारय** (१००२) समास है, इसमें दोनों विभक्ति समान और विशेष्यविशेषणभाव होता है । कर्मधारयका एक भेद **द्विगु** (१००४, ९८४) है, इसके पूर्व संख्यावाचक शब्द होता है । जिसमें प्रायः समासके पदोंको छोडकर किसी और पदका अर्थ प्रधान रहे वह चौथा ४ **बहुव्रीहि** (१०३९) समास है । जिसमें प्रायः दोनों पदोंका अर्थ प्रधान रहे वह पांचवां ५ **द्वन्द्व** (१०५९) समास कहाता है ।

(९६३) समर्थः[1] पदविधिः । २ । १ । १ ॥

पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः ।

जो विधि पदसे सम्बन्ध रखनेवाला है सो समर्थके अधीन है, यहां एकार्थीभावका नाम समर्थ है ।

(९६४) प्राक्कडारात्समासः[2] । २ । १ । ३ ॥

‘ कडाराः कर्मधारये ’ इत्यतः प्राक्समास इत्यधिक्रियते ॥

समास यह जो शब्द है इसका अधिकार यहांसे लेकर ‘ कडाराः कर्मधारये ’ इस सूत्रके पूर्वतक किया जाता है ।

(९६५) सह सुपा । २ । १ । ४ ॥

सुप् सुपा सह वा समस्यते[3] । समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक् । परार्थाभिधानं[4] वृत्तिः कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधा-

---

१ द्विविधं हि सामर्थ्यं भवति-एकार्थीभावः व्यपेक्षा च । तत्र व्यपेक्षा स्वार्थपर्यवसायिनां पदानामाकाङ्क्षादिवशाद् यः संबन्धः सा । एकार्थीभावस्तु- अपृथगुपस्थितिविषयत्वमेव । तत्र व्यपेक्षा ‘ राज्ञः पुरुषः ’ इत्यादि वाक्ये भवति, ‘ राजपुरुष ’ इत्यादिसमासे चैकार्थीभाव इत्यवधेयम् ।

२ “कडाराः कर्मधारये” इस सूत्रसे पूर्व २ ‘प्राक्’ ‘समासः’ ये दो पद अधिकृत होते हैं । इससे दो संज्ञाओंका समावेश सिद्ध होता है ।

३ समस्यते=समाससंज्ञां लभते ।

४ परस्य=एकार्थस्याभिधानम्=एकार्थीभावेनोपस्थितिजननमेव वृत्तिरित्यर्थः ।

तुरूपाः पञ्च वृत्तयः । वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः । स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा । तत्र पूर्वं भूत इति लौकिकः । पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः । भूतपूर्वः भूतपूर्वे चरडिति निर्देशात्पूर्वनिपातः ।

एक सुबन्तके साथ दूसरे सुबन्तका समास विकल्प करके हो । जिन पदोंका समास होता है उनके समूहकी (१३६) से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है, (७६९) से सुप्का लुक् होता है । समास यह वृत्तिका एक भेद है, पृथक् २ अवयवोंसे जो एक अर्थ निकले उससे भिन्न एकरूपसे अर्थके प्रगट करनेकी शक्तिको वृत्ति कहते हैं । वृत्ति पांच प्रकारकी है—१ कृत् (३२९), २ तद्धित (१०६८), ३ समास (९६२), ४ एकशेष (१४५) और ५ सनाद्यन्तधातु (५०३) वृत्तिके अर्थका बोधक जो वाक्य है उसे **विग्रह** कहते हैं । वह **लौकिक अलौकिक** भेदसे दो प्रकारका है । यथा—**भूतपूर्वः**=(पहले हुआ) इस वाक्यमें लौकिक विग्रह **पूर्वम्+भूतः** है और अलौकिक विग्रह—**पूर्व+अम्+भूत+सु** है, इस उदाहरणमें कालवाचक जो पूर्व शब्द है यह भूत इस क्रियाशब्दका विशेषण है इससे पूर्व शब्द लौकिक उपसर्जन है इसकारण (२७०) से पूर्वशब्दका पूर्व प्रयोग पाया, परन्तु इसके विरुद्ध भूत पदको पहले रक्खा है इसका आशय यह है कि पाणिनिका एक सूत्र ' **भूतपूर्वे चरट्** ' है इसमें पहले भूत शब्दका प्रयोग देखा गया है, इससे प्रथम स्थापन किया ।

(९६६) इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च ॥

इव (सदृश) शब्दके साथ सुबन्तका समास हो और सुप्का लोप न हो । यथा—**वागर्थाविव । वागर्थौ+इव=वागर्थाविव** । शब्द और अर्थके समान ।

इति केवलसमासः समाप्तः ॥ १ ॥

अथाव्ययीभावसमासः ।

(९६७) अव्ययीभावः । २ । १ । ५ ॥

अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात् ।

अव्ययीभाव इस पदका अधिकार (९८३) सूत्रके पूर्वतक है ।

---

१ पूर्वमिति क्रियाविशेषणम् ।

२ समासविधौ सुबिति प्रथमया निर्दिष्टं सुबन्तत्वं च द्वयोरप्यविशिष्टमिति कस्य पूर्वनिपातो भवेदिति जिज्ञासायामाह—भूतपूर्वे इति ।

(९६८) अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासंप्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्तवचनेषु । २ । १ । ६ ॥

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते सोऽव्ययीभावः । प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः । प्रायेणास्वपदविग्रहो वा । विभक्तौ–हरि+ङि+अधि इति स्थिते–

विभक्तिके अर्थका प्रकाश करनेवाला, समीपवाचक, समृद्धिवाचक, घटती, वस्तुका अभाव, नाश, असम्प्रतिवाचक (नहीं लगना), शब्दप्रादुर्भावप्रकाशक, पीछे, यथावाचक, क्रमवाचक, समकालवाचक, सदृशवाचक, प्राप्तिवाचक, सम्पूर्णतावाचक, और अन्त्यवाचक, अव्ययोंका समास सुबन्तके साथ नित्य हो । प्रायः नित्यसमासके विषे विग्रह (९६६) नहीं होता । और जो कदाचित नित्यसमासमें विग्रह हो तो समस्यमानपदोंसे भिन्न उन्हीं पदोंके अर्थवाचक पदोंके साथ होता है । विभक्तिके अर्थमें अव्ययीभावका उदाहरण जैसे–**हरि+ङि+अधि** इस विग्रहमें अधि अव्यय है, और ङिके सम्बन्धसे उसका अर्थ होता है ।

(९६९) प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् । १ । २ । ४२ ॥

समासशास्त्रे प्रथमनिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात् ।

समासविधायक शास्त्रमें जो प्रथमाके रूपसे निर्दिष्ट हो उसकी उपसर्जन संज्ञा हो । **हरि+ङि+अधि**=इसमें समास सूत्र (९६८) में प्रथमा निर्दिष्ट अव्यय (अव्ययम्) पद है तो इससे उसीको उपसर्जन संज्ञा होगी, अधि अव्यय है इसकारण उसकी **उपसर्जन** संज्ञा हुई ।

(९७०) उपसर्जनं पूर्वम् । २ । २ । ३० ॥

समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम् । इत्यधेः प्राक् प्रयोगः । सुपो लुक् । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः । अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात् सुपो लुक् । अधिहरि ।

समासमें उपसर्जन पहले रक्खा जाय । लौकिक, शास्त्रीय दो प्रकारके उपसर्जन होते हैं ।

---

१ जैसे कुत्तेकी पूंछ काट देने पर भी ' कुत्ता ' इस नामकी निवृत्ति नहीं होती, इसी प्रकार सुप् विशिष्टकी प्रातिपदिक संज्ञामें सुप्का लुक् होनेपर भी प्रातिपदिकत्वकी निवृत्ति नहीं हो सकती ।

लौकिक उपसर्जन विशेषणका नाम है और (९६९) सूत्रसे जिसकी उपसर्जनसंज्ञा है वह शास्त्रीय है इस कारण अधिका प्रयोग हरिशब्दसे पहले हुआ तब **अधि+ङि+हरि+ङि=** ऐसी स्थिति हुई (७६९) से सुप्का लुक् हुआ तो **अधि+हरि** रूप हुआ । 'जिसका कोई एक अवयव विकारको प्राप्त हो जाता है वह सम्पूर्णतासे और ही नहीं बन जाता' (यथा १८१) इस कारण सुप् ङिका लोप होकर यद्यपि कुछ विकृति हुई है तथापि यह प्रातिपदिकसंज्ञक ही है इसीसे सुप् प्रत्यय (१३७) फिर होते हैं–**अधि+हरि+सु**=(४०३) से सुप्का लोप हुआ कारण कि (४०२) से अव्ययीभाव समास अव्यय है तब **अधिहरि** (हरिविषे) रूप सिद्ध हुआ ।

(९७१) अव्ययीभावश्च । २ । ४ । १८ ॥

अयं नपुंसकं स्यात् । गाः पातीति गोपाः । तस्मिन्निति अधिगोपम् ।

अव्ययीभाव समास नपुंसकलिङ्ग हो । **गोपाः** (गाय चरानेवाले) इसमें अधि अव्यय जोडकर **अधि+गोप=अधिगोप+अम्=अधिगोपम्** (९७० । २६९ । ९७२) गाय चरानेवालेके विषे, यह उदाहरण भी विभक्ति अर्थका ही है ।

(९७२) नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः । २ । ४ । ८३ ॥

अदन्तादव्ययीभावात् सुपो न लुक् तस्य पञ्चमीं विना अमादेशः ।

अदन्तअव्ययीभाव समाससे परे सुप्का लुक् न हो और पञ्चमीको छोडकर शेष विभक्तियोंको अम् आदेश हो ।

(९७३) तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् । २ । ४ । ८४ ।

अदन्तादव्ययीभावात् तृतीयासप्तम्योर्बहुलममभावः ।[1] उपकृष्णम् । उपकृष्णेन ।

अदन्त अव्ययीभाव समाससे परे तृतीया और सप्तमीको अ आदेश (९१२) नानाप्रकार (विकल्पसे) हो यथा–**उप+कृष्ण=उपकृष्ण+अम्=उपकृष्णम् । उप+कृष्ण=उपकृष्ण+इन (टा) उपकृष्णेन** } कृष्णके निकटसे

मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् । यवनानां व्यृद्धिर्[2]दुर्यवनम् । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् । हिमस्यात्ययोऽतिहिमम् । निद्रा संप्रति न युज्यत इत्यतिनिद्रम् । हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि । विष्णोः पश्चादनुविष्णु । योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः । रूपस्य योग्यमनुरूपम् । अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम् । शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति ।

अब (९६८) के और उदाहरण लिखते हैं–

---

१ सूत्रमें संज्ञाविधान करनेसे शास्त्रीय उपसर्जन होता है । २ विगता ऋद्धिर्व्यृद्धिः ।

(समृद्धि) सु+मद्र=सुमद्र+अम्=सुमद्रम्=मद्रदेशवालोंकी वृद्धि.
(घटती) दुर्+यवन= दुर्यवन+अम्=दुर्यवनम्=यवनोंकी घटती.
(अभाव) निर्+मक्षिका=निर्मक्षिक+अम्=निर्मक्षिकम्[२६९]=मक्खियोंका अभाव.
(नाश) अति+हिम=अतिहिम+अम्=अतिहिमम्=हिमका नाश.
(असंप्रति) अति+निद्रा=अतिनिद्र+अम=अतिनिद्रम्=(२६९)निद्रा नहीं आती.
(प्रादुर्भाव) इति+हरि=इतिहरि+सु[२७०]=इतिहरि=हरिशब्दोंका प्रकाश जो भक्तोंको हो.
(पीछे) अनु+विष्णु=अनुविष्णु+सु[२७०]=अनुविष्णु=विष्णुके पीछे.

यथा अव्ययके चार अर्थ हैं=१ योग्यता (लायकी) २ वीप्सा (अनेक सम्बन्ध) ३ पदार्थानतिवृत्ति (कोई पदार्थका उल्लंघन न करना), ४ सादृश्य (तुल्यता)।

(१) अनु+रूप=अनुरूप=अम् अनुरूपम्=रूपके योग्य योग्यता.
(२) प्रति+अर्थ=प्रत्यर्थ+अम्=प्रत्यर्थम्=सब अर्थोंमें (वीप्सा)।
(३) यथा+शक्ति=यथाशक्ति+सु=यथाशक्ति=अपनी शक्तिके अनुसार अर्थात् शक्तिको उल्लंघन न करके (पदार्थानतिवृत्ति)।
(४) सह+हरि-

(९७४) अव्ययीभावे चाकाले । ६ । ३ । ८१ ॥

सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले । हरेः सादृश्यं सहरि ।

अव्ययीभावसमासमें सहको स आदेश हो उत्तरपद कालवाचक न हो तो ।

सह+हरि=सहरि+सु=सहरि=हरिके समान ।

ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम् । चक्रेण युगपत्सचक्रम् । सदृशः सख्या ससखि । क्षत्राणां सम्पत्तिः सक्षत्रम् । तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति । अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि ।

(९६८) में कहे अनुपूर्व इत्यादि अर्थोंके उदाहरण-

(क्रम) अनु[२७२]+ज्येष्ठ+अम्=अनुज्येष्ठम्=ज्येष्ठके क्रमसे.
(युगपत्) सह+चक्र+अम्=सचक्रम्=चक्रके समकाल.
(सादृश्य) सह+सखि+सु=ससखि=मित्रके तुल्य.
(सम्पत्ति) सह+क्षत्र+अम् सक्षत्रम्=क्षत्रियोंकी पूर्णता.
(साकल्य) सह+तृण+अम्=सतृणम् (अत्ति)=तृणको भी न छोडकर खा जाता है.
(अवधि) सह+अग्नि+सु=साग्नि=अग्निप्रतिपादक ग्रंथतक वेद पढता है.

(९७५) नदीभिश्च । २ । १ । २० ॥

नदीभिः सह संख्या वा समस्यते । समाहारे चायमिष्यते । पञ्चगङ्गम् । द्वियमुनम् ॥

नदीवाचक शब्दोंके साथ संख्यावाचक शब्दोंका समास विकल्प करके हो । भाष्यकारका अभिप्राय है कि यह सूत्र समाहार (१००९) में लगता है और जगह नहीं ।

पञ्च+गङ्गा=पञ्चगङ्गा+सु=पञ्चगङ्गम् (पञ्चानां गङ्गानां समाहारः) पांच गङ्गाका समुदाय.

द्वि+यमुना=द्वियमुना+सु=द्वियमुनम् (द्वयोर्यमुनयोस्समाहारः) दो यमुनाका समुदाय.

(९७६) तद्धिताः । ४ । १ । ७६ ॥

आपञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम् ।

इस सूत्रके प्रारंभसे अष्टाध्यायीके पांचवें अध्यायकी समाप्ति तक ' तद्धित ' इस पदका अधिकार हो ।

(९७७) अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः । ५ । ४ । १०७ ॥

शरदादिभ्यष्टच् स्यात् समासान्तोऽव्ययीभावे । शरदः समीपमुपशरदम् । प्रतिविपाशम् ।

अव्ययीभावसमासमें शरद् आदिसे परे समासका अन्त अवयव टच् (अ ९७१, १४८) प्रत्यय हो ।

उप+शरद्+अ=उपशरद+अम्=उपशरदम्=शरद् ऋतुके समीप.
प्रति+विपाश्=प्रतिविपाश्+अ+अम्=प्रतिविपाशम्=विपाशा नदीके निकट ।

(९७८) जराया जरस् च ॥

जरा अव्ययीभाव समासके अन्तमें जरस् आदेश (१८१) हो यथा-

उप+जरा=उप+जरस्+अ+अम्=उपजरसम्=जरा अवस्थाके समीप.

(९७९) अनश्च । ५ । ४ । १०८ ॥

अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् ॥

जो अव्ययीभाव समासके अन्तमें अन् हो तो उससे परे टच् प्रत्यय हो ।

उप+राजन्+अ-

(९८०) नस्तद्धिते । ६ । ४ । १४४ ॥

नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते ।

तद्धित (९७६) प्रत्यय परे हुए सन्ते भसंज्ञक (१८९) नकारान्त अङ्गकी टि(५२) का लोप हो ।

उप+राज्+अ+अम्=उपराजम्=राजाके समीप।
अधि+आत्मन्+अ+अधिआत्म+अ+अम्=अध्यात्मम्=आत्माके विषयमें।

(९८१) नपुंसकादन्यतरस्याम्। ५। ४। १०९॥

अन्नन्तं यत् क्लीवं तदन्तादव्ययीभावाट्टज्वा।

जो अव्ययीभावसमासके अन्तमें नपुंसकलिङ्गका अन् आवे तो उससे टच् प्रत्यय विकल्प करके हो। यथा=

उप+चर्मन्=उपचर्मन+अ=उपचर्म+अम्=उपचर्मम्।
(अथवा) **उपचर्म**=चर्मके समीप.

(९८२) झयः। ५। ४। १११॥

झयन्तादव्ययीभावाट्टज्वा।

जिस अव्ययीभावसमासके अन्तमें झय् प्रत्याहारका वर्ण हो उससे परे टच् प्रत्यय विकल्प करके हो।

उप+समिध्=अ=अम्=उपसमिधम् (वा उपसमित्=अग्निमें जो हुनी जाती है) ऐसी लकडीके निकट॥

इत्यव्ययीभावसमासः समाप्तः॥ २॥

अथ तत्पुरुषसमासः।

(९८३) तत्पुरुषः। २। १। २२॥

अधिकारोऽयम् प्राग्बहुव्रीहेः।

तत्पुरुष इस पदका अधिकार (१०३९) वेंके पूर्वतक प्रत्येक सूत्रोंमें हो।

(९८४) द्विगुश्च। २। १। २३॥

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात्।

द्विगुसमास (१००४) भी तत्पुरुषसंज्ञक हो।

(९८५) द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः। २। १। २४॥

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते स च तत्पुरुषः॥

कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः इत्यादि।

श्रित (जिसने आश्रय किया), अतीत (जो अतिक्रमण करके आगे गया), पतित (जो गिरपडा), गत (जो गया), अत्यस्त (जो लांघ गया), प्राप्त (जो पहुंचगया)

आपन्न (जो प्राप्त हुआ) इन सुबन्तोंके साथ द्वितीयान्तका समास विकल्प करके हो। **कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः** (जिसने कृष्णका आश्रय किया) इत्यादि ।

लु० ३

(९८६) तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन । २ । १ । ३० ॥

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत् । शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः ॥ धान्येन अर्थः धान्यार्थः । तत्कृतेति किम् ? अक्ष्णा काणः ।

तृतीयान्तके अर्थसे जिस गुणका संपादन किया जाता है उस गुणवाचक शब्दके साथ तथा अर्थशब्दके साथ तृतीयान्तका समास विकल्प करके हो। यथा-**शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः** (सरोतेसे किया हुआ खण्ड) यहां तृतीयान्त (शङ्कुलया) के अर्थ (सरोते) से गुण (खण्ड) संपादन कियागया है इससे समास हुआ । इसी प्रकार **धान्येन अर्थः=धान्यार्थः**=धान्यसे जो अर्थ प्राप्त हुआ । **तत्कृतेति किम्** ? तृतीयान्त अर्थसे गुणको संपादन करे ऐसा क्यों कहां ? तो **अक्ष्णा काणः** एक आंखसे काना । इसमें तृतीयान्त (अक्ष्णा) पद काणत्वका संपादक नहीं इससे समास न हुआ ।

(९८७) कर्तृकरणे कृता बहुलम् । २ । १ । ३२ ॥

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत ।

कर्ता अथवा करण अर्थसे जो तृतीया तदन्तसुबन्त अनेक प्रकारसे (८२४) कृदन्तके साथ विकल्प करके समासको प्राप्त हो । यथा-**हरित्रातः** (अथवा) **हरिणा त्रातः**= हरिसे रक्षा किया हुआ । **नखभिन्नः** (अ०) **नखैर्भिन्नः**=नखोंसे विदीर्ण किया हुआ । **कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्** । इस वचनसे इस सूत्रमें कृत्के ग्रहण करनेसे गति (२२२) अथवा कारक (९४६) जिस कृदन्तके पूर्व हो उसका भी ग्रहण होता है । **नखैर्निर्भिन्नः नखनिर्भिन्नः** नखोंसे फाडागया.

(९८८) चतुर्थी तदार्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः । २ । १ । ३६ ॥

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् । यूपाय दारु=यूपदारु । तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः । तेनेह न रन्धनाय स्थाली ।

जो चतुर्थ्यन्तके निमित्त हो उसके वाचक शब्दके साथ और **अर्थ** (निमित्त) **बलि** (बलिदान), **हित** (उपकारक), **सुख** (सुख, चैन) तथा **रक्षित** (जिसकी रक्षा की हो) इन शब्दोंके साथ चतुर्थ्यन्त, पूर्वके सदृश अर्थात् विकल्प करके समस्यमान हो । यथा=**यूपाय+दारु=यूपदारु**-यज्ञस्तंभके निमित्त लकडी । चतुर्थ्यन्तके निमित्त जो

हो उसके वाचक शब्दके साथ. इसके कहनेका प्रयोजन यह हैं कि, चतुर्थ्यन्तके निमित्त जो शब्द हो उसका कोई विकार होता हो, जैसे—लकडीका स्तम्भके निमित्त । इसीसे आगेके उदाहरणमें समास न हुआ—**रन्धनाय स्थाली**—रान्धनेको कसेरी । स्तम्भमें लकडीका रूपान्तर हो जाता है. रान्धनेसे बटलोईका नहीं होता इसीसे समास न हुआ ।

(९८९) अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिंगता चेति वक्तव्यम् ॥

चतुर्थ्यन्त सुबतन्का अर्थ शब्दके साथ नित्य समास हो और विशेष्यके×अनुसार उसका लिङ्ग हो । यथा **द्विजाय अयम्—द्विजार्थः सूपः**—ब्राह्मणके निमित्त दाल । **द्विजार्था यवागूः**—ब्राह्मणके निमित्त लपसी । **द्विजार्थं पयः**=ब्राह्मणके निमित्त दूध (९८८) में जो शब्द गिने हैं उनके उदाहरण—**भूतबलिः** भूतोंके निमित्त बलि । **गोहितम्**= गौके निमित्त हितकारी । **गोसुखम्**—गायके निमित्त सुखकारक । **गोरक्षितम्**= जो गौके निमित्त रखाया गया हो । और जब समास न किया तब—**भूतेभ्यो बलिः** ऐसा विग्रह जानो ।

(९९०) पञ्चमी भयेन । २ । १ । ३७ ॥

भय शब्दके साथ पञ्चम्यन्त सुबन्तका समास हो । **चोरात् भयं—चोरभयम्**= चोरसे भय ।

(९९१) स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन । २ । १ । ३९ ॥

स्तोक (थोडा) अन्तिक (निकट) और दूर इन शब्दोंमें तथा इन शब्दोंके अर्थमें जो शब्द हों और कृच्छ (कष्टवाचक) शब्द इनमें जो पञ्चम्यन्त हों सो क्तान्त (८६८) के साथ समासको प्राप्त हों । परन्तु—

(९९२) पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः । ६ । ३ । २ ॥

अलुगुत्तरपदे ।

उत्तरपद परे हुए सन्ते स्तोक आदि (९९१) शब्दोंसे परे पञ्चमीका लुक् (७६९) न हो यथा=**स्तोकान्मुक्तः**=थोडेसे छोटा । **अन्तिकादागतः**=समीपसे आया । **अभ्याशादागतः**=निकटसे आया । **दूरादागतः**=दूरसे आया । **कृच्छ्रादागतः**= कष्टसे आया ।

× किसी वस्तुका गुण प्रकाश करनेवाले शब्द विशेषण कहाते हैं और वह गुणयुक्त वस्तु विशेष्य कहाता है जैसे नील कमल वहां नील विशेषण और कमल विशेष्य है ।

(९९३) षष्ठी । २ । २ । ८ ॥

सुबन्तेन प्राग्वत् ।

सुबन्तके साथ षष्ठ्यन्त सुबन्तका विकल्प करके समास हो। यथा—**राजपुरुषः**(२००) =राजाका पुरुष ।

(९९४) पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे ।२।२।१ ॥

अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेदवयवी ॥

पूर्व (पहिलाभाग),**अपर**(पिछलाभाग), **अधर**(नीचेका भाव)तथा **उत्तर** (पिछला भाग) इन शब्दोंका एकत्व संख्याविशिष्ट अवयवीके साथ विकल्प करके समास हो ।

षष्ठीसमासापवादः । यह सूत्र (९९३) का अपवाद है । एकदेश एकदेशीके साथ समास हो उसे एकदेशी समास कहते हैं. एकदेश और एकदेशी इनका अधिकरण एक हो तो समास हो. **पूर्वं कायस्य–पूर्वकायः** (९११ । ९७०)=शरीरका अगला भाग । **अपरकायः**-शरीरका पिछला भाग । **एकाधिकरणे किम् ?** एकत्वसंख्या विशिष्ट अवयवीको क्यों कहा ? (उत्तर) **पूर्वश्छात्राणाम्**—विद्यार्थियोंमें सबसे पहला । यह समास न हुआ क्योंकि छात्र बहुत्वसंख्याविशिष्ट है पूर्व कायमें पूर्वकायका अवयव हैं और काय अधिकरण एक है इससे समास हुआ ।

(९९५) अर्धं नपुंसकम् । २ । २ । २ ॥

समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे प्राग्वत् ।

अर्धशब्दका अर्थ जब सम (आधा) हो और अर्धशब्द नपुंसकलिङ्ग हो तब उसका सुबन्तके साथ समास हो यथा **अर्धं पिप्पल्याः=अर्धपिप्पली**=आधी पीपल.

(९९६) सप्तमी शौण्डैः[1] । २ । १ । ४० ॥

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत् ।

सप्तम्यन्त सुबन्तका शौण्ड (निपुण) आदिगण शब्दोंके साथ विकल्प करके समास हो यथा- **अक्षेषु+शौण्डः=अक्षशौण्डः** (पाशेमें निपुण) **इत्यादि** । यह कह आये हैं कि (९८९ । ९८६ । ९८८ । ९९० । ९९६) वेमें जिन शब्दोंकी गणना की है उनके साथ द्वितीयान्त तृतीयान्त आदिका समास हो, परन्तु—**द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि द्वितीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात्समासो ज्ञेयः** । गिने हुए पदोंसे भिन्नपदोंके साथ भी समासका प्रयोजन देखा जाता है इस कारण प्रामाणिक ग्रन्थोंके अनुसार **द्वितीया, तृतीया** आदिपदोंका अपने २ सूत्रोंमें योगविभाग करनेसे द्वितीयान्त तृतीयान्त आदि दूसरेके साथ भी समासको प्राप्त हो ऐसा जानना ।

---

१ शौण्ड, धूर्त, कितव, व्याड,प्रवीण, अन्तर, अधि, पटु, पाण्डित, कुशल, चपल, निपुण, । इति शौण्डादिः ॥

(९९७) दिक्संख्ये संज्ञायाम् । २ । १ । ५० ॥

संज्ञायामेवेति नियमार्थम् ।

दिशावाचक अथवा संख्यावाचक सुबन्तके समान अधिकरणवाले सुबन्तके साथ संज्ञा अर्थमें दिशा और संख्यावाचक समासको प्राप्त हों । दिशावाचक उदाहरण—**पूर्व+इषुकामशमी=पूर्वेषुकामशमी** (**इषुकामशमी ग्रामविशेषः**)=इषुकामशमी एक किसी गांवका नाम है । संख्यावाचकका उदाहरण—**सप्त+ऋषयः=सप्तर्षयः**= वसिष्ठादि सात ऋषि । यह (९९७) सूत्र नियम करता है कि दिग्वाचक वा संख्यावाचक सुबन्तका सुबन्तके साथ समास हो तो संज्ञाहीमें हो । **तेनेह न** । तिससे यहां (जहां संज्ञा नहीं है) नहीं होता । संज्ञा नहीं है इस कारण **उत्तरा वृक्षाः**=उत्तरवाले वृक्ष, यहां समास न हुआ । और **पञ्च ब्राह्मणाः**=पांच ब्राह्मण । पहला दिशावाचक और दूसरा संख्यावाचकमें प्रत्युदाहरण समझना ।

(९९८) तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च । २ । १ । ५१ ॥

तद्धितार्थे विषय उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्संख्ये प्राग्वत् ।

जब तद्धित प्रत्यय (८७६) के अर्थकी विषयता हो अथवा उत्तरपद परे हो अथवा समाहारवाच्य हो तो दिशावाचक अथवा संख्यावाचक शब्द विकल्प करके समस्यमान हो । यथा—**पूर्वस्यां शालायां भवः** (जो पूर्वशालामें हुआ) अब इन, दो पदों (पूर्व+शाला) का समास होता है तब भवरूप तद्धितके अर्थकी विषयता रहती है (९९९) कारण कि, जब ञ प्रत्यय भवरूप अर्थमें होता है वह समास होनेके पीछे आता है तब समास होनेपर **पूर्वा+ङि+शाला+ङि+अ** (९९९) **पूर्वाशाला** (७६९) से विभक्तिका लोप हुआ फिर वा अन्तर्गत आ स्त्रीलिङ्ग (९६५) से निकाल डाला क्योंकि **सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः** । पांचो वृत्ति जो गिनाई हैं उनमें किसी वृत्तिमें सर्वनाम रहे तो उसका रूप पुँल्लिङ्गके समान हो. तब **पूर्व+शाला** हुआ—

(९९९) दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः । ४ । २ । १०७ ॥

अस्माद्भवाद्यर्थे ञः स्यादसंज्ञायाम् ।

जिसका समास किया गया है जब वह पद किसीकी संज्ञा न हो तब उससे परे भव

१ समासस्य " विशेषणं विशेष्येणं "—इत्यैव सिद्धेरिति भावः ।

आदि अर्थोंमें तद्धित (९७६) संज्ञक ञ प्रत्यय हो परन्तु जो पूर्वपद समासका अवयव दिशावाचक हो तो तब इससे **पूर्वशाला** (९९८)+ञ-

(१०००) तद्धितेष्वचामादेः । ७ । २ । ११७ ॥

ञिति णिति च तद्धितेष्वचामादेरचो वृद्धिः स्यात् ।

ञित् (९९९) अथवा णित् (१०६९) तद्धित प्रत्यय परे हुए सन्ते अचोंमेंके पहले अच्को वृद्धि हो । इस सूत्रसे वृद्धि,होकर **पौर्वशाला+अ** रूप हुआ फिर (२६०) से ला अन्तर्गत आकारका लोप होकर **पौर्वशाल्+अः=पौर्वशालः** (जो पूर्वशालामें हुआ) रूप बना । **पञ्च गावो धनं यस्य** जिसका धन पांच गाय हैं) इस उदाहरणमें तीनों पद बहुव्रीहि समासके हैं (१०३९) इससे नीचेका वार्तिक लगा ।

(१००१) द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् ॥

जब समासमें पदसे परे उत्तरपद आवे तो द्वन्द्व (१०५९) अथवा तत्पुरुष (९८३) समास नित्य हों ।

(१००२) गोरतद्धितलुकि । ५ । ४ । ९२ ॥

गोऽन्तात् तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि ।

जो तत्पुरुष (९८३) के अन्तमें गो शब्द हो उससे परे तद्धित प्रत्ययका लुक् न हुआ हो तो तद्धितसंज्ञक टच् (अ) प्रत्यय समासका अन्त अवयव हो । यथा-**पञ्च+गो=अ**[१००२] **+धन×पञ्चगवधनः**=जिसके धन पांच गाय हैं । **पञ्चभिर्गोभिः क्रीतः=पञ्चगुः**=जो पांच गायोंसे खरीदा है, इस उदाहरणमें क्रीतार्थी ठक् (इक) प्रत्यय होकर उसका लोप हुआ इससे गो शब्दसे परे तद्धितसंज्ञक टच् प्रत्यय न हुआ ।

(१००३) तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः । १ । २ । ४१ ॥

जिस तत्पुरुषसमासके पद समान अधिकरणवाले (समान विभक्त्यन्त) हों अर्थात् एक ही वस्तुको कहें तो वह समास कर्मधारय संज्ञक हो ।

(१००४) संख्यापूर्वो द्विगुः । २ । १ । ५२ ॥

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात् ।

(९९८) वें के लिखे तीन तीन प्रकारमेंसे जिस समासका पूर्वपद संख्यावाचक हो उसकी द्विगुसंज्ञा हो ।

(१००५) द्विगुरेकवचनम् । २ । ४ । १ ॥

द्विग्वर्थः समाहार एकवत्स्यात ।

जो समाहार द्विगुसमास (१००४) से प्रकाश किया जाय उससे परे एकवचन हो ।

(१००६) स नपुंसकम् । २ । ४ । १७ ॥

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् ।

समाहार अर्थमें द्विगु (१००४) अथवा द्वन्द्व (१०९९) समास नपुंसकलिङ्ग हो ।

पञ्चानां गवां समाहारः=पञ्चानां=गवां+पञ्च+गो+अ+अम्+पञ्चगवम्= पांच गायोंका समुदाय ।

(१००७) विशेषणं विशेष्येण बहुलम् । २ । १ । ५७ ॥

भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत् ।

विशेष्यके साथ विशेषण अनेक प्रकार (८२४) विकल्प करके समस्यमान हो (९८९)

यथा—**नीलम्+उत्पलम्=नीलोत्पलम्**=नीला कमल.

बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम्—अनेक प्रकारसे कहनेका कारण यह है कि किसी स्थानमें नित्य हो ।

यथा—**कृष्णसर्पः**=काला नाग ।

क्वचिन्न कहीं समास न भी हो । यथा—**रामो जामदग्न्यः**=राम जो जमदग्निके पुत्र ।

(१००८) उपमानानि सामान्यवचनैः । २ । २ । ५५ ॥

जिस वस्तुसे किसीकी उपमा दी जाती है वह ' उपमान ' कहलाता है और जिसकी उपमा की जाती है उसे ' उपमेय ' कहते हैं उपमान और उपमेयमें जो धर्म सामान्य रहता है उसका वाचक ' सामान्यवाचक ' कहाता है यथा—राधाका मुख चन्द्रमाके समान है यहां मुख उपमेय चन्द्रमा उपमान हैं जो सुन्दरता राधाके मुख और चन्द्रमामें तुल्य है वह सामान्य धर्म हैं इस अर्थका कहनेहारा सुन्दर शब्द सामान्यवचन है. सामान्य वचनके साथ उपमानवाचक शब्दका समास होता है. यथा—**घन इव श्यामः घनश्यामः** मेघके समान श्याम (कृष्ण)

(१००९) शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम् ।

शाकपार्थिव इत्यादि समासरूप जो शब्द है उन समासरूपकी सिद्धिके निमित्त उपरपदका लोप हो तो ऐसा कहना चाहिये । यथा—**शाकप्रियः पार्थिवः** (शाक खड्ग वा मुष्टि जिसे प्यारे हैं ऐसा राजा) **शाकपार्थिवः** इसमें प्रिय शब्द उत्तरपदका लोप हुआ । इसी प्रकार **देवपूजको ब्राह्मणः=देवब्राह्मणः**=देवताओंका पूजक ब्राह्मण । इसमें पूजक उत्तरपद है उसका लोप हुआ.

(१०१०) नञ् । २ । २ । ६ ॥

नञ् सुपा प्राग्वत् ।

नञ् अव्ययका सुबन्तके साथ विकल्प करके समास हो ।

(१०११) नं लोपो नञः ६ । ३ । ७३ ॥

नञो नस्य लोपः स्यात् उत्तरपदे ।

उत्तरपद परे हुए सन्ते नञ्के नकारका लोप हो यथा—**न+ब्राह्मणः=अ+ब्राह्मण+सु=अब्राह्मणः**=जो ब्राह्मण न हो ब्राह्मणके सदृश हो (द्विजबन्धु) ।

(१०१२) तस्मान्नुडचि । ६ । ३ । ७४ ॥

लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याजादेर्नुट् । अनश्वः ।

नैकधेत्यादौ तु न-शब्देन सह सुप्सुपेति समासः ।

जिस नञ्के नकारका लोप (१०११) हुआ हो उससे परे जो अजादि पद हो तो उकसो नुट्का आगम हो। यथा—**न+अश्व=अ(१०११)+अश्व+अन्+अश्व=अनश्वः**= जो घोडासा होनेपर भी घोडा नही हैं वह । **न+एकधा-नैकधा** इस उदाहरणमें पूर्वपद नकार हैं उसका एकधाके साथ (९६९) समास हुआ है सो न ञित् नहीं है इससे उसका लोप (१०११) न हुआ इससे यहां अन् क्यों नहीं होता यह शंका दूर हो गई ।

---

[1] तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता । अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥

(१०१३) कुगतिप्रादयः । २ । २ । १८ ॥

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते ।

कु (३९९) शब्द तथा गतिसंज्ञक (२२२ । १०१४) शब्द तथा प्र (४८) आदि शब्द समर्थ साथ अर्थात् एकार्थीभावकी योग्यता जिसमें हो ऐसे सुबन्तोंके साथ नित्य समस्यमान हों । यथा–**कु+पुरुषः=कुपुरुषः । वा । कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः=** बुरा मनुष्य ।

(१०१४) ऊर्यादिच्विडाचश्च । १ । ४ । ६१ ॥

ऊर्यादयश्च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः ।

३९९ ऊरी (अङ्गीकार) यह शब्द जिस गणकी आदिमें हैं वह तथा च्वि (१३३३) प्रत्ययान्त, डाच् (१३३९) प्रत्ययान्त शब्दोंकी क्रियाके योगमें गति (२२२) संज्ञा हो । यथा **ऊरी+कृत्य=ऊरीकृत्य** (१०१३ । ९४२) अङ्गीकार करके **शुक्लीकृत्य=** श्वेतकरके **पटत्+पटत्+आ (डाच्)+कृत्य=पटपटाकृत्य** (२३७)=पटत् पटत् शब्द करके **सुपुरुषः=(१०१३ । ४८)** भला मनुष्य ।

(१०१५) प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया ।

प्र (४८) आदि उपसर्ग जब गतशब्दके अर्थमें हो अथवा गतके सदृश शब्दके अर्थमें हो तब उनका प्रथमान्तके साथ समास हो । यथा–**प्र+गतः आचार्यः=प्राचार्यः=** कुलपरंपरासे प्राप्त हुआ आचार्य । इससे प्र आदि उपसर्गके साथ सुबन्तका समास होता है वह प्रादिसमास कहाता है ।

(१०१६) अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया ॥

अति (४८) अथवा अतिके सदृश दूसरे क्रान्तार्थक (अतिक्रमण * अर्थवाले)

---

१ ऊरी ऊररी ताली आताली वेताली धूली धूसी शकला संसकला ध्वंसकला भ्रंसकला गुलुगुधा सजुष् फलफली बिवली आवली आलोष्ठी केवाली केवासी सेवासी पर्याली शेवाली वर्षाली अत्यूमसा वस्मसा मस्मसा मसमसा वौषट् श्रौषट् वषट् स्वाहा पाम्पी प्रादुस् श्रत् आविस् । इति ऊर्यादयः ।

१ * अभि उत प्रति इत्यादि उपसर्ग कान्तार्थक हैं उनका समास नीचे लिखे अनुसार होता है–अभिगतः मुखम्=अभिमुखः=सम्मुख गया । उद्गतो वेलाम्=उद्वेलः=जिसने समय चुका दिया ऐसा । प्रतिगतः अक्षि=प्रत्यक्षः–जो सामने हो ।

उपसर्ग हों तो द्वितीयान्त सुबन्तके साथ नित्य समासको प्राप्त हों । यथा-**अतिक्रान्तो मालाम्**=जिसने मालाको अतिक्रमण किया अर्थात् जो मालासे बढ़कर है।

(१०१७) एकविभक्ति चापूर्वनिपाते । १ । २ । ४४ ॥

विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनं न तु तस्य पूर्वनिपातः ।

विग्रहमें जिसकी नियत (एक) ही विभक्ति रहती हो उसकी उपसर्जन संज्ञा हो, परंतु उसका प्रयोग (९७०) से पूर्वपदके स्थानमें न हो । **अति+माला**-

(१०१८) गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य । १ । २ । ४८ ॥

उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तश्च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः ।

जो प्रातिपदिकका अन्त अवयव उपसर्जन संज्ञक गो शब्द हो अथवा स्त्रीप्रत्ययान्त (१३४२) हो तो ह्रस्व हो । **अतिमाल+सु**=(१०१६) में जो समासका विग्रह लिखा है उसका ऐसा रूप होता है । **अतिमालः**[1]=जो सुन्दरतामें मालासे बढ गया हो.

(१०१९) अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया ॥

क्रुष्ट (बोलने) अर्थमें अथवा उसके सदृश शब्दोंके अर्थमें अव अथवा अव के सदृश उपसर्ग (४८) आवें तो वह तृतीया सुबन्तके साथ समस्यमान हों यथा-**अवक्रुष्टः कोकिलया=अवकोकिलः**=कोकिलासे जो बुलाया गया (**परिणद्धो वीरुधा=परिवीरुत्**)

(१०२०) पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या ।

ग्लान (खेद) अर्थमें अथवा उसके सदृश शब्दोंके अर्थमें परि अथवा परिके सदृश कोई उपसर्ग (४८) हो तो उनका चतुर्थ्यन्तके साथ समास हो ।

यथा-**परिग्लानो अध्ययनाय=पर्यध्ययनः**=पढ़नेके लिये ग्लानियुक्त ।

(१०२१) निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या ॥

जो क्रान्त (गया) इस शब्दके अर्थमें अथवा इसके तुल्य किसी शब्दका अर्थ हो निर् अथवा निर्के सदृश उपसर्ग हों तो वे पञ्चम्यन्त सुबन्तके साथ समासको प्राप्त हों ।

---

१ मालामतिक्रान्तः अतिमालः, मालामतिक्रान्तम् अतिमालम्, मालामतिक्रान्तेन अतिमालेन, मालामतिक्रान्ताय अतिमालाय, इत्येवं रीत्या अतिक्रान्तशब्दस्यैव परिवर्तनं भवति, मालाशब्दस्तु सर्वत्र द्वितीयान्त एव तिष्ठतीति नियमविभक्तिकः स भवति ।

निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः=निर्+कौशाम्बिः=निष्कौशाम्बिः=जो कौशाम्बी नगरीसे निकला है । **उत्क्रान्ता कूलात् उत्कूला**=नदीके तीर अतिक्रमण कर आई हुई।

(१०२२) तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् । ३ । १ । ९२ ॥

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत्कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात् ।

(८४२) आदिमें जो ' कर्मणि ' इत्यादि सप्तम्यन्त पद हैं उनमें बोध्यतासे विद्यमान जो कुम्भआदि तिनके वाचक जो पद उनकी उपपद संज्ञा हो। **कुम्भ+कृ+अ** इस स्थितिमें कृसे परे अ (अण्) प्रत्यय है. सप्तम्यन्त कर्मणि (८४२) पदका निर्देश किया है, इसमें प्रकृति कृ है इसका अन्वय कुम्भके साथ है (किसको करता है कुंभको) इससे यह उपपद अर्थात् निकटका पद धातुसे अण् प्रत्यय होकर उसके कर्मकी उपपद संज्ञा हुई-

(१०२३) उपपदमतिङ् । २ । २ । १९ ॥

उपपदं समर्थेन नित्यं समस्यते । अतिङन्तश्चायं समासः ।

उपपद (१०२२) संज्ञक जो हो सो समर्थ अर्थात् एकार्थीभावयोग्य शब्दके साथ नित्य समासको प्राप्त होता है । और यह समास तिङन्तके साथ न हो । **कुम्भं करोति= कुम्भकारः**=(८४२ । ७९९ । २०२) कुम्हार ।

अतिङ् किम् ? तिङन्तके साथ समान न हो ऐसा क्यों कहा ? उत्तर यह कि-**मा भवान्भूत् । माङि लुङिति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम्**=इस उदाहरणमें मा (माङ्) है (४७०) से सप्तमीके निर्देश किये जानेके कारणसे माङ् उपपदसंज्ञक (१०२२) होता है भूत् तिङन्त है इससे समान न हुआ नहीं तो होजाता ।

गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः ।

कृदन्तसे परे सुप् प्रत्ययकी उत्पत्तिके पहले ही कृदन्तका गति, (२२२, १०१४) कारक (९४६) और उपपद (१०२२) के साथ समास होता है । तथा-**व्याजिघ्रतीति वि+आङ्+घ्रा=व्याघ्री**[1]=जो सूंघकर खाती है (शरनी) । इस इदाहरणमें (८४०)

---

१ 'घ्रा' धातुसे क प्रत्यय करनेपर आङ्का 'घ्र' शब्दके साथ और विशब्दका 'आघ्र' शब्दके साथ सुप्की उत्पत्तिसे पहलेही समास होता है, इससे 'व्याघ्र' शब्दको जातिवाचक होनेसे ङीष् प्रत्यय होता है । यदि घ्र या आघ्र शब्द सुबन्तकी अपेक्षा करे तो " स्वार्थ द्रव्य लिङ्ग संख्या कारक-प्रयुक्त कार्य क्रमसे ही होते हैं " इस नियमसे संख्या-कारक निमित्तक सुप्की ' उत्पत्तिसे पहले लिङ्गनिमित्तक स्त्री प्रत्यय ही होगा और वह भी स्त्री प्रत्यय भी घ्र या आघ्र शब्दको जातिवाचक न होनेसे टाप् ही होगा फिर आन्त 'आघ्रा' शब्दका वि शब्दके साथ समास करने पर व्याघ्रा शब्दको अदन्त न होनेसे ङीष् होगा ही नहीं, इसलिये सुप्की उत्पत्तिसे पहले ही समास मानना चाहिये ।

से घ्रासे परे क प्रत्यय करके (९२९) से घ्रा अन्तर्गत आकारका लोप होकर व्याघ्रशब्द सिद्ध हुआ, तब (१३७४) से ङीष् स्त्रीलिंग वाचक प्रत्यय उत्पन्न होनेके पहले समास हुआ । **अश्वेन क्रीता=अश्वक्रीती=**(१४१९) जो वस्तु घोडेको देकर खरीदी हो (गाय, भैंस आदि स्त्रीजातिके प्राणी) तृतीयासमाससे अश्वक्रीती होकर पीछे ङीन् स्त्रीलिंगका प्रत्यय लगा, यह उदाहरण कारकका है । **कच्छेन पिबाति कच्छ+पी=कच्छपी** (९२९, १३७४) उपपदके साथ कृदन्तका समास हुआ.

(१०२४) तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः । ५ । ४ । ८६ ॥

संख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य तत्पुरुषस्य समासान्तोऽच् स्यात् ।

जो तत्पुरुष (९८३) समासके आदिमें संख्यावाचक शब्द हो अथवा अव्यय हो और अन्तमें अंगुलिशब्द हो तो उसको **समासान्त** अच् प्रत्यय हो । यथा-**द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य=द्वि+अङ्गुलि+अ**[१०२४] **=द्व्यङ्गुल्**[२६०]**+अ+अम्=द्व्यङ्गुलम्** (दो अङ्गुलीके प्रमाणका-) **निर्गतम् अङ्गुलिभ्यो+निर्+अङ्गुलि+अ+अम्=निरङ्गुलम्**= जो अङ्गुलीसे निकल गया अर्थात् अङ्गुलीसे अधिक ।

(१०२५) अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः । ५ । ४ । ८७ ॥

एभ्यो रात्रेरच् स्यात् चात् संख्याव्ययादेः ।

अहन् (दिन,) सर्व (सब), एकदेश (एक भाग) संख्यात (गिना गया) और पुण्य (पवित्र) इन शब्दोंसे परे रात्रि शब्द आवे तो उससे परे **समासका अन्त अवयव** अच् प्रत्यय हो । सूत्रमें चकारसे यह विदित होता है कि, संख्या वाचक शब्द अथवा अव्यय इनमेंसे कोई रात्रि शब्दके आदिमें आवै तो समासमें अच् प्रत्यय हो ।

अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम् । सूत्रमें अहन् शब्दका ग्रहण द्वन्द्वसमासके निमित्त किया है कारण कि अहन्, रात्रि इन दोनों शब्दोंमें तत्पुरुष समास नहीं किन्तु द्वन्द्व होता है और उसमें अच् भी हो ऐसा जानना । **अहन+रात्रि+अ-**

(१०२६) रात्राह्नाहाः पुंसि । २ । ४ । २९ ॥

एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव ।

जिस द्वन्द्व वा तत्पुरुष समासका अन्त अवयव रात्र (१०२५) अथवा अह्न वा अह (१०२८ । ९८०) शब्द हो तो वह पुँल्लिग हो । यथा-**अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रः**=

---

१ इन दोनों प्रयोगोंमें क प्रत्यय होनेके उपरान्त समास होता है तब व्याघ्र आदि एकशब्द होकर बाघ आदि जातिके वाचक होते हैं इसनिमित्त ङीष् होता है और जो कि प्रत्ययके उपरान्त समास न होता तो सुप्की उत्पत्तिके पूर्व ही टाप् हो जाता । अश्वक्रीतीमें क्तप्रत्ययान्तके साथ समास होता है, सुप्की उत्पत्तिके पीछे नहीं यदि सुप्की उत्पत्तिके पीछे हो तो ' स्वार्थद्रव्यलिङ्गसंख्याकारकाणां क्रमिकत्वम् ' इस सिद्धान्तसे करकोपस्थितिसे पहले ही लिङ्गोपस्थिति होती है तो समासके विना करणपूर्वक न होनेसे ' क्रीतात्करणपूर्वात् । इस सूत्रकी प्रवृत्ति न होगी तो टाप् होजानेसे ' अश्वक्रीती ' रूप न बन सकेगा ' सुबुत्पत्तिसे पहले समास करनेसे बन जाता है ।

(३९९ । १२६) दिनरात। **सर्वरात्रः**=सारीरात । **संख्यातरात्रः**=गिनीरात (पहली दूसरी तीसरी आदि)

(१०२७) संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् ॥

जिसका पूर्वपद संख्यावाचक हो ऐसा रात्रशब्द नपुंसकलिङ्ग (१०२९) हो । यथा–**द्विरात्रम्** (१०२९)=दो रातका समूह । **त्रिरात्रम्** (१०२९)=तीन रातका समूह ।

(१०२८) राजाहःसखिभ्यष्टच् । ५ । ४ । ९१ ॥

एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् ।

राजन् (राजा); अहन् (दिन) सखि (मित्र) इन शब्दोंमेंसे कोई तत्पुरुष समासके अन्तमें हो तो तिसका अन्त्य अवयव टच् प्रत्यय हो । यथा–**परम+राजन्+अ (टच्)=परमराजः**(९८०)=मुख्य राजा ।

(१०२९) आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः । ६ । ३ । ६ ॥

महत आकारोऽन्तादेशः स्यात्समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे । महाराजः । प्रकारवचने जातीयर् । महाप्रकारो महाजातीयः ।

महत् (बडा) शब्दसे परे समानाधिकरण शब्द (समानार्थक) आवे अथवा जातीयर् प्रत्यय आवे तो महत् शब्दको आकार अन्तादेश हो ।

यथा–**महत्+राजन्=महाराजः**[१०२८।९८०]=बडा राजा । **प्रकारवचने जातीयर्** प्रकार अर्थके विषे **जातीयर्** प्रत्यय हो । **महत्+जातीयर्-महाजातीयः**=बडे प्रकारवाला ।

(१०३०) द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः । ६ । २ । ४७ ॥

आत्स्यात् ।

द्वि (दो) तथा अष्टन् (आठ) पदके उत्तरपद संख्यावाचक शब्द हो तो उसको आकार अन्तादेश हो परन्तु यदि बहुव्रीहि (१०३९) समास हो अथवा अशीति (अस्सीवाचक) शब्द परे हो तो न हो । यथा–**द्वौ च दश च द्वादश**–बारह । **अष्टन्+आ+विंशतिः=अष्टाविंशतिः** (२००)=अट्ठाइस ।

(१०३१) परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः । २ । ४ । २६ ॥

एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात् ।

उत्तरपदके लिङ्गके अनुसार द्वन्द्व (२०५९) तथा तत्पुरुष (९८३) समासका लिङ्ग हो । **कुक्कुटमयूर्यौ**=कुक्कुट और मोरनी । **मयूरीकुक्कुटाविमौ**=मोरनी और कुक्कुट ये हैं । **अर्धपिप्पली**=पीपलका आधा भाग । इनमें उत्तरपदके समान लिङ्ग हुए हैं ।

(१०३२) द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः ॥

द्विगुसमास (१००४) में तथ जिस समासका पूर्वपद प्राप्त, आपन्न अथवा अलम् हो तिसमें अथवा गतिसमास (१०१३) में लिंग उत्तरपदके समान हो. यह कहना चाहिये । यथा—**पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः** (११२० । ९५८) **पुरोडाशः**=पांच सिकोरेंमें संस्कार किया हुआ यज्ञके होमका शेष यजमानके खानेका भाग । इस उदाहरणमें कापाल शब्द नपुंसक है उसका लिङ्ग समासमें न होकर पुँल्लिङ्ग हुआ । इस उदाहरणमें तद्धित प्रत्ययका लुक् '**द्विगोर्लुगनपत्ये**' इस सूत्रसे होता है यह लघुमें नहीं सिद्धान्तमें है । **प्राप्तो जीविकाम्=प्राप्तजीविकः । आपन्नो जीविकाम् आपन्न=जीविकः**=जिसने जीविका प्राप्त की है. **अलं कुमार्यै अलंकुमारिः** (१०१८)=जो कुमारीके योग्य वा समर्थ है ॥

अत एव ज्ञापकात् समासः ।

इसमें अलंपूर्वसमासमें उत्तरपदके अनुसार लिंगका निषेधविधि जो ऊपर कहा है उसीके सामर्थ्यसे समास हुआहै, वह केवल उत्तरपदके अनुसार लिंगका निषेध विधि होनेके ऊमरसेही हुआ है, ऐसे समास होनेका दूसरा कोई प्रमाण नहीं है । **निष्कौशाम्बिः** (१०१८)= जो कोशांबी नगरीसे निकला है, यह गतिसमासका उदाहरण है ।

(१०३३) अर्धर्चाः पुंसि च । २ । ४ । ३१ ॥

अर्धर्चादयः पुंसि क्लीबे च स्युः ।

अर्धर्च आदिगण पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिंग हो ।

---

१ अर्धर्च गोमय कषाय कार्षापण कुतप कुणप कपाट शंख गूथ यूथ ध्वज कबन्ध पद्म गृह सरक कंस दिवस यूप अन्धकार दण्ड कमण्डलु मण्ड भूत द्वीप द्युत चक्र धर्म्म कर्म्म मोदक शतमान याव नख नखर चरण पुच्छ दाडिम हिम रजत सक्तु पिधान सार पात्र घृत सैन्धव औषध आढक चषक द्रोण खलीन पात्रीव (याचीर) षष्टिक वारबाण प्रोथ कपित्थ शुष्क शाल शील शुक्र शीधु कवच रेणु ऋण कपट शीकर मुशल सुवर्ण वर्ण पूर्व चमस क्षीर कर्ष आकाश अष्टापद मंगल निधान निर्यास जृम्भ वृत्त पुस्त वुस्त क्ष्वेडित शृङ्ग निगड खल मधु मूल मुकुल स्थूल शराब नाल वप्र विमान मुख प्रगीव शूल वज्र कटक कण्टक कर्पट शिखर कल्क नाट मस्तक वलय कुसुम तृण पंक कुण्डल किरिट कुमुद अर्बुद अंकुश तिमिर आश्रय भूषण इष्वास मुकुल वसन्त तडाग पिटक विटङ्क विडङ्ग पिण्याक माष कोष फलक दिन दैवत पिनाक समर स्थाणु अनीक उपवास शाक कर्पास विषाल चषाल खण्ड दर विपट रण बल मृणाल हस्त आर्द्र हल सूत्र ताण्डव गाण्डीव मण्डप पटह सौध योध पार्श्व शरीर देह फल छल पुर राष्ट्र बिम्ब अम्बर कुट्टिम मण्डल कुक्कुट कुडप ककुद खण्डल तोमर तोरण मञ्चक पञ्चक पुङ्ख मध्य बाल छाल वाल्मीक वर्ष वस्त्र वसु देह उद्यान उद्योग स्नेह स्तव स्तेन स्वर सङ्गम निष्क क्षेम शूक छत्र क्षत्र पवित्र यौवन कलह पालक वल्कल कुष्ठ विहार लोहित विषाण भवन अरण्य पुलिन दृढ आसन ऐरावत शूर्प तीर्थ लोमश तमाल लोह दण्डक शपथ प्रतिसर दारु धनुष मान वर्चस्क कूर्च्च तण्डक मठ सहस्र ओदन प्रवाल शकट अपराह्ण नीड शकल तण्डुल इत्यर्द्धर्चादिः ।

अर्द्धर्चः । अर्द्धर्चम् । एवं-ध्वज-तीर्थ-शरीर-मण्डप-यूप-देहा-ऽङ्कुश-कलश-पात्र-सूत्रादयः ।

अर्धर्चः (१०३४) अथवा **अर्द्धर्चम्** (ऋचाका आधा भाग) **ध्वज** (ध्वजा) **तीर्थ** (यात्राका स्थान प्रयागादि), **शरीर** (देह) **मण्डप** (मंडा), **यूप** (स्तंभ) **देह** (शरीर), **अङ्कुश** (अंकुश हाथीके हांकनेका), **कलश** (कलश), **पात्र** (बरतन), **सूत्र** (तागा) इत्यादि शब्द पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग होते हैं ।

(१०३४) सामान्ये[1] नपुंसकम् ॥

सामान्य अर्थकी विवक्षामें नपुंसकलिंग हो । यथा-**मृदु पचति**=वह कोमल रांधता है । इस उदाहरणमें मृदु सामान्य शब्द है विशेषलिंगघटित पदार्थको विशेषता नहीं इससे नपुंसक है । **प्रातः कमनीयम्**=प्रातःकाल मनोहर है, यहां भी पूर्ववत् जानना ।

॥ इति तत्पुरुषसमासः समाप्तः ॥

अथ बहुव्रीहिः समासः ।

(१०३५) शेषो बहुव्रीहिः । २ । २ । २३ ॥

अधिकारोऽयम् प्राग्द्वन्द्वात् ।

यहांसे प्रारम्भकर द्वन्द्वसमास (१०९९) के पूर्वतक यह अधिकार सूत्र है इसकी अनुवृत्ति होती है । इस सूत्रमें शेषपद तो (९८५ । १०३६) से अधिकृत होता है कारण कि द्वितीयासे लेकर सप्तमीतकका समास (९८६ । ९८८ । ९९० । ९९३) और ९९६ में कहा है । शेष प्रथमान्त ही रहता है परन्तु केवल प्रथमान्तहीके साथ समास नहीं होता औरोंके साथ भी होता है इसका कारण (१०३७) में कहेंगें ।

(१०३६) अनेकमन्यपदार्थे । १ । १ । १४ ॥

अनेक प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः ॥

समानाधिकरणवाले अनेक प्रथमान्त पद जो अन्यपद (प्रथमासे भिन्न) द्वितीयान्त आदि किसी पदके अर्थमें वर्तमान हो तो विकल्प करके समासको प्राप्त हो और जो समास हो उसकी बहुव्रीहिसंज्ञा हो ।

---

1 लिङ्ग विशेषकी अविवक्षामें नपुंसकलिंगका ही प्रयोग करना चाहिये ।

(१०३७) सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ । २ । २ । ३५ ॥

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् ।

सप्तम्यन्त और विशेषण बहुव्रीहिसमासमें पहले धरे जांय, यथा–**चित्रा गावोऽस्येति चित्रगुः**=जिसकी विचित्र गौ हैं । **कण्ठे+कालः**=जिसके कण्ठमें काला हो (शिव) । **अत एव ज्ञापकाद्व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः** । इस सूत्रमें सप्तम्यन्तका प्रयोग जो पूर्वस्थानमें कहा है उसकी शक्तिसे यह विदित होता हैं कि कहीं प्रथमाके सिवाय और विभक्त्यन्त पदोंका भी बहुव्रीहिसमास होता है । **कण्ठे+कालः–**

(१०३८) हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् । ३ । ६ । ९ ॥

हलन्तादद‍न्तात्सप्तम्या अलुक् ॥

जब समास संज्ञावाचक हो तब उत्तरपद परे रहते पदके अन्तमें हल् अथवा अकार हो तो उससे परे सप्तमीका लुक् (६९) न हो । यथा–**कण्ठेकालः** । **त्वचिसारः** जिसका सार त्वचामें हो (बांस) इस उदाहरणमें त्वच् शब्द हलन्त है उससे परे सप्तमीका ङि प्रत्यय हुआ उसका समासमें (७६९) से लुक् होता सो इस सूत्रसे न हुआ । बहुव्रीहि समासके उदाहरण–

प्राप्तम् उदकं यं=प्राप्तोदकः (ग्रामः) वह ग्राम, जिसे जल प्राप्त हुआ है । **(द्वितीयान्तबहुव्रीहिः)** ।

ऊढो रथो येन सः=ऊढरथः (अनड्वान्)=जिसने रथ वहन किया है (बैल) । **(तृतीयान्तबहुव्रीहिः)** ।

उपहृतः पशुः यस्मै=उपहृतपशुः (रुद्रः)=जिसके निमित्त पशु समर्पण किया है (महादेव) । **(चतुर्थ्यन्तबहुव्रीहिः)** ।

उद्धृतम् ओदनम् यस्याः=उद्धृतौदना (स्थाली)=जिससे भात निकाल लिया गया है (कसेरी) **(पञ्चम्यन्तबहुव्रीहिः)** ।

पीतम् अम्बरम् यस्य=पीताम्बरः (हरिः) जिसका वस्त्र पीला है (विष्णु) **(षष्ठ्यन्तबहुव्रीहिः)** ।

वीराः पुरुषा यस्मिन्=वीरपुरुषः (ग्रामः)=जिसमें वीरपुरुष हैं ऐसा ग्राम । **(सप्तम्यन्तबहुव्रीहिः)** । **(वीरपुरुषको ग्रामः १०२४)**

(१०३९) प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः ॥

प्र (४८) आदिसे धातुज (जो पद धातुसे उत्पन्न हुआ हो) सो समासको प्राप्त हो और समासमें उत्तरपदका लोप विकल्प करके हो । यथा–

प्रपतितं पर्णं यस्मात्=प्रपतितपर्णः । यहां उत्तरपदका लोप न किया । और जब लोप किया तो **प्रपर्णः**=जिसके सब पत्ते गिरपडे ऐसा वृक्ष । प्रसे परे पतित शब्दके समास करनेका आशय यह है कि पतित शब्द भी उत्तरपद कहलावे. नहीं तो लोप न होता

(१०४०) नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः ॥

नञ् (१०१०) से परे विद्यमानतावाचक शब्द आवे तो विकल्प करके समासको प्राप्त हो और जो समास किया तो विकल्प करके उत्तरपदका लोप हो ।

अविद्यमानः पुत्रो यस्य=अविद्यमानपुत्र. अथवा **अपुत्रः**=जिसके पुत्र न हो । इस उदाहरणमें विद्यमानपदका लोप हुआ है और समान होनेसे यह प्रयोजन निकला कि विद्यमान शब्द भी उत्तरपदत्वको प्राप्त हुआ ।

६ सू०

(१०४१) स्त्रियाः[1] पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियाँमपूरणीप्रियादिषु[3] । ६ । ३ । ४४ ॥

उक्तपुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिः । निपातनात्पञ्चम्या अलुक् षष्ठ्याश्च लुक् । तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः। गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः ।

जब समासमें समानाधिकरणस्त्रीलिंग उत्तरपदका हो और उसका पूर्वपद भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग हो और उससे परे ऊङ् (१३७७) स्त्री प्रत्ययकी प्राप्ति न हो ऐसा हो तो पूर्वपद पुंवद्भावको पाता है अर्थात् स्त्रीलिंग होनेपर भी पुँल्लिंग हो जाता है । परन्तु पूरण प्रत्ययान्त स्त्रीवाचक उत्तरपद परे हो तो, अथवा प्रियादि गणके शब्द उत्तरपद हों तो पूर्वपदको पुंवद्भाव न प्राप्त हो (उदाहरण) **चित्रा गावो यस्य सः=चित्रगुः**=जिसकी चितकबरी गाय हैं, इसमें चित्रा और गो यह दो शब्द हैं इनका एक विशेषण

---

१ प्रवृत्तिनिमित्त तुल्य होनेपर जो भाषितपुंस्क उससे परे ऊङ्का अभाव है जिसमें ऐसे स्त्रीवाचक शब्दका पुँल्लिङ्ग वाचक शब्दकी तरह रूप हो समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग उत्तरपद पर रहते किन्तु पूरणप्रत्ययान्त तथा प्रियादि परे हो तो न हो अर्थात् ।

२ भाषितः पुमान् प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये येन तस्मात्–कहा गया है पुंल्लिङ्ग प्रवृत्तिनिमित्तके एकतामें जिससे (शब्दोंकी) प्रवृत्तिका निमित्त क्या है ? उस शब्दका बाच्य अर्थ सो तुल्य (एक) प्रवृत्तिनिमित्त (अर्थ) में जो पुँल्लिङ्गको कहा है अर्थात् पुँल्लिंगमें जिस अर्थको कहता हो उसी अर्थको स्त्रीलिंगमें भी कहता हो सो। कहावे भाषितपुंस्क ।

३ प्रिया मनोज्ञा कल्याणी सुभगा भक्ति सचिवा स्वरा कान्ता क्षान्ता समा चपला दुहिता वामा अबला तनया ।

दूसरा पदार्थ है, गोशब्द स्त्रीलिंगवाचक हैं उसका समानाधिकरण पूर्वपद चित्रशब्दके साथ है सो भाषितपुंस्क चित्र शब्द स्त्रीलिंग हैं पर ऊङ् प्रत्यय इससे हो तो संभव नहीं क्योंकि चित्र शब्द ऊङ् प्रत्ययके प्रकृतित्वको नहीं प्राप्त हो सकता क्योंकि '**ऊङुतः**' इत्यादि सूत्रोंसे उकारान्त ही शब्दोंसे ऊङ्का विधान होता है तब (१०१८) से गो शब्दको उकार (२७९) होकर और पुंवाचकके सदृश चित्राका चित्र होकर **चित्रगुः** रूप हुआ अन्यथा 'चित्रागुः' ऐसा होता इसी प्रकार। **रूपवती भार्या यस्य=रूपवद्भार्यः**=जिसकी सुन्दर स्त्री हो। **अनूङ् किम्?** ऊङ् प्रत्यय न रहे तो, यह क्यों कहा? यदि यह न कहते तो—**वामोरूभार्यः**=जिस स्त्रीकी जङ्घा सुन्दर हो, इसमें ऊङ् प्रत्यय (१३८१) हुआ है इससे यहां पुंवद्भाव न हुआ।

(१०४२) अप्पूरणीप्रमाण्योः । ५ । ४ । ११६ ॥

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत् स्त्रीलिङ्गं तदन्तात्प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप् स्यात्।

पूरणार्थ प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग उत्तरपद हो अथवा प्रमाणी शब्द उत्तरपद हो तो बहुव्रीहि-समासका अन्त्य अवयव अप् प्रत्यय हो यथा—

कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः=कल्याणीपञ्चमाः रात्रयः=जिसकी पांचवीरात मंगलदायक है ऐसी रात्रियोंका समुदाय। इस उदाहरणमें पञ्चमीशब्द पूरणार्थक-प्रत्ययान्त है इससे कल्याणीशब्दको पुंवद्भाव न हुआ क्योंकि (१०४२) में कहा है कि पूरणप्रत्ययान्त परे रहते पुंवद्भाव न हो। **स्त्री प्रमाणी यस्य सः=स्त्रीप्रमाणः**=जिसे स्त्री प्रमाण है। **अप्रियादिषु किम्?** (१०४१) में प्रियादि गणके निषेध करनेका क्या कारण है? (उत्तर) इसका आशय यह है कि प्रिया आदि शब्द उत्तरपद रहते कल्याणी आदि शब्दोंको पुंवद्भाव न हो। यथा= **कल्याणीप्रियः**=जिसकी प्रिया मंगलयुक्त है, इसी प्रकार और भी जानो।

(१०४३) बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच् । ५ । ३ । ११६ ॥

स्वांगवाचिसक्थ्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् स्यात् ॥

जिस बहुव्रीहि समासके अन्तमें सचेतन शरीरके अवयववाचक सक्थि (जांघ), अक्षि (आंख) शब्दमेंका कोई हो तो उसका अन्त्य अवयव षच् प्रत्यय हो यथा--**दीर्घसक्थः**= जिसकी मोटी लम्बी जांघ है। **जलजाक्षी** (१३४९) जिसकी कमलसी आंखें है। **स्वांगात् किम्?** सचेतन शरीरके अवयववाचक सक्थि और अक्षि शब्दको क्यों कहा? (उ०) **दीर्घसक्थि शकटम्**=जिस गाडीका फड लम्बा हो यहां षच् प्रत्यय न हुआ हो कारण कि शरीरका अवयव नहीं है। **स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः। अक्ष्णोऽदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच्।** बांसकी छडी जिसमें बडी बडी आंखें अर्थात् गांठोंपर चिन्ह है यहां (१०६९) से अच् हुआ षच् नहीं हुआ है।

(१०४४) द्वित्रिभ्यां षः मूर्ध्नः । ५ । ४ । ११५ ॥

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद्बहुव्रीहौ ।

जब बहुव्रीहिसमासके अन्तमें द्वि अथवा त्रिसे परे मूर्धन् (माथा) शब्द आवे तो समासका अन्त अवयव ष प्रत्यय हो ।

यथा–**द्विमूर्द्धः**९८०)=जिसके दो शिर हों । **त्रिमूर्द्धः**=जिसके तीन शिर हों ।

(१०४५) अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः । ५ । ४ । ११७ ॥

आभ्यां लोम्नोऽप्स्याद्बहुव्रीहौ ।

जिस बहुव्रीहिसमासमें अन्तर् अथवा बहिष् शब्दसे परे लोमन् शब्द आवे तो उसके अन्तमें अप् प्रत्यय हो 'अ' शेष रहता है ।

यथा–**अन्तर्+लोमन्+अ=अन्तर्+लोम्+अ+सु–अन्तर्लोमः** } जिसमें लोम भीतर हों ।

बहिर्+लोमन्+अ=बहिर्+लोम्+अ+सु=बहिर्लोमः } जिसके लोम बाहर हों ।

(१०४६) पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः । ५ । ४ । १३८ ॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादस्य लोपः ।

हस्ति[1] (हाथी) आदि शब्दोंके विना उपमावाचक शब्दसे परे पाद शब्द आवे तो उसके अन्तका लोप हो ।

यह लोप भी समासका अन्तावयव होता है ऐसा जानना, नहीं तो **व्याघ्रस्य इव पादौ अस्य=व्याघ्रपाद** (१०४६)+**सु** (१९९) इस समासमें द अन्तर्गत अका लोप होकर उससे परे (१०५४) से कप् प्रत्यय हो जायगा । इसी प्रकार (१०४७।१०४८। १०४९) वे सूत्रमें भी जानना **व्याघ्रपाद्**=जिसके पैर व्याघ्रके समान हों ।

अहस्त्यादिभ्यः किम् ? हस्ति आदिको छोडकर ऐसा क्यों कहा ? (उ०) **हस्ति-पाद=हस्तिपाद+सु=हस्तिपादः**=जिसका पद हाथीके पदके समान हो । इसी प्रकार **कुसूलपादः**–जिसका पैर नाजके कुठले समान हो । यहां अन्तका लोप न हुआ ।

द्वौ पादौ यस्य–

---

१ हस्तिन् कुद्दाल अश्व कशिक करुत कटोल कटोलक गण्डोल गण्डोलक कण्डोल कण्डोलक अजकपोत जाल गण्ड महिला दासी गणिका कुसूल । इति हस्त्यादिः ।

(१०४७) संख्यासुपूर्वस्य । ५ । ४ १४० ॥

लोपः स्यात् ।

संख्या शब्द अथवा सुसे परे पादशब्द आवे तो उसके अन्तका लोप (१०४३) हो।
यथा-**द्वि+पाद+द्विपाद्+स्+द्विपाद्-त्**[९६५] =दो पैरवाला.
सु+पाद्+सु=सुपाद्-त्[९६५] =जिसके पैर अच्छे हों.

(१०४८) उद्विभ्यां काकुदस्य । ५ । ४ । १४८ ॥

लोपः स्यात् ।

उद् तथा वि से परे काकुद (तालु) शब्द आवे तो उसके अन्तका लोप हो ।
यथा-**उद्+काकुद्=उत्काकुद्-त**[९६५]=जिसका तालु उंचा हो ।
वि+काकुद=विकाकुद+त्[९६५] =जिसका तालु बिगडा हो.

(१०४९) पूर्णाद्विभाषा । ५ । ४ । १४९ ॥

पूर्ण शब्दसे परे काकुद (१०४८) शब्द आवे तो उसके अन्तका विकल्प करके लोप हो ।
पूर्ण+काकुद[१०४८]**+=पूर्णकाकुद् (अ०) पूर्णकाकुतः**-जिसको पूर्ण तालु हो.

(१०५०) सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः । ५ । ४ । १५० ॥

सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृन्मित्रम् । दुर्हृदमित्रः ।

सुहृद् तथा दुर्हृद् शब्द मित्र अमित्र वाचक निपायन किये हैं इस उच्चारणसे ही विदित होता है कि हृदय शब्दको हृद् आदेश हो और वह समासका अन्त्य अवयव कहलावे। अन्तावयव मनानेका यह फल है कि (१०५४) वां कप् प्रत्ययका सूत्र न लगे ।

सु+हृदय=सु+हृद्=सुहृद्=मित्र.

दुर्+हृदय=दुर्+हृद्=दुर्हृद्=शत्रु.

(१०५१) उरःप्रभृतिभ्यः कप् । ५ । ४ । १५१ ॥

जिस समासके उत्तरपदमें उरस्आदिगणमेंका कोई शब्द हो तो उससे परे कप् (क) प्रत्यय हो, समासका अन्तावयव हो । **उरस् । सर्पिस् । उपानह् । पुमान् । अनड्वान् । पयः । नौः । लक्ष्मीः । दधि । मधु । शालि । अर्थान्नञः** । इति उरसादि ।

(१०५२) कस्कादिषु च । ८ । ३ । ४८ ॥

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु सः । इति सः ।

कस्क[1] आदिगणमें इण् प्रत्याहारसे परे विसर्ग आवे तो उसके स्थानमें ष् आदेश हो, इण्के दूसरे वर्णसे परे विसर्ग आवे तो उसके स्थानमें स् हो ।

व्यूढ+उरः (स्)+क[१०५१]**+ः=व्यूढोरस्कः**=बडी छातीवाला ।
प्रिय+सर्पिः (स्)+क[१०५१]**+ः=प्रियसर्पिष्कः**[१०५२]=जिसको घी प्रिय है.

(१०५३) निष्ठा । २ । २ । ३६ ॥

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् ।

जिस शब्दके अन्तमें निष्ठा (८६७) प्रत्यय हो तो वह शब्द बहुव्रीहि समासके विषे पूर्वमें धराजाय ।

यथा—**युक्तयोगः**=जो योगाभ्यासमें हो.

(१०५४) शेषाद्विभाषा । ५ । ४ । १५४ ॥

अनुक्तसमासान्ताद्बहुव्रीहेः कब्वा ।

जिस बहुव्रीहिसमाससे परे समासान्तका विधान न हुआ हो उसके आगे कप् प्रत्यय विकल्प करके अन्तावयव हो ।

महा+यशस्+क+ः महायशस्कः (वा) महायशाः=जिसका यश बहुत है,

इति बहुव्रीहिसमासः समाप्तः ॥

अथ द्वन्द्वसमासः ।



(१०५५) चार्थे द्वन्द्वः । २ । २ । २९ ॥

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः ।

चकारके अर्थमें जो अनेक सुबन्त वर्तमान हों वे विकल्प करके समासको प्राप्त हों और उनके समासका नाम द्वन्द्व है ।

समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः ।

चकारके चार अर्थ हैं उनको कहते हैं—

१ समुच्चय, २ अन्वाचय, ३ इतरेतरयोग और ४ समाहार ।

तत्रेश्वरं गुरुं च भजस्वेति परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः ।

अनेक पदार्थ जो परस्पर निरपेक्ष हों उनका एक पदार्थमें (अन्वयसम्बन्ध) होना

---

१ कस्कः कौतस्कुतः भ्रातुष्पुत्रः शुनस्कर्णः सद्यस्कालः सद्यस्क्रीतः सद्यस्कः कांस्कान् सर्पिष्कुण्डिका धनुष्कपालम् बर्हिष्पलम् यजुष्पात्रम् अयस्कान्तः तमस्काण्डः अयस्काण्डः मेदस्पिण्डः भास्करः । आकृतिगणोऽयम् ।

इसका नाम **समुच्चय** है। यथा-**ईश्वरं गुरुञ्च भजस्व**= ईश्वर और गुरुको भज। इस उदाहरणमें ईश्वर और गुरुपद परस्पर निरपेक्ष हैं कोई किसीकी आकाङ्क्षा नहीं रखता और उनका सन्बन्ध 'भजस्व' इस क्रियाके साथ किया है।

भिक्षामट गाञ्चानयेति। अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः। एक पदार्थका मुख्य और दूसरे पदार्थका अमुख्य सन्बन्ध जो किसी दूसरे पदार्थमें हो तो उसे **अन्वाचय** कहते हैं। यथा-**भिक्षामट गाञ्चानय**=भिक्षाको जाओ और गायको लाओ। इस उदाहरणमें 'अट' जो क्रिया है उसका भिक्षाके साथ मुख्य अन्वय है और गायके साथ अमुख्य अन्वय है कारण कि इसका मुख्य कार्य तो भिक्षा है और गौ जो कहीं मार्गमें मिले तो लाना, नहीं तो नहीं।

अनयोरसामर्थ्यात् समासो न। समुच्चय तथा अन्वाचयमें सामर्थ्य न होनेसे समास नहीं होता, कारण कि इन शब्दोंका आपसमें सीधा सम्बन्ध नहीं है (९६३)

धवखदिरौ छिन्धीति मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः। धवश्च खदिरश्च धवखदिरौ छिन्धि=धव और खैरके वृक्षको साथ ही काटो, इस उदाहरणमें जो दोनोंका साथ छेदनरूप क्रियामें सम्बन्ध है उसे **इतरेतरयोग** कहते हैं, कारण कि इसका यह अर्थ है कि खैरके साथ धवको वा धवके साथ खैरको काटो परन्तु दूसरेके बिना एकको मत काटो।

संज्ञापरिभाषमिति समूहः समाहारः=अनेक पदार्थोंके समूहको समाहार कहते हैं। यथा-**संज्ञा च परिभाषा च संज्ञापरिभाषम्**=संज्ञा और परिभाषाका समूह,

(१०५६) राजदन्तादिषु परम्। २। २। ३१॥

एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात्॥

राजदन्त आदिगणमें जिसका पूर्व प्रयोग (९७०) होना चाहिये उसका प्रयोग उत्तरपदके स्थानमें हो। यथा-**दन्तानां राजा="दन्तराजः"** (९९३) से प्राप्त हुआ, परन्तु यह न लगकर-**राजदन्तः** (दातोंका राजा) यह रूप हुआ।

---

१ राजदंत। अग्रेवणम्। लिप्तवासितम्। नग्नमुषितम्। सिक्तासंमृष्टम्। भृष्टलुञ्चितम्। अवक्लिन्नपक्वम्। अर्पितोप्तम्। उप्तगाढम्। उलूखलमुसलम्। ताण्डुलकिण्वम्। दृषदुपलम्। आरग्वायनबन्धकी। चित्ररथबह्लीकम्। अवन्त्यश्मकम्। शूद्रार्यम्। स्नातकराजानौ। विष्वक्सेनार्जुनौ। अक्षिभ्रुवम्। दारगवम्। शब्दार्थौ। धर्मार्थौ। कामार्थौ। अर्थशब्दौ। अर्थधर्मौ। अर्थकामौ। वैकारिमतम्। गोजवाजम्। गोपालधानीपूलासम्। पूलासककुरण्डम्। स्थूलपूलासम्। उशीरबीजम्। जिज्ञास्थि। सिञ्जास्थम्। चित्रास्वाती। भार्यापती। दम्पती। जम्पती। जायापती। पुत्रपती। पुत्रपशू। केशश्मश्रु। शिरोबीजम्। शिरोजानु। सर्पिर्मधुनी। मधुसर्पिषी। आद्यन्तौ। अन्तादी। गुणवृद्धी। द्विगुणा। आकृतिगणोऽयम्। धर्मादिगणस्तु राजदंताद्यन्तर्गत एव-धर्मादिगण का समावेश राजदन्तादि गणमें है।

(१०५७) धर्मादिष्वनियमः ॥

धर्मादिगणमें पूर्व प्रयोगका कोई नियम नहीं है । यथा–**अर्थधर्मौ.** (अर्थ और धर्म) अथवा **धर्मार्थौ** (धर्म और अर्थ) इत्यादि । **धर्मादिगणस्तु राजदन्ताद्यन्तर्गत एव**। धर्मादिगण राजदन्तादिगणके भीतर है ।

(१०५८) द्वंद्वे घि । २ । २ । ३२ ॥

द्वन्द्वे घिसञ्ज्ञं पूर्वं स्यात्।

द्वन्द्वसमासमें घि (१९०) संज्ञक शब्दका पूर्वपदके स्थानमें प्रयोग हो । यथा–**हरिहरौ**=विष्णु तथा शिव । इसमें घिसंज्ञक हरिका पूर्वयोग हुआ है ।

(१०५९) अजाद्यदन्तम् । २ । २ । ३३ ॥

इदं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात्।

जिस शब्दके आदिमें अच् हो और अन्तमें अकार हो सो द्वन्द्वसमासमें पूर्वपदके स्थानमें प्रयुक्त हो । यथा–**ईशकृष्णौ**=शिव तथा कृष्ण ।

(१०६०) अल्पाच्तरम् । २ । २ । ३४ ॥

जिस शब्दमें थोडे अच् हों वह शब्द द्वन्द्वसमासमें पूर्वपदके स्थानमें धरा जाय । यथा—**शिवकेशवौ**–शिव तथा कृष्ण ।

(१०६१) पिता मात्रा । १ । २ । ७० ॥

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते।

समासमें मातृशब्दके साथ पितृशब्द आवे तो उसमें विकल्पकरके पितृशब्द शेष रहे । यथा–**माता च पिता च पितरौ** (अथवा) **मातापितरौ**=माता और पिता ।

(१०६२) द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् । २ । ४ । २ ॥

एषां द्वन्द्व एकवत्।

प्राणी (जीव) तूर्य (बाजा) और सेना (फौजी) इन तीनोंके अवयववाचक शब्द एकवचनान्त हों ।

पाणिपादम्=हाथ पैर (प्राणीका अवयववाचक)

मार्दङ्गिकपाणविकम्=मृदंग तथा ढोलके बजानेवाले (बाजा)

रथिकाश्वारोहम्=रथ और घोडेके चढनेहारे (सेनाङ्ग)

(१०६३) द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे । ५ । ४ । १०६ ॥

द्वन्द्वसमासके अन्त अवयव चवर्ग, द, ष्, अथवा ह् हो तो समाहारवाचक समासमें उनसे परे टच् प्रत्यय हो । **वाक् च त्वक् च=**

वाच्+त्वच्+अ+अम्=वाक्त्वचम्=वाक् और त्वक् इन्द्रियका समूह.

त्वच्+स्रज्+अ+अम्=त्वक्स्रजम्=वल्कल और मालाका समूह.

शमी+दृषद्+अ+अम्=शमीदृषदम्=शमी और पत्थरका समुदाय.

वाक्+त्विष्+अ+अम्=वाक्त्विषम्=वाणी और दीप्तिका समूह.

छत्र+उपानह्+अ+अम्=छत्रोपानहम्=छत्री और जूतोंका समुदाय.

समाहारे किम् ? समाहारवाचक समासमें क्यों कहा ? **प्रावृट्शरदौ**=वर्षा और शरद् ऋतु । **प्रावृट्+शरद्+औ=प्रावृट्शरदौ** । इसमें समाहार न होनेसे टच् प्रत्यय न हुआ ।

इति द्वन्द्वसमासः समाप्तः ॥

अथ समासान्तप्रकरणम् ।

(१०६४) ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे । ५ । ४ । ७४ ॥

अ अनक्षे इति च्छेदः । ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवः । अक्षे या धूस्तदन्तस्य न ।

ऋच् (वेदकी ऋचा), पुर् (नगर), अप् (जल), धुर् (भार) और पथिन् (मार्ग), यह शब्द जिस समासके अन्तमें हों तिसका अन्त अवयव अ प्रत्यय हो परन्तु जिस समासके अन्तमें अक्ष (पहिये) की धुरीमें धुर् शब्द हो उसका अन्त अवयव ' अ ' प्रत्यय न हो ।

अर्ध+ऋच्+अः+अर्धर्चः=ऋचाका आधा.

विष्णु+पुर्+अ+अम्=विष्णुपुरम्=

विमल+अप्+अ+अम्=विमलापम् **(सरः)** निर्मल जलवाला सरोवर.

राज+धुर्+अ+आ[१३४२]=राजधुरा=राजसम्बन्धी भार.

धुर् शब्दका अक्ष (गाडी) के साथ सम्बन्ध हो तब-

अक्ष+धुर्+सु[२२९, ६५२।१११]=अक्षधूः=पहियेकी धुरी.

दृढ+धुर्+सु+[६२५।१११]दृढधूः (अक्षः)=जिस पहियेकी धुर् दृढ हो.

सखि+पथिन्+अ+सखिपथः (देशः)=जिस देशका मार्ग मित्र हो.

रम्य+पथिन्+अ+ः=रम्यपथः(देशः)=जिस देशका मार्ग रमणीय हो.

(१०६५) अक्ष्णोऽदर्शनात् । ५ । ४ । ७६ ॥

अचक्षुःपर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात् समासान्तः ।

अक्षिन् शब्द जब आंख वाचक न हो तब समासके विषे उससे परे अच् **(अ)**

---

१ लोकमें नपुंसकलिंग बोलनेका व्यवहार है इससे अम् प्रत्यय हुआ ।

प्रत्यय हो । **गवामक्षीव=गवाक्षः**=जो गौके नेत्रतुल्य हो (झरोखा) यथा-**गो+अक्षिन्+अ+ः गवाक्षः** (२९ । ९८०) यहां अक्षिका अर्थ आंख नहीं किन्तु उसके सदृश है इस कारण चक्षुका पर्याय नहीं हो सकता.

(१०६६) उपसर्गादध्वनः । ५ । ४ । ८५ ॥

प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः ॥

उपसर्ग (४८) से परे अध्वन् (मार्ग) शब्दसे परे समासका अन्त अवयव अच् प्रत्यय हो । यथा-**प्र+अध्वन्+अ+ः=प्राध्वः** (९८०) (**रथः**) जो मार्गमें पहुँचा हो अर्थात् रथ ।

(१०६७) न पूजनात् । ५ । ४ । ६९ ॥

पूजनार्थात् परेभ्यः समासान्ता न स्युः । स्वतिभ्यामेव ।

स्तुतिवाचक शब्दसे परे जो शब्द हैं उनसे परे समासान्त रूप तद्धित प्रत्यय (१०२८) न हों । यथा-**सु+राजन्+सु**[१६९] **=सुराजा**[१९७]=अच्छा राजा । **अति+राजन्+सु=अतिराजा** सबसे श्रेष्ठ राजा ॥

इति समासान्तप्रकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

अथ तद्धितप्रकरणम् ।

(१०६८) समर्थानां प्रथमाद्वा । ४ । १ । ८२ ॥

इदं पदत्रयमधिक्रियते प्राग्दिश इति यावत् ।

इस सूत्रके तीनों पदोंका अधिकार (१२८९) सूत्रके पूर्वतक होता है ।

(१०६९) अश्वपत्यादिभ्यश्च[१] । ४ । १ । ८४ ॥

एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ।

अष्टाध्यायीके क्रमसे (१२०४) वेंके पूर्वके पृथक् पृथक् जो प्रत्यय हैं इनके अर्थमें अश्वपति आदि गणके शब्दोंसे परे अण् प्रत्यय हो । यथा-**अश्वपति+अ (अण्)**-

(१०७०) तद्धितेष्वचामादेः । ७ । २ । ११७ ॥

ञिति णिति च तद्धिते परेऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात् ।

ञित् अथवा णित् तद्धित प्रत्यय परे रहते अचोंके आदि अच्को वृद्धि हो ।

---

१ अश्वपति ज्ञानपति शतपति धनपति गणपति स्थानपति यज्ञपति राष्ट्रपति कुलपति गृहपति धान्यपति धन्वपति बन्धुपति धर्मपति सभापति प्राणपति क्षत्रपति । इत्यश्वपत्यादिः ।

यथा -अश्वपति+अ=आश्वपत्+अ=आश्वपत (१३६) से प्रातिपदिकसंज्ञा हुई तब आश्वपत+अम्=आश्वपतम्=अश्वपति राजाका सन्तानआदि.
गणपति+अ=गाणपत+अम्=गाणपतम्=गणेशजीका सन्तानआदि.

(१०७१) दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः । ४ । १ । ८५ ॥

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यात् । अणोऽपवादः ।

दिति अदिति और आदित्य तथा पतिशब्द उत्तरपद हों जिनके उन शब्दोंसे परे ण्य (य) प्रत्यय हो और (१२०४) के पूर्व जो पृथक्पृथक् प्रत्यय आते हैं तिनके अर्थमें हो । यह अण् प्रत्ययका अपवाद है.

दितेः अपत्यं=दिति+य=दैत्यः+ =दैत्यः=दितिका पुत्र.

अदितेःअपत्यादि=अदिति+य आदित +य=आदित्य+ः=आदित्यः अदितिका पुत्र इत्यादि । आदित्यस्यापत्यादि=आदित्य+य=

हलो यमां यमि लोपः । ८ । ४ । ६४ ॥

इति यलोपः ।

आदित्यः । सूर्यके पुत्र इत्यादि ।

प्रजापति+य=प्राजापत्+य=प्राजापत्य+ः=प्राजापत्यः=प्रजापतिका पुत्र इत्यादि.

(१०७२) देवाद्यञञौ ॥

देव शब्दसे परे प्राग्दीव्यतीय अर्थमें यञ् (य) अथवा अञ् (अ) प्रत्यय हो ।

देव+य=दैव्यम्
देव+अ=दैवम् } जो देवसे उत्पन्न हुआ.

(१०७३) बहिषष्टिलोपो यञ्च ॥

" ईकक् च ॥

बहिष् शब्दकी टि (९२) का लोप हो और इससे परे प्राग्दीव्यतीय अर्थमें यञ् (य) और ईकक् (ईक) प्रत्यय हो ।

यथा—बह्+य=बाह्य+ःबाह्यः=जो बाहर हो.
बह्+इक=

(१०७४) किति च । ७ । २ । ११८ ॥

किति तद्धितेऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात् ।

कित् तद्धित प्रत्यय परे हुए सन्ते अचोंके मध्यमें आदि अच्को वृद्धि हो । बा+आहीक =बाहीकः=जो बाहर हो.

(१०७५) गोरजादिजादिप्रसंगे यत् ॥

गोशब्दसे परे अजादि प्रत्यय प्राप्त हुआ हो तो उसे बाधकर यत् (य) प्रत्यय हो ।

गोः अपत्यादि=गो+य=गव्+य+अम्=गव्यम्=गायसे उत्पन्न होनेवाली वस्तु ।

(१०७६) उत्सादिभ्योऽञ् । ४ । १ । ८६ ॥

उत्सआदि गणसे परे अञ् (अ) प्रत्यय हो ।

उत्स+अ=औत्स =उत्सका पुत्र

॥ इत्यपत्यादिविकारान्तार्थाः प्रत्ययाः ॥

इसप्रकार अपत्यादि (१०७८) विकारान्त (११९६) अर्थात् सन्तान अर्थसे विकार अन्ततकके प्रत्यय पूर्ण हुए ॥

(१०७७) स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् । ४ । १ । ८७॥

'धान्यानां भवने०' इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्स्नञौ स्तः ।

इस सूत्रसे आरंभकर (१२९०) तक जितने अर्थ गिनाये हैं, उन अर्थोंमें स्त्री तथ पुंस् शब्दसे परे क्रमसे नञ् (न) और स्नञ् (स्न) प्रत्यय हों ।

स्त्री+न=स्त्रैण (१०७० । १९७)+ः=स्त्रैणः=स्त्रीमें जो अतिप्रेमी हो ।

पुंस् स्न=पौंस्+स्नः=पौंस्नः=पुरुषमें जो अतिप्रेमी हो इत्यादि ।

(१०७८) तस्यापत्यम् । ४ । १ । ९२ ॥

षष्ठयन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः ।

जो षष्ठयन्त पदमें सन्धि हुइ हो तथा तद्धित प्रत्ययके अर्थके साथ एकार्थीभाव हो तो उसमें परे अपत्य अर्थमें जो प्रत्यय कहे हैं और कहे जायँगे वे हों ।

(१०७९) ओर्गुणः ६ । ४ । १४६ ॥

उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते ।

तद्धित प्रत्यय परे हुए संते उवर्णान्त भसंज्ञक (१८९) को गुण हो ।

उपगोः अपत्यम्=उपगु=अ=औपगव =उपगु ऋषिका पुत्र.

इसी प्रकार आश्वपतः (१०७०।२६०) अश्वपतिका पुत्र । दैत्यः=दितिका पुत्र औत्सः=उत्सका पुत्र । स्त्रैणः (१०७०।२६) स्त्रीका पुत्र.

पौंस्नः=पुरुषका पुत्र.

---

१ उत्स महानस पृथ्वी अनुष्टुभ् उदस्थान मध्यंदिन पाञ्चालदेव मदपान महाप्राण धेनु जनपद भरत उदस्थान देशे बृहत् इन्द्रावसान 'ग्रीष्मादयश्छन्दसि' बकर तरुण पंक्ति उशीनर पृषदंश महत् उष्णिह् बिनद तलुन जगती ग्रीष्म भल्लकीय सत्वत् ककुभ महानद वष्कयासे त्रिष्टुप् पीलुकुण रथन्तर कुरु सुवर्ण

(१०८०) अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् । ४ । १ । १६२ ॥

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात् ॥

संतानरूप करके वक्ताके इच्छाविषे जो पौत्रादि सो गोत्रसंज्ञक हों।

(१०८१) एको गोत्रे[१] । ४ । १ । ९३ ॥

गोत्रे एक एवापत्यप्रत्ययः स्यात् ॥

जब गोत्रसंज्ञक प्रत्ययकी इच्छा हो तो केवल एक ही प्रत्यय हो । यथा--**उपगोर्गोत्रापत्यम्=औपगवः**=उपगुका पौत्र अथवा प्रपौत्र आदि संतान । जो यह एक प्रत्ययका नियम न करते तो सब मिलकर अलग अलग (९९) प्रत्यय लग जाते।

(१०८२) गर्गादिभ्यो यञ्[२] । ४ । १ । १०५ ॥

गोत्रापत्ये ।

गोत्र (१०८०) रूपसंतान अर्थमें गर्गआदि गणसे परे यञ् प्रत्यय हो । **गर्ग+य=गार्ग्यः** (१०७०, २६०)=गर्गका पौत्र अथवा प्रपौत्र आदि संतान । इसी प्रकार **वत्स+य=वात्स्यः**=वत्सका पौत्र अथवा संतान।

---

१ अपत्य तीन प्रकारका है-अपत्य, गोत्रापत्य और युवापत्य । जो अपने अव्यवधानसे होते हैं वे पुत्रादि 'अपत्य ' संज्ञासे कहे जाते हैं । और जो अपत्यसे उत्पन्न होते हैं वे पौत्रादि 'गोत्रापत्य' नामसे कहे जाते हैं। और जो पिता आदिकी जीवित दशामें पौत्रके पुत्रादि हैं वे " युवापत्य " संज्ञासे कहे जाते हैं । वहाँ गोत्रापत्यमें एक ही प्रत्यय होता है अर्थात् पौत्रके पीछे फिर अपत्यार्थक प्रत्यय नहीं होता । जैसे ' गर्ग ' शब्दसे गोत्राप्रत्यमें यञ् प्रत्यय करनेपर " गार्ग्यः" ऐसा रूप होता है अब इस 'गार्ग्य' शब्दसे और कोई दूसरा अपत्यार्थक प्रत्यय नहीं होता किन्तु ' गार्ग्य' के पुत्र और पौत्र आदि सभी ' गार्ग्य' इसी शब्दसे कहे जायँगे ।

२ गर्ग	शक	शंकु	तनु	पर्णवल्क	अश्मरथ	दल्भ
वत्स	एक	लिंग	तरुक्ष	अभयजात	शर्कराक्ष	चेकित
बाजासे	धूम	गुहलु	तलुक्ष	वैरोहित	पूतिमाष	किकिदिसित
संस्कृति	अवट	मन्तु	तण्ड	वृषगण	स्थुरा	देवहू
अज	मनस्	मङ्क्षु	वतण्ड	रहूगण	अरारक	इन्द्रहू
व्याघ्रपाद्	धनंजय	अलिगु	कपि	शांडिल	एलाक	एकलू
विदभृत्	वृक्ष	जिगीषु	कत	चणक	पिंगल	पिप्पलू
प्राचीनयोग	विश्वावसु	मनु	कुरुकत	चुलुक	कृष्ण	बृहदग्नि
अगस्ति	जरमाण	तन्तु	अनडुह	मुद्गल	गोलन्द	सुलोहिन्
पुलस्ति	लोहित	मनायी	कण्व	मुसल	उलूक	सुलोमिन्
चमस	संशित	सूनु	शकल	जमदग्नि	तितिश	उक्थ
रेभ	बभ्रु	कथक	गोकक्ष	पराशर	भिषज्	वर्णक
अग्निवेश	वल्गु	कंथक	अगस्त्य	जातूकर्ण	भिष्णज्	कुटीगुदतिगर्गादिः
शंख	मण्डु	ऋक्ष	कुंडिनी	महित	भडित	
शठ	गण्डु	वृक्ष	याज्ञवल्क	मंत्रित	भंडित	

(१०८३) यञञोश्च । २ । ४ । ६४ ॥

गोत्रे यद्यञन्तमञन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् ।

गोत्र (१०८०) रूप सन्तान अर्थमें जो यञन्त तथा अञन्त शब्द उनका अवयव जो यञ् (१०८२) तथा अञ् (१०७६) उसका लुक् हो जब गोत्ररूप अर्थमें यञ् प्रत्यय सम्बन्धी बहुवचन हो परंतु जो गोत्रप्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग हो तो न हो । यथा–**गर्ग+य=गार्ग्य** (१०७०।२६०) सन्तानमें यञ् प्रत्यय हुआ है तो सन्तानका बहुवचन करनेकी इच्छा है तब य (यञ्) प्रत्ययका लुक् हुआ तब **गार्ग** रूप हुआ यञ्के कारण (१०७०) से वृद्धि हुई फिर उसके लोप होनेसे नैमित्तिक वृद्धिका भी नाश होगया तब गर्ग रूप रहा । बहुवचन करना है तो **गर्ग+अस्** (जस्)=**गर्गाः**=गर्गका पौत्र अथवा प्रपौत्र आदि सन्तान । इसी प्रकार **वत्स+अञ्=वत्साः**=वत्सका पौत्र प्रपौत्र इत्यादि संतान । **तत्कृते किम् ?** उसका सम्बन्धी बहुवचन करना हो तो उस प्रत्ययका लुक् हो ऐसा क्यों कहा ? (उ०) **प्रियगार्ग्याः**=जिसको गर्गकी संतति प्रिय है । इस उदाहरणमें यञ् प्रत्यय सन्तानवाचक हैं उसका सम्बन्धी बहुवचन नहीं है किन्तु जिसे गर्गका संतान प्यारा है ऐसे पुरुषनिमित्तक बहुवचन हुआ हैं इस कारण यञ् प्रत्ययका लोप न हुआ ।

(१०८४) जीवति तु वंश्ये युवा । ४ । १ । १६३ ॥

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव स्यात् न तु गोत्रसंज्ञम् ।

जब पिता (बाप), पितामह (दादा), प्रपितामह (परदादा) जीते हों तब चौथा पिढीवाला प्रपौत्र आदि संतान युवसंज्ञक हो (१०८०) से गोत्रसंज्ञा नहीं होती ।

(१०८५) गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् । ४ । १ । ९४ ।

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात् स्त्रियां तु न युवसंज्ञा ।

युव (१०८४) संज्ञक संतान अर्थमें जो प्रत्यय करना हो तो गोत्र (१०८०) रूप संतान अर्थमें प्रत्यक्ष पहले होले तब उन्हीं पदोंसे युवरूप संतान अर्थमें प्रत्यय हो परंतु स्त्रीलिं-गमें युवसंज्ञा नहीं होती ।

---

१ युवापत्यमें केवल गोत्र प्रत्ययान्त शब्दसे ही प्रत्यय होता है । "जैसे गार्ग्यस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः" यहाँ 'गर्ग' शब्दसे गोत्रापत्यमें यञ् प्रत्ययसे 'गार्ग्य' ऐसा होकर युवापत्यमें फक् प्रत्ययसे 'गार्ग्यायणः' ऐसा रूप बना ॥

(१०८६) यञिञोश्च । ४ । १ । १०१ ॥

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् स्यात् ।

गोत्र (१०८०) रूप संतान अर्थमें यञन्त अथवा इञन्त शब्दोंसे परे युवन् (१०८४) रूप संतान अर्थमें फक् (फ) प्रत्यय हो ।

(१०८७) आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ।७।१।२॥

प्रत्ययादेः फस्य आयन्, ढस्य एय्, खस्य ईन्, छस्य ईय्, घस्य इय् एते स्युः ॥

प्रत्ययके प्रथम अक्षर जो (फ, ढ, ख, छ, घ,) इनको क्रमसे आयन्, एय्, ईन्, ईय् और इय् हों ।

यथा– **गर्गस्य युवापत्यम्=गर्ग+य** [१०८२] **=गार्ग्य+फ** [१०७] [१०८६] **(फ्अ)**

गार्ग्य+आयन् [१०८७] **+अः=गार्ग्यायणः**=गर्गका प्रपौत्रादि सन्तान । **दाक्षायणः**=दक्षका प्रपौत्रादि सन्तान यह भी इसी प्रकार जानना.

(१०८८ अत इञ् । ४ । १ । ९५ ।

अपत्येऽर्थे ॥

सन्तान अर्थमें अदन्तसे परे इञ् (इ) प्रत्यय हो ।

दक्ष+इ=दाक्षिः [१०७०।२६०] =दक्षकी सन्तान.

(१०८९) बाह्वादिभ्यश्च । ४ । १ । ९६ ।

बाहु आदि गणसे परे इञ् (१०८८) प्रत्यय सन्तान अर्थमें हो ।

---

१ बाहु वृकल सुमित्रा कुनामन् उदञ्चु नगरमर्दिन् गद, प्रद्युम्न
उपबाहु चूडा दुर्मित्रा सुनामन् शिरस् प्राकारमर्दिन् राम
उपवाकु बलाका पुष्कसद् पञ्चन् माष लोमन् उदंक
निवाकु मूषिका अनुहरन् सप्तन् शराविन् अजीगर्त (उदकः)
शिवाकु कुशल देवशर्मन् अष्टन् मरीची कृष्ण संज्ञायाम्)
वटाकु छगला अग्निशर्मन् (अमितौजसः क्षेमवृद्धिन् युधिष्ठिर) (सम्भूयोम्भसोः
उपबिन्दु ध्रुवका भद्रशर्मन् सलोपश्च) शृंखलतोदिन् अर्जुन. सलोपश्च)
वृषली ध्रुवका सुशर्मन् सुधावत् खरनादिन् साव
आकृतिगणोऽयम् । तेन सात्यकिः इत्यादि ।

बाहु+इ=बाहविः 1070।1072।29 =बाहुका सनतान.

उडुलोमन्+इ 1070 औडुलोमन्+इ+सु=औडुलोमिः=उडुलोमका सन्तान।

लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः । लोमन् शब्दसे बहुवचनमें अकार प्रत्यय हो, यदि अपत्य अथ हो तो । उडुलोमाः=उडुलोमाके सन्तान ।

(१०९०) अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् । ४ । १ । १०४ ॥

ये त्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रेऽञ् स्यात् ।

जो शब्द बिद आदि गणका हो और ऋषिवाचक न हो तो अव्यवहित सन्तान रूप अर्थमें अञ् प्रत्यय हो और बिद आदि गणका शब्द ऋषिवाचक हो तो उससे परे गोत्र (१०८०) रूप सन्तान अर्थमें अञ् प्रत्यय हो ।

बिदस्य गोत्रम्=बिद+बैदं बिदऋषिका गोत्ररूप सन्तान.

इस शब्दके प्र० द्वि० बैदौ तथा प्र० ब० बिदाः 1482 । पुत्र+अ=पौत्रः 1070।160 = पुत्रका पुत्र ।

इसी प्रकार प्र० द्वि० पौत्रौ प्र० ब० पौत्राः होता है कारण कि अञ् प्रत्यय इस स्थानमें सन्तान रूप अर्थमें है गोत्ररूप सन्तान अर्थमें नहीं है इससे (१०८३) से प्रत्ययका लोप न हुआ इससे वृद्धि ज्योंकी त्यों रही ।

एवं दौहित्रादयः इसी प्रकार दुहितृ+अ=दौहित्रः (१०७०) । (२१)=पुत्रीका पुत्र इत्यादि जानना ।

(१०९१) शिवादिभ्योऽण् । ४ । १ । ११२ ॥

---

१ बिद उपमन्यु ऋतभाग शरद्वत भोगक श्यामक कर्व किलात हर्य्यश्व शुनक भाजन श्यावालि कश्यप कन्दर्प प्रियक धेनु शामिक श्यापर्ण कुशिक विश्वानर आपस्तम्ब गोपवन अश्वावतान हरितादिश्च । भरद्वाज ऋष्टिषेण कूचवार शिग्रुबिन्दु श्यामाक ।

सन्तान अर्थमें शिव आदि गणसे परे अण् (अ) प्रत्यय हो।

शिव+अ=शैवः १०७०।२६० (शिवकी सन्तान) **गङ्गा+अ+ गाङ्गः** १७० २६० गंगाकी संतान.

(१०९२) ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च । ४ । १ । ११४ ॥

ऋषि, अन्धक (यादवकुलका भेद) वृष्णि (यादवकुला भेद,) कुरुवंशसम्बन्धी नामोंके शब्दोंसे परे अपत्य अर्थमें अण् (अ) प्रत्यय हो । यथा-(ऋषिका नाम)= **वसिष्ठ+अ=वासिष्ठः** (१०७० । २६०) (विश्वामित्रकी सन्तान)=**विश्वामित्र+अ=वैश्वामित्रः** (१०७० । २६०) (अन्धकवंशका पुरुष)=**श्वफल्क+अ=श्वाफल्कः** (१०७० । २६०) श्वफल्ककी सन्तान । (वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए वसुदेव)= **वसुदेव अ=वासुदेवः** वसुदेवकी सन्तान । (कुरुवंशमें उत्पन्न हुए नकुलसे) =**नकुल+अ=नाकुलः** (१०७० । २६०) नकुलकी सन्तान । इसी प्रकार (कुरुवंशमें उत्पन्न हुए)=**सहदेव+अ=साहदेवः** सहदेवकी सन्तान.

(१०९३) मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः । ४ । १ । ११५ ॥

संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्य उदादेशः स्यादण्प्रत्ययश्च ।

संख्यावाचक शब्द अथवा सम् भद्र-पूर्वक मातृशब्दको उत् आदेश तथा अण् प्रत्यय अपत्य अर्थमें हों।

यथा-**द्वयोर्मात्रोरपत्यम्= द्वि+मातृ+अ=द्वै-मातुर्** १०७०।१०९३।३१७ **+अ+सु+द्वैमातुरः**= जिसकी दो माता हों (गणेश) **षष्+मातृ+अ=षाड्** १०७० ८२ **+मातुर्** १०९३।३७ ८३।८४ **×अ+सु=षाण्मातुरः** जिसके छः माता हों । (कार्तिकेय) ।

सम्+मातृ+अ+सु=साम्मातुरः (१०७० । १०९३ । ३७) जिसकी अच्छी माता हो ।

भद्र+मातृ+अ+सु= भाद्रमातुरः १०७० १०९३।३७ =जिसकी कल्याणी माता हो ।

---

१ शिव प्रोष्ठ प्रोष्ठिक चण्ड जम्भ भूरि दण्ड कुठार ककुभ अनभम्लान लोहित सुख सन्धि मुनि ककुत्स्थ कहोड कोहड कहय कहय रोध कपिञ्जल खञ्जन बतण्ड तृण कर्णक्षी हृद जलहृद परिल पथिक पिष्ट हैहय पार्षिका जोपिका कपिलिका जटिलिका बधिरिका मञ्जीरक मजीरक वृष्णिक खञ्जार खञ्जाल कर्मार रेख लेख आलेखन विश्रवण रवण वर्तताक्ष ग्रीवाक्ष विटप विटक मिटाक तृक्षाक नभाक ऊर्णनाभ जरत्कारु पृथा उत्क्षेप पुरोहितिका सुरोहितिका सुरोहिका अयःश्वेत सुपिष्ट मसुरकर्ण मयूरकर्ण खरकर्ण खूर्जरकर्ण सुदूरक तक्षन् ऋष्टिषेण गंगा बिपाश यस्य लह्य द्रव्य अयस्थूण तृण कर्ण पर्ण भलन्दन विरूपाक्ष भूलि इला सपत्नी (द्व्यचो नद्याः) त्रिवेणी त्रिवणम् । आकृतिगणः । इति शिवादिः ॥

(१०९४) स्त्रीभ्यो ढक् । ४ । १ । १२० ॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् ।

स्त्रीप्रत्ययान्त (१३४१) शब्दोंसे परे अपत्य अर्थमें ढक् (ढ) प्रत्यय हो । **विनता+ढ=(१०८७) वैनत्+एय+सु=वैनतेयः (१०७० । २६०)=विन-** ताका पुत्र (गरुड)

(१०९५) कन्यायाः कनीन च । ४ । १ । ११६ ॥

चादण् । कानीनो व्यासः कर्णश्च ।

कन्या शब्दको अपत्य अर्थमें कनीन आदेश हो चकारसे अण् प्रत्यय भी हो । **कन्या+ अ+=कनीन+अ+सु=कानीनः** (१०७० । २६० कन्यका पुत्र (व्यास तथा कर्ण) ।

(१०९६) राजश्वशुराद्यत् । ४ । १ । १३७ ॥

राजन् अथवा श्वशुर शब्दसे परे अपत्य अर्थमें यत् (य) प्रत्यय हो ।

(१०९७) राज्ञो जातावेव ॥

जो स्वजातिसे विवाह की हुई स्त्रीमें उत्पन्न हुए अपत्यविषे कहना हो तो राजन्शब्दसे परे यत् (१०९६) प्रत्यय हो, नहीं तो न हो देखो (१०९९) सूत्र ।

(१०९८) ये चाभावकर्मणोः । ६ । ४ । १६८ ॥

यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः ।

जो तद्धित प्रत्ययकी आदिमें य हो सो जब परे रहे तब शब्दके अन्तावयव अन्को प्रकृतिभाव हो अर्थात् वह ज्योंका त्यों रहे (९८०) से उसमें कोई विकार नहीं होता । **राजन्+य (१०९६ । १०२७)+सु=राजन्यः**=क्षत्रिय । **जातावेवेति किम् ?** स्वजातिकी प्रतीतिमें क्यों कहा ? (उ०) विजातीय होनेसे जो कुछ प्रत्यय होता है वह इस नीचे लिखे सूत्रके अनुसार जानना–

---

१ अनूढाया एवापत्यमित्यर्थः । यदाहुर्महाभाष्याकाराः—"कन्याशब्दोऽयं पुंसाऽभिसंबन्ध (विवाह) पूर्वके संप्रयोगे निवर्तते । याचेदानीं प्रागभिसंबन्धात् पुंसा सह सम्प्रयोगे गच्छति तस्यां कन्याशब्दो वर्तत एव "

(१०९९) अन् । ६ । ४ । १६७ ॥

अण प्रकृत्या स्यादाणि परे ।

अण् प्रत्यय परे हुए सन्ते शब्दका अवयव जो अन् उसे प्रकृतिभाव हो । **राजन्+अ+सु+राजनः**=राजाका पुत्र जो विवाहिता क्षत्रियासे उत्पन्न न हो ।

(११००) क्षत्राद् घः । ४ । १ । १३८ ॥

क्षत्रियः । जातावित्येव क्षात्रिरन्यत्र ।

क्षत्र शब्दसे परे अपत्य अर्थम (स्वजातीय विवाहिता स्त्रीका कथन हो तो) घ प्रत्यय हो । यथा-**क्षत्त्र+घ=क्षत्र+इय् (१०८७)+सु-क्षत्रियः** (२६०) जो क्षत्रिय जातिका हो । और क्षत्रियसे विजाती स्त्रीमें हुआ हो तो **क्षत्त्र+इ** (१०८८)=**क्षात्रिः** (१०७० । २६०) क्षत्रियसे उत्पन्न विजाति स्त्रीका पुत्र ।

(११०१) रेवत्यादिभ्यष्ठक् । ४ । १ । १४६ ॥

रेवती आदि गणसे परे अपत्य अर्थमें ठक् प्रत्यय हो ।

रेवती+ठ=रेवती+ठ्+अ-

(११०२) ठस्येकः । ७ । ३ । ५० ॥

अङ्गात्परस्य ठस्येकादेशः स्यात् ।

अङ्गसे परे ठ आवे तो इक् आदेश हो । **रेवती+इक्+अ+सु=रैवतिकः** (१०७० । २६०) रेवतीका अपत्य ।

(११०३) जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् । ४ । १ । १६८ ॥

जनपदक्षत्रियवाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये ।

देशवाचकशब्दसे सम्बन्ध करना हो अर्थात् वह देश क्षत्रियवाचक हो तो देशोंका राजा इस अथम अपत्य अथम अञ् (अ) प्रत्यय हो । यथा-**पञ्चाल+अ+सु=पाञ्चालः** (१०७० । २६०)=पञ्चालदेशके क्षात्रयकी सन्तान ।

(११०४) क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत् ।

क्षात्रयवाचक शब्द देशवाचक हो तो 'उस देशके राजा' इस अर्थमें अपत्यवत् प्रत्यय हो अर्थात् (१०७८ । ११०३) में जैसा प्रत्यय अञ् होता है वैसा यहां भी हो । **पञ्चालानां राजा पाञ्चालः । पञ्चाल+अ+सु=पाञ्चालः**=पञ्चाल देशका राजा ।

---

१ रेवती मणिपाली वृकवञ्चिन् वृकग्राह दण्डग्राह चामरग्राह अश्वपाली द्वारपाली वुकवन्ध कणग्राह ककुदाक्ष ॥

२ जनपदे प्रसिद्धः शब्द एव शब्दो यस्य तस्मात् क्षात्रयादात विग्रहः तत्फालितमर्थमाचष्टे--जनपदेति । किमुक्तम् ? यः किल देशार्थे क्षत्रियार्थे चेत्यर्थद्वयं वक्ति तस्माच्छब्दादञिति ॥

(११०५) पूरोरण्वक्तव्यः ॥

पूरु शब्दसे परे अपत्य अर्थमें अथवा पुरुदेशका राजा इस अर्थमें अण् प्रत्यय हो । **पूरु+अ=पौरवः** (१०७० । ०७९)=पूरुका अपत्य अथवा पूर्वदेशका राजा ।

(११०६) पाण्डोर्ड्यण् ॥

पाण्डु शब्दसे परे अपत्य राजवाचक अर्थमें ड्यण् (य) प्रत्यय हो । यथा-**पाण्डु+य=पाड्यः** (२६७) पाण्डुका अपत्य अथवा पाण्डुदेशका राजा ।

(११०७) कुरुनादिभ्यो ण्यः । ४ । १ । १७२)

कुरु शब्दसे परे तथा जिस शब्दके आदिम नकार हो उससे परे अपत्य अर्थमें अथवा राजावाचक अर्थमें ण्य (य) प्रत्यय हो । **कुरु+य+सु=कौरव्यः** (१०७० । १०७९ । ३१)-कुरुका अपत्य वा कुरुदेशका राजा **निषध+य+सु=नैषध्यः** (१०७० । २६०)=निषधका अपत्य अथवा निषधदेशका राजा ।

(११०८) ते तद्राजाः । ४ । १ । १४७ ॥

अञादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः ।

अञ् आदि (११०३) प्रत्ययोंकी तद्राजसंज्ञा हो ।

(११०९) तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् । २ । ४ । ६२ ॥

बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् तदर्थकृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् ।

इक्ष्वाकवः । पञ्चालाः । इत्यादि ।

जब बहुवचनकी विवक्षा हो तब तद्राज (११०८) प्रत्ययका लुक् हो परन्तु स्त्रीलिङ्गमें न हो यथा--**पञ्चाल+अ** (११०४) **जस=पञ्चालाः**=पञ्चालदेशके क्षत्रियका अपत्य अथवा पञ्चाल देशका राजा ।

(१११०) कम्बोजाल्लुक् । ४ । १ । १७५ ॥

अस्मात्तद्राजस्य लुक् ।

कम्बोज शब्दसे परे तद्राज (११०८) संज्ञक प्रत्ययका लुक् हो । **कम्बोज+अ=कम्बोजाः**=कम्बोजदेशके राजाका सन्तान अथवा कम्बोजदेशका राजा **कम्बोजौ** कम्बोज देशके राजाके दो अपत्य ।

(११११) कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् ॥

(१११०) सूत्रमें जो कहा है इसमें यों कहना चाहिये कि कम्बोजशब्दसे परे अथवा उसके सदृश शब्दोंसे परे तद्राज (११०८) प्रत्ययका लुक् हो । यथा-**चोलः**=चोलदेशका राजा । **शकः**=शकदेशका राजा । **केरलः**=केरलदेशका राजा । **यवनः**=यवनदेशका राजा इसी प्रकार कहे देशोंके क्षत्रियोंका अपत्य अर्थ जानना ।

॥ इत्यपत्याधिकारः समाप्तः ॥

अथ चातुरर्थिकः ।

(१११२) तेन रक्तं रागात् । ४ । २ । १ ॥

अण् स्यात् । रज्यतेऽनेनेति रागः ।

रंगवाचक तृतीयान्त शब्दोंसे परे रंगवाया इस अर्थमें अण् प्रत्यय हो । **कषायेण रक्तं वस्त्रं-कषाय+अ=काषायाम्** (१०७० । २६०) गेरूसे रँगाहुआ वस्त्र ।

(१११३) नक्षत्रेण युक्तः कालः । ४ । २ । ३ ॥

अण् स्यात् ।

नक्षत्रवाचक तृतीयान्त शब्दसे परे युक्त अर्थमें अण् प्रत्यय हो जो युक्तपदार्थका कालवाचकके साथ योग हो । **पुष्येण युक्तम् अहः=पुष्य+अ=पौष्य्+अ**(१०७०।२६०)

(१११४) तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम् ॥

नक्षत्रवाचक तृतीयान्त तिष्य अथवा पुष्य शब्द अर्थ हो और उससे परे अण् (१११३) हो तो यकारका लोप हो । **पौष्+अ+अम्=पौषम्-अहः**=पुष्य नक्षत्रयुक्त दिन ।

(१११५) लुबविशेषे । ४ । २ । ४ ॥

पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात् षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते ।

साठ घडीरूपी कालके अन्तर्गत कालकी प्रतीति न हो तो (१११३) में कहे अण् प्रत्ययका लोप हो । यथा-**अद्य पुष्यः=पुष्य+अ=पुष्य+ःपुष्यः**=आज पुष्य नक्षत्र हैं, आजके कहनेसे दिन विशेष वा रात्रिविशेष इसमेंसे किसी कालका बोध नहीं होता कि साठ घडीके अन्तर्गत किस समयकी कहता है इससे अण् प्रत्ययका लोप हुआ ।

(१११६) दृष्टं साम । ४ । २ । ७ ॥

तेनेत्येव ।

दृष्ट (देखा हुआ) इस अर्थमें तृतीयान्ते परे अण् प्रत्यय हो, जो दृष्ट पदार्थ सामवेद हो तो । **वसिष्ठेन दृष्टं साम=वासिष्ठ+अ=वासिष्ठम्** (१०७० । २६०)= वसिष्ठमुनिका देखा हुआ सामवेद ।

---

[1] नक्षत्र तो सदा ही रहते हैं-उनकी स्थितिका कभी व्यभिचार होता ही नहीं-इसलिये यहाँ 'नक्षत्र' शब्दसे ' मघाः क्रोशन्ति ' के समान नक्षत्रस्थित चन्द्रमा लिया जाता है । जैसा कि वार्तिककारने कहा है:--नक्षत्रेण चन्द्रमसो योगात् तद्युक्त्तकाले प्रत्ययविधानम् " इसलिये ' पुष्येण ' इसका ' पुष्ययुक्तेन चन्द्रमसा ' ऐसा अर्थ समझना चाहिये ।

(१११७) वामदेवाड्डयड्ड्यौ । ४ । २ । ९ ॥

दृष्ट अर्थमें तृतीयान्त वामदेव शब्दसे परे ड्यत् (य) अथवा ड्य (य) प्रत्यय हो. जो । दृष्ट पदार्थ सामवेद हो, तो । **वामदेवेन दृष्टं साम=वामदेव=य=वामदेव्यम्** (२६० । २५८)=वामदेव मुनिका देखा हुआ सामदेव.

(१११८) परिवृतो रथः । ४ । २ । १० ॥

अस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति ।

परिवृत (वेष्टित) अर्थमें तृतीयान्तसे परे अण् प्रत्यय हो, जो वेष्टित पदार्थ रथ हो तो । **वस्त्रेण परिवृतो रथः=वस्त्र+अ+सु=वास्त्रः** (१०७० । २६०) **रथः** वस्त्रसे लपेटा रथ ।

(१११९) तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः । ४ । २ । १४ ॥

तत्रोद्धृत (एकस्थानसे निकालकर दूसरेमें धरागया) अर्थमें पात्रवाचक सप्तम्यंत पदसे परे अण् प्रत्यय हो । **शरावे उद्धृतः ओदनः=शराव+अ+ःशारावः** (१०७०।२६०) =कटोरेमें रक्खा गया ओदन (भात)

(११२०) संस्कृतं भक्षाः । ४ । २ । १६ ॥

सप्तम्यन्तादण् स्यात्संस्कृतेऽर्थे यत्संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते स्युः ।

संस्कृत (संस्कार) अर्थमें सप्तम्यन्त पदसे परे अण् प्रत्यय हो. जो संस्कार किया हुआ पदार्थ भक्षणके योग्य हो तो । थथा-**भ्राष्ट्रेषु संस्कृता भक्षाः=भ्राष्ट्र+अ= भ्राष्ट्राः** (१०७० । २६०) **यवाः**=जिनका संस्कार भांडेमें किया गया हो । (जवकी बहुरी आदि) ।

(११२१) साऽस्य देवता। ४ । २ । २४ ॥

' यह इसका देवता हैं ' इस अर्थमें देवताभेदवाचक प्रथमान्त शब्दसे परे अण् प्रत्यय हो । यथा-**इन्द्रो देवता अस्य इति=इन्द्र+अ=ऐन्द्रम्** (१०७० । २६०) **हविः**=इन्द्रदेवताकी, जो हवि (मन्त्रवाचक हो तो **ऐन्द्रः**) । **पाशुपतम्** (१०७० । २६०)=जिसका शिव देवता है ऐसी हवि । **बार्हस्पत्यम्** (१०७० । २६०)= जिसका बृहस्पति देवता है ऐसी हवि ।

(११२२) शुक्राद् घन् । ४ । २ । २६ ॥

प्रथमान्त शुक्रशब्दसे परे (यह इसका देवता है इस अर्थमें) घन् प्रत्यय हो। **शुक्र +घ्+अ+शुक्र+इय् (१०८७) +अ=शुक्रिय+अम्+शुक्रियम् (१५४)=** शुक्र जिसका देवता हैं एसी हवि।

(११२३) सोमाट्ट्यण् । ४ । २ । ३० ॥

'यह इसका देवता हैं ' इस अर्थमें प्रथमान्त सोमशब्दसे परे टयण् (य) प्रत्यय हो। **सोम+य=सौम्य (१०७० । २६०) अम्+सौम्यम्**=चद्रमा जिसका देवता है ऐसी हवि ।

(११२४) वाय्वृतुपित्रुषसो यत् । ४ । २ । ३१ ॥

'यह इसका देवता है ' इस अर्थमें वायु, ऋतु, पितृ और उषस् इन प्रथमांत शब्दोंसे परे यत् प्रत्यय हो ।

वायु (७६९)=वायव्यम्=वायु जिसकी देवताहैं ऐसी हवि ।
ऋतु+य=ऋतव्यम्=जिसकी ऋतु देवता हैं एसी हवि।

(११२५) रीङ् ऋतः । ७। ४ । २७॥

अकृद्यकारे असार्वधातुके यकारे च्वौ परे च ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः

जब कृत् (३२९) से भिन्न अथवा सार्वधातुक (४१९) से भिन्न यकार अथवा च्वि (१३३३) परे हो तो ऋको रीङ् (री) आदेश हो **पितरी+य=पित्री+य= (२६०) पित्र्य+अम्=पित्र्यम्**=जिसके पितर देवता हैं एसी हवि।

(११२६) पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः । ४ । २ । ३६ ॥

एते निपात्यन्ते ।

पितृव्य (चाचा), मातुल (मामा), मातामह (नाना), पितामह (दादा) यह शब्द निपातन किये हैं. सूत्रमें पठित होनेसे सिद्धरूप जानने ।

पितुर्भ्रातरि व्यत् । पितृ शब्दसे परे पिताके भाई अर्थमें व्यत् (व्य) प्रत्यय हो। यथा-**पितुर्भ्राता=पितृ+व्य=पितृव्यः**=चाचा ।

मातुर्डुलच् । मातृ शब्दसे परे माताके भाई अर्थमें डुलच् (उल) प्रत्यय हो। **यथा-मातुर्भ्राता=मातृ+उल+सु=मातुलः=मामा** ।

मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्। मातृ तथा पितृ शब्दसे परे माके बाप तथा पिताके बाप अर्थम डामहच् (आमह) प्रत्यय हो। **मातुः पिता=मातृ+आमह=मातामहः** (२६७)=नाना। **पितुः पिता=पितृ+आमह=पितामहः**=दादा। **मातरि षिच्च।** मातृ तथा पितृ शब्दसे परे माकी मा तथा बापकी मा इस अर्थमें डामहच् (आमह) प्रत्यय हो, वह षित् हो। षित् होने (१३४९) से ङीष् होता है। **मातुर्माता=मातामही=** नानी। **पितुर्माता=पितामही**=दादी।

(११२७) तस्य समूहः। ४। २। ३७॥

षष्ठ्यन्त शब्दसे परे समूह अर्थमें अण् प्रत्यय हो। **काकानां समूहः=काक+अ=** **काक** (१०७०। ३५०)+**अम्=काकम्**=कौओंका समूह।

(११२८) भिक्षादिभ्योऽण्। ४। २। ३८॥

भिक्षा[1] आदि षष्ठ्यन्त शब्दोंसे परे समूह (११२७) अर्थमें अण् प्रत्यय हो। **भिक्षाणां समूहः=भिक्षा+अ=भैक्ष**) १०७०। २६० में तपरकरण नहीं है इससे अके अठारह भेद लेने) आका लोप हुआ–**भैक्ष+अम्=भैक्षम्**=भिक्षाका समूह। **गार्भिणीनां समूहः गार्भिणम्। गर्भिणी+अ=इह 'भस्याढे तद्धिते' इति पुंवद्भावे कृते।** गर्भिणी+अ यहां (१८९) से भसंज्ञा हुई और ढकारसे भिन्न तद्धित प्रत्यय परे हुए सन्ते भसंज्ञकको पुंवद्भाव होता है इससे पुँल्लिंगभाव करनेपर स्त्रीलिंग प्रत्यय ङीप् है उसका अभाव होगया–**गर्भिन्+अ**=यहां (७८०) से टिसंज्ञक (इन्) का लोप प्राप्त हुआ परन्तु–

(११२९) इनण्यनपत्ये। ६। ४। १६४॥

अनपत्यार्थेऽणि इन् प्रकृत्या। तेन नस्तद्धित इति टिलोपो न।

अण् प्रत्यय अपत्य अर्थवाचक न हो तो उससे पूर्व इनको प्रकृतिभाव हो। इससे (९८०) से टिलोप न हुआ।

गर्भिण्+अ=गार्भिण+अम्=गार्भिणम्=गर्भिणी स्त्रियोंकासमूह।

---

[1] भिक्षा गर्भिणी क्षेत्र अंगार सहस्र पदादि अथर्वन् भरत श्रोत करीष चर्मन्, धर्मिन्, युवति पदाति पद्धति दक्षिणा विषय इति भिक्षादिः।

युवतीनां समूहः=युवति+अ ='**भस्याऽढे तद्धिते**' इससे पुंवद्भाव होनेसे स्त्री प्रत्यय तिका अभाव हुवा तब-**युवन्+अ+यौवन** (१०८०)+**अम्=यौवनम्**=युवतियोंका समूह । '**यौवतम्**' यह रूप तो 'यु' धातुसे परे शतृ प्रत्यय (अत्) करके ङीप् प्रत्यय किया=**युवती**, इससे समूह अर्थमें अण् करेंगे तब होगा ।

(११३०) ग्रामजनबंधुभ्यस्तल् । ४ । २ । ४३ ॥

ग्राम (गाव), जन (लोक), बंधु (भाई) इन शब्दोंसे परे समूह अर्थमें तल् (त) प्रत्यय हो ।

तलन्तं स्त्रियाम् । तलन्त स्त्रीलिंग (१३४२) होता है ।

ग्राम+त+आ[१३४२] =**ग्रामता**=गावोंका समूह ।

बन्धु=त+आ=बन्धुता=भाईयोंका समूह ।

जन+त+आ=जनता=लोकोंका समूह ।

(११३१) गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥

गज (हाथी),सहाय (मददगार) इन शब्दोंसे परे भी समूह अर्थमें तल् प्रत्यय (११३०) हो ऐसा कहना चाहिये । **गज+त+आ=गजता**=हाथियोंका समूह । **सहाय त+आ=सहायता**=सहायता करनेवालोंका समूह ।

(११३२) अह्नः खः क्रतौ ॥

प्रकृति तथा प्रत्ययके मिलनेसे सिद्ध हुआ शब्द जब यज्ञ वाचक हो तो षष्ठ्यन्त अहन् शब्दसे परे समूह अर्थमें ख प्रत्यय हो । **अहन्+ख** (**ख्** **अ**)=**अहन्+ईन्+अ** (१०८०)=**अह्** (९८०) **ईन=अहीन+सु=अहीनः**=अनेक दिनसे साध्य जो यज्ञ ।

(११३३) अचित्तहास्तिधेनोष्ठक् । ४ । २ । ४७ ॥

अचित्त (अचेतन), हस्तिन् (हाथी), धेनु (गाय), ये शब्द जो षष्ठ्यन्त हों तो इनसे परे समूह अर्थमें ठक् (ठ) प्रत्यय हो ।

(११३४) इसुसुक्तान्तात्कः । ७ । ३ । ५१ ॥

इसुउसुउक्तान्त परस्य ठस्य कः ।

---

१ 'ङीभ्यो ढक्' इस ढसे भिन्न तद्धित प्रत्यय परे रहते भ संज्ञकको पुंवद्भाव हो ।

जिसका अन्त अवयव इस् अथवा उस् हो, वा उक् प्रत्याहारमेंका कोई अक्षर हो किंवा त् हो तो उससे परे जो प्रत्ययका अवयव ठ् (११३३) उसको क् आदेश हो । **सक्तु+क्+अ (ठ)=साक्तुक (१०७०)+अम्=साक्तुकम्**=सत्तुओंका समूह । इसी प्रकार **हास्तिकम्**=हाथियोंका समूह । **धैनुकम्**=गायोंका समूह ।

क्रि० क्रि०

(११३५) तदधीते तद्वेद । ४ । २ । ५९ ॥

अधीते (वह पढ़ता है) इस अर्थमें तथा वेद (जानता है) इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **व्याकरणम् अधीते वेद वा=व्याकरण+अ=(१०७०)** से वृद्धि प्राप्त हुई परन्तु–

(११३६) न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् । ७ । ३ । ३ ॥

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः किन्तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैजागमौ स्तः ।

पदान्त यकार अथवा वकारसे परे अच्को वृद्धि न हो किन्तु उन यकार तथा वकारसे पूर्व क्रमसे ऐकार और औकारका आगम हो । व्याकरणमें जो यकार है सो पदान्त है कारण कि वि अव्यय (१७ । २९६) जो पद है उसके अन्तमें है तो **व् ऐ या करण (२६०)+अ=वैयाकरण+सु=वैयाकरणः**=व्याकरणका पढनेवाला वा जाननेवाला ।

(११३७) क्रमादिभ्यो वुन् । ४ । २ । ६१ ॥

'वह पढता है' अथवा 'जानता है' इस अर्थमें क्रम आदि (क्रम, पद, शिक्षा, मीमांसा, सामन्) शब्दोंसे परे वुन् (वु) प्रत्यय हो । **क्रम्+वु=क्रम् (२६०)+अक (८१७) =क्रमक+सु=क्रमकः**=वेदकी दूसरी विकृतिका जाननेवाला । इसी प्रकार **पदकः**=वेदकी पहली विकृतिका जाननेवाला । **शिक्षकः**=वेदके शिक्षा अङ्गका जाननेवाला । **मीमांसकः**=मीमांसा शास्त्रका जाननेवाला ।

(११३८) तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि । ४ । २ । ६७ ॥

प्रथमान्त शब्दका अस्तिक्रियाके साथ सामानाधिकरण्य हो तो उससे परे वह इसमें है इस अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों परन्तु प्रकृति तथा प्रत्यय मिलकर सिद्ध हुआ शब्द तन्नामक देशका जाननेवाला हो तो यथा–**उदुम्बराः सन्ति अस्मिन्देशे=उदुम्बर+अ=उदुम्बर् (२६०)+अ=औदुम्बरः (१०७०) देशः**=जिसमें गूलरके पेड हों ऐसा देश ।

(११३९) तेन निर्वृत्तम् । ४ । २ । ६८ ॥

उससे बनाया हुआ अर्थमें तृतीयान्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों। **कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी=कुशाम्ब+अ=कुशाम्ब** (२६०) **अ=कौशाम्ब** (१०७०) **+इ** (**ङीप् २३४४**)=कौशाम्बी कुशाम्ब नाम राजाकी बनाई हुई नगरी।

(११४०) तस्य निवासः । ४ । २ । ६९ ॥

षष्ठयन्त शब्दसे परे निवास अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों। **शिबीनां निवासो देशः=शिबि+अ=शिब्** (२६०)**+अ=शैबः**=(१०७०) शिवि जातिके क्षत्रियोंके रहनेका देश।

(११४१) अदूरभवश्च । ४ । २ । ७० ॥

प्रकृति तथा प्रत्यय मिलकर सिद्ध शब्द जो देशकी संज्ञा हो तो शब्दसे अदूर (समीप) अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों। **विदिशाया अदूरभवं विदिशा+अ**[२६०] **+अम्=वैदिशम्**[१७०]=विदिशा नगरीसे जो दूर नही है।

(११४२) जनपदे लुप् । ४ । २ । ८१ ।

जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप्।

जब देशकी विवक्षा हो तब चातुरर्थिक प्रत्ययका लुप् हो। (११३८ । ११३९ । ११४० । ११४१) में कहे जो प्रत्यय हैं जिनके चार अर्थ होते हैं उनका नाम चातुरर्थिक है। **पञ्चालानां निवासो जनपदः=पञ्चाल+अ=पञ्चाल-**

(११४३) लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने । १ । २ । ५१ ॥

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः।

जब प्रत्ययका लुप् (११४२) हुआ हो तब प्रकृतिका लिङ्ग तथा वचन बना रहे **पञ्चालाः**=जिसमें पञ्चालवंशवाले रहते हैं ऐसा देश, **कुरवः**=कुरुओंके निवासका देश। **अङ्गाः**=अङ्गवंशवालोंके रहनेका देश। **वङ्गाः**=बंगालियोंका देश। **कलिङ्गाः**=कलिङ्गोंके निवासका देश।

(११४४) वरणादिभ्यश्च । ४ । २ । ८२ ॥

अजनपदार्थ आरम्भः।

वरण आदि गणके शब्दोंसे परे प्रत्ययका लुक् हो और (११४३) मेंके अनुसार प्रकृतिका लिङ्ग वचन रहे। जो शब्द देशवाचक नहीं है उसके निमित्त यह सूत्र है।

वरणानाम् अदूरभवं नगरं=वरण+जस्=वरणाः=वह नगर जो बरणसे दूर नहीं है।

(११४५) कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् । ४ । २ । ८७ ॥

कुमुद (कूँई), नड (नरकट), वेतस (वेंत) इन शब्दोंसे परे ड्मतुप् (मतु) प्रत्यय हो। **कुमुद+मतुप्=कुमुद् (२६७)+मत्-**

(११४६) झयः । ८ । ३ । १० ॥

झयन्तान्मतोर्मस्य वः।

झयन्तसे परे मतुप् प्रत्ययके मकारके स्थानमें वकार हो।

कुमुद+वत्=कुमुद्वत्+सु=कुमुद्वान् =जहाँ कुई बहुत हों।
नड+मतु=नड्वान्=जहाँ नरकट भरे हों ऐसा स्थान।
वेतस्+मतु-

(११४७) मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः । ८ । २ । ९ ॥

मवर्णावर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोर्मस्य वः।

यवादिगणको[2] छोडकर शेष शब्दोंका अन्तावयव अथवा उपधामें मकार अथवा अवर्ण हो तो उनसे परे मतुप् प्रत्यय (११४५) के मके स्थानमें वकार हो। **वेतस्+वत्=वेतस्वत+सु=वेतस्वान्** (३१६ । १९९ । २६ । १९७) जहां वेत उगे हों ऐसा स्थल

(११४८) नडशादाड्ड्वलच् । ४ । २ । ८८ ॥

नड (नरकट) तथा शाद (घास) शब्दसे परे ड्वलच् (वल) प्रत्यय हो। **नड+वल=नड् (६६७)+वल=नड्वल+सु=नड्वलः**=जो देश नरकटसे भरा है।

---

१ वरणा शृंगी शाल्मली शण्डी शयाण्डी पर्णा ताम्रपर्णी गोद आलिंग्यायन जानपदी जम्बु पुष्कर चम्पा पम्पा वल्गु उज्जयिनी गया मथुरा तक्षशिला उरसा गोमती वलभी।

२ यव दल्मि ऊर्मि भूमि कृमि कुञ्चा वशा द्राक्षा ध्राक्षा ध्राजि (ध्वजि) ध्वाजि निजि सिजि सञ्जि हरित् ककुत् मरुत् गरुत् इक्षु द्रु मधु। आकृतिगणोऽयम्।

(११४९) शिखाया वलच् । ४ । २ । ८९ ॥

शिखा शब्दसे परे चार अर्थों (११३८ । ११३९ । ११४० । ११४१) में से किसी एक अर्थमें वलच् (वल) प्रत्यय हो । **शिखा+वल=शिखावल+सु=शिखावलः=** शिखावाला (मोर) ।

॥ इति चातुरर्थिकाः समाप्ताः ॥

अथ शैषिकप्रकरणम् ।

(११५०) शेषे । ४ । २ । ९२ ॥

अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राणादयः स्युः । तस्य विकार इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः ।

अपत्य अर्थके प्रारम्भसे चातुरर्थिकतक जिन अर्थोंका कथन है उनसे भिन्न अर्थोंका नाम **शेष** है उसमें भी अण् आदि प्रत्यय हों । **चक्षुषा गृह्यते=चाक्षुषम् (१०७०) (रूपम्)** चक्षुसे जो जाना जाता है (रूपरंग) ।

श्रावणः (१०७० । २६०) शब्दः । जो कानसे ग्रहण किया जाय (शब्द)

औपनिषदः (पुरुषः)=उपनिषद् विद्यासे जो जाना जाता है (आत्मा)

दृषदि पिष्टाः दार्षदाः (१०७० सक्तवः)=जो पत्थर (चक्की) में पीसा गया है (सत्तू) ।

चतुर्भिः उह्यते चातुरम् (१०७०) (शकटम्)=चारसे जो वहन किया जाता है (शकट गाडी) ।

चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशम् (१०७० । २६०) (रक्षः)=जो चौदशके विषय दीखता है (राक्षस)

शेषपदका अधिकार (११९६) सूत्रके पूर्वतक है ।

(११५१) राष्ट्रावारपाराद्घखौ । ४ । २ । ९३ ॥

आभ्यां क्रमात् घखौ स्तः शेषे ।

राष्ट्र (देश) तथा अवारपार (दोनों किनारे) इन शब्दोंसे परे क्रमसे घ तथा ख प्रत्यय हो **राष्ट्रे जातादिः=राष्ट्र+घ** (घ् अ) **राष्ट्र (२६०)+इय् अ (१०८७) राष्ट्रिय+सु=राष्ट्रियः**=जो देशमें उत्पन्न हुआ हो इत्यादि ।

अवारपार+ख (ख् अ)=अवारपार (२६०)+ईन् अ (१०८७)=अवारपारीन+सु=अवारपारीणः (१५७)=जो आरपारमें हुआ हो ।

(११६२) अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम् ॥

अवारपारशब्दके अवयव अवार और पार इनका पृथक् (एक एक करके) ग्रहण करे अथवा उनके क्रमको उलटकर पूर्वको पर और परको पूर्व कर दे तो भी उनसे परे ख (११६१) प्रत्यय हो।

अवार+ख (ख्अ)=अवार्+ईन्अ=अवारीन+सु=अवारीणः=इस पारका.
पार+(ख्अ)=पार्+ईन् अ=पारीन+सु=पारीणः=उस पारका.
परावार+ख (ख्अ)=परावार+ईन्अ=परावारीन+सु=परावारीणः=दोनों पारका.

इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्ट्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते। इस प्रकरणमें पृथक्पृथक् प्रकृतियोंसे परे घ (११५१) से लेकर ट्युट्युल् (११७२) पर्यन्त जो प्रत्यय कहे जाते हैं तिनके जात (११७३) आदि अर्थ तथा प्रातिपदिकके साथ एकार्थीभावको प्राप्त हुई विभक्तियां कही जायंगी।

(११६३) ग्रामाद्यखञौ। ४। २। ९४ ॥

ग्राम शब्दसे परे य अथवा खञ् (ख) प्रत्यय हो। ग्राम+य=ग्राम (२६०)+य =ग्राम्य+सु=ग्राम्यः। ग्राम+ख=ग्राम्+ (२६०) ईन् अ (१०८६)=ग्रामीन+सु=ग्रामीनः (१५७) जो गांवमें रहता है।

(११६४) नद्यादिभ्यो ढक्। ४। २। ९४ ॥

नदी इत्यादि[1] गणके शब्दोंसे परे ढक् (ढ) प्रत्यय हो। नदी+ढ (ढ्अ)=नाद् (१०७४। २६०)+एय् (१०८७) अ+नादेय+अम्=नादेयम्+ नदीमें जो हुआ अथवा नदीसे जो आया।

महीं+ढ (ढ्अ)=माह् (१०७४। २६०)+एय् (१०८७) अ=माहेय+अम्=माहेयम्=पृथ्वीमें जो हुआ इत्यादि।
वाराणसी+ढ (ढ्अ)=वाराणस्+एय् (१०८७)+अ=वाराणसेय+अम्=वाराणसेयम्+काशीमें जो हुआ इत्यादि।

(११६५) दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्। ४। २। ९८ ॥

दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् शब्दोंसे परे त्यक् (त्य) प्रत्यय हो।

---

१ नदी मही वाराणसी आवन्ती कौशाम्बी वनकौशाम्बी काशपरी काशपरी खादिरी पूर्वनगरी पाठामायर शाल्या दार्वा सेतकी वडवाया वृषे इति नद्यादिः।

दक्षिणा+त्य=दाक्षिणात्य[१०७४]+सु=दाक्षिणात्यः= दक्षिणमें जो उत्पन्न हुआ इत्यादि ।
पश्चात्+त्य=पाश्चात्त्य[१०७४]+सु=पाश्चात्त्यः=पश्चिममें जो उत्पन्न हुआ इ० ।
पुरस्+त्य=पौरस्त्य[१०७४]+सु=पौरस्त्यः=पूर्वमें जो उत्पन्न हुआ इ० ।

(११८६) द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् । ४ । २ । १०१ ॥

दिव् (आकाश), प्राच् (पूर्व), अपाच् (दक्षिण), उदच् (उत्तर) और प्रतीच् (पश्चिम) इन शब्दोंसे परे यत् (य) प्रत्यय हो ।

दिव्+य=दिव्य+अम=दिव्यम् =स्वर्गमें जो उत्पन्न हुआ हो ।
प्राच्+य=प्राच्य+अम्= प्राच्यम् =पूर्वमें जो उत्पन्न हुआ हो
अपाच्+य=अपाच्य+अम्=अपाच्यम् =दक्षिणमें जो उत्पन्न हुआ हो ।
उदच्+य=उदीच्य[३६४]+अम्=उदीच्यम् =उत्तरमें जो उत्पन्न हुआ हो ।
प्रतीच्+य=प्रतीच्य[३६५]+अम्=प्रतीच्यम्[१५४] =पश्चिममें जो उत्पन्न हुआ हो ।

(११८७) अव्ययात्त्यप् । ४ । २ । १०४ ॥

अमेहक्वतसित्रेभ्य एव ।

अमा (साथ), इह (यहां) क्व (कहां) तथा जिनके अन्त अवयव तसि (१२८७) (१२९२) और त्र हों इन्हीं अवयवोंसे परे त्यप् (त्य) प्रत्यय हो औरोंसे नहीं ।

अमा+त्य=अमात्य+सु=अमात्यः=साथ रहनेवाला - मन्त्री ।
इह+त्य=इहत्य+सु=इहत्यः=जो यहां हो ।
क्व+त्य=क्वत्य+सु=क्वत्यः=कहां जो हो ।
ततस्=त्य=ततस्त्य+सु=ततस्त्यः=तहांसे जो आया ।
तत्र+त्य=तत्रत्य+सु=तत्रत्यः=तहां जो हो ।

(११८८) त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम् ॥

नि अव्ययसे परे स्थिर अर्थमें त्यप् (त्य) प्रत्यय हो । **नि+त्य=नित्य+सु=नित्यः** =जो सब कालमें विद्यमान रहे ।

(११८९) वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् । १ । १ । ७३ ॥

यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद्वृद्धसंज्ञं स्यात् ।

जो समुदायके अचोंमें आदि अच् वृद्धिसंज्ञक हो तो वह समुदाय वृद्धिसंज्ञक हो ।

(११९०) त्यदादीनि च । १ । १ । ७४ ॥

वृद्धसंज्ञानि स्युः ।

त्यद् इत्यादि (१७०) शब्द वृद्ध (११८९) संज्ञक हों ।

(११६१) वृद्धाच्छः । ४ । २ । ११४ ॥

वृद्धसंज्ञक (११५९, ११६०) शब्दोंसे परे छ प्रत्यय हो । **शाला+छ=शाल् (२६०)+इय (१०८७)=शालीय+सु=शालीयः** शालामें=जो हो । **तद्+छ= तद्+ईय (१०८७)=तदीय+सु=तदीयः**=तिसका जो हो ।

(११६२) वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या ॥

नाम वाचक शब्दकी आदिमें वृद्धिसंज्ञक अच् हो अथवा न हो तो विकल्प करके उसकी वृद्धिसंज्ञा हो ।

देवदत्त=छ [११६१] =देवदत्त+ईय्अ [१०८७]=देवदत्तीय+सु=देवदत्तीयः=देवदत्तका । अथवा **देवदत्त+अ=दैवदत्त [१०७०, १२६०] +अ+सु=दैवदत्तः**=जो देवदत्तका हो ।

(११६३) गहादिभ्यश्च । ४ । २ । १३८ ॥

गह[१] आदि शब्दोंसे परे छ (११६१) प्रत्यय हो । **गह+छ (छ्अ)=गह्+ईय्अ [२६०]= गहीय+सु=गहीयः**=गुहामें जो हो इत्यादि ।

(११६४) युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च । ४ । ३ । १ ॥

चाच्छः । पक्षेऽण् ।

युष्मद् तथा अस्मद् शब्दोंसे परे खञ् (ख) प्रत्यय विकल्प करके हो । चकारमें छ प्रत्यय और पक्षमें अण्भी हो ।

युवयोः युष्माकं वा अयम्=युष्मद्+छ (छ्अ)=युष्मद्+ईय्अ [१०८७]=युष्मदीय+सु=युष्मदीयः=जो तुम दोनोंका वा तुम सबका हो ।

अस्मद्+छ (छ्अ)=अस्मद्+ईय्अ [१०८७]=अस्मदीयः=जो हम दोनोंका वा हम सबोंको हो ।

युष्मद्+ख । अस्मद्+ख–

---

१ गह, अन्तस्थ, विषम, मध्य, (मध्यंदिनं चरणे) उत्तम, अंग, वंग, मगध, पूर्वपक्ष, अपरपक्ष, अधम शाख, उत्तमशाख, एकशाख, समानग्राम, एकग्राम, एकवृक्ष, एकपलाश, इष्वग्र, इष्वनीक, अवस्यन्दन, कामप्रस्थ खाडायन, काठेरणि, लावेरणि, सौमित्रि, शैशिरि, आसुत, दैवशर्मि, श्रौति, आहिंसि, आमित्रि, व्याडि, वैजि, आध्याश्वि, आनृशंसि, शौंगि, अग्निशर्मि, शौजि, वाराटकि, वाल्मीकि, क्षेमवृद्धि, आश्वत्थि, औगाहमानि, एक- विन्दवि, दन्ताग्र, हंस, तन्त्वग्र, उत्तर, अनन्तर, (मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च) (जनपदयोः कुक् च,) देवस्य च वेणुकादिभ्यश्छण) एतानि गणसूत्राणि) सर्वगहादिः आकृतिगणः ।

(११६५) तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ । ४ । ३ । २ ॥

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञि अणि च ।

जब खञ्[११६४] अथवा अण् प्रत्यय परे हो तब युष्मद् तथा अस्मद् शब्दोंको युष्माक तथा अस्माक आदेश अनुक्रमसे हों ।

युष्माक+ख+(खञ्)=यौष्माक्[१०७०।२६] ईन्अ[६१०८७]=यौष्माकीण+सु=यौष्माकीणः[९५८] =तुम दोनोंका वा तुम सबोंका जो हो ।

अस्माक+ख (खञ्)=आस्माक्+ईन्अ[६१०८७]=आस्माकीन+सु=आस्माकीनः =हम दोनोंका वा सबोंका जो हो । इसी प्रकार जब अण् प्रत्यय हुआ तब=**यौष्माकः**= तुम दोनोंका वा हम सबोंका जो हो । **आस्माकः**=हम दोनोंका वा हम सबोंका जो हो यह रूप हुए ।

(११६६) तवकममकावेकवचने । ४ । ३ । ३ ॥

एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्तः खञि अणि च ।

जब खञ् अथवा अण् प्रत्यय परे हो तब एकार्थवाचक (एकवचन) युष्मद् तथा अस्मद् शब्दोंके स्थानमें तवक ममक आदेश अनुक्रमसे हों ।

तवक+ख (खञ्)=तावक्[१०७०।२६०]+ईन्अ[६१०८७]=तावकीन+सु=तावकीनः
तवक+अ तावक्[१०७०।२६०]+ अ=तावक +सु=तावकः } तेरा
ममक+ख(खञ्)=मामक्[१०७०।२६०] +ईन्[६१०८७] अ=मामकीन+सु=मामकीनः
ममक+अ= मामक्[१०७०।२६०]+ अ=मामक +सु=मामकः } मेरा.

छे तु ।

जब छ प्रत्यय होता हैं तब नीचे लिखा हुआ सूत्र लगता हैं ।

(११६७) प्रत्ययोत्तरपदयोश्च । ७ । २ । ९८ ॥

मपर्यन्तयोरेकार्थवाचिनोस्त्वमौ स्तः प्रत्यये उत्तरपदे च परतः ।

जब कोई प्रत्यय अथवा उत्तरपद परे हो तब एकार्थवाचक (एकवचन) युष्मद् अस्मद् शब्दोंके मपर्यन्तको त्व तथा म आदेश अनुक्रमसे हों ।

युष्मद्+छ=त्व अद्+ईय्[६१०८७] अ=त्वद्[३००] ईय=त्वदीय+सु=त्वदीयः=तेरा ।
अस्मद्+छ=म अद्+ईय्[६१०८८] अ=मद्[३००] ईय=मदीय+सु=मदीयः=मेरा ।
युष्मद्+पुत्र=त्व अद्+पुत्र=त्वत्[३००।८२] पुत्र=त्वत्पुत्र+सु=त्वत्पुत्रः=तेरा पुत्र ।
अस्मद्+पुत्र=म अद्+पुत्र=मत्[३००।८२] पुत्र=मत्पुत्र+सु=मत्पुत्रः=मेरा पुत्र ।

(११६८) मध्यान्मः । ४ । ३ । ८ ॥

मध्यशब्दसे परे म प्रत्यय हो ।

मध्य+म=मध्यम+सु=मध्यमः=बीचका ।

(११६९) कालाट्ठञ् । ४ । ३ । ११ ॥

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात् ।

कालवाचक शब्दोंसे परे ठञ् (ठ) प्रत्यय हो ।

काले भवम्=काले+ठ (ठ्अ) काल[१०७०।२६०] +इक्अ=कालिक+अम्=कालिकम्–समयमें जो हो । **मासि भवम्=मास्+ठ (ठ्अ) +मास्[१०७०।२६०] +इक् अ= मासिक+अम् मासिकम्**–महीनेमें जो हो । **संवत्सरे भवम्=संवत्सर्+ठ (ठ्अ)=सांवत्सर्[१०७०।२६०] +इक्अ=सांवत्सरिक +अम्=सांवत्सरिकम्**=संवत्सरमें जो हो ।

(११७०) अव्ययानां भमात्रे टिलोपः ।

केवल भसंज्ञक (१२९) अव्ययकी टिका लोप हो ।

सायंप्रातर्+ठ=सायंप्रातर्[१०७०]+इक्अ[१०२]=सायंप्रात+इक=सायंप्रातिक+सु =सायंप्रातिकः=सांझ और सबेरेमें जो हो । **पुनःपुनर्+ठ=पौनःपुनर्[१०७०]+ इक्अ[१०३३]+पौनःपुन +इकः=पौनःपुनिकः**=जो बारंबार हो ।

(११७१) प्रावृष एण्यः । ४ । ३ । १७ ॥

प्रावृष् (वर्षाऋतु) शब्दसे परे एण्य प्रत्यय हो ।

प्रावृष्+एण्य=प्रावृषेण्य+सु=प्रावृषेण्यः=वर्षाऋतुमें जो हो ।

(११७२) सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च । ४ । ३ । २३ ॥

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयोस्तुट् च ।

सायम् (सांझ), चिरम् (बहुकाल), प्राह्ण (दिनका पूर्वभाव) और प्रगे (प्रातःकाल) इन चार शब्दोंसे परे तथा कालवाचक अव्ययसे परे ट्यु (यु) और ट्युल् (यु) प्रत्यय हों और उन प्रत्ययोंको तुट् (त्) का आगम भी हो ।

सायम्+यु=सायम्+तुयु[१४०]+त्अन[८३०]+सायन्तन[९४।९६] +अम्=सायन्तनम्=सायंकालमें जो हुआ ।

चिरम्+यु=चिरम्+त् यु=चिरं[९५।२६]+त् [८३७]अन=चिरन्तन+अम्=चिरन्तनम्[३००]=जो बहुत कालसे हो ।

प्राह्णेप्रगेऽनयोरेदन्तत्वं निपात्यते[१] । प्राह्णे प्रगे इन दोनोंमें एदन्तत्वका निपातन किया जाता है क्योंकि सूत्रमें एकारान्तहीका उच्चारण किया हैं । **प्राह्णे+यु=प्राह्णे+त् यु प्राह्णे+त्[८३७]अन=प्राह्णेतन+अम्=प्राह्णेतनम्**[३००] । **प्रगे+यु=प्रगे+त् यु=प्रगे+त्[८३७]अन्=प्रगेतन+अम्=प्रगेतनम्**[३००]=प्रातःकालमें जो हो ।

दोषा+यु+त् यु=दोषा+त्[८३७]अन=दोषातन+अम्=दोषातनम्=रात्रिमें जो हो ।

(११७३) तत्र जातः । ४ । ३ । १९ ॥

सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः ।

'उत्पन्न हुआ' इस अर्थमें सप्तम्यन्तसमर्थसे परे अण् आदि तथा घ आदि प्रत्यय हों ।

स्रुघ्ने जातः=स्रुघ्न+अ=स्रौघ्न[१०७०।२६०]+अ=स्रौघ्न+सु=स्रौघ्नः=स्रुघ्नदेशमें जो उत्पन्न हुआ हो ।

उत्से जातः=उत्स्+अ=औत्स्[१०७०।२०७]+अ=औत्स+सु=औत्सः जो झरनेमें उत्पन्न हुआ हो ।

राष्ट्रे जातः=राष्ट्रियः[११५१]=जो किसी देशमें उत्पन्न हुआ हो । **अवारपारे जातः=अवारपारीणः** (११५१)=जो आरपारमें उत्पन्न हुआ हो ।

(११७४) प्रावृषष्ठप् । ४ । ३ । २६ ॥

' उत्पन्न हुआ ' इस अर्थमें प्रावृष् शब्दसे परे ठप् (ठ) प्रत्यय हो, यह प्रत्यय एण्य (११७१) का अपवाद है ।

प्रावृष्+ठ (ठ्अ)=प्रावृष्+इक्[११०२]अ=प्रावृषिक+सु=प्रावृषिकः=जो वर्षाऋतुमें उत्पन्न हुआ हो ॥

(११७५) प्रायभवः । ४ । ३ । ३९ ॥

तत्रेत्येव ।

प्रायभव अर्थात् प्रायः(बाहुल्यसे) होता हो इस अर्थमें सप्तम्यन्तसमर्थसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति=स्रुघ्न+अ स्रौघ्न (१०७० । २६०)+अ=स्रौघ्न+सु=स्रौघ्नः**=जो बहुधा स्रुघ्न देशमें होता हो ।

(११७६) सम्भूते । ४ । ३ । ४१ ॥

सम्भव अर्थमें सप्तम्यन्त समर्थसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **स्रुघ्ने सम्भवति=स्रुघ्न+अ=स्रौघ्न (१०७० । २६०)+अ=स्रौघ्न+सु=स्रौघ्नः**=स्रुघ्नदेशमें जिसका संभव हो ।

---

१ अव्ययत्वभ्रमं वारयति- एदन्तत्वमिति । " प्रत्ययसन्नियोगेन सायंचिरंशब्दयोर्मान्तत्वमपि निपात्यते " इत्यपि बोध्यम् । एवंच सायंशब्दादयश्चत्वारोऽपि नाव्ययशब्दा इति नाव्ययग्रहणेन गतार्थतेति तत्त्वम् ।

(११७७) कोशाड्ढञ्। ४। ३। ४२॥

कोश (रेशमके कीडेके रहनेका घर) सप्तम्यन्तसमर्थसे परे संभव अर्थमें ढञ् (ढ) प्रत्यय हो। **कोशे सम्भूतः=कोश+ढ (ढ् अ) कोश् (१०७० । २६०)+ एय् अ (१०८७)=कौशेय+अम्=कौशेयम् (३००) (वस्त्रम्)** कोशसे जिसका संभव है (रेशमी वस्त्र)।

(११७८) तत्र भवः। ४। ३। ५३॥

सप्तम्यन्तसमर्थसे परे भव अर्थमें अण् आदि प्रत्यय हों। **स्रुघ्ने भवः=स्रौघ्नः** जो स्रुघ्न= देशमे हो। इसी प्रकार **उत्से भवः=औत्सः** जो उत्सदेशमें हो। **राष्ट्रियः**=जो किसी देशमें हो।

(११७९) दिगादिभ्यो यत्। ४। ३। ५४॥

'तत्र भवः' (वहां हो) इस अर्थमें दिगादिशब्दोंसे परे यत् (य) प्रत्यय हो।

दिशि भवम्=दिश्+य=दिश्य+अम्=दिश्यम्[१५४]=दिशामें जो हो।

वर्गे भवम्=वर्ग+य=वर्ग्य+अम्=वर्ग्यम्=जो वर्गमें हो।

(११८०) शरीरावयवाच्च। ४। ३। ५५॥

हुआ इस अर्थमें सप्तम्यन्त शरीरके अवयव वाचक शब्दोंसे परे 'यत्' (य) प्रत्यय हो। **दन्ते भवम्=दन्त+य=दन्त (२६०)=य=दन्त्य+अम्=दन्त्यम्** (१५४)=जो दांतमें हो। इसी प्रकार **कण्ठ्यम्**=जो कण्ठमें हो।

अध्यात्मादेष्ठञिष्यते-भाष्यकार कहते हैं। कि भव अर्थमें अध्यात्म इत्यादि शब्दोंके परे ठञ् प्रत्यय हो। यथा-**अध्यात्मं भवम्=अध्यात्म+ठ=अध्यात्म (१०७० । २६०)+इक् अ (११०२)=आध्यात्मिक+अम्=आध्यात्मिकम्**=जो आत्मामें हो।

(११८१) अनुशतिकादीनां च। ७। ३। २०॥

एषामुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च।

ञित्, णित् अथवा कित् प्रत्यय परे हुए सन्ते अनुशतिक आदि शब्दोंमें पूर्व तथा उत्तर पदके आदि अच्को वृद्धि हो।

---

१ दिक् वर्ग पूग गण पक्ष धाय्य मित्र मेधा अन्तर पथिन् रहस् अलीक उखा साक्षिन् देश आदि अन्त मुख जवन मेघ यूथ (उदकात्संज्ञायाम्) न्याय वंश वेश काल आकाश इति दिगादयः।

२ अनुशतिक। अनुहोड। अनुसंवरण अनुसंवत्सर। अंगारवेणु। आसिहत्य। अस्यहत्य। अस्यहेति। वध्योग। पुष्करसद्। अनुहरत्। कुरुकत। कुरुपञ्चाल। उदकशुद्ध। इहलोक। परलोक। सर्वलोक। सर्वपुरुष। सर्वभूमि। प्रयोग। परस्त्री। (राजपुरुषात् ष्यञि। सूत्रनड। आकृतिगणोऽयम्। तेन अभिगम। अभिभूत। अधिदेव। चतुर्विद्या इत्य दि सिद्धम्।

अधिदेव+ठ=आधिदैव+इक्+अ=आधिदैविक+अम्=आधिदैविकम्=देवमें जो हो ।

अधिभूत+ठ=ऐहलौकिकम्=पञ्चभूतमें जो हो ।

इहलोक+ठ=ऐहलौकिकम्=इस लोकमें जो हो ।

पारलौकिकम्=परलोंकमें जो हो ।

आकृतिगणोऽयम् । यह आकृतिगण है ।

(११८२) जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः । ४ । ३ । ६२ ॥

'तत्र भवः' (वहां हो) इस अर्थमें जिह्वामूल और अङ्गुलि—सप्तम्यन्तशब्दोंसे परे छ प्रत्यय हो । **जिह्वामूले भवम्=जिह्वामूल (२६०)+ईय्अ (१०८७)=जिह्वामूलीय+अम् (१९४)=जिह्वामूलीयम्** जिह्वामूलमें होनेवाला । इसी प्रकार **अङ्गुल्यां भवम्+अङ्गुली+छ=अङ्गुलीयम्**=अङ्गुलीमें जो हो ।

(११८३) वर्गान्ताच्च । ४ । ३ । ६३ ॥

जिनका अन्त अवयव वर्गशब्द हो उन सप्तम्यन्त समर्थोंसे परे ' तत्र भवः' (११७८) इस अर्थमें छः प्रत्यय हो ।

कवर्गे भवम्=कवर्ग+छ=कवर्गीयम् (१०८७ । २६०)=कवर्गमें होनेवाला ।

(११८४) तत आगतः । ४ । ३ । ७४ ॥

'तत आगतः' (तहांसे आया इस अर्थमें) पञ्चम्यन्त शब्दसे परे अण् आदि प्रत्यय हों ।

स्रुघ्नात् आगतः=स्रौघ्नः (१०७० । २६०)=स्रुघ्न देशसे जो आया हो ।

(११८५) ठगायस्थानेभ्यः । ४ । ३ । ७५ ॥

'तत आगतः' इस अर्थमें राजाके कर लेनेके स्थानके वाचक पञ्चम्यन्त शब्दसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय हो । **शुल्कशालाया आगतः=शौल्कशालिकः** (१०७४।११०२। २६०)=जो शुल्कशालासे आया हो ।

(११८६) विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् । ४ । ३ । ७७ ॥

जिस शब्दके प्रवृत्तिनिमित्तमें विद्याका सम्बन्ध हो और जिस शब्दके प्रवृत्तिनिमित्तमें योनिका संबंध हो वे शब्द क्रमसे विद्या और योनिसंबंधवाले कहावें । विद्या और योनिसंबंधी पञ्चम्यन्त शब्दोंसे परे 'तत आगतः' (वहांसे आया) इस अर्थमें वुञ् (वु) प्रत्यय हो ।

उपाध्यायादागतः= उपाध्याय=वु-औपाध्याय (१०७० । २६०)+**अक** (८३७) **औपाध्याय+वु=औपाध्यायकः**=उपाध्यायसे जो आया हो इसी प्रकार **पितामह+वु=पैतामहकः**=पितामहसे जो आया है ।

(११८७) हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः । ४ । ३ । ८१ ॥

हेतु तथा मनुष्यवाचक पञ्चम्यन्त शब्दोंसे परे ' तत आगतः ' (वहांसे आया) अर्थमें रूप्य प्रत्यय विकल्प करके हो ।

समात् आगतम्=सम+रूप्य=समरूप्य+अम्=समरूप्यम्[154] । पक्षे गहादित्वाच्छः+पक्षमें ' **गहादिभ्यश्च** ' करके छ प्रत्यय होता है ।

सम+छ[1163] =सम्[260]+ईय्[1087]अ=समीय+अम्=समीयम्[154]=समान हेतुसे जो आया हो ।

विषमादागतम्=विषम+रूप्य=विषमरूप्य+अम्=विषमरूप्यम् । विषम+छ[11] विषम्[260]+ईय्[1086]अ=विषमीय+अम्=विषमीयम्[154] । विषम हेतुसे जो आया हो ।

देवदत्तात् आगतम्=देवदत्त+रूप्य=देवदत्तरूप्य+अम्=देवदत्तरूप्यम्[154] । देवदत्त+अ=दैवदत्[1070|260] +अ=दैवदत्त+अम्=दैवदत्तम्[154]=देवदत्तसे जो आया हो ।

(११८८) मयट् च । ४ । ३ । ८२ ॥

हेतु तथा मनुष्यवाचक पञ्चम्यन्त शब्दोंसे परे ' तत[154] आगतः ' इस अर्थमें मयट् (मय) प्रत्यय हो विकल्प करके ।

सम+मय=सममय+अम्=सममयम्[154]=सम हेतुसे जो आया हो ।

देवदत्त+मय=देवदत्तमय+अम्=देवदत्तमयम्=देवदत्तसे जो आया हो ।

क्रि०

(११८९) प्रभवति । ४ । ३ । ८३ ॥

' प्रभवति ' (पहिले ही प्रकाशित होता है) इस अर्थमें पञ्चम्यन्त शब्दसे परे अण् आदि प्रत्यय हों ।

हिमवतः प्रभवति=हिमवत+अ=हैमवत[1070]+ई[1344] =हैमवती गङ्गा=हिमालय पर्वतसे जो प्रकाशित हो (गङ्गा)

क्रि०

(११९०) तद्गच्छति पथिदूतयोः ४ । ३ । ८५ ॥

तद्गच्छति (उस स्थलको जाता है) इस अर्थमें द्वितीयान्त शब्दसे परे अण् आदि प्रत्यय

हों, परन्तु जो जाता हो वह पथ अथवा दूतवाचक हो तो । **स्रुघ्नं गच्छति=स्रौघ्नः (१०७० । २६०) पन्था दूतो वा**=जो स्रुघ्न देशको जाता है ऐसा मार्ग अथवा दूत ।

क्रि०

(११९१) अभिनिष्क्रामति द्वारम् । ४ । ३ । ८६ ॥

सम्मुख निकलता है इस अर्थमें द्वितीयान्त शब्दसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । यथा— **+स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति स्रौघ्नम् =कान्यकुब्जद्वारम्** =स्रुघ्नद्वार देशके सम्मुख जो निकलता है । यथा-कनौजका दरवाजा ।

(११९२) अधिकृत्य कृते ग्रन्थे । ४ । ३ । ८७ ॥

ग्रन्थवाचक शब्द हों तो किसी विषयका प्रसङ्ग लेकर किया गया हो इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों। **शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः=शारीरक+छ=शारीरक्+ईय्अ (१०८७)=शारीरकीय+सु=शारीरकीयः**=जो ग्रन्थ आत्माका विषय लेकर बनाया गया है ।

(११९३) सोऽस्य निवासः । ४ । ३ । ८९ ॥

वह इसका निवासस्थान है इस अर्थमें प्रथमान्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **स्रुघ्नः निवासोऽस्य स्रौघ्नः**=स्रुघ्नदेशमें जिसका निवास है ।

(११९४) तेन प्रोक्तम् । ४ । ३ । १०१ ॥

उसने कहा है इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **पाणिनिना प्रोक्तम् =पाणिनि+छ=पाणिन् (२६०)+ईय्अ (१०८७) पाणिनीय+अम् =पाणिनीयम्** =पाणिनिसे कहा हुआ (व्याकरण शास्त्र)

(११९५) तस्येदम् । ४ । ३ । १२० ॥

'उसका यह है' इस अर्थमें षष्ठ्यन्तसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **उपगोः इदम् = उपगु+अ=औपगव् (१०७०।१०७२।२९) अण् =औपगव+अम्=औपगवम्** (१९४) उपगुका जो हो ॥

॥ इति शैषिकप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ प्राग्दीव्यतीयप्रकरणम् ।

(११९६) तस्य विकारः । ४ । ३ । १३४ ॥

विकार अर्थमें षष्ठ्यन्तसे अण् आदि प्रत्यय हों । विकार अर्थात् प्रकृतिका रूपान्तर हो जैसे दूधका दही । **अश्मनो विकारः=अश्मन्+अ (अण्)–**

(११९७) अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः ॥

विकारार्थक प्रत्यय परे हुए सन्ते अश्मन् शब्दकी टिका लोप कहना । **अश्म्+अ=आश्म (१०००)+सु=आश्मः** पत्थरका विकार । **भस्म+अन्+अ (९८०)** से भसंज्ञक अन्का लोप प्राप्त हुआ परन्तु (१०९९) से उसको प्रतिप्रसव आ । **भस्मन्=अ=भास्मन्+ अ+सु=भास्मनः**=भस्मका विकार । **मृत्तिक+आ=मार्त्तिक् (१०७० । २६०)+अ=मार्त्तिक+सु=मार्त्तिकः**=मट्टीका विकार ।

(११९८) अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः । ४ । ३ । १३५ ॥

चाद्विकारे ।

अवयव तथा विकार[११९६] अर्थमें जीवधारी, ओषधि और झाडवाचक षष्ठ्यन्त शब्दोंसे परे अण् आदि प्रत्यय हों । **मयूरस्य अवयवो विकारो वा=मयूर+अ=मायूरः (१०७० । २६०)**+मोरका अवयव अथवा विकार । **मूर्वा+अ=मौर्वम् (१०७० । २६०)** मूर्वानाम लताकी पोरी वा भस्म । **पिप्पल+अ=पैप्पलम् (१०७० । २६०)** पीपलका अवयव अथवा विकार, पकनेपर जो नष्ट हो जाय । सो औषधी है गेहूं आदि ।

(११९९) मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ।४।३।१४३॥

प्रकृतिमात्रान्मयड्वा स्यात् विकारावयवयोः ।

वेदके विना दूसरे ग्रंथोंमें विकार (११९६) तथा अवयव (११९८) अर्थमें सर्व प्रातिपदिकोंसे परे मयट् (मय) प्रत्यय विकल्पसे हो परंतु विकार अथवा अवयव भक्षण योग्य अथवा पहिनने योग्य हों तो न हो ।

१ **अश्मन्+मय=अश्म+मय+सु=अश्ममयः ।**　} पत्थरका विकार.
१ **(अ०) अश्मन्+अ=आश्मन्+अम्–आश्मनम्**　} पत्थरका अवयव

अभक्ष्येत्यादि किम् ? आहार तथा वस्त्रवाचकमें मयट्का अभाव क्यों कहा, उत्त॰ **मुद्ग+अ-मौद्ग** (१०७० , २९०)+**अ=मौद्ग+सु=मौद्गः**-मूंगकी दाल । **कर्पास+अ+कार्पास** (२९०)+**अ=कार्पास+सु=कार्पासः**-कपासका विकार (कपडा) यहां भी मयट् न हो इसके वास्ते ।

(१२००) नित्यं वृद्धशरादिभ्यः । ४ । ३ । १४४ ॥

वृद्धसंज्ञक (११९९) शब्दोंसे परे तथा शर आदि (शर, दर्भ, मृत्, कुटी, तृण, सोम, बल्वज) शब्दोंसे परे विकार तथा अवयव अर्थमें मयट् (११९९) (मय) प्रत्यय नित्य हो. **आम्र+मय=आम्रमय+अम्=आम्रमयम्**=आमका विकार अथवा अवयव ।

(१२०१) गोश्च पुरीषे । ४ । ३ । १४५ ॥

पुरीष (गोबर) अर्थमें गोशब्दसे मयट् हो । **गो+मय=गोमय+अम्=गोमयम्** (१९४)=गायका गोबर ।

(१२०२) गोपयसोर्यत् । ४ । ३ । १६० ॥

गो तथा पयस् (दूध) शब्दसे परे विकार अर्थमें यत् (य) प्रत्यय हो । **गोर्विकारः** **गो+य=गव्य** (३१)+**अम्=गव्यम्**=गायका विकार । **पयस्+य-पयस्य अम्=पयस्यम्**-दूधका विकार ।

॥ इति प्राग्दीव्यतीयप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ ठगधिकारः ।

(१२०३) प्राग्वहतेष्ठक् । ४ । ४ । १ ॥

तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते ।

इस सूत्रसे प्रारम्भकर (१२१८) सूत्रके पूर्वतक ठक् प्रत्ययका अधिकार कियाजाता है।

क्रि॰ क्रि॰ क्रि॰

(१२०४) तेन दीव्यति खनति जयति जितम् । ४ । ४ । २ ॥

अक्षैर्दीव्यति खनति जयति जितं वा आक्षिकः ।

उस करके खेलता है, खोदता है, जीतता है अथवा जो वस्तु जीती गई इन अर्थोंमें तृतीयान्तसे परे ठक् (ठ) प्रत्यय हो । **अक्ष+ठ=आक्ष्** (१०८४, २६०)+**इक् अ** (११०२) **आक्षिक+अम्=आक्षिकम्** । पाशोंसे जो खेलता है, खोदता है, जीतता है वा जो वस्तु जीती गई ।

(१२०५) संस्कृतम् । ४ । ४ । ३ ।

जिस करके संस्कार किया गया इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे ठक् (१२०३)प्रत्यय हो। **दध्ना संस्कृतम्=दाधिकम्** (१०७४, ११०२, २६०)=दहीसे जिसका संस्कार किया हो, बडे फुलौरी आदि । **मरिच=मारीचिकम्**=मिरचसे जिसका संस्कार किया गया हो ।

क्रि०

(१२०६) तरति । ४ । ४ । ५ ॥

पार जाता है इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे ठक् (१२०३) प्रत्यय हो। **उडुपेन तरति=उडुप+ठ=औडुप्** (१०७४, २६०)+**इक् अ** (११०२) **औडुपिक+सु=औडुपिकः**=घरनईसे जो पारजाता है ।

क्रि०

(१२०७) चरति । ४ । ४ । ८ ॥

जाता अथवा खाता है इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे ठक् प्रत्यय हो । **हस्तिना चरति=हस्तिन्+ठ=हास्त्**(१०७४ । ९८०) **इक् अ** (११०२)=**हास्तिक+सु=हास्तिकः**=जो हाथी द्वारा जाता है **दध्ना भक्षयति=दधि+ठ=दाध्** (१०७४, २६०) +**इक् अ** (११०२)=**दाधिक+सु=दाधिकः**=दही करके जो खाता है ।

(१२०८) संसृष्टे । ४ । ४ । २२ ॥

उससे मिलाया गया इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे ठक्[१२०३] प्रत्यय हो । **दध्ना संसृष्टः=दाधिकः** (११०२ । १०७४ । २६०)=दही करके जो मिलाया गया ।

क्रि०

(१२०९) उञ्छति । ४ । ४ । ३२ ॥

बीनता है इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे ठक् (१२०३) प्रत्यय हो । **बदराणि उञ्छति=बादरिकः** (१०७४ । ११०४ । २६०)=जो बेर बीनता है ।

क्रि०

(१२१०) रक्षति । ४ । ४ । ३३ ॥

रक्षण करता है इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे ठक् प्रत्यय हो । **समाजं रक्षति=सामाजिकः** (१०७४ । ११०२ । २६०)=जो समाजकी रक्षा करता है ।

क्रि०

(१२११) शब्ददर्दुरं करोति । ४ । ४ । ३४ ॥

शब्द करता तथा दर्दुर करता है इस अर्थमें द्वितीयान्त शब्द और दर्दुर प्रातिपदिक से परे ठक् प्रत्यय हो ।

शब्दं करोति=शाब्दिकः (१०७४ । ११०२ । २६०)=जो शब्द करता है ।
दर्दुरं करोति=दार्दुरिकः (१०८४ । ११०२ । २६०)=मेडक जो करता है ।

क्रि०

(१२१२) धर्मं चरति । ४ । ४ । ४१ ॥

धर्माचरण करता है इस अर्थमें द्वितीयान्त धर्म शब्दसे परे ठक् प्रत्यय हो । **धर्मम् आचरति=धार्मिकः** (१०७४ । ११०२ । २६०)=धर्माचरण जो करता है ।

(१२१३) अधर्माच्चेति वक्तव्यम् ।

अधर्मका आचरण करता है इस अर्थमें भी द्वितीयान्त अधर्मशब्दसे परे ठक् प्रत्यय हो । **अधर्मम् आचरति=आधर्मिकः** (१०७४ । ११०२ । २६०)= अधर्मका जो आचरण करता है ।

(१२१४) शिल्पम् । ४ । ४ । ५५ ॥

हस्तकौशल अर्थमें प्रथमान्तसे परे ठक् प्रत्यय हो । **मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः** (१०७४ । ११०२ । २६०)=मृदङ्ग बजानेमें जिसका हाथ कुशल है ।

(१२१५) प्रहरणम् । ४ । ४ । ५७ ॥

इसका प्रहरण इस अर्थमें प्रथमान्तसे परे ठक् प्रत्यय हो । **असिः प्रहरणमस्य=**

आसिकः (१०६४ । ११०२ । २६०)=खड्गधारी । **धनुष् (स्)+ठ=धानु-उष् (१०७४)+क (११३४)=धानुष्क+सु=धानुष्कः**=धनुषधारी ।

(१२१६) शीलम् । ४ । ४ । ६१ ॥

स्वभाववाचक अर्थमें प्रथमान्त शब्दोंसे परे ठक् (१२०३) प्रत्यय हो ।

अपूपभक्षणं शीलमस्य=आपूपिकः (१०७४ । ११०२ । २६०)=पुआ खानेका जिसका स्वभाव है ।

क्रि०

(१२१७) निकटे वसति । ४ । ४ । ७३ ॥

निकट रहता है इस अर्थमें सप्तम्यन्त निकट शब्दसे परे ठक् प्रत्यय हो । **निकटे वसति निकट+ठ=निकट्** (१०७४ । २६०)**+इक् अ** (११०२)**+नैकटिक+सु=नैकटिकः** (**भिक्षुः**)=जो निकट वसता हो (भिखारी) ॥

॥ इति ठगधिकारः ॥

अथ यदधिकारः ।



(१२१८) प्राग्घिताद्यत् । ४ । ४ । ७५ ॥

तस्मै हितमित्यतः प्राग् यदधिक्रियते ।

इस सूत्रसे प्रारम्भ कर (१२२७) के पूर्व तक यत् प्रत्ययका अधिकार जाता है ।

क्रि०

(१२१९) तद्वहति रथयुगप्रासंगम् । ४ । ४ । ७६ ॥

तिसको ले जाता है इस अर्थमें रथ युग और प्रासंग इन तीन द्वितीयान्त शब्दोंसे परे यत् (१२१८) प्रत्यय हो । **रथं वहति=रथ+य=रथ्**(२६०)**+य=रथ्य+सु=रथ्यः**= रथ जो लेजाय, इसी प्रकार **युग्यः**=जुआ जो लेजाय; **प्रासंग्यः**=जो अडगडा (जुअ विशेष) ले जाय ।

(१२२०) धुरो यड्ढकौ । ४ । ४ । ७७॥

हलि चेति दीर्घे प्राप्ते ।

तिसको लेजाता है इस अर्थमें द्वितीयान्त धुर शब्दसे परे यत् (य) और ढक् (ढ) प्रत्यय हो । **धुर+य**=यहां **'हलि च'** से दीर्घ प्राप्त हुआ तब -

न भकुर्छुराम् । ८ । २ । ७८ ॥

भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया दीर्घो न स्यात् ।

भसंज्ञक तथा कुर् छुर्के उपधाको दीर्घ न हो । इससे दीर्घका निषेध हुआ तब=**धुर्य+सु=धुर्यः (अथवा) धुर+ढ=धौर् (१०७४)+एय् अ (१०८७)=धौरेय +सु=धौरेयः**=जो बोझा ढोवे ।

(१२२१) नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसंमितेषु । ४ । ४ । ९१ ॥

नौ (नाव) वयस् (उमर) धर्म (धर्म) विष (जहर) मूल (जड) मूल (जो खरीदा जाय) सीता (हलका फल) तुला (तराजू) यह शब्द तृतीयान्त हों तो इनसे परे यत् प्रत्यय हो जो शब्द सिद्ध हों उनके अर्थ यही हों तो तार्य (जो नौकासे तरने योग्य हो अर्थात् जल), तुल्य (सदृश), प्राप्य (प्राप्त होनेयोग्य) वध्य (मारडालने योग्य) आनाम्य (जो झुकानेके योग्य हो) सम (समान) समित (सम किया गया) संमित (जो तौलागया) । (उदा०) **नावा तार्यम्=नौ+य=नाव् (३१)+य=नाव्य+अम्=नाव्यम् (१५४)** जल-जो नौकासे तरने योग्य हो । **वयसा तुल्यः=वयस्यः** अवस्थामें जो तुल्य हो-मित्र । **धर्मेण प्राप्यम्=धर्म्यम्** (३६०)=धर्मसे प्राप्त करने योग्य । **विषेण वध्यः=विष्यः**=विषसे जो मारडालने योग्य है । **मूलेन आनाम्यम् मूल्यम्**=जडसे जो झुकाने योग्य हो । **मूलेन समः=मूल्यः**=मोल ली हुई वस्तुके जो समान दाम हो । **सीतया समितम्=सीत्यम् (२३०) (क्षेत्रम्),** हलके फलसे जो समान किया हो । (खेत) । **तुलया संमितम्=तुल्यम्**=तराजूसे जो तोला गया हो अर्थात् सदृश ।

(१२२२) तत्र साधुः । ४ । ४ । ९८ ॥

निपुण अर्थमें सप्तम्यन्तसे परे यत् प्रत्यय हो । **सामसु+साधुः=सामन्+य=सामन्य +सु=सामन्यः**=सामवेदमें जो निपुण हो । **कर्मन्+य=कर्मण्यः**=कर्ममें जो निपुण हों । **शरण+य+शरण्यः** (२६०)=शरणमें जो निपुण हो । **अग्रे साधुः=अग्र्यः**= अगाडीमें चतुर हो ।

(१२२३) सभाया यः । ४ । ४ । १०५ ॥

निपुण अर्थमें सप्तम्यन्त सभाशब्दसे परे यत् प्रत्यय हो । **सभासु साधुः=सभा+य= सभ (२६०)+य=सभ्य+सु=सभ्यः**=सभाओंमें जो निपुण हो । यत् (१२१८) की अवधि समाप्त हुई परन्तु नीचेके तीन सूत्र इसीके अन्तर्गत हैं ॥

॥ इति यतोऽवधिः ॥

अथ छयतोरधिकारः ।



(१२२४) प्राक् क्रीताच्छः । ५ । १ । १ ॥

तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते ।

इस सूत्रसे प्रारम्भ कर 'तेन क्रीतम्' (१२३२) से पहले छ प्रत्ययका अधिकार जाता है ।

(११२५) उगवादिभ्यो यत् । ५ । १ । २ ॥

प्राक् क्रीतादित्येव ।

उवर्णान्ताद्गवादिभ्यश्च यत् स्याच्छस्यापवादः ।

उकारान्तसे परे तथा गोआदि शब्दोंसे परे यत् प्रत्यय हो । यह सूत्र छ (१२२४) प्रत्ययका अपवाद है । **शङ्कवे हितम्=शङ्कु+य=शङ्को (१०७९)+य=शङ्कव् (३१)+ य=शङ्कव्य+अम्=शङ्कव्यम्** (१५४) शङ्कुका जो हितकारक हो (वह लकडी जिससे शंकु बन सके)। **गवे हितम्=गो+य-गव् (३१) य=गव्य+अम्=गव्यम्**=गायका जो हितकारक हो 'तेन क्रीतम्' इससे पहले ही इस (१२२५) का विषय जानो ।

१२२६ नाभि नभं च ॥ ५ । १ । ३ ॥

नाभि (पहियेके बेलनका छिद्र) शब्दको नभ आदेश हो। । (११२५) में ऐसा कहना चाहिये । यथा—**नाभि+य—नभ्+** (२६०)**+य+सु=नभ्यः** (**अक्षः**)= नाभिका हितकारक रथचक्रमें प्रवेश करनेकी धुरी । **नभ्यम्**—(२६०) **अञ्जनम्**) आँजन ।

(१२२७) तस्मै हितम् । ५ । १ । ५ ॥

हितकारक अर्थमें चतुर्थ्यन्तसे परे छ प्रत्यय हो । **वत्सेभ्यो हितः—वत्स+छ—वत्स्** (२६०)**+इय्अ** (१०८७)**=वत्सीय+सु=वत्सीयः** (**गोधुक्**)=बछडोंका हितकारक—गायका दुहनेवाला जो बछडेके निमित्त थोडा छोड दे ।

---

१ गो । हविस् । अक्षर । विष बर्हिस् । अष्टका । स्खदा युगे । मेधा स्रुच् । (नाभि नभं च) (शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वम्, तस्मान्नियोगेन चान्तोदात्तत्वम् ।ऊधसोऽनङ्) कूप खद दर खर असुर अध्वन् क्षर वेद बीज दीप्त इति गवादिः ।

(१२२८) शरीरावयवाद्यत् । ५ । १ । ६ ॥

शरीरके अवयववाचक चतुर्थ्यंत शब्दसे हितकारक अर्थमें यत् प्रत्यय हो । **दन्तेभ्यो हितम्=दन्त+य+अम्=दन्त्यम्** (२६०) दांतका जो हितकारक हो । **कण्ठ+य+अम्=कण्ठ्यम्**=जो कण्ठका हितकारक हो । **नस्+य+अम्=नस्यम्**=जो नाकको हितकारक हो ।

(१२२९) आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः । ५ । १ । ९ ॥

हितकारक अर्थमें आत्मन् तथा विश्वजन शब्दोंसे परे तथा भोग जिसका उत्तरपद हो ऐसे शब्दसे परे ख प्रत्यय हो । **आत्मने हितम्=आत्मन्+ईन्** (९८०) से घसंज्ञकका लोप प्राप्त हुआ, परन्तु-

१२३० (आत्माध्वानौ खे । ६ । ४ । १६९ ॥

एतौ खे प्रकृत्या स्तः ।

जब ख प्रत्यय परे हो तो आत्मन् (आत्मा) और अध्वन् (मार्ग) इन शब्दोंको प्रकृतिभाव हो । **आत्मन्+ईन्=अ** (१०८७) **अम्=आत्मनीनम्**=जो अपने निमित्तहितकारक हो । इसीप्रकार **विश्वजनीनम्**=जो सब लोगोंका हितकारक हो । **मातृभोगीणः**-माताके सुखके निमित्त जो हितकारक हो ।

॥ इति छयतोः पूर्णोऽवधिः ॥

तद्धित छ (१२२४) तथा यत् (१२१९) विधिप्रकरण समाप्त ॥

अथ ठञधिकारः ।

(१२३१) प्राग्वतेष्ठञ् । ५ । १ । १८ ॥

तेन तुल्यमिति वेति वक्ष्यति, ततः प्राक् ठञधिक्रियते ।

इस सूत्रसे प्रारम्भकर (१२३८) सूत्रके पूर्वतक ठञ् (ठ) का अधिकार है ।

१२३२ (तेन क्रीतम् । ५ । १ । ३७ ॥

उससे खरीदा गया इस अर्थमें तृतीयान्तसे परे ठञ् प्रत्ययहो । **सप्तति+ठअ=साप्तत** (१०७० । २६०)+**इक् अ** (११०२)=**साप्ततिक+अम्=साप्ततिकम्** (१५४) सत्तरसे जो मोल लिया गया हो । **प्रस्थ+ठ+अम्=प्रास्थिकम्** (१०७० । २६० । ११०२) प्रस्थ परिमित धान्य आदिसे जो खरीदा हो ।

(१२३३) तस्येश्वरः । ५ । १ । ४२ ॥

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ स्तः । अनुशतिकादीनाञ्च ।

ईश्वर अथवा धनी इस अर्थमें सर्वभूमि और पृथिवी इन षष्ठयन्त प्रातिपदिकोंसे परे अण् तथा अञ्प्रत्यय अनुक्रमसे हों ।

सर्वभूमेः ईश्वरः=सर्वभूमि+अ=सार्वभौम् +अ=सार्वभौम+सु=सार्वभौमः=सब धरतीका ईश्वर ।

पृथिव्याः ईश्वरः=पृथिवी+अ=पार्थिव् १०७।२६० **+अ=पार्थिव+सु=पार्थिवः**=पृथिवीका धनी ।

(१२३४) पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् । ६ । १ । ५९ ॥

एते रूढिशब्दा निपात्यन्ते ।

पङ्क्ति (दश वा एक जातिका छन्द), विंशति (बीस), त्रिंशत् (तीस), चत्वारिंशत (चालीस), पञ्चाशत् (पचास), षष्टि (साठ), सप्तति (सत्तर), अशीति (अस्सी), नवति (नब्बे) और शत (सौ) ये रूढिशब्द निपात किये हैं ।

क्रि०

(१२३५) तदर्हति । ५ । १ । ६३ ॥

लब्धुं योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताट्ठञादयः स्युः ।

लाभ करनेके योग्य है इस अर्थमें द्वितीयान्तसे परे ठञ् (१२३१) आदि प्रत्यय हों । **श्वेतच्छत्रमर्हति=श्वेतच्छत्र+ठ=श्वेतच्छत्र्** (१०७० । २६०)+इक् अ= (११०२) **श्वैतच्छत्रिक+सु=श्वैतच्छत्रिकः**=जो श्वेतच्छत्रके योग्य हो ।

(१२३६) दण्डादिभ्यो यत् । ५ । १ । ६६ ॥

एभ्यो यत्स्यात् ।

दण्ड आदि शब्दोंसे परे 'योग्य है' इस अर्थमें यत् प्रत्यय हो। **दण्डमर्हति=दण्ड+य=दण्ड् (२६०)+दण्डच+सु=दण्डचः**= जो दण्ड पाने योग्य हो। **अर्घ्यः**=जो अर्घके योग्य हो। **वध्यः**=जो वधके योग्य हो।

(१२३७) तेन निर्वृत्तम्। ५। १। ७९॥

निष्पन्न अर्थमें तृतीयान्तसे परे ठञ (१२३१) प्रत्यय हो। **अह्ना निर्वृत्तम्=अहन्+ठ=आहन् (१०७०। २७३)+इक् (११०२) अ=आह्निक+अम्=आह्निकम्**। एक दिनकरके जो निष्पन्न हो—नित्यकर्म। इस स्थानमें (९८०) से भसंज्ञक टिका लोप न हुआ क्योंकि '**अह्नष्टखोरेव**' यह नियम सूत्र लग जाता है।

॥ इति ठञोऽवधिः ॥

अथ त्वतलोरधिकारः।

(१२३८) तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः। ५। १। ११५॥

तुल्य अर्थमें तृतीयान्तसे परे वति (वत्) प्रत्यय हो जिस धर्मके साथ तुलना की जाय यदि वह क्रिया हो तो।

ब्राह्मणेन तुल्यमधीते–ब्राह्मण+वत्=ब्राह्मणवत् (अधीते)=जो ब्राह्मणके तुल्य अध्ययन करता है।

क्रिया चेदिति किम्? जिससे धर्मकी तुलना करे वह क्रिया हो इसके कहनेका क्या कारण? (उत्तर) **गुणतुल्ये मा भूत**। जब गुणसे तुलना करे तब वह विधान न लगे। **पुत्रेण तुल्यः स्थूलः**=पुत्रके समान मोटा। यहां वत् प्रत्यय न हुआ।

(१२३९) तत्र तस्येव। ५। १। ११६॥

जिसमें सदृश तिसके इस अर्थमें सप्तम्यन्त और षष्ठयन्त शब्दोंसे परे वति (वत्) प्रत्यय हो (१२३८)।

---

१ दण्ड। मुसल। मधुपर्क। कशा। अर्घ। मेघ। मेधा। सुवर्ण। उदक। वध। युग। गुहा। भाग। इभ। भङ्ग॥ इति दण्डादि॥

मथुरायाम् इव=मथुरा+वत्=मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः=मथुरामें जैसी दीवार वैसी स्रुघ्नमें भी है।

चैत्रस्य इव=चैत्र+वत्='चैत्रवत् मैत्रस्य गावः' चैत्रकी जैसी गायें हैं वैसी ही मैत्रकी हैं ।

(१२४०) तस्य भावस्त्वतलौ । ५ । १ । ११९॥

प्रकृतिजन्यबोधे[1] प्रकारो भावः । त्वान्तं क्लीबम् ।

भाव अर्थमें षष्ठ्यन्तसे परे त्व अथवा तल् (त) प्रत्यय हो । प्रकृति अर्थात् घट पट आदि शब्दोंसे घडा वस्त्र आदिके ज्ञान होनेके घटत्व आदि धर्म जो विशेषणरूपसे प्रतीयमान होते हैं उनका नाम भाव है ।

गोः भावः=गो+त्व=गोत्व+अम्=गोत्वम्=गायका जो धर्म है, **' त्वान्तं क्लीबम् '** जो अन्तावयव त्व प्रत्यय हो तो वह नपुंसकलिंग हो ।

(१२४१) आ च त्वात् । ५ । १ । १२० ॥

ब्रह्मणस्त्व इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते ।

' ब्रह्मणस्त्वः ' जो अष्टाध्यायीका सूत्र है उसके पूर्वपर्यन्त त्व और तल् प्रत्ययका अधिकार होता है । **अपवादैःसह समावेशार्थमिदम् ।** इस सूत्रके करनेका कारण यह कि त्व और तल् प्रत्ययके बाधक जो अपवाद प्रत्यय हैं उन अपवादक प्रत्ययोंके साथ उन्हींके तुल्य व्यवहारमें आवें, आशय यह कि इनका और इनके बाधक प्रत्ययोंका भी व्यवहार होगा । **चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः ।** सूत्रमें चकार कहनेका आशय यह कि–जसे प्रयोगमें त्व और तल् प्रत्यय होते हैं वैसे ही नञ् और स्नञ् (१०७७) प्रत्यय भी हों यथा–**स्त्रियाः भावः–**

स्त्री+न[१०७०]=स्त्रै (१०७०) न=स्त्रैण (१५७)+अम्=स्त्रैणम् ।

(अ०) स्त्री=त्व=स्त्रीत्व+अम्=स्त्रीत्वम्	} स्त्रीका धर्म ।
स्त्री+त=स्त्रीत+आ[१४३२]=स्त्रीता	

---

१ यस्मात् त्वतलौ क्रियेते सा प्रकृतिः, यथा गोशब्दः । तज्जन्यबोध='गोत्वविशिष्टः' इत्यस्मिन्, प्रकारो-विशेषणं–गोत्वरूपो धर्मः स एव भाव इत्यर्थः ।

पुंस्+स्नञ्[१६७७] =पौंस्+स्न+अम्=पौंस्नम्
पुंस्+त्व=पुंस्त्व+अम्=पुंस्त्वम्
पुंस्+त=पुंस्त+आ[१६४२]=पुंस्ता
} पुरुषत्व अर्थात् पुरुषका धर्म.

(१२४२) पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा । ५ । १ । १२२ ॥

वावचनमणादिसमावेशार्थम् ।

पृथु[१] आदि षष्ठयन्त प्रादिपदिकोंसे परे भाव अर्थमें इमनिच् (इमन्) प्रत्यय विकल्प करके हो । विकल्प कहनेका कारण यह कि पक्षमें अण् आदि प्रत्यय भी हों ।

(१२४३) र ऋतो हलादेर्लघोः । ६ । ४ । १६१ ॥

हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्यात् इष्ठेमेयस्सु परतः ।

हल् जिसके पूर्व हो ऐसे लघु (४८३) ऋकारसे परे इष्ठन्, इमन्, ईयस् आदि प्रत्यय परे हों तो ऋको र् हो ।

(१२४४) टेः । ६ । ४ । १५५ ॥

भस्य टेर्लोपः इष्ठेमेयस्सु ।

इष्ठन् (१३०७) इमनिच् (१२४२) अथवा ईयसुन् (१३११) प्रत्यय परे हुए सन्ते भसंज्ञक टिका लोप हो । **पृथु-मृदु-भृश-कृश-दृढ-परिवृढानामेव रत्वम् ।** पृथु (मोटा), मृदु (कोमल), भृश (अत्यन्त), कृश (दुबला), दृढ (मजबूत) परिवृढ (प्रभु), इन्हीं शब्दोंके ऋकारको र् (१२४३) हो । **पृथोः भावः=पृथु+इमन्** (१२४२)=पृथ् (१२४४)+इमन्=प्रथ् (१२४३)+इमन्=प्रथिमन्+सु= प्रथिमा (अथवा) पृथु+अ=पार्थो (१०१०)+अ=पार्थ्+अ (२९)+अ= पार्थव+अम्=पार्थवम्=बडेका भाव अर्थात् बडाई । **मृदोर्भावः मृदु+इमन्(१२४२)** =म्रदिमा (अथवा) मृदु+अ=मार्दवम् (१०१०, १०१९) कोमलका भाव - कोमलता ।

---

१ पृथु, मृदु, महत्, पटु, तनु, लघु, बहु, साधु आशु, उरु, गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, चण्ड, अकिंचन, बाल, होड, पाक, वत्स, मन्द, स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ, प्रिय, वृष, ऋजु, क्षिप्र, क्षुद्र, अणु । इति पृथ्वादिः ।

शूर्पनखा=जिसके नख सूपके समान हों (रावणकी बहन) **गौरमुख+आ=गौरमुखा** गोरे मुखवाली स्त्री । **संज्ञायां किम् ?** (१३७२) संज्ञाअर्थवाचक शब्द कहनेका कारण यह कि यह न हो तो ङीष् हो यथा–**ताम्रमुख+ई=ताम्रमुखी कन्या**=जिसका मुख तांबेके समान लाल हो ।

(१३७४) जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्[१] । ४ । १ । ६३ ॥

जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपधं ततो ङीष् ।

जातिवाचक प्रातिपदिक जो नियम करके स्त्रीलिंग न हो और उसकी उपधामें यकार न हो तो उसके स्त्रीत्व करनेमें ङीष् प्रत्यय हो ।

तट+ई=तटी=किनारा ।

वृषल+ई=वृषली=शूद्रकी स्त्री ।

कठ+ई=कठी=ऋग्वेदियोंकी कठशाखा पढनेवाली जातिकी स्त्री ।

बह्वृच+ई=बह्वृची=ऋग्वेदियोंकी जातिकी स्त्री ।

जातेः किम् ? जातिवाचक कहनेका कारण यह है कि जातिवाचक न हो तो टाप् प्रत्यय हो । यथा–**मुण्ड+आ=मुण्डा**–जिसने शिर मुँडाया हो ऐसी स्त्री ।

अस्त्रीविषयात् किम् ? नियम करके स्त्रीलिंग न हो इसके कहनेका कारण यह है कि ऐसा होनेसे टाप् हो यथा–**बलाका**=बगली ।

अयोपधात् किम् ? उपधामें यकार न हो कहनेका कारण यह कि यकार होनेसे टाप् हो यथा–**क्षत्रिया**=क्षत्रियजातिकी स्त्री यहां ङीष् न हुआ ।

(१३७५) योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः ॥

जिन शब्दोंकी उपधामें यकार हो उनका निषेध (१३७४) जो किया है उस निषेधमें नीचे लिखे शब्द नहीं किये जाते ।

हय+ई=हयी–घोडी । **गवय+ई=गवयी**–नीलगाय ।

---

[१] “ आकृतिग्रहणा जातिः ” अनुगतसंस्थानव्यंग्येत्यर्थः तटी । ‘ लिङ्गानां च न सर्वभाक् ’ ‘ सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या ’ असर्वलिङ्गत्वे सति एकस्यां व्यक्तौ कथनाद्व्यक्त्यन्तरे कथनं विनापि सुग्रहा जातिरिति लक्षणान्तरम् (वृषली) । “ गोत्रञ्च चरणैः सह ‘ औपगवी । कठी । अवयवरचनाके द्वारा जिसका ज्ञान होता है उसको जाति कहते हैं । मनमें गौकी आकृति स्थित रहनेसे उसके समान दूसरी वस्तु देखनेमें आते ही प्रथमके ज्ञानसे जो गायरूप शब्द जाननेमें आता है उसको जाति कहते हैं । जो शब्द त्रिलिंगवाचक न हो और जिसके एक कथनसे अवयवकी रचना समान होते हुए भी फिर विना कथन किये जिसका ज्ञान हो उसको जाति कहते हैं । यथा शूद्री । इस उदाहरणमें मनुष्य जातिकी स्त्रीके अवयव समान होते हुए शूद्र जातिकी स्त्री है, ऐसा ज्ञान फिर दुबारा कथनके विनाही होता है और इससे ब्राह्मणी नहीं शूद्री है यह विदित होता है ।

मुकय+ई=मुकयी=जन्तुविशेष । **मनुष्य+ई=मनुषी** (१२४७) मनुष्य स्त्री **मत्स्य+ई=मत्सी**=(मछली) मत्स्य तद्धितान्त नहीं है इसपर भी कात्यायनके मतसे यका लोप हुआ है "**मत्स्यस्य ङ्याम् यलोपः**" ङी प्रत्यय परे रहते मत्स्यके यकारका लोप हो ।

(१३७६) इतो मनुष्यजातेः । ४ । १ । ६६ ॥

ङीष् स्यात् ।

मनुष्यजातिवाचक इकारान्त प्रातिपदिकसे परे स्त्रीत्व करना हो तो ङीष् प्रत्यय हो । **दक्ष+ई+दाक्षी** (१०८८)=दक्षके वंशकी स्त्री ।

(१३७७) ऊङुतः । ४ । १ । ६७ ॥

उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ् स्यात् ।

जो मनुष्यजातिवाचक उकारान्त प्रातिपदिककी उपधामें यकार न हो तो उसे स्त्रीत्वकी इच्छामें उससे परे ऊङ् (ऊ) प्रत्यय हो । **कुरु+ऊ=कुरूः**=कुरुवंशकी स्त्री । **अयोपधात् किम् ?** उपधामें यकार न हो यह क्यों कहा ? इसका कारण यह कि उपधामें यकार हो तो ऊङ् न हो । यथा-**अध्वर्युः ब्राह्मणी**=यजुर्वेदियोंके वंशकी स्त्री ।।

(१३७८) पङ्गोश्च । ४ । १ । ६८ ॥

पंगु शब्दसे परे भी ऊङ् (१३७७) प्रत्यय हो । **पङ्गु+ऊ=पङ्गूः**-पंगुल स्त्री ।

(१३७९) श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च ॥

श्वशुर शब्दके उकार तथा अकारका लोप हो और ऊङ् (१३७७) प्रत्यय भी हो । **श्वशुर+ऊ=श्वशुर्+ऊ+सु=श्वश्रूः**=सास ।

(१३८०) ऊरूत्तरपदादौपम्ये । ४ । १ । ६९ ॥

उपमानवाचि पूर्वपदमूरूत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तस्मादूङ् स्यात् ।

जिस प्रातिपदिकका पूर्वपद उपमानवाचक हो तथा उत्तरपद ऊरु शब्द हो तो स्त्रीत्व करनेमें उससे परे ऊङ् (१३७७) प्रत्यय हो । **करभ=ऊरु-करभोरु+ऊ+सु=करभोरूः**=जिस स्त्रीकी जंघा करभकी समान चढाव उतारवाली हो । करभ मणिबन्धसे लेकर कनिष्ठिकापर्यन्त हथेलीके बाहरी भागको कहते हैं ।

(१३८१) संहितशफलक्षणवामादेश्च । ४ । १ । ७० ॥

अनौपम्यार्थं सूत्रम् ।

संहित (मिला हुआ), शफ (खुर), लक्षण (चिन्ह) और वाम (सुन्दर) इनमेंसे कोई आदिमें हो और ऊरु शब्द उत्तरपदमें हो तो स्त्रीत्वकी विवक्षामें प्रातिपदिकसे परे

ऊङ् प्रत्यय (१३७७) हो। जिन प्रयोगोंमें कोई पूर्वपद उपमानवाचक न हो उसके निमित्त यह सूत्र है।

संहित+ऊरु=संहितोरु+ऊ+सु=संहितोरूः=जिसकी जंघा जुटी हों।

शफ+ऊरु=शफोरु+ऊ+सु=शफोरूः=जिसकी जंघा गौके खुरके समान हों।

लक्षण+ऊरु=लक्षणोरु+ऊ+सु=लक्षणोरूः=जिसकी जंघामें तिलआदिका चिह्नहो।

वाम+ऊरु=वामोरु+ऊ+सु=वामोरूः=जिसकी जांघ सुन्दर है।

(१३८२) शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् । ४ । १ । ७३ ॥

शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन्।

शार्ङ्गरव अदि * गणके जातिवाचक शब्दोंसे परे तथा अञ् प्रत्यय (१०९०) का अकार जिस जातिवाचक प्रातिपदिकके अन्तमें हो उसे स्त्री करना हो तो ङीन् (ई) प्रत्यय हो।

शार्ङ्गरव+ई=शार्ङ्गरवी=शृङ्गरु ऋषिके वंशकी कन्या।

बिद+ई+बैदी =(१०९०) बिद ऋषिके वंशकी कन्या।

ब्राह्मण+ई=ब्राह्मणी=ब्राह्मण जातिकी स्त्री। नृ=ई–

(१३८३) नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥

ङीन् प्रत्यय परे हुए सन्ते नृ तथा नर शब्दोंको वृद्धि आदेश हो **नार्+ई=नारी**=स्त्री ॥

(१३८४) यूनस्तिः । ४ । १ । ७७ ॥

युवन्शब्दात्स्त्रियां तिः स्यात्।

स्त्रीवाचक युवन् शब्दसे परे ति प्रत्यय हो।

युवन्[1]+ति+सु=युवतिः=युवा स्त्री।

॥ इति स्त्रीप्रत्ययाः ॥

---

* शार्ङ्गरव। कापटव। गौग्गुलव। ब्राह्मण। बैद। गौतम। कामण्डलेय। ब्राह्मणकृतेय। आनिचेय। आनिधेय। आशोकेय। वात्स्यायन। मौञ्जायन। कैकस। काव्या। शैव्या। एहिपर्व्याहि। आश्मरथ। औदपान। अराल। चंडाल। वतण्ड। भोगवत्। गौरिमत् (एता संज्ञायाम्)। नृ नर।

१ युवन् शब्दात् तिप्रत्यये 'स्वादिष्वसर्वनाम'–इति पदसंज्ञायां 'न लोपः प्रातिपदिक'–इति नकारलोपे युवतिरिति सिद्धम् ॥

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां[1] चोपकारिका ।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥

जो दूसरे शास्त्रोंमें प्रविष्ट है परन्तु व्याकरण शास्त्रसे अनभिज्ञ हैं उनके तथा बालकोंके उपकारके निमित्त वरदराजने लघुसिद्धांतकौमुदी रची है ॥

नेत्रबाणाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचिमासे सिते दले ।
सतम्यामुशनोवारे टीका पूर्तिमुपागमत् ॥
श्रीमद्विद्यागुरून्नत्वा शास्त्रमार्गप्रदर्शकान् ।
कृता ज्वालाप्रसादेन भाषाटीका मनोरमा ॥

शुभमस्तु ।

इति श्रीमत्कान्यकुब्जकुलतिलकमिश्रसुखानन्द सूनुपण्डित–ज्वालाप्रसादमिश्र विरचिता लघुसिद्धांतकौमुदीभाषाटीका समाप्ता ॥

समाप्तेयं लघुसिद्धान्तकौमुदी ।



---

[1] अधीतकाव्यकोशादिग्रन्था अनधीतव्याकरणशास्त्रा अत्र बालाः, अतएव " शास्त्रान्तरे प्रविष्टानाम् " इत्युक्तिरिति ।